॥ श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः ॥

गुरुपरम्परामें श्रीकृष्णचैतन्यके अधीन चौथी पीढ़ीके महापुरुष श्रीरूपानुग अप्राकृत-कविकुलश्रेष्ठ-
ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद् कृष्णदास-कविराज-गोस्वामी-रचित

श्रीश्रीचैतन्यचरितामृत

आदिलीला [द्वितीय भाग (अध्याय 8-17)]

गुरुपरम्परामें श्रीकृष्णचैतन्यके अधीन आठवीं पीढ़ीके पुरुषप्रधान श्रीरूपानुगवर-
ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद् सच्चिदानन्द-भक्तिविनोद-ठाकुर-रचित

अमृतप्रवाह-भाष्य,

गुरुपरम्परामें श्रीकृष्णचैतन्यके अधीन नौवीं पीढ़ीके श्रेष्ठ परिजन परमहंस-परिव्राजकाचार्य-श्रीरूपानुगश्रेष्ठ-
श्रीब्रह्ममाधवगौड़ीय-सम्प्रदायके सर्वोत्तम संरक्षक-
ॐ विष्णुपाद परमहंसस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद-रचित
श्रीस्वरूप-रूप-विरोधी समस्त-कुसिद्धान्तोंको निरस्त करनेवाला

अनुभाष्य

एवं

विविध गौड़ीय वैष्णवाचार्योंके लेखों एवं नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री
श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजके प्रवचनोंसे सङ्कलित 'अमृतानुकणिका' भाष्य,
भूमिका, विविध सूची और विवरण आदि-सहित

गुरुपरम्परामें श्रीकृष्णचैतन्यके अधीन दसवीं पीढ़ीके श्रेष्ठ परिजन
श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रतिष्ठाता-आचार्य-भास्कर
नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री

श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके अनुकम्पा-पात्र

नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री

श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजके-

आदेश-निर्देशानुसार उनके चरणाश्रितजनोंके द्वारा

अनुवादित और सम्पादित

प्रकाशक : इन्टरनेशनल गौड़ीय वेदान्त पब्लिकेशन्स

मूल बङ्गला पयार, संस्कृत श्लोक, अमृतप्रवाह भाष्य, अनुभाष्य
और अमृतानुकणिका सहित प्रकाशित

प्रथम संस्करण—*श्रीगौरपूर्णिमा , 23 मार्च, 2016*
1000 प्रतियाँ

卐 卐 卐 卐 卐

ग्रन्थ प्राप्ति स्थान

श्रीरमणविहारी गौड़ीय मठ
बी–3, म्यूजिकल फाँऊन्टेन पार्कके निकट,
जनकपुरी, **नई दिल्ली**
011-25533568

श्रीरूप-सनातन गौड़ीय मठ
दान गली, **वृन्दावन** (उ.प्र.)
+91 9219478001

श्रीश्रीकेशवजी गौड़ीय मठ
कोलेरडाङ्गा लेन, **नवद्वीप** (प.ब.)
+91 9153125442

जयश्री दामोदर गौड़ीय मठ
चक्रतीर्थ रोड़, **जगन्नाथपुरी** (ओडीशा)
+91 9776238328

खण्डेलवाल एण्ड सन्स
अठखम्बा बाजार, **वृन्दावन** (उ.प्र.)
0565-2443101

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ
जवाहर हाट, **मथुरा** (उ.प्र.)
0565-2502334

श्रीगिरिधारी गौड़ीय मठ
दसविसा, राधाकुण्ड रोड, **गोवर्धन** (उ.प्र.)
0565-2815668

श्रीराधामाधव गौड़ीय मठ
293, सैक्टर–14, **फरीदाबाद** (हरियाणा)
+91 9911283869

श्रीराधागोविन्द गौड़ीय मठ
डी–5, सैक्टर–55, **नोएडा**, (उ.प्र.)
+91 9910400878

विषय-सूची

	सम्पादक-मण्डली निवेदन	i
	उद्धृत ग्रन्थ	ii - iii
	अध्याय विवरण	iv - vi
अध्याय 8	ग्रन्थ-रचनार्थ वैष्णव-आज्ञा-कथन	3–24
अध्याय 9	भक्तिकल्पवृक्ष वर्णन	27–38
अध्याय 10	मूलस्कन्ध-शाखा वर्णन	41–94
अध्याय 11	श्रीनित्यानन्दस्कन्ध-शाखा वर्णन	97–120
अध्याय 12	श्रीअद्वैतस्कन्ध-शाखा वर्णन	123–144
अध्याय 13	जन्म-महोत्सव वर्णन	147–171
अध्याय 14	बाल्यलीला-सूत्र वर्णन	173–188
अध्याय 15	पौगण्डलीला-सूत्र वर्णन	191–198
अध्याय 16	कैशोरलीला-सूत्र वर्णन	201–216
अध्याय 17	यौवनलीला-सूत्र वर्णन	219–269
	श्लोक सूची	271–272
	पद्य सूची	273–297
	शब्दकोश	299–306

प्रकाशन-मण्डली

टङ्कण
(Typing)
श्रीमती ऐश्वर्य दासी
श्रीमती प्रज्ञा दासी

ध्वन्यात्मक अभिलेखन
(Transcription)
श्रीमती कुन्दलता दासी

चित्र
श्रीमान् गुलशन
श्रीमान् राधेश्याम

अनुवाद, विन्यास, शोधकार्य
(Translation, Layout & Research)
श्रीमान् गोकुलचन्द्र दास

प्रूफ–संशोधन
(Proof Reading)
श्रीमती जानकी दासी

संस्कृत–हिन्दी अनुवाद
श्रीमान् डॉ अच्युतलाल भट्ट (पी॰एच॰डी॰)
श्रीमान् गणेशीलाल शर्मा एम॰ए॰ (संस्कृत)

प्रकाशक : श्रीपाद रामचन्द्र दास
इन्टरनेशनल गौड़ीय वेदान्त पब्लिकेशन्स

निवेदन

हमारे परमाराध्य गुरुदेव नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीकी गौड़ीय वैष्णवाचार्योंकी विविध टीकाओं सहित श्रीचैतन्यचरितामृत हिन्दी भाषामें प्रकाशित करनेकी चिर-अभिलाषा थी। इस कार्यको सम्पादित करनेके लिये उन्होंने प्रकाशन मण्डलीको आज्ञा एवं निज शक्ति प्रदान की थी। श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामीने श्रीचैतन्य महाप्रभुके द्वारा अनुमोदित गूढ़ तत्त्व-सिद्धान्तों और सर्वोच्च रस-तत्त्वका अनूठा, अद्भुत और चमत्कारी समन्वय इस ग्रन्थमें अति सरल बङ्गला भाषामें करके अपने अप्राकृत कवित्वका परिचय प्रदान किया है। "मितञ्च सारञ्च वचो हि वाग्मिता", श्रील कविराज गोस्वामीकी लेखनी इस उक्तिका उज्ज्वल उदाहरण है, उन्होंने अति अल्प शब्दोंमें समस्त शास्त्रोंके सारको प्रमाण सहित इस ग्रन्थमें प्रस्तुत किया है। इस ग्रन्थकी भाषा सरल होने पर भी इसमें अत्यन्त गूढ़ रहस्य समन्वित हैं। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर और श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुरने अपनी टीकाओं एवं अनेकानेक लेखोंके द्वारा उन गूढ़ रहस्योंको उद्घाटित किया है। इन टीकाओं और लेखों तथा श्रील गुरुदेवके प्रवचनोंको इस प्रकाशनमें समन्वय करके ग्रन्थके गूढ़ भावोंको सर्वसाधारणके लिये बोधगम्य बनानेका हमारा प्रयास है। श्रील गुरुदेवके अहैतुकी कृपाशीर्वादसे श्रीचैतन्यचरितामृत आदिलीलाका प्रथम भाग गत वर्ष श्रीगौर-पूर्णिमाके दिन उनके करकमलोंमें समर्पित किया गया था।

उनके मनोवाञ्छित कार्यको सम्पूर्ण करनेके लिये प्रकाशन मण्डलीके सेवक निरन्तर प्रयासशील हैं और श्रील गुरुदेवकी प्रेरणा एवं निरुपाधिक निरवधि कृपाशक्ति हमें इस महत् कार्यमें सदा उत्साहशील बनाये रखती है। यह अति हर्षका विषय है कि श्रीचैतन्यचरितामृतका द्वितीय भाग भी अब प्रकाशित हो गया है और श्रीगुरुदेवकी प्रसन्नताके लिये उनकी निज वस्तुको उनके ही करकमलोंमें अर्पित करते हुए परमानन्दका अनुभव कर रहे हैं।

इस ग्रन्थके प्रकाशनके लिये आत्मीय सहायता एवं प्रेरणाके लिये हम श्रीयुता उमादेवी दासीके आभारी हैं। इस ग्रन्थमें कुछ त्रुटियोंका रह जाना स्वाभाविक है। सुधी पाठकोंके द्वारा उनका संशोधनपूर्वक पाठ करनेसे हम आनन्दित होंगे।

प्रकाशन मण्डली
इन्टरनेशनल गौड़ीय वेदान्त पब्लिकेशन्स (IGVP)

श्रीचैतन्यचरितामृत आदिलीला उत्तरार्द्धमें उद्धृत प्रमाण-ग्रन्थ तालिका

एकादशी-तत्त्व—16/58; **उद्वाह-तत्त्व—15**/27; **उज्ज्वलनीलमणि—17**/293; **केशव-काश्मीरी-श्लोक—16**/41; **बृहन्नारदीयपुराण—17**/21; **ब्रह्मवैवर्त्तपुराण—17**/164; **भक्तिरसामृतसिन्धु—8**/17; **भरतमुनि-वाक्य—16**/71; **भागवत—8**/19, 25, 58; **9**/42, 43, 46; **13**/77; **14**/69; **17**/76, 78; **मलमासतत्त्व—17**/164; **महाभारत—17**/308; **ललितमाधव—17**/281; **श्रीचैतन्यचन्द्रोक्त-श्लोक—16**/82; **17**/31; **सामुद्र—14**/15 ॥

अमृतप्रवाह भाष्यमें उद्धृत ग्रन्थादि-तालिका

पुरुषसूक्त—17/18; **बृहद्व्याकरण**—13/29; **भक्तिरसामृतसिन्धु**—8/58; **योगवाशिष्ठ**—17/65; **रामाष्टक—17/69; लघु-व्याकरण—13/29; सामुद्रिक ग्रन्थ—13/120** ॥

अनुभाष्यमें उद्धृत ग्रन्थादि-तालिका

अथर्ववेद-संहिता—14/19; **अद्वैतचरित—12**/13-18, 27; **अभिज्ञान-शकुन्तल—16**/101; **उत्तरचरित—16**/101; **एकादशी-तत्त्व—17**/265, 266; **कुमारसम्भव—16**/101; **कूर्मपुराण—17**/78; **कृष्णगणोद्देशदीपिका—12**/83; **कौस्तुभप्रभा—16**/25; **गीतगोविन्द या अष्टपदी—13**/42; **गौतमीय-तन्त्र—17**/293; **गौरगणोद्देशदीपिका—8**/41, 59-60, 66; **9**/14, **10**/8, 14-17, 21-25, 29, 31-38, 40, 53, 56, 61-63, 67-68, 70-71, 73, 75-78, 80, 84-85, 91, 106-115, 119-120, 130-131, 134-136, 139, 143, 153; **11**/13, 21, 23-26, 29, 31-33, 37-39, 41-42, 44-45, 51, 53-54; **12**/13-18, 57-59, 65, 79-81, 83-87; **13**/56, 60-61, 74; **14**/68; **15**/29; **17**/296, 300-301; **चण्डीदास-गीतिग्रन्थ—13**/42; **चैतन्यचन्द्रामृत—13**/123; **चैतन्यचन्द्रोदय-नाटक—13**/89; **17**/55; **चैतन्य-चरित महाकाव्य—10**/49, 62, 136; **14**/62-68; **17**/55; **चैतन्यभागवत—9**/11, 14; **10**/30-32, 34-37, 41, 43-47, 49, 53, 58, 64, 67-73, 75-77, 113, 115, 126, 131, 135; **11**/20, 23, 26, 28, 29, 31, 33-39, 41-47; **12**/13-17, 40-42; **13**/28, 29, 67-71; **14**/19, 21-23, 25, 37-40, 73; **15**/7, 23, 31; **17**/7-12, 17-20, 23, 31, 37, 55, 64-65, 69-71, 79-86, 99-100, 103-114, 116, 124, 138-142, 228-230, 241-243, 262, 274, 278; **चैतन्यमङ्गल (श्रीलोचनदास)—14**/46; **17**/69, 89, 95, 119; **छान्दोग्योपनिषद् (शाङ्कर-टीका)—17**/78; **तत्त्व-सन्दर्भ—10**/105; **नरोत्तमदास ठाकुरकी प्रार्थना—13**/123; **दशम-टिप्पणी (वैष्णवतोषणी)—17**/78; **नरोत्तमविलास—12**/13-17; **नित्यानन्दायिनी पत्रिका—12**/13-17; **पद्मपुराण—8**/16; **प्रेमतरङ्गिणी—12**/58; **भक्तिरत्नाकर—10**/78, 84, 85, 91, 105; **11**/13, 25; **12**/58; **16**/25; **17**/55; **भक्तिरसामृतसिन्धु—8**/16; **14**/90;

16/11; भक्तिसन्दर्भ—15/9-10; भागवत—12/70; 13/86, 100, 123, 124; 14/73, 88; 16/11; 17/77-78, 117, 201, 257, 312, 331; भावार्थ-दीपिका—13/80-86, 104; 17/57; भोगनिर्णय-पद्धति—12/83; महाभारत—15/27; मालती-माधव—16/101; मेघदूत—16/101; योगवाशिष्ट रामायण—12/40; रघुवंश—16/101; लघुभागवतामृत—13/86; विद्यापतिके गीतिग्रन्थ—13/42; वीरचरित—16/101; वृहज्जातकादि ग्रन्थ—13/90; वेदान्तकौस्तुभ (श्रीनिवासाचार्य)—16/25; वेदान्तदर्शनका परिजात-भाष्य—16/25; वैष्णव-तोषणी—17/77-78; वैष्णव-मञ्जुषा—10/17, 53; 12/18, 27; 13/42; 16/25; वैष्णव-वन्दना—11/29, 40; शाखानिर्णयामृत—12/13-17, 58, 62, 79-87; श्वेताश्वतरोपनिषद्—17/257; साधन-दीपिका—12/58; सीताद्वैतचरित—12/13-17; स्कन्दपुराण—15/9 हरिभक्तिविलास—10/105; 12/27; होराशास्त्र—13/90 ॥

अमृतानुकणिकामें उद्धृत ग्रन्थादि-तालिका

अग्निपुराण—15/9-10; उज्ज्वलनीलमणि (आनन्दलोचनीटीका)—10/85; कर्णानन्द—10/85; गौरगणोद्देश-दीपिका—15/28; 16/25; गीता—9/39; चैतन्यभागवत—9/10; 10/14, 19, 32, 40; 12/40-42; 14/61; 16/20-21; 17/7; नारदपुराण—15/9-10, 24; पद्मपुराण—15/9-10, 24; बृहद्नारदीयपुराण—15/9-10; ब्रह्मवैवर्तपुराण—15/24; ब्रह्मसंहिता—10/85; भक्तिरत्नाकर—9/10; भक्तिरसामृतसिन्धु—8/18, 57; भविष्यपुराण—15/9-10; भागवत—8/12; 17/155-158; मत्स्यपुराण—15/9-10; मनुसंहिता—12/49-53; विष्णोधर्मोत्तर—15/9-10, 24; स्कन्दपुराण—8/24; 15/24; स्मृतिवाक्य—15/9-10; हरिभक्तिविलास—12/49-53; 15/9-10, 24 ॥

साङ्केतिक चिह्नोंकी सूची

अन्त्य — अन्त्यलीला
उःनीः — उज्ज्वलनीलमणि
छाः — छान्दोग्योपनिषद
नाःपःराः — नारदपञ्चरात्र
बृःआः — बृहदारण्यकोपनिषद
मःभाः — महाभारत
भाः — भागवत
श्वेः — श्वेताश्वतरोपनिषद
आदि — आदिलीला
कठः — कठोपनिषद
तैः — तैत्तिरयोपनिषद
ब्रःसः — ब्रह्मसंहिता
मध्य — मध्यलीला
भःरःसिः — भक्तिरसामृतसिन्धु
विःपुः — विष्णुपुराण
हःभःविः —हरिभक्तिविलास

श्रीश्रीचैतन्यचरितामृत

आदिलीला (उत्तरार्द्ध) अध्याय-विवरण

आठवाँ अध्याय— 3-24

पञ्चतत्त्वका माहात्म्य न मानकर पृथक् बुद्धिसे श्रीगौर अथवा श्रीकृष्णकी पूजा घोर अपराध, श्रीकृष्णभक्तिके बिना श्रीगौरभक्ति और श्रीगौरभक्तिके बिना श्रीकृष्णभक्ति 'अभक्ति' अथवा 'आसुरवृत्ति'; श्रीचैतन्य दयाकी चमत्कारिता; अपराधयुक्त होनेपर असंख्य बार श्रीकृष्णका श्रवण-कीर्तन वृथा, श्रीकृष्ण भुक्ति-मुक्ति देकर जीवकी वञ्चना करके 'भक्ति' नहीं देते, श्रीकृष्णके साथ रस सम्बन्ध न होनेसे केवल मुक्ति ही लाभ; महाप्रभुकी महापापीके भी प्रति प्रेम-भक्ति प्रदान लीला, श्रीगौर-निताइ सेवासे ही श्रीकृष्ण-प्रेमोदय, श्रीकृष्ण नामापराधोंका विचार करते हैं, श्रीगौर-निताईके नामोंमें अपराधका विचार नहीं है, श्रीचैतन्यभागवतके श्रवणसे श्रीगौर-निताईकी महिमा और श्रीकृष्णभक्ति-सिद्धान्तके विषयमें ज्ञान; श्रीवृन्दावनदास ठाकुरकी महिमाका कीर्तन, श्रीपण्डित हरिदास, वैष्णवोंके पचास सद्गुण, श्रीकविराज गोस्वामीके द्वारा श्रीचैतन्यचरितामृतके वर्णनका रहस्य।

नौवाँ अध्याय— 27-38

महाप्रभु द्वारा माली बननेका धर्म ग्रहण और नवद्वीपमें भक्तिके फलोंके उद्यानकी रचना, भक्तिकल्पवृक्ष, श्रीमाधवेन्द्रपुरी कल्पवृक्षके प्रथम अङ्कुर, अचिन्त्य शक्तिके बलसे माली होकर भी महाप्रभु स्वयं स्कन्ध एवं सभी शाखाओंके आश्रय, परमानन्दपुरी और केशव भारती-प्रमुख नौ संन्यासी वृक्षके नौ मूल, परमानन्दपुरी मध्यमूल, श्रीअद्वैत और श्रीनित्यानन्द-दो स्कन्ध, स्कन्धकी बहुतसी शाखाएँ और उपशाखाएँ, प्रेमफल, प्रेमफलास्वादन, प्रेमफल वितरण, जीवोंका नित्य-मङ्गल विधान ही परोपकार, श्रीकृष्णप्रेम अर्पण द्वारा जीवोंको अपने अनुरूप महाभागवत बनाना तथा निन्दकोंका भी श्रीकृष्णप्रेम प्राप्तिसे उद्धार।

दसवाँ अध्याय— 41-94

मूल स्कन्ध शाखा अर्थात् महाप्रभुकी निजशाखाका वर्णन, श्रीगौरभक्तोंमें गुरु-लघु-भेद शून्यता; 'प्रभुपादोपाधान' शङ्कर पण्डित, वासुदेव ठाकुरकी परदुःख-कातरता, नामाचार्य हरिदास ठाकुर और उनके शिष्य सत्यराज खाँ आदि कुलीन-ग्रामवासी, कुछ भी शुल्क न लेनेवाले देहरोग-भवरोग चिकित्सक मुरारिगुप्तका आत्मवृत्तिके द्वारा कुटुम्ब भरण-पोषण, महाप्रभुका 'साक्षात्', 'आवेश' और 'आविर्भाव'-इन तीन रूपोंमें अवतीर्ण होकर कृपा, नकुल ब्रह्मचारीकी देहमें महाप्रभुका आवेश, 'नकुल ब्रह्मचारी' अथवा 'प्रद्युम्न ब्रह्मचारी' तथा महाप्रभु प्रदत्त 'नृसिंहानन्द' एक ही व्यक्तिके नाम, कुलीन-ग्रामवासियोंका माहात्म्य; श्रीरूप-सनातन-शाखाके विस्तारसे समस्त भारतका उद्धार—१) भक्त-आचार-प्रवर्त्तन, २) लुप्ततीर्थ उद्धार और ३) श्रीमूर्त्तिकी पूजाका प्रचार; श्रीस्वरूप दामोदरके अन्तर्धान होनेपर 'स्वरूपके रघुका' श्रीरूप-सनातनके चरणोंके दर्शन और महाप्रभु-स्वरूप दामोदरके विरहसे कातर होकर गोवर्धनसे कूदकर देह त्यागका सङ्कल्प लेकर वृन्दावन आगमन, श्रीरूप-सनातनके द्वारा तृतीय भाईके रूपमें रघुनाथ दास गोस्वामीको अपने समीप रखना, दास गोस्वामीके दैनिक कृत्य, रघुनाथभट्ट गोस्वामीका विवरण।

ग्यारहवाँ अध्याय— 97–120

श्रीनित्यानन्दस्कन्ध-शाखा अर्थात् नित्यानन्दगणोंका वर्णन।

बारहवाँ अध्याय— 123–144

श्रीअद्वैतस्कन्ध-शाखा अर्थात् श्रीअद्वैतगणोंका वर्णन, श्रीअद्वैतगण पहले एकमत, बादमें दो मत—आचार्यके अनुगत और उनसे स्वतन्त्र, श्रीअच्युतानन्दानुग 'सारग्राही' एवं अन्य सब 'असार', सारग्राही-सहित सभीकी गणना करनेके बाद असारग्राहियोंका त्याग, श्रीचैतन्य महाप्रभु चौदह भुवनोंके गुरु, बाउलिया विश्वास, बाउल अथवा मायावादमतका खण्डन, महाप्रभुके द्वारा वैष्णव आचार्यके कर्त्तव्यका निर्णय, असार गणोंका श्रीगौरकृपाके अभावके कारण पतन, श्रीगौरकृष्ण-भक्त यमके गुरु और श्रीगौरकृष्ण-विमुख यमके दण्डके योग्य, श्रीगदाधर पण्डित गोस्वामीकी उपशाखाएँ, शाखा-स्मरणसे भवबन्धनका विमोचन।

तेरहवाँ अध्याय— 147–171

महाप्रभुकी आदिलीलाका सूत्र, गृहस्थ-लीला ही आदि-लीला एवं संन्यास-लीला ही मध्य और अन्त्य लीला, मुरारिगुप्तके द्वारा आदिलीला और स्वरूप गोस्वामीके द्वारा मध्य और अन्त्य लीलाका सूत्र-ग्रन्थन, आदिलीलाके चार भाग; आदि, मध्य और अन्त्य लीलाका संक्षेपमें विवरण, पहले गुरुवर्गोंको अवतरित कराना, बादमें स्वयं अवतरण, श्रीअद्वैतकी भक्तिपूर्ण व्याख्या, श्रीकृष्णावतार हेतु प्रतिज्ञा, विश्वरूप-जन्म, विश्वरूप-तत्त्व, श्रीगौराविर्भाव, नीलाम्बर-चक्रवर्त्तीकी गणना, आर्याओं (कुलीन स्त्रियों) का विविध उपहारों सहित श्रीगौर-दर्शन हेतु आगमन, सर्वत्र आनन्द-कोलाहल।

चौदहवाँ अध्याय— 173–188

महाप्रभुकी बाल्यलीलाओंका वर्णन और माता-पिताको चरणचिह्न-प्रदर्शन, महापुरुषोंके बत्तीस लक्षण, नीलाम्बर चक्रवर्त्तीकी भविष्यवाणी, नामकरण—'विश्वम्भर' नाम, घुटनोंके बल चलना, रोनेके छलसे नाम-प्रचार, पैरोंके बल चलना, मिट्टी खानेके छलसे माताको ज्ञान प्रदान, अतिथि-ब्राह्मणके प्रति कृपा, चोरोंको दिशा-भ्रम कराना, रोगके बहानेसे एकादशीके दिन हिरण्य-जगदीशके नैवेद्यको खाना, बाल-चपलता, माताकी मूर्च्छा और नारियल लाना, गंगाके तटपर कन्याओंके साथ परिहास, लक्ष्मीदेवीकी पूजा ग्रहण और वर प्रदान, उच्छिष्ट हाँडीके ऊपर बैठना तथा माताको ब्रह्मज्ञान-उपदेश, खाली पैरोंमें ही नूपुर ध्वनि, मिश्रका शुद्ध वात्सल्य, कलम पकड़ना।

पन्द्रहवाँ अध्याय— 191–198

महाप्रभुकी पौगण्ड लीलाका वर्णन—गङ्गादास पण्डितके स्थानपर व्याकरण-अध्ययन, माताको एकादशीके दिन अन्न न खाने हेतु अनुरोध, विश्वरूपका संन्यास, महाप्रभुकी मूर्च्छा और विश्वरूपके साथ वार्त्तालापरूपी कहानी, जगन्नाथ मिश्रका अप्रकट होना, लक्ष्मीदेवीके पाणिग्रहणकी लीला।

सोलहवाँ अध्याय— 201–216

महाप्रभुकी कैशोर लीलाका वर्णन—अध्यापन, पण्डित विजय, जाह्नवी (गङ्गा) में जलकेलि, पूर्वबङ्गाल-गमन, वहाँ विद्याका विचार और नामसङ्कीर्तन, तपनमिश्रके साथ मिलन, उनको साध्य-साधन उपदेश और वाराणसी जाने हेतु आदेश प्रदान, महाप्रभुकी विरहमें लक्ष्मीदेवीकी वैकुण्ठ-प्राप्ति, महाप्रभुका घर लौटना, माताको सान्त्वना देना, विष्णुप्रियाके साथ विवाह, दिग्विजयी-जय, दिग्विजयीके द्वारा कहे गये श्लोकके दोष और गुणोंका विचार, दिग्विजयीका सरस्वतीके निकट श्रीगौरतत्त्व-विषयक ज्ञान प्राप्त करना एवं महाप्रभुका चरणाश्रय।

सतरहवाँ अध्याय— 219–269

महाप्रभुकी यौवन लीलाका वर्णन—महाप्रभुका गया गमन, श्रीईश्वरपुरीके साथ मिलन और दीक्षाभिनय, प्रेमप्रकाश, घरमें लौटना, शचीमाताको प्रेमदान, श्रीअद्वैत-मिलन, श्रीअद्वैतका विश्वरूप दर्शन, श्रीवासके द्वारा महाप्रभुका अभिषेक, श्रीनित्यानन्द-मिलन, निताइको महाप्रभुके द्वारा षड्भुज, चतुर्भुज और द्विभुज रूपका प्रदर्शन, श्रीनित्यानन्द प्रभुके द्वारा व्यास-पूजन, महाप्रभुका श्रीनित्यानन्द (श्रीबलदेव) के आवेशमें मूसल धारण, शचीदेवीका श्रीबलराम-कृष्ण-दर्शन, जगाइ-मधाइका उद्धार, महाप्रभुका सात-प्रहरिया भाव, मुरारिके भवनमें वराह आवेश, शुक्लाम्बरके भिक्षाके चावल खाना, 'हरेर्नाम' श्लोककी व्याख्या, नामग्रहण करनेकी प्रणाली, श्रीवास भवनमें एक वर्ष तक सङ्कीर्तन, गोपाल-चापालका उपाख्यान, दुर्बुद्धि ब्राह्मणके द्वारा महाप्रभुको शाप देना, मुकुन्दके प्रति महाप्रभुका दण्डरूपी अनुग्रह, श्रीअद्वैतके प्रति महाप्रभुकी दण्डरूपी कृपा, मुरारि गुप्तकी ऐकान्तिक रामनिष्ठा, श्रीधरके लोहेके पात्रमें जलपान और उनको वरदान, हरिदास ठाकुरके प्रति कृपा, श्रीअद्वैताचार्यके प्रति शचीदेवीके अपराधका खण्डन, पाषण्डी छात्रका 'नाममें अर्थवाद', नामापराधीके मुख दर्शन होनेपर मनुष्यका कर्त्तव्य, महाप्रभुके द्वारा अभिधेय भक्तिकी महिमाका व्याख्यान, मुरारिकी प्रशंसा, आम्रवृक्ष-रोपण और फल दानकी कहानी, कीर्तनके समय मेघोंका निवारण, श्रीवासका विष्णुसहस्र-नाम पाठ, महाप्रभुकी नृसिंहावेश-लीला, श्रीगौरनामसे अपराध क्षय, श्रीगौरदर्शनसे संसार ध्वंस, महाप्रभुका महेशावेश, भिक्षुको श्रीकृष्णप्रेम प्रदान, ज्योतिषीके द्वारा महाप्रभुको 'साक्षात् भगवान्' बतलाना, ज्योतिषीके द्वारा श्रीगौर-निताइ-तत्त्व कहना, महाप्रभुकी बलदेवके आवेशमें यमुना आकर्षण-लीला और बारह घण्टे तक नृत्य, महाप्रभुकी आज्ञासे प्रति गृहमें श्रीकृष्णसङ्कीर्तन, काजीके द्वारा मृदङ्ग तोड़ना, कीर्तन-विरोध और निषेध, महाप्रभुके द्वारा सभीको नगर सङ्कीर्तन करनेका आदेश और काजी दलन, काजीके साथ शास्त्र-विचार, काजीके द्वारा स्वप्नमें देखी गयी नृसिंह-मूर्तिके दर्शनका उपाख्यान, काजीके पयादोंके मुख और दाढ़ी जलनेका विवरण, काजीके निकट स्मार्त्त पाषण्डियोंका अभियोग, काजीका वंशधरोंके प्रति 'तालाक', श्रीवासके पुत्रका परलोकगमन, महाप्रभुके द्वारा नारायाणीको उच्छिष्ट दान, यवन दर्जीके द्वारा महाप्रभुकी कृपा प्राप्ति, श्रीवासके द्वारा वृन्दावन लीलाका वर्णन, आचार्य रत्नके घरमें महाप्रभुका लक्ष्मीके आवेशमें नृत्य, किसी ब्राह्मणीके द्वारा महाप्रभुके चरण स्पर्श करनेपर महाप्रभुका गङ्गामें छलांग लगाना, महाप्रभुका उच्च स्वरमें 'गोपी' 'गोपी' कहना और पाषण्डी छात्रके द्वारा मना किये जानेपर महाप्रभुका क्रोध, पाषण्डियोंकी दुर्गति देखकर महाप्रभुकी करुणा और संन्यास ग्रहण, केशव भारतीका नदिया आगमन और महाप्रभुके साथ मिलन, महाप्रभुका काटोया जाकर संन्यास ग्रहण करना, चार प्रकारके भक्तभावोंका आस्वादन, महाप्रभुका राधाभाव, श्रीगौरनागरवादका खण्डन, श्रीकृष्णके अन्य रूपोंमें गोपियोंकी अप्रीति, गोपियोंकी श्रीकृष्णकी स्तुति, श्रीराधाके निकट श्रीकृष्णके चातुर्यकी पराजय, श्रीगौरलीलाके पार्षद एवं भक्तगणोंका तत्त्व, श्रीकृष्ण एवं श्रीगौरलीलाके रहस्य दुर्लभ, अचिन्त्य एवं तर्कातीत, तार्किकोंकी दुर्गति, श्रद्धावानकी ही सेवा प्रवृत्ति तथा आदिलीलाकी पुनरावृत्ति।

श्रीश्रीचैतन्यचरितामृत

आदिलीला भाग–2

अध्याय 8–17

चित्र 1

आठवाँ अध्याय

आठवें अध्यायका सार–इस अध्यायमें श्रीचैतन्य महाप्रभु और श्रीनित्यानन्द प्रभुकी महिमाका वर्णन हुआ है। नामापराध रहनेपर जन्मों-जन्मोंतक श्रीकृष्णनाम करनेपर भी व्यक्तिको प्रेमधनकी प्राप्ति नहीं होती। इससे यह समझना चाहिये कि यदि नामापराधी व्यक्ति सात्त्विक विकारादिका प्रदर्शन करता है, तो वह केवल छलमात्र है। जो व्यक्ति निष्कपट भावसे श्रीचैतन्य-श्रीनित्यानन्दका नाम लेते हुए आनन्दका अनुभव करता है, दोनों प्रभु उसके हृदयको अपराधशून्य कर देते हैं। तब श्रीकृष्णनाम जप करनेसे उसके हृदयमें प्रेमका उदय होता है। श्रीवृन्दावनदास ठाकुर-कृत श्रीचैतन्यभागवतमें सूत्ररूपमें दी गयी महाप्रभुकी शेषलीलाका विस्तारसे वर्णन होना बाकी था, अतः श्रीवृन्दावनवासी वैष्णवोंकी आज्ञासे और श्रीमदनमोहनजीकी आज्ञामाला प्राप्तकर श्रील कविराज गोस्वामीने इस ग्रन्थकी रचना की।

(अमृतप्रवाह भाष्य)

श्रीगौरकी इच्छासे नितान्त अयोग्य
व्यक्तिको भी योग्यता-लाभ :–

वन्दे चैतन्यदेवं तं भगवन्तं यदिच्छया।
प्रसभं नर्त्तते चित्रं लेखरङ्गे जड़ोऽप्ययम्॥1॥

अनुवाद–अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है॥1॥

अमृतप्रवाह भाष्य–मैं भगवान् श्रीचैतन्यदेवकी वन्दना करता हूँ, जिनकी इच्छासे चित्रपुत्तलिका (चित्रपटपर बने चित्र) की भाँति होनेपर भी मुझ मूर्ख व्यक्तिने हठात् (सहसा) यह ग्रन्थ-लेखनरूपी नृत्य-कार्य आरम्भ किया है॥1॥

अनुभाष्य–यदिच्छया (यत् यस्य चैतन्यदेवस्य इच्छया) अयम् (अहं कृष्णदासः) जड़ोऽपि (जड़सदृशोऽपि) लेखरङ्गे (ग्रन्थरचन-क्रीड़ाकार्ये) प्रसभं (हठात्) चित्रम् (आश्चर्यं यथा स्यात् तथा) नर्त्तते, तं [कृपामयं] भगवन्तं चैतन्यदेवम् [अहं] वन्दे (प्रणमामि)।

श्लोक भावानुवाद–जिन श्रीचैतन्यदेवकी इच्छासे मुझ कृष्णदासने जड़-सदृश होनेपर भी हठात् ग्रन्थ-लेखन-क्रीड़ारूपी नृत्य आरम्भ किया है, उन कृपामय भगवान् श्रीचैतन्यदेवकी मैं वन्दना करता हूँ॥1॥

जय जय श्रीकृष्णचैतन्य गौरचन्द्र।
जय जय परमानन्द नित्यानन्द॥2॥

अनुवाद–श्रीकृष्णचैतन्य गौरचन्द्रकी जय हो, जय हो। परमानन्द स्वरूप श्रीनित्यानन्द प्रभुकी जय हो, जय हो॥2॥

जय जयाद्वैताचार्य जय कृपामय॥
जय जय गदाधर पण्डित महाशय॥3॥

अनुवाद–कृपामय श्रीअद्वैताचार्यकी जय हो, जय हो। श्रीगदाधर पण्डित महाशयकी जय हो, जय हो॥3॥

जय जय श्रीवासादि यत भक्तगण।
प्रणत हइया वन्दोँ सबार चरण॥4॥

अनुवाद–श्रीवासादि सभी भक्तोंकी जय हो, जय हो। मैं शरणागत होकर इन सबके चरणोंकी वन्दना करता हूँ॥4॥

मूक कवित्व करे याँ-सबार स्मरणे।
पङ्गु गिरि लङ्घे, अन्ध देखे तारागणे॥5॥

अनुवाद–इनके (पञ्चतत्त्वके) स्मरणमात्रसे गूँगा व्यक्ति कविता करने लगता है, पङ्गु (चलनेमें असमर्थ) व्यक्ति भी पर्वतको लांघ सकता है और अन्धा व्यक्ति आकाशके तारोंको देखनेमें समर्थ हो जाता है॥5॥

पञ्चतत्त्वके माहात्म्यको ना मानकर पृथक् बुद्धिसे श्रीगौर या श्रीकृष्णपूजा घोर अपराध :—

ए-सब ना माने येइ पण्डितसकल।
ता-सबार विद्यापाठ भेक-कोलाहल॥6॥

अनुवाद—जो सब (स्वयंको) पण्डित (माननेवाले) पञ्चतत्त्वको नहीं मानते, उनका विद्यापाठादि मेंढकोंके कोलाहलकी भाँति निरर्थक है॥6॥

अमृतानुकणिका—मेंढकका कोलाहल उसका कुछ भी कल्याण नहीं करता, अपितु उसके लिये विपत्तिका ही आह्वान करता है। उसके कोलाहलको सुनकर सर्प उसकी स्थिति जानकर वहाँ आकर उसको ग्रास कर लेता है। इसी प्रकार जो पञ्च-तत्त्वको ईश्वर रूपमें स्वीकार नहीं करते अथवा उनकी अलौकिक शक्तिपर विश्वास नहीं करते, उनका लौकिक दृष्टिसे पण्डित होनेपर भी कोई कल्याण नहीं होता। उनका विद्याभ्यास और ग्रन्थोंका अध्ययन निरर्थक हो जाता है, क्योंकि इस पाण्डित्य अभिमानके कारण वे भगवद्-चरणोंमें अपराध कर बैठते हैं और क्रमशः वे श्रीभगवान्से बहुत दूर हो जाते हैं॥6॥

एइ सब ना माने येबा, करे कृष्णभक्ति।
कृष्ण-कृपा नाहि तारे, नाहि तार गति॥7॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है॥7॥

अमृतप्रवाह भाष्य—इन पञ्चतत्त्वको न मानकर जो श्रीकृष्णभक्ति करते हैं, उनपर श्रीकृष्णकी कृपा नहीं होती॥7॥

अनुभाष्य—'तारे' अर्थात् उनके प्रति॥7॥

पूर्वे येन जरासन्ध-आदि राजागण।
वेदधर्म करि' करे विष्णुर पूजन॥8॥

कृष्णभक्ति बिना गौरभक्ति, गौरभक्ति बिना कृष्णभक्ति—अभक्ति :—

कृष्ण नाहि माने, ताते दैत्य करि' मानि।
चैतन्य ना मानिले तैछे दैत्य तारे जानि॥9॥

अनुवाद—जैसे द्वापरमें जरासन्धादि राजा वेदविहित धर्मके अनुसार विष्णुकी पूजा करते थे, परन्तु वे श्रीकृष्णको नहीं मानते थे, इसलिये इन्हें दैत्य माना गया है। इस प्रकार जो श्रीचैतन्य महाप्रभुकी भगवत्ताको स्वीकार नहीं करते, उन्हें भी दैत्यके रूपमें जानो॥8-9॥

अनुभाष्य—विष्णु-परतत्त्व स्वयंरूप श्रीकृष्णको स्वीकार न करके उनके प्रति विद्वेष अथवा उदासीनवशतः जरासन्धादिकी वेदमन्त्रोंके द्वारा की गयी विष्णुपूजा भी आसुरिक धर्ममें ही समाप्त होती है, उसी प्रकार अपने स्वरूपगत धर्म श्रीचैतन्यदास्यको भुलाकर जीवकी विष्णुपूजाकी जो चेष्टा है, वह भी उत्पातमय आसुरिक-धर्म या अवैष्णवता मात्र है॥9॥

महाप्रभुकी संन्यासलीलाका हेतु :—

'मोरे ना मानिले सब लोक हबे नाश।'
इथि लागि' कृपार्द्र प्रभु करिल संन्यास॥10॥

संन्यासी-बुद्ध्ये मोरे करिबे नमस्कार।
तथापि खण्डिबे दुःख, पाइबे निस्तार॥11॥

अनुवाद—'जो मुझे (स्वयं भगवान्को) नहीं मानते, उन सभी लोगोंका नाश होगा'—यह विचारकर कृपासे द्रवीभूत होकर श्रीचैतन्य महाप्रभुने संन्यास ग्रहण किया। संन्यासी जानकर वे मुझे नमस्कार करेंगे, इससे उनके दुःखोंका नाश होगा और उनका उद्धार हो जायेगा॥10-11॥

अनुभाष्य—श्रीचैतन्यचन्द्र श्रीराधाकृष्णतत्त्वसे अभिन्न वस्तु हैं। किन्तु कुछ अज्ञानी लोग अपनी जड़ और भोगमय चित्त-वृत्तिके कारण श्रीगौरसुन्दरकी अप्राकृत लीलाको साधारण समझकर अपराध कर बैठते हैं। ऐसे निर्बोध लोगोंके अपराधोंकी चिन्ता करके श्रीगौरहरिने कृपावश संन्यास ग्रहणकर उनके प्रति दयाका प्रकाश किया॥11॥

महावदान्य श्रीगौरमें अभक्ति—आसुरिक-वृत्ति :—

हेन कृपामय चैतन्य ना भजे येइ जन।
सर्वोत्तम हइलेओ तारे असुरे गणन॥12॥

अनुवाद—ऐसे कृपालु श्रीचैतन्य महाप्रभुका जो लोग भजन नहीं करते, वे (जगत्में) सर्वश्रेष्ठ होनेपर भी असुरतुल्य हैं॥ 12॥

अनुभाष्य—"हे जीवों! केवल श्रीकृष्णका भजन करो"—श्रीचैतन्यचन्द्रकी इस प्रकारकी दयाकी जो लोग उपलब्धि नहीं कर सकते, वे निश्चय ही असुर अर्थात् विष्णुभक्तिरहित अवैष्णव हैं, चाहे जगत्के विषयी लोगोंके मध्य वे श्रेष्ठ माने जाते हों। श्रीकृष्णभजनको त्यागकर श्रीचैतन्यभजनमें भी श्रीचैतन्यचन्द्रकी दया नहीं है, क्योंकि ऐसा भजन कलिके प्रभावसे मनकी कल्पनामात्र है। उसी प्रकार निरीश्वर स्मार्त्त अथवा पञ्चोपासक समाजका अनुगमनकर क्षुद्र नश्वर स्वार्थसिद्धिके लिये विष्णुपूजाका प्रयास करनेवालोंकी श्रीकृष्ण-चैतन्यात्मक (चैःचः आदिलीला 1/1 में वर्णित) छह तत्त्वोंमें किसी एक तत्त्वको त्यागकर अन्य एक तत्त्वके प्रति जो श्रद्धा अथवा पूजा है, अथवा श्रीचैतन्य महाप्रभुको श्रीकृष्णसे भिन्न सामान्य मर्त्त्य जीवोंमें श्रेष्ठ समझकर गौरनाम, गौरमन्त्र और गौरशक्तिके प्रति जो अश्रद्धा है, वह भी आसुरिक धर्म अर्थात् कलिके प्रभावसे मनकी कल्पनामात्र है॥ 12॥

अमृतानुकणिका—इस अध्यायके 6-12 पयार संख्यामें वर्णित है कि जो श्रीकृष्ण-चैतन्यात्मक छह तत्त्वोंको नहीं मानते, वे असुर ही हैं—ऐसा शाब्दिक अर्थ ग्रहण करनेपर शैव-शाक्त-धर्म-सम्प्रदायके लोग, योग-ज्ञानमार्ग अवलम्बी साधक, यहाँ तक कि महाप्रभुके अनुगत वैष्णवोंके अतिरिक्त अन्य वैष्णव सम्प्रदायके लोग भी असुर ही कहलायेंगे, परन्तु यह श्रील कविराज गोस्वामीका उद्देश्य नहीं है। भक्तिरसामृतसिन्धुमें श्रील रूप गोस्वामीने कहा है—"ज्ञानतः सुलभा मुक्तिः" अर्थात् ज्ञानमार्गमें भजनसे मुक्ति सुलभ है। चैःचः (मध्य 20/157) में कहा गया है—

"ज्ञान, योग, भक्ति,—तिन साधनेर वशे।
ब्रह्म, आत्मा, भगवान्—त्रिविध प्रकाशे॥"

इस पयारमें भी ज्ञानमार्ग, योगमार्ग और सभी प्रकारके भक्तिमार्गोंकी सार्थकता स्वीकार हुई है। इसलिये गौड़ीय वैष्णवोंका मत यही है कि अन्य प्रमाणिक सम्प्रदायके भक्त परव्योम स्थित अपने-अपने इष्ट भगवद्-स्वरूपका भजन करके वैकुण्ठमें सालोक्यादि चार प्रकारकी मुक्ति प्राप्त करते हैं। परम उदार वैष्णवशास्त्र सभी साधक सम्प्रदायोंके प्रति यथायोग्य मर्यादाका प्रदर्शन करते हैं, कहीं भी सङ्कीर्णताको आश्रय नहीं देते। श्रुतियोंमें कहा गया है कि परतत्त्व वस्तु एक होकर भी अनेक रूपोंमें प्रकाशित होती है (एकोऽपि सन् यो बहुधावभाति) और वह रसस्वरूप है (रसौ वै सः)। उसमें अनन्त वैचित्री है और वह रसामृतसिन्धु है। नारायण, राम, नृसिंहादि विभिन्न भगवद्-स्वरूप उसकी रस वैचित्रीके विभिन्न रूपमात्र हैं। विभिन्न रसवैचित्री जिस प्रकार अखिलरसामृत-सिन्धु परतत्त्व वस्तुमें ही अवस्थित है, उसी प्रकार ये सब रसवैचित्रीके विभिन्न रूप या विग्रह भी उस परतत्त्व वस्तु अखिलरसामृत-घन विग्रहके ही अन्तर्भुक्त हैं, उससे स्वतन्त्र विग्रह नहीं हैं। जैसे, नारायण जिस रसवैचित्रीके मूर्त्तरूप हैं, उसी रस वैचित्रीके उपासक भक्तोंके निकट परतत्त्व वस्तु अपने विग्रहमें नारायण रूपको प्रकट करती है। इसी बातको महाप्रभुने (चैःचः मध्यलीला 9/156) में कहा है—

"एक ईश्वर—भक्तेर ध्यान-अनुरूप।
एकइ विग्रहे करे नानाकार रूप॥"

अर्थात् एक ही ईश्वर भक्तोंके ध्यानके अनुरूप एक ही विग्रहमें नाना प्रकारके रूप प्रकट करते हैं। लीलामें श्रीकृष्णने अपने वासुदेव-विग्रहमें ही अर्जुनको विश्वरूप दिखलाया और श्रीचैतन्य महाप्रभुने अपने विग्रहमें लक्ष्मी, दुर्गा, महेश, वराह, नृसिंह, बलदेवादि विभिन्न भगवद्-स्वरूपके रूपोंको नदीयावासी भक्तोंको दिखलाया। ('बहुमूर्त्येकमूर्तिकम्' भाः 10/40/7)—इस प्रकार परतत्त्व वस्तु एक मूर्तिमें बहुमूर्ति और बहुमूर्तिमें

एकमूर्ति है; इन सब विभिन्न रूपोंमें तत्त्वके विचारसे कोई भी भेद नहीं है, क्योंकि सभी एक ही परतत्त्व वस्तुके एक ही विग्रहकी विभिन्न अभिव्यक्ति हैं।

जो किसी भी भगवद्-स्वरूपके प्रति अवज्ञा प्रदर्शन नहीं करते अथवा उनमें पृथक् भगवद्-भेद बुद्धि नहीं करते, अपने उपास्य-स्वरूपके अतिरिक्त अन्य भगवद्-स्वरूपोंका भजन नहीं करनेपर भी वे निज भजन अनुरूप अभीष्ट वस्तुको ही प्राप्त करते हैं। जैसे हनुमानजी श्रीरामचन्द्रके सेवक हैं और वे श्रीकृष्णका भजन नहीं करते हैं, तथापि श्रीरामचन्द्र और श्रीकृष्णको अभिन्न भगवद्-तत्त्व स्वीकार करनेपर वे श्रीरामचन्द्रकी सेवासे वञ्चित नहीं होते। किन्तु जरासन्धादि राजा श्रीकृष्ण-स्वरूपकी भगवत्ताको ही स्वीकार नहीं करते, विष्णु-भजन करनेपर भी उन्हें श्रीविष्णुकी कृपा प्राप्त नहीं होती है, इसलिये उनकी गणना असुरोंमें होती है। महाप्रभुने कहा है (चैःचः मध्यलीला 9/155)—

"ईश्वर-तत्त्वे भेद मानिले हय अपराध॥"

एक ही ईश्वर-तत्त्वमें भेद माननेसे अपराध होता है। श्रीचैतन्यदेव भी भगवद्-स्वरूप हैं, उनकी अवज्ञा करना भगवद्-स्वरूपकी अवज्ञा ही है। इसलिये श्रीचैतन्यदेवकी अतुलनीय करुणाके अभिभूत होकर श्रीकविराज गोस्वामी जो वचन कह रहे हैं, उनका तात्पर्य यह है—"श्रीचैतन्यदेवकी अवज्ञा करके अन्य भगवद्-स्वरूपका भजन करनेपर भी लोग असुरोंमें गणित होते हैं॥"12॥

श्रीगौर-नित्यानन्दके भजन-निमित्त सभीको कविराज गोस्वामीका आदेश सहित अनुरोध :—

अतएव पुनः कहोँ उर्ध्वबाहु हञा।
चैतन्य-नित्यानन्द भज कुतर्क छाड़िया॥13॥

अनुवाद—इसलिये मैं (कृष्णदास) भुजाओंको ऊपर उठाकर पुनः कहता हूँ कि सब कुतर्कोंको त्यागकर श्रीचैतन्य-नित्यानन्दका भजन करो॥13॥

अमृतानुकणिका—भगवान्के जितने गुण जीवके चित्तको आकृष्ट करते हैं, उनके मध्य करुणा ही जीवोंके पक्षमें सवश्रेष्ठ है। भगवान् रस-स्वरूप और रसिकशेखर होनेपर भी यदि वे करुणा करके उसकी उपलब्धि करनेकी योग्यता जीवको नहीं दें, तो जीवको क्या लाभ? करुणाकी अभिव्यक्ति जिस भगवद्-स्वरूपमें जितनी अधिक होती है, वह भगवद्-स्वरूप ही जीवके चित्तको उतना ही अधिक आकृष्ट करता है। यह करुणा श्रीगौर-नित्यानन्दमें सर्वापेक्षा अधिक रूपमें अभिव्यक्त होती है, इसलिये ग्रन्थकार कविराज गोस्वामी सभीको पुकारकर कह रहे हैं कि कुतर्कको छोड़कर तुम सब श्रीगौर-नित्यानन्दका भजन करो। परन्तु श्रीकृष्णका भजन त्यागकर श्रीगौर-नित्यानन्दका भजन करना इस पयारका अभिप्राय नहीं है। श्रीचैतन्य-नित्यानन्द प्रभु पुनः पुनः श्रीकृष्ण भजनका आदेश दे रहे हैं, इसलिये उनकी अवज्ञा करनेपर उनकी कृपा लाभ नहीं होगी। इस पयारका अभिप्राय यह है—श्रीगौर-नित्यानन्दके आदेशानुसार श्रीकृष्ण-भजनके साथ-साथ श्रीगौर-नित्यानन्दका भी भजन करना चाहिये॥13॥

प्रत्यक्ष और अनुमानवादी तार्किकोंको भी उपदेश :—

यदि वा तार्किक कहे,—'तर्क से प्रमाण।
तर्कशास्त्रे सिद्ध येइ, सेइ सेव्यमान॥'14॥

श्रीगौरकी दया समस्त दयाकी अपेक्षा अधिकतर चमत्कारी :—

श्रीकृष्णचैतन्य-दया करह विचार।
विचार करिले चित्ते पाबे चमत्कार॥15॥

अनुवाद—यदि कोई तार्किक कहे कि तर्क ही प्रमाण है (अर्थात् श्रीचैतन्य-श्रीनित्यानन्दके भजनकी क्या आवश्कता है?) और तर्कशास्त्रसे जो सिद्ध हुए हैं, वे ही सेव्य हैं अर्थात् भजन करने योग्य हैं, (तो) श्रीकृष्णचैतन्यकी दयाका विचार करो। अच्छी प्रकारसे विचार करनेपर तुम्हारे चित्तमें चमत्कार होगा॥14-15॥

अनुभाष्य—जगत्के लोग अपनी-अपनी भोगमयी सङ्कीर्ण बुद्धिके अनुसार दयाके एक आदर्शकी कल्पना करते हैं, परन्तु श्रीचैतन्यचन्द्रकी दया उनके विचारोंके अनुरूप नहीं है।

तर्कशास्त्र पढ़कर लोगोंकी यह धारणा होती है कि तर्कके समान स्वरूप निर्धारण और सत्यके उद्घाटनमें समर्थवान और कोई वृत्ति नहीं है; इसलिये तर्कके हाथोंमें पड़कर जीवका तर्क ही उसके एकमात्र आश्रयदाता और पालकके स्थानपर अधिकार करता है। किन्तु जिस नींवके ऊपर तर्क प्रतिष्ठित है, उसकी सूक्ष्म आलोचना करनेपर बुद्धिमान् जीव ही यह समझ सकता है कि उसकी लौकिक ज्ञानेन्द्रियाँ भगवद्-विषयकी खोज करनेमें कितनी दुर्बल हैं, कहाँ तक अक्षम और अभावयुक्त हैं? तार्किक लोग अधिकतर 'असत्य' को ही तर्कसिद्ध 'सत्य' कहकर स्थिर करते हैं, इसलिये परिणाममें कुतर्कके फलसे उन्हें सियारादिकी योनियोंकी प्राप्ति होती है।

तो भी जो लोग प्रधानरूपसे 'प्रत्यक्ष' और 'अनुमान' को नींव अथवा सहारा मानकर विषयके यथार्थ-निर्धारणके लिये प्रस्तुत हैं, उन लोगोंको भी कविराज गोस्वामी सम्बोधन करके कह रहे हैं कि जिनके पास दृष्टि है, विचार-शक्ति है, जिन्होंने सब प्रकारकी दयाके सम्पूर्ण चित्रको अनुभव किया है या देखनेका सामर्थ्य और सुयोग प्राप्त किया है, वे उन सब प्रकारकी दयाकी एक तालिका बना लें। तब उस तालिकामें लिखित सभी प्रकारकी दयाकी श्रीगौरहरिकी दयाके साथ तुलना करके देखेंगे, तो यह पायेंगे कि श्रीगौरहरि जैसी दया किसी भी सृष्ट-वस्तुमें अथवा सृष्टिकर्त्तामें अथवा अवतारोंमें और यहाँ तक अवतारी (श्रीकृष्ण) में भी नहीं है। उदार-विग्रह श्रीगौरहरिकी दया अवश्य ही सभीकी अपेक्षा अधिक विस्मय और चमत्कारिता हृदयमें लायेगी॥14-15॥

अपराध रहनेसे असंख्य बार श्रीकृष्णका श्रवण-कीर्तन वृथा :—

बहु जन्म करे यदि श्रवण, कीर्त्तन।
तबु त' ना पाय कृष्णपदे प्रेमधन॥16॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है॥16॥

अमृतप्रवाह भाष्य—दस प्रकारके नामापराधोंसे युक्त व्यक्ति यद्यपि अनेक जन्मोंतक श्रवण-कीर्तन करे, तथापि उसे श्रीकृष्णके चरणोंमें प्रेमरूपी धनकी प्राप्ति नहीं होती है॥16॥

अनुभाष्य—श्रीचैतन्य महाप्रभुके चरणोंका आश्रय किये बिना यदि कोई व्यक्ति श्रवण-कीर्तनाख्या भक्तिका आश्रय करता है, तो भी अनेक जन्मोंमें उसे श्रीकृष्णप्रेम प्राप्तिकी सम्भावना नहीं है। श्रीचैतन्यचन्द्रकी शिक्षानुसार जो स्वयंको तिनकेसे भी अति-तुच्छ मानकर, वृक्षसे भी अधिक सहनशील, अपने सम्मानकी आशा न करके दूसरोंको यथायोग्य मान देते हुए किसी प्रकारका प्राकृत अभिमान नहीं रखते हैं, वे दस नामापराधोंसे मुक्त होकर सदा श्रीकृष्णनाम ग्रहण करनेमें समर्थ होते हैं और प्रेम लाभ करते हैं।

तात्पर्य यह है कि बद्धजीव श्रीकृष्णसेवासे विमुख हैं। जड़ेन्द्रियोंकी तृप्ति अथवा नश्वर स्वार्थकी सिद्धिके लिये श्रीकृष्णनामको जड़ेन्द्रियोंके द्वारा ग्रहण करने योग्य कोई विशेष वस्तु मानकर अथवा जड़ीय अक्षरके समान वाचक और वाच्यरूप श्रीकृष्णनाम और नामी श्रीकृष्णमें भेदबुद्धि रखते हुए स्वयंको श्रीनामप्रभुका नित्यदास ना जानकर असंख्य बार अपराधयुक्त नामादिका उच्चारण करनेपर भी वे शुद्ध-साधनभक्तिसे प्राप्त होनेवाले श्रीकृष्णप्रेमको प्राप्त नहीं कर पाते हैं। हः भः विः 11/527 में पद्मपुराणका श्लोक—

"नामैकं यस्य वाचि स्मरणपथगतं श्रोतमूलं गतं वा,
शुद्धं वाशुद्धवर्णं व्यवहितरहितं तारयत्यैव सत्यम्।
तच्चेद्देहद्रविण-जनता-लोभ-पाषण्ड-मध्ये,
निक्षिप्तं स्यान्न फलजनकं शीघ्रमेवात्र विप्र॥"

"हे विप्रवर! एक हरिनाम भी जिसकी जिह्वापर उदित हो जाते हैं अथवा कर्णेन्द्रियमें प्रवेश करते हैं या स्मरण-पथपर जागरूक हो जाते हैं, उसका वे नाम (प्रभु) अवश्य ही उद्धार करेंगे। यहाँ नामोच्चारणमें वर्णोंकी शुद्धता, अशुद्धता अथवा विधिके अनुसार शुद्ध नामोच्चारण या अशुद्ध उच्चारण आदिका महत्त्व नहीं है, अर्थात् श्रीनाम इनका कुछ भी विचार नहीं करते, परन्तु विचारणीय यह है कि यदि वे सर्वशक्तिसम्पन्न नाम शरीर, गृह, अर्थ-सम्पत्ति, पुत्र-परिवार और लोभ (काञ्चन, कामिनी और प्रतिष्ठादि) आदि पाषाणके ऊपर पतित हों अर्थात् उनके उद्देश्यसे लिये जाँय, तो (श्रीकृष्ण-प्रेमरूपी) फल शीघ्र ही उत्पन्न नहीं होता।

श्रीरूप गोस्वामीने भक्तिरसामृतसिन्धु पूर्व विभाग-द्वितीय लहरीमें लिखा है—

"अतः श्रीकृष्णनामादि न भवेत्ग्राह्यमिन्द्रियैः।
सेवोन्मुखे हि जिह्वादौ स्वयमेव स्फुरत्यदः॥"

"श्रीकृष्णनामादिको प्राकृत इन्द्रियों (जिह्वा-कान आदि) के द्वारा ग्रहण नहीं किया जा सकता। जब इन्द्रियाँ श्रीकृष्णकी सेवाके लिये उन्मुख होती हैं, तो नाम स्वतः ही जिह्वापर स्फुरित हो जाता है॥"16॥

श्रीकृष्णमें प्रेमभक्ति—सुदुर्लभा :—
(भ:र:सि: 1/1/36 में उद्धृत तन्त्रवचन)

ज्ञानतः सुलभा मुक्तिर्भुक्तिर्यज्ञादिपुण्यतः।
सेयं साधनसाहस्रैर्हरिभक्तिः सुदुर्ल्लभा॥17॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है॥17॥

अमृतप्रवाह भाष्य—ज्ञानके प्रयासके द्वारा सहजमें मुक्ति होती है और यज्ञादि पुण्यकर्मोंके द्वारा स्वर्गके भोगादि सुलभ होते हैं, किन्तु सहस्र-सहस्र साधन करनेपर भी सहजमें हरिभक्ति प्राप्त नहीं होती। [इसका तात्पर्य यह है कि साधनके साथ और भी कुछ प्रक्रिया (शुद्धभक्तोंका दास्य और भक्त-भगवान्के साथ सम्बन्ध-ज्ञान) है, उसका अवलम्बन करनेसे हरिभक्ति प्राप्त होती है]॥17॥

अनुभाष्य—ज्ञानतः (स्वरूपज्ञानेन) [कर्मबन्धात्] मुक्तिः, यज्ञादिपुण्यतः (यज्ञेश्वर-सेवाजनित-सौभाग्येन) भुक्तिः सुलभा च। साधनसाहस्रैः (अन्याभिलाषितायुक्तैः कर्मज्ञानाद्यावृतैः प्रचुर-साधनैः) सा इयं हरिभक्तिः सुदुर्ल्लभा।

श्लोक भावानुवाद—स्वरूपज्ञानकी उपलब्धि होनेसे कर्मबन्धनसे मुक्ति, यज्ञेश्वरकी सेवा करनेके सौभाग्यसे भुक्ति (संसारके भोग) सुलभ हैं। परन्तु श्रीकृष्णसे इतर अभिलाषाओंसे युक्त, कर्म-ज्ञानसे आवृत प्रचुर साधन करनेपर भी यह हरिभक्ति सुदुर्लभ है॥17॥

जीवके भाव और रतिके पूर्व तक ही श्रीकृष्णका मुक्तिदान, रति देखनेपर प्रेमभक्तिदान :—

कृष्ण यदि छुटे भक्ते भुक्ति मुक्ति दिया।
कभु भक्ति ना देन राखेन लुकाइया॥18॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है॥18॥

अमृतप्रवाह भाष्य—भक्तगण यदि भुक्ति-मुक्तिकी आशा करते हैं, तो श्रीकृष्ण शुद्धभक्तितत्त्वको उनसे छिपाकर (अर्थात् उन्हें न देकर) उन्हें भुक्ति-मुक्ति देकर अपना छुटकारा पा लेते हैं॥18॥

अमृतानुकणिका—भक्त यदि श्रीकृष्णके द्वारा भुक्ति या मुक्ति पाकर सन्तुष्ट हो जाते हैं, अर्थात् वे यह मानते हैं कि उनकी मनोभीष्ट वस्तुकी उन्हें उपलब्धि हो गयी है, तो श्रीकृष्ण उन्हें अपनी प्रेमाभक्ति प्रदान नहीं करते। इसका कारण यह है कि जब तक हृदयमें भुक्ति-मुक्तिकी स्पृहा रहती है, तब तक वह हृदय भक्तिके आविर्भावकी योग्यता लाभ नहीं करता। श्रील रूप गोस्वामीने भक्तिरसामृतसिन्धु (पूर्वः 2/14) में कहा है—

"भुक्तिमुक्तिस्पृहा यावत् पिशाची हृदि वर्तते।
तावद्भक्तिसुखस्यात्र कथमभ्युदयो भवेत्॥"

अर्थात् "भुक्ति (लौकिक भोग-सुख) और मुक्ति (ब्रह्मानन्द) को प्राप्त करनेकी स्पृहा पिशाची है, जब

तक वह साधकके हृदयमें विद्यमान रहती है, तब तक उसमें विशुद्ध भक्तिका सुख भला कैसे उदित हो सकता है? अर्थात् भक्ति उस हृदयमें कभी भी उदित नहीं हो सकती।"

जिनके हृदयमें भुक्ति-मुक्तिकी वासना नहीं है, वे भुक्ति-मुक्ति पाकर भी तृप्त नहीं होते, यहाँ तक कि श्रीकृष्ण स्वयं उन्हें भुक्ति-मुक्ति प्रदान करने चाहें, तो वे उसे ग्रहण नहीं करते। ऐसे ही व्यक्ति प्रेमाभक्तिको प्राप्त करते हैं॥18॥

श्रीकृष्णके साथ रस-सम्बन्ध नहीं होने
पर मुक्तिमात्र-लाभ :—
(श्रीमद्भागवत 5/6/18) —

राजन् पतिर्गुरुरलं भवतां यदूनां
दैवं प्रियः कुलपतिः क्व च किङ्करो वः।
अस्त्वेवमङ्ग भजतां भगवान् मुकुन्दो
मुक्तिं ददाति कर्हिचित् स्म न भक्तियोगम्॥19॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है॥19॥

अमृतप्रवाह भाष्य—शुकदेव गोस्वामीने कहा—"हे राजन्! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र तुम्हारे (पाण्डवोंके) और यादवोंके सम्बन्धसे कभी पति, गुरु, देवता, प्रियबन्धु, कुलपति और कभी वे सेवक भी बन जाते हैं। [यहाँपर यह ज्ञातव्य है], मुकुन्द भजनशील लोगोंको सहजमें 'मुक्ति' तो प्रदान करते है, परन्तु भजनमें भक्तका किस प्रकारका निष्ठा-चातुर्य है, उसे देखकर ही वे उसे 'भक्तियोग' देते हैं॥19॥

अनुभाष्य—ऋषभदेवके चरित्र वर्णन प्रसङ्गमें शुकदेव गोस्वामी परिक्षित महाराजसे कह रहे हैं—

हे राजन्! भगवान् मुकुन्दः (श्रीकृष्णः) भवतां (पाण्डवानां) यदुनां च पतिः (अधीश्वरः पालकः), गुरुः (उपदेष्टा), दैवं (उपास्यविग्रहः), प्रियः (आत्मा), कुलपतिः; क्व च (कदाचित् दौत्यादिषु) वः (युष्माकं पाण्डवानां) किङ्करः (आज्ञावहः) च। हे अङ्ग! एवम् अस्तु, [तथापि स भगवान्] भजतां (जनानां सकामभक्तेभ्य इति यावत्) मुक्तिं ददाति, कर्हिचित् (कदापि) [तेभ्यः] भक्तियोगं न ददाति स्म।

श्लोक भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है॥19॥

किन्तु उदारविग्रह श्रीगौरसुन्दरकी महापापी
तकको प्रेमभक्ति प्रदान-लीला :—

हेन प्रेम श्रीचैतन्य दिला यथा तथा।
जगाइ मधाइ पर्यन्त—अन्येर का कथा॥20॥

अनुवाद—किन्तु श्रीचैतन्य महाप्रभुने ऐसे सुदुर्लभ प्रेमको जहाँ-तहाँ प्रदान किया। औरोंकी तो बात ही क्या है, उन्होंने जगाइ-मधाइ तकको यह सुदुर्लभ प्रेम प्रदान किया॥20॥

अनुभाष्य—जगाइ और मधाइके जैसे अन्य पापी और दुष्चरित्र व्यक्ति भी श्रीगौरसुन्दरकी कृपा पाकर पापों और दुष्कृतियोंको पूर्णरूपसे त्यागकर कब श्रीकृष्णप्रेमको प्राप्त करेंगे?॥20॥

अमृतानुकणिका—बड़े-बड़े योगियों तथा ब्रह्मादि देवताओंके लिये परम दुर्लभ कृष्णप्रेमको महाप्रभुने जहाँ-तहाँ धनी-दरिद्र, पापी-पुण्यात्मा, बालक-वृद्ध, स्त्री-पुरुष, ब्राह्मण-चण्डाल, यवनादि सभीको बिना भेद-भावके प्रदान किया। नामापराध और वैष्णवापराध कृष्णप्रेम प्राप्तिमें बड़े बाधक हैं। जो सुदुराचारी होनेपर भी यदि निरपराधी हैं, उनके सभी पाप नामाभाससे ही दूर हो जाते हैं और उनका हृदय प्रेम लाभ करने योग्य हो जाता है। इस पयारमें निरपराध व्यक्तिको प्रेमदानकी बात कही गयी है। जगाइ-मधाइ, ये दोनों भाई नवद्वीपमें ब्राह्मण कुलमें उत्पन्न हुए थे, परन्तु दुःसङ्गके कारण सभी प्रकारके बुरे कर्मोंमें लिप्त थे। ऐसा कोई दुष्कर्म नहीं था जो इन्होंने नहीं किया अथवा कर नहीं सकते थे। वे सदा मदिरापान करके मत्त रहते थे। ये अति दुराचारी थे, परन्तु अपराधी नहीं थे। महाप्रभुके आदेशसे श्रीनित्यानन्द प्रभु और हरिदास ठाकुर घर-घर नाम प्रचारके लिये जाते थे और एक दिन इन दोनों भाइयोंके पास आये और उनसे कृष्णनाम करनेके लिये कहा। मदिरापानसे मत्त दोनों भाइयोंने उनपर क्रोध प्रकाश करते हुए मधाइने श्रीनित्यानन्द प्रभुके माथेपर

मदिराकी मटकीसे प्रहार किया। यह समाचार पाते ही महाप्रभु तुरन्त वहाँ आये और अपने ऐश्वर्यका प्रकाश करते हुए अपने चक्रका आह्वान करने लगे, किन्तु श्रीनित्यानन्द प्रभु महाप्रभुसे उन्हें क्षमा करनेकी प्रार्थना करने लगे। इस प्रकार श्रीनित्यानन्द प्रभुके द्वारा प्रहार सहनकर क्रोधके अभाव और क्षमाशीलता एवं करुणाके गुणोंको देखकर जगाइ-मधाइका हृदय विगलित हो गया तथा तीव्र अनुतापकी ज्वालासे उनका हृदय दग्ध हो गया। महाप्रभुके ऐश्वर्यको देखकर वे कातर होकर कृपाकी याचना करने लगे। महाप्रभुने कृपा परवश होकर उनके हृदयके सभी कल्मषको धोकर उन्हें प्रेमदान करके कृतार्थ किया॥20॥

स्वतन्त्र ईश्वर प्रेम—निगूढ़-भाण्डार।
बिलाइल यारे तारे, ना कैल विचार॥21॥

श्रीगौर-निताइकी सेवासे ही श्रीकृष्णप्रेमोदय :—

अद्यापिह देख चैतन्य-नाम येइ लय।
कृष्णप्रेमे पुलकाश्रु-विह्वल से हय॥22॥

अनुवाद—श्रीचैतन्य महाप्रभु स्वतन्त्र ईश्वर और निगूढ़-प्रेमके भण्डार हैं। इसलिये कोई विचार किये बिना उन्होंने (पात्र-अपात्र सभीको) इस प्रेम-भक्तिका वितरण किया। (श्रीगौरसुन्दरकी कृपा ऐसी विशेष है कि) अभी भी जो श्रीचैतन्य महाप्रभुका नाम लेते हैं, वे श्रीकृष्णप्रेममें विह्वल हो जाते हैं और उनके नेत्रोंसे अश्रु बहने लगते हैं तथा शरीरमें पुलक हो जाता है॥21-22॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीचैतन्य-अवतारका एक विशेष आश्चर्य विषय यह है कि जो कोई उनके समीप जायेगा, पात्र-अपात्रका विचार किये बिना वे निगूढ़-प्रेमका भण्डार उसे दे देंगे, क्योंकि वे स्वतन्त्र ईश्वर हैं। और भी देखें, श्रीचैतन्यचन्द्र जगद्गुरुके रूपमें अवतीर्ण हुए हैं। कोई अपराधी हो अथवा निरपराधी, 'हे गौराङ्ग! हे कृष्णचैतन्य!' कहकर जो उनके शरणागत होकर उनको पुकारता है, तो श्रीकृष्णप्रेमके पुलक-अश्रु आदि सात्त्विक विकारोंके उदित होनेसे वह विह्वल हो जाता है॥21-22॥

नित्यानन्द बलिते हय कृष्णप्रेमोदय।
आउलाय सकल अङ्ग, अश्रु-गङ्गा बय॥23॥

अनुवाद—श्रीनित्यानन्द प्रभुका नाम लेने मात्रसे व्यक्तिमें श्रीकृष्णप्रेमका उदय होता है और उसके अङ्गोंमें रोमाञ्च तथा नेत्रोंसे गङ्गाकी भाँति अश्रुओंकी धारा प्रवाहित होने लगती है॥23॥

अपराध रहनेपर मुक्तकुलके उपास्य
श्रीकृष्णनामक उदयका अभाव :—

'कृष्णनाम' करे अपराधेर विचार।
कृष्ण बलिले अपराधीर ना हय विकार॥24॥

अनुवाद—'श्रीकृष्णनाम' प्रभु अपराधोंका विचार करते हैं और अपराधी व्यक्तिको नामका वास्तविक फल 'प्रेम' प्राप्त नहीं होता। इसलिये श्रीकृष्ण नामका उच्चारण करनेसे अपराधी व्यक्तिमें कोई विकार उत्पन्न नहीं होते॥24॥

अमृतप्रवाह भाष्य—पद्मपुराणमें दस नामापराध—

(1) सतां निन्दा (नाम प्रचार करनेवाले नामपरायण सन्तोंकी निन्दा)

(2) श्रीविष्णुसकाशात् शिवनामादेः स्वातन्त्र्यमननम् (शिवादि देवताओंको विष्णुके समान अथवा उनसे स्वतन्त्र ईश्वर मानना)

(3) गुर्वज्ञा (गुरुकी अवज्ञा)

(4) श्रुति-तदनुयायिशास्त्रनिन्दा (श्रुतियों और उनके अनुगत शास्त्रोंकी निन्दा करना)

(5) हरिनाम-महिम्नि अर्थवादमात्रमेतदिति मननम् (हरिनामकी महिमा केवल अर्थवाद है, ऐसा मानना)

(6) तत्र प्रकारान्तरेणार्थकल्पन्नम् (अथवा भगवन्नामोंको काल्पनिक समझना)

(7) नामबलेन पापप्रवृत्तिः (नामके बलपर पाप करनेकी प्रवृत्ति)

(8) अन्यशुभक्रियाभिर्नाम्नां साम्यमननम् (धर्म, व्रत, त्याग, होमादि प्राकृत शुभ कर्मोंको अप्राकृत भगवन्नामके समान समझना)

(9) अश्रद्धाने विमुखे च नामोपदेशः (अश्रद्धालु और नाम-श्रवण करनेसे विमुख मनुष्यको नामका उपदेश देना)

(10) श्रुतेऽपि नाम्नां माहात्म्ये तत्राप्रीतिर्हि (नामकी अद्भुत महिमा सुनकर भी शरीरमें 'मैं' और सांसारिक भोग्य वस्तुओंमें 'मेरा' की बुद्धि रखकर श्रीनामोच्चारणमें प्रीति नहीं दिखाना)। (विस्तृत व्याख्या अनुभाष्यमें द्रष्टव्य है)। इन दस अपराधोंके रहनेपर श्रीकृष्ण कृपा नहीं करते। अपराधी व्यक्तिके श्रीकृष्णनामसे वास्तविक सात्त्विक विकारादि नहीं होते॥ 24॥

अनुभाष्य—दस नामापराध-सम्बन्धमें मूल श्लोक—

(1) "सतां निन्दा नाम्नः परमपराधं वितनुते।
यतः ख्यातिं यातं कथमुसहते तद्विगर्हाम्॥
(2) शिवस्य श्रीविणोर्य इह गुणनामादि-सकलं।
धिया भिन्नं पश्येत् स खलु हरिनामाहितकरः॥
(3) गुरोरवज्ञा
(4) श्रुतिशास्त्रनिन्दनं
(5) तथार्थवादो
(6) हरिनाम्नि कल्पनम्।
(7) नाम्नो बलाद् यस्य हि पापबुद्धिर्न विद्यते तस्य यमैर्हि शुद्धिः॥
(8) धर्म-व्रत-त्याग-हुतादि-सर्वशुभक्रिया-साम्यमपि प्रमादः।
(9) अश्रद्दधाने विमुखेऽप्य शृण्वति यश्चोपदेशः शिवनामापराधः॥
(10) श्रुतेऽपि नाममाहात्म्ये यः प्रीतिरहितो नरः।
अहंममादि परमो नाम्नि सोऽप्यपराधकृत्॥"

दस प्रकारके नामापराधोंकी व्याख्या—

(1) साधुवर्गकी निन्दा नामके प्रति परम अपराध विस्तार करती है। जिन सब नाम-परायण साधुओंके द्वारा जगत्में श्रीकृष्णनाम प्रसिद्धि लाभ करता है (अर्थात् प्रचारित होता है), श्रीनामप्रभु उन सब साधुओंकी निन्दा कैसे सहन कर सकते हैं? इसलिये साधु-निन्दा नामापराध है।

(2) इस संसारमें जो व्यक्ति प्राकृत वस्तुओंकी भाँति मङ्गलमय श्रीविष्णुके नाम, रूप, गुण और लीलादिको नामी श्रीविष्णुसे पृथक् मानते हैं; अथवा शिवादि देवताओंको उनके प्रतिद्वन्द्वीके रूपमें श्रीविष्णुसे स्वतन्त्र या अभिन्न देखते हैं, उनका वह नामके छलसे नामापराध निश्चय ही अहितकर है।

(3) नाम-तत्त्वविद् गुरुको मरणशील और पञ्चभौतिक शरीरयुक्त साधारण मनुष्य मानकर उनकी अवज्ञा अथवा उनसे ईर्ष्या करना।

(4) वेद और सात्वत-पुराणादिकी निन्दा करना।

(5) हरिनामकी महिमाको अति-स्तुति समझना।

(6) भगवान्के नामोंको काल्पनिक समझना नामापराध है।

(7) जिनकी नामके बलपर पापाचरणमें बुद्धि होती है, उनकी अनेक यम, नियम, ध्यान, धारणादि कृत्रिम योग-प्रक्रियाओंके द्वारा भी शुद्धि नहीं होती—यह निश्चित है।

(8) धर्म, व्रत, त्याग, होमादि प्राकृत शुभ कर्मोंके साथ अप्राकृत नाम-ग्रहणको समान या तुल्य समझना भी प्रमाद या असावधानी है—यह भी नामापराध है।

(9) श्रद्धाहीन और नाम-श्रवणसे विमुख व्यक्तिको नामका उपदेश देना भी मङ्गलमय श्रीनामके प्रति नामापराध है।

(10) नामकी अद्भुत महिमाको सुनकर भी जो [रक्त, मांस और चमड़ेके] शरीरमें 'मैं' और [सांसारिक भोग्य पदार्थोंमें] 'मेरा' की बुद्धि रखते हैं तथा नाम-ग्रहण-श्रवणमें प्रीति अथवा आदर नहीं दिखलाते हैं, वे भी नामापराधी हैं॥ 24॥

अमृतानुकणिका—यदि कोई हरिनाम करता है और उसने दीक्षा भी ग्रहण की है, परन्तु इन दस प्रकारके भयङ्कर अपराधोंसे बचनेकी चेष्टा नहीं करता है, तो अग्निमें भस्म डालनेके समान उसका भजन नष्ट हो जायेगा। यहाँ कुछ नामापराधोंके कारणोंकी आलोचना

की जा रही है। दस नामापराधोंमें पहला अपराध साधु-निन्दा है। इससे बचनेका बड़ी सावधानीसे प्रयास करना चाहिये। कनिष्ठ वैष्णवसे लेकर उत्तम वैष्णव तक किसीकी भी निन्दा नहीं करनी चाहिये। दूसरा नामापराध शिवजीको विष्णुसे स्वतन्त्र भगवद्-ज्ञान करके उनका नाम करना है। वैष्णव लोग इससे तो थोड़ी सी सावधानीसे बच सकते हैं।

तीसरा नाममापराध गुरुकी अवज्ञा है—यहाँ गुरुकी निन्दा नहीं कहा गया है, क्योंकि साधारण व्यक्ति भी गुरुकी निन्दा नहीं करता या उनपर प्रहार नहीं करता, किन्तु गुरुकी अवज्ञा कर सकता है। गुरु अवज्ञाका कारण गुरुमें मर्त्त्यबुद्धि रखकर ऐसा विचार करना है कि उनके समस्त आदेश पालनीय नहीं हैं, केवल कुछ ही आदेश पालनीय हैं। कुछ शिष्य ऐसा विचार रखते हैं कि गुरुजीने जब गृहस्थ जीवनको तो स्वीकार किया नहीं है, तब उन्हें इस विषयमें क्या ज्ञान हो सकता है? इसलिये गुरुके पारमार्थिक उपदेश तो माननेके योग्य हैं, परन्तु लौकिक सम्बन्धी उपदेश माननेके लिये हम बाध्य नहीं हैं। यह अर्द्ध-कुकुटि न्याय है और महापराध है। कुछ शिष्य यह संशय भी करते हैं कि क्या गुरुजीने सब शास्त्र पढ़े हैं अथवा नहीं? ये भी हमारे समान खाते-पीते-सोते हैं, तो किस विषयमें ये हमसे श्रेष्ठ हैं? केवल हमसे आयुमें बड़े हैं और बुढ़ापेमें तो बुद्धि मन्द हो जाती है। इसलिये गुरुके चरणोंकी अवज्ञाकी बहुत सम्भावना है। पुनः पुनः करनेपर यह अपराध वज्रसार हो जाता है और प्रायश्चित करनेसे भी दूर नहीं होता है।

हरिनामकी महिमाको अति-स्तुति समझना पाँचवाँ नामापराध है। शास्त्रोंमें जो नामकी महिमा बतलायी गयी है, उसपर विश्वास नहीं होता। सभी अनर्थोंसे पूर्ण महापापी अजामिलने अपने पुत्रके उद्देश्यसे सङ्केतसे अनजानेमें हरिनाम किया और सभी पापोंसे मुक्त हो गया—यह शास्त्रोंमें नामकी महिमा बहुत कम लिखी गयी है। स्कन्दपुराणमें कहा गया है—

"मधुर-मधुरमेतन्मङ्गलं मङ्गलानां
सकलनिगमवल्ली-सत्फलं चित्स्वरूपम्।
सकृदपि परिगीतं श्रद्धया हेलया वा
भृगुवर नरमात्रं तारयेत् कृष्णनाम॥"

"हरिनाम सब प्रकारके मङ्गलोंमें श्रेष्ठ मङ्गल-स्वरूप है, मधुरसे भी सुमधुर है। वह निखिल श्रुति-लताओंका चिन्मय सुपक्वफल है। हे भार्गवश्रेष्ठ! श्रद्धासे हो अथवा अवहेलनासे, मनुष्य यदि स्पष्ट रूपसे एकबार भी निरपराध होकर "कृष्ण" नामका उच्चारण करे, तो वह नाम उसी समय मनुष्यको तार देता है।" इसलिये शास्त्रमें नामकी महिमा जो कुछ बतलायी गयी है, वह थोड़ी बतलायी गयी है, अधिक नहीं। जो ऐसा नहीं समझकर कहते हैं कि नामकी महिमा इतनी नहीं है, परन्तु यदि शुद्धनाम करें तो मुक्ति हो जायेगी अथवा नामाभाससे भी मुक्ति हो जायेगी, वे नामापराधी हैं। एक साँपके मन्त्रको जाननेवालेपर लोगोंको विश्वास हो जाता है, क्योंकि उसका प्रभाव शीघ्र ही दिखायी देता है। परन्तु नामजपका प्रभाव सहज ही दिखायी नहीं देता, इसलिये यह नामापराध होनेकी सम्भावना अधिक है।

छठा नामापराध हरिनामको काल्पनिक समझना है। भगवान्का रूप ही नहीं है, वे निराकार हैं, तो उनके नाम कृष्ण आदि भी काल्पनिक हैं—ऐसा यदि कोई विचारकर नाम करता है, तो वह नामापराध करता है।

प्राकृत शुभ कर्मोंके समान ही नामको मानना आठवाँ नामापराध है और अधिकांश लोग ऐसा ही मानते हैं। वे भूत-पिशाच-तावीज़ आदिमें विश्वास रखते हैं, परन्तु भगवान्के नाममें उनका विश्वास नहीं है। वे नहीं जानते हैं कि जहाँ भगवद्-नाम होता है, वहाँ कोसों दूर तक भूत-पिशाच नहीं आ सकते। इसलिये गुरु-पदाश्रय करके इस अपराधसे बचना चाहिये।

अन्य नामापराधोंसे तो बच सकते हैं, परन्तु देहात्मबुद्धि रखते हुए नाम करना—इस दसवें नामापराधसे बचना सबसे कठिन है। बद्धजीवमें देहात्मबुद्धि होती है और वह स्वयंको शरीर मानता है। परन्तु श्रीकृष्णने

गीता-भागवतमें कहा है कि हम शरीर नहीं आत्मा हैं और उसे ही गुरु एवं अन्य शास्त्र भी कह रहे हैं, तो इसमें विश्वास रखना चाहिये। जब माँ जिसे हमारा पिता बतलाती है और हम उसके वचनोंपर विश्वासकर उसे अपना पिता मान लेते हैं, तब भगवान् और गुरुके वचनोंपर विश्वास क्यों नहीं होता? भगवान् और गुरुके वचनोंपर विश्वास करके इन दस प्रकारके नामापराधोंसे बचना चाहिये॥ 24॥

अपराधीके पाषाण-हृदयमें भाव शुद्ध नहीं, कृत्रिममात्र :—
(श्रीमद्भागवत-2/3/24)—

तदश्मसारं हृदयं बतेदं,
यद्गृह्यमाणैर्हरिनामधेयैः।
न विक्रियेताथ यदा विकारो,
नेत्रे जलं गात्ररुहेषु हर्षः॥ 25॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है॥ 25॥

अमृतप्रवाह भाष्य—हरिनाम ग्रहण करनेपर भी जिनके हृदयमें विकार, नेत्रोंमें अश्रु और शरीरमें रोमाञ्च नहीं होता, उनका हृदय पाषाणके समान अर्थात् कठोर अपराधके द्वारा उनका हृदय कठोर होता है, इसलिये नामग्रहणसे भी वह द्रवीभूत नहीं होता॥ 25॥

अनुभाष्य—श्रीसूत गोस्वामीके मुखसे श्रीशुक-परीक्षित-संवाद श्रवण करते-करते ऋषियोंके द्वारा और अधिक श्रवण करनेकी अभिलाषा प्रकट करनेपर हरिकथा श्रवणसे विमुख लोगोंकी निन्दाके प्रसङ्गमें श्रीसूत गोस्वामीको सम्बोधित शौनक-वाक्य,—

यत् हृदयं गृह्यमाणैः (कीर्त्यमानैरपि) हरिनामधेयैः न विक्रियेत, बत (अहो!) तत् इदं हृदयं अश्मसारं (नामापराधवशात् अश्मवत् पाषाणखण्डतुल्यः सारो यस्य तत्, कठिनमेव)। अथ यदा विकारो भवति, [तदा] नेत्रे जलं (अश्रु) गात्ररुहेषु हर्षः (रोमाञ्चः) भवति। (अतिगम्भीराणां महाभागवतानां हरिनामभिः चित्तद्रवेऽपि बहिरश्रुपुलकादीनाम् अदर्शनात् कृत्रिमाभ्यासानुकार पराणां पिच्छिलचित्तानां जड़ीय-प्रतिष्ठाभिलाषिणां सत्त्वाभासाद्यभावेऽपि बहिः कपटाश्रुपुलकदयो दृशयन्ते। अतएव बहुनामग्रहणेऽपि कनिष्ठाधिकारिणां विषयभोगप्रवणत्वात् कृत्रिमचित्तद्रवभावो नामापराध-लिङ्गमेवेति सन्दर्भः)।

श्लोक भावानुवाद—(नामापराधके कारण) जिस हृदयमें हरिनाम लेनेपर भी विकार नहीं होता, वह पाषाणके समान कठोर ही है। हृदय जब पिघल जाता है, तब नेत्रोंसे अश्रुधारा बहती है और रोमावली आनन्दसे पुलकित होती है। (अति गम्भीर महाभागवतोंमें हरिनाम ग्रहण करनेसे चित्त द्रवित होनेपर भी बाहर अश्रु-पुलकादि नहीं दिखायी देते। कृत्रिम अभ्यास करके उनका अनुकरण करनेवाले कठोर हृदयवाले व्यक्तियोंमें सत्त्वाभास न होनेपर भी केवल जड़-प्रतिष्ठाके लिये बाहर कपट अश्रु-पुलकादि दिखलायी देते हैं। इसलिये बहुत नाम करनेपर भी कनिष्ठ अधिकारीके द्वारा विषय भोगोंमें लिप्त होनेके कारण चित्तके द्रवित होनेके कृत्रिम विकार प्रदर्शन करना नामापराध ही है)।

श्रीमद्भागवतके इस श्लोकके गौड़ीय भाष्यमें श्रील विश्वनाथ चक्रवर्तीकी टीका, तथ्य और विवृति द्रष्टव्य है॥ 25॥

अमृतानुकणिका—शौनक ऋषि हरिकथा श्रवण-कीर्तन और हरिसेवाकी श्रेष्ठता प्रतिपादनके प्रसङ्गमें हरिभजनहीन व्यक्तियोंके बाह्य अङ्गसमूहकी निन्दा करके अब उनके अन्तकरणकी भी निन्दा कर रहे हैं। अनर्थमुक्त पुरुषको नाम ग्रहणमात्रसे ही नाम माधुर्य अनुभव होता है, इसलिये नाम-माधुर्य अनुभवके साथ-साथ हृदयमें विकार और उसके भीतरी लक्षण क्षान्ति आदि तथा बाह्य लक्षण अश्रु-पुलकादि प्रकाशित होते हैं। अनेक बार हरिनाम ग्रहण करनेपर भी यदि किसीका हृदय द्रवीभूत नहीं होता, तब निश्चय ही वह व्यक्ति नामापराधी है। सर्वशक्तिमान् नाम देह-गृह-परिवार-लोभ आदिमें आसक्त पाषाण-सम चित्तमें शीघ्र फलजनक नहीं होते। इन सब प्रतिबन्धकोंके द्वारा हृदय विकार निरस्त हो जाते हैं। सामान्यमात्र प्रतिबन्धक रहनेपर उच्चारित नाम नामाभास होता है। किन्तु बृहत् प्रतिबन्धक रहनेपर उच्चारित नामाक्षर नामापराध मात्र है। नामापराधीका हृदय लोहेके

समान कठोर है, इसलिये हरिनाम श्रवण-कीर्तन करनेपर भी वह द्रवीभूत नहीं होता। यद्यपि हरिनामसे चित्तद्रवताके बाह्य लक्षण अश्रु-पुलक हैं, तथापि ये अश्रु-पुलक सब समय चित्तद्रवताके लक्षण हैं, ऐसा नहीं कहा जा सकता। श्रीरूप गोस्वामीने कहा है कि कुछ लोग ऐसे भावुक होते हैं कि उनकी आँखोंमें सहज ही अश्रु आ जाते हैं। वे सामान्य थोड़ासा सुख या दुःखका कारण उपस्थित होनेपर अधीर हो जाते हैं और उनके नेत्रोंसे अश्रु बहने लगते हैं। इस प्रकारके अश्रु बहना उनका हृदय-दौर्बल्यके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। कोई-कोई अन्य भावुक व्यक्ति प्रतिष्ठा पानेके लोभसे कृत्रिम अभ्यासके द्वारा अश्रु-पुलक दिखलाते हैं। इसलिये अश्रु-पुलक ही सदा भावावस्थाके लक्षण हैं, ऐसा नहीं कहा जा सकता। अधिकतर देखा जाता है कि अति गम्भीर महानुभाव भक्तका चित्त कीर्तनादिके द्वारा द्रवीभूत होनेपर भी उनमें बाहरसे अश्रु-पुलकादि प्रकाशित नहीं होते। इसलिये बाहरसे अश्रु-पुलकादि होनेपर भी जो हृदय विगलित नहीं होता, वही पाषाणके समान कठोर है—यही अश्मसार-शब्दका अर्थ है। श्रीरूप गोस्वामीने भक्तिरसामृतसिन्धुमें कहा है कि जिनके हृदयमें भावका अङ्कुरमात्र भी उदित हुआ है, उन सभी पुरुषोंमें जो लक्षण देखे जाते हैं, वे इस प्रकार हैं—

भक्तिभावके द्वारा हृदय द्रवित होनेपर बहिर्क्रियाके स्वरूप अश्रु-पुलकादि उदित होनेपर उसे सात्त्विक विकार कहते हैं। हृदय विकारका ऐसा साधारण लक्षण होनेपर भी कुछ असाधारण लक्षण भी हैं—क्षान्ति, अव्यर्थकालत्व, विरक्ति, मानशून्यता, आशाबन्ध, समुत्कण्ठा, नामगानमें सदा रुचि, भगवत्-गुणकीर्त्तनमें आसक्ति और वृन्दावनादि भगवत्-धामोंमें वास करनेमें प्रीति—भावभक्तिके ये नौ यथार्थ लक्षण हैं। निरपराधी भक्तजन नामसङ्कीर्तन करनेसे ही अपने हृदयमें नामका प्रभाव अनुभव करते हैं और नामके आस्वादनमें विभोर हो जाते हैं। उस अनुभवके कार्यस्वरूप हृदय द्रवित हो जाता है, जिससे उक्त लक्षण प्रकटित होते हैं। किन्तु जो अपराधी, परश्रीकातर (दूसरोंके सम्पन्न होनेपर ईर्ष्यालु) होते हैं, बहुत नाम करनेपर भी नामकी अप्रसन्नतासे उनका चित्त भक्तिभावसे द्रवित नहीं होता। बाहरसे अश्रु-पुलकादि देखे जानेपर भी हृदय लोहेके समान कठिन होनेके कारण, इस श्लोकमें उनकी निन्दा की गयी है। साधुसङ्गके प्रभावसे निरन्तर नाम ग्रहण करनेसे चित्त द्रवित होनेपर उनके हृदयका काठिन्य दूर हो सकता है॥25॥

स्वप्रकाश नामप्रभुका जिह्वापर उदित होकर
श्रीकृष्णप्रेम-प्रदान :—

एक 'कृष्णनामे' करे सर्वपाप नाश।
प्रेमेर कारण भक्ति करेन प्रकाश॥26॥

अनुवाद—एक (अपराधरहित) श्रीकृष्णनाम सभी पापोंका नाश करके प्रेम उत्पन्न करानेवाली (साधन) भक्तिको प्रकाशित करता है॥26॥

अमृतप्रवाह भाष्य—प्रेमको उदय करानेवाली जो साधनभक्ति है, उसे प्रकाशित करता है॥26॥

शुद्धनामका फल श्रीकृष्णप्रेमके लक्षण :—

प्रेमेर उदये हय प्रेमेर विकार।
स्वेद-कम्प-पुलकादि गद्गदाश्रुधार॥27॥
अनायासे भवक्षय, कृष्णेर सेवन।
एक कृष्णनामेर फले पाइ एत धन॥28॥

अनुवाद—(साधकमें) प्रेम उदय होनेसे शरीरमें स्वेद (पसीना), कम्प और पुलकादि, गला रुद्ध होना तथा नेत्रोंसे अश्रुधारा प्रवाहित होना—ये प्रेमके विकार उत्पन्न होते हैं। अनायास ही उसका भवबन्धन कट जाता है और उसे श्रीकृष्ण-सेवाकी प्राप्ति होती है। एक श्रीकृष्णनामसे उसे इतनी विशाल धनराशिकी प्राप्ति होती है॥27-28॥

अमृतानुकणिका—कृष्ण सम्बन्धी किसी भावके द्वारा जब चित्त साक्षात् रूपमें अथवा कुछ व्यवधानके साथ

विभावित होता है, तब उसी चित्तको 'सत्त्व' कहते हैं। इस सत्त्वसे जो भावसमूह पैदा होते हैं, उन्हें सात्त्विकभाव कहते हैं। स्तम्भ (जड़ता या निश्चलता), स्वेद (पसीना), रोमाञ्च (रोमावलीका खड़ा होना), स्वरभेद (स्वरकी विकृति, गद्‌गद् वाणी), वेपथु (कम्प), वैवर्ण (विषाद, भय और क्रोध आदिके द्वारा शरीरके ऊपर जो वर्ण विकार होता है, जैसे—मलिनता, कृशता आदि), अश्रु और प्रलय (मूर्च्छा)—ये आठ सात्त्विक विकार हैं। प्राण किसी अवस्थामें दूसरे चार भूतों (भूमि, जल, तेज और आकाश) के साथ पञ्चम भूतके रूपमें अवस्थित रहता है और कभी-कभी स्वप्रधान होकर अर्थात् वायु प्रधान होकर जीवके शरीरमें विचरण करता है। जिस समय वह भूमिस्थ होता है, तब स्तम्भ (जड़ता) लक्षित होता है, जलाश्रित होनेपर अश्रु, तेजस्थ होनेपर वैवर्ण एवं स्वेद या पसीना लक्षित होता है। जब वह आकाशाश्रित होता है, तब प्रलय या मूर्च्छा होती है तथा जब वह स्वप्रधान (वायुके आश्रित) होता है, तब मन्द, मध्य, तीव्र भेदसे रोमाञ्च, कम्प और स्वरभेद विकारसमूह प्रकाशित होते हैं।

सूर्योदयके साथ ही अन्धकार जैसे स्वतः ही दूर हो जाता है, उसी प्रकार प्रेमाभक्तिके आविर्भावसे संसार बन्धनका स्वतः ही नाश हो जाता है॥27-28॥

नामापराधीका असंख्य बार श्रवण-कीर्तन निरर्थक :—

हेन कृष्णनाम यदि लय बहुबार।
तबु यदि प्रेम नहे, नहे अश्रुधार॥29॥
तबे जानि, अपराध ताहाते प्रचुर।
कृष्णनाम-बीज ताहे ना करे अङ्कुर॥30॥

अनुवाद—ऐसे श्रीकृष्णनामको अनेक बार लेनेपर भी यदि किसी व्यक्तिको प्रेमकी प्राप्ति नहीं होती और उसके नेत्रोंसे अश्रुधारा प्रवाहित नहीं होती, तब यह समझ लेना चाहिये कि उसमें अपराध प्रचुर मात्रामें हैं, जिसके कारण उसके हृदयमें श्रीकृष्णनामरूपी बीज अङ्कुरित नहीं हो रहा है॥29-30॥

श्रीगौर-निताइ या उनके नाममें अपराधका विचार नहीं है :—

चैतन्य-नित्यानन्दे नाहि एसब विचार।
नाम लैते प्रेम देन, बहे अश्रुधार॥31॥

अनुवाद—श्रीचैतन्य महाप्रभु और श्रीनित्यानन्द प्रभुके नामोंमें अपराधका विचार नहीं है, इसलिये नाम लेने मात्रसे उस व्यक्तिको वे प्रेम प्रदान कर देते हैं और उसके नेत्रोंसे अश्रुधारा प्रवाहित होने लगती है॥31॥

अमृतप्रवाह भाष्य—यदि कोई व्यक्ति श्रद्धापूर्वक श्रीचैतन्य-नित्यानन्दका आश्रय ग्रहण करता है, तो क्षणकालमें ही उसके समस्त पूर्व अपराधोंका मार्जन हो जाता है और उसके मुखमें श्रीकृष्णनामका उदय होते-होते ही वे उसे प्रेम प्रदान कर देते हैं॥31॥

अनुभाष्य—श्रीचैतन्य-नित्यानन्दप्रभुके आश्रित भक्तोंके द्वारा 'तृणादपि' श्लोकके अनुसार निष्कपट होकर शुद्धनाम ग्रहण करनेपर उनके नेत्रोंसे प्रेमाश्रु बहते देखे जाते हैं।

श्रीकृष्णनाम अपराधका विचार करते हैं, परन्तु श्रीगौर-नित्यानन्दके नाममें अपराधका विचार नहीं है। अपराधी व्यक्तिके द्वारा श्रीकृष्णनाम ग्रहण करनेपर कभी भी उसे नामका फल (श्रीकृष्ण-प्रेम) प्राप्त नहीं होता। श्रीगौर-नित्यानन्दके नाम ग्रहण करनेवालेके अपराध रहनेपर भी नाम करते-करते अपराध-मोचनके अन्तमें उसे नामके फलकी प्राप्ति हो जाती है। इसका विचार और सिद्धान्त यह है—

श्रीकृष्णविमुख साधक श्रीकृष्णोन्मुख होनेके लिये श्रीगौर-नित्यानन्दके पास जाते हैं। साधनसिद्ध, अनर्थमुक्त श्रीकृष्णोन्मुख व्यक्तिके द्वारा उच्चारित श्रीकृष्णनाम अपना (श्रीकृष्णप्रेमरूपी) फल प्रदान करता है, परन्तु साधककी अनर्थयुक्त अवस्थामें वह नाम वैसा फल प्रदान नहीं

करता। श्रीगौर-नित्यानन्द अनर्थयुक्त जीवोंके भी सेव्य वस्तु हैं और उनकी सेवा भाग्यहीन जीवोंके द्वारा श्रीकृष्णसेवाकी अपेक्षा अधिक उपयोगी है। साधक जब नामप्रणालीकी शिक्षा ग्रहण किये बिना स्वयंमें सिद्धका अभिमान करके श्रीकृष्णनामकी सेवाके लिये उद्यत होता है, तब अनर्थ ही उसके निकट उपस्थित होते हैं। किन्तु जो श्रीनिताइ-गौरके भजनमें सिद्ध होनेका अभिमानरूप कपट न रखकर अनर्थयुक्त अवस्थामें भी जो उन दो जगद्-गुरुओं (श्रीनिताइ-गौर) के पास जाता है, वे उस व्यक्तिको अनर्थोंसे मुक्त करके उसको अपने स्वयंरूप (श्रीचैतन्य महाप्रभु) और स्वयंप्रकाश (श्रीनित्यानन्द प्रभु) के स्वरूपकी उपलब्धि करा देते हैं। इससे ही उस जीवके स्वरूप ज्ञानका उदय होता है।

श्रीकृष्णनाम और श्रीगौरनाम—दोनों ही नामीसे अभिन्न हैं। इस प्रकार श्रीकृष्णको श्रीगौरकी अपेक्षा लघु अथवा सङ्कीर्ण मानना अविद्याका कार्य समझना होगा। वस्तुतः जीवके प्रयोजनका विचार करनेपर श्रीगौर-नित्यानन्दके नाम-ग्रहण करनेकी उपयोगिता अधिक है। श्रीगौर-नित्यानन्द उदार हैं और उस उदारताके भीतर वे मधुर भी हैं। श्रीकृष्णकी उदारता केवल मुक्त, सिद्ध और उनके आश्रित भक्तोंपर ही दिखलायी देती है, किन्तु श्रीगौर-नित्यानन्दके औदार्य-स्रोतसे अनर्थयुक्त अपराधी जीव भोगमय अपराधोंके हाथोंसे मुक्त होकर श्रीगौर-कृष्णके चरणकमलोंको प्राप्त करते हैं॥ 31॥

महावदान्य श्रीगौरके भजनके अतिरिक्त
और कोई गति नहीं है :—

स्वतन्त्र ईश्वर प्रभु अत्यन्त उदार।
ताँरे ना भजिले कभु ना हय निस्तार॥ 32॥

अनुवाद—श्रीचैतन्य महाप्रभु स्वतन्त्र ईश्वर और अत्यन्त उदार हैं। उनका भजन किये बिना जीवका उद्धार सम्भव नहीं है॥ 32॥

अनुभाष्य—'श्रीचैतन्य-भजन' कहनेका तात्पर्य श्रीकृष्णको त्यागकर श्रीराधा-कृष्णसे अलग श्रीगौरभजन नहीं है। यह मायाकी दासतामें कल्पित भजन है और इसमें श्रीकृष्णप्रेम-माधुर्य अवस्थित नहीं है। श्रीचैतन्यके अति प्रिय निजजन श्रीस्वरूप-रूप-रघुनाथादि आचार्योंका उल्लङ्घन करके जो काल्पनिक चेष्टाओंके द्वारा यह सोचते हैं कि वे गौरभजन कर रहे हैं, उनका कभी उद्धार नहीं हो सकता। उनका यह मायाकल्पित दुष्प्रयास श्रीराधा-कृष्णसे अभिन्न श्रीचैतन्य महाप्रभुके चरणोंमें भीषण अपराध है, जिसके फलस्वरूप वे द्रुत गतिसे नरककी ओर बढ़ने लगते हैं। तब वे श्रीराधाकृष्ण-सेवापरायण भक्तोंमें दोषदर्शन करके श्रीरूपादि आचार्योंके चरणोंमें अपराध कर बैठते हैं। इस कारण श्रीगौरसुन्दरको मुखसे 'अवतारी' कहकर भी वे मनसे उन्हें नैमित्तिक-मनोधर्म प्रचारकोंके भाँति केवल साधुके रूपमें ही मानते हैं॥ 32॥

व्यासावतार ठाकुर वृन्दावनदासके चैतन्यभागवतके
श्रवणसे ही जीवका चरम मङ्गल :—

ओरे मूढ़ लोक, शुन चैतन्यमङ्गल।
चैतन्य-महिमा याते जानिबे सकल॥ 33॥

अनुवाद—अरे मूर्ख लोगों! श्रीचैतन्यमङ्गलका श्रवण करो, जिससे तुम श्रीचैतन्य महाप्रभुकी महिमासे पूर्णरूपसे अवगत होवोगे॥ 33॥

अमृतप्रवाह भाष्य—देनुड़ग्राम (जिला वर्धमान) के निवासी श्रीवृन्दावनदास ठाकुरने 'चैतन्यभागवत' नामक ग्रन्थकी रचना की। इस ग्रन्थका पूर्व नाम 'चैतन्यमङ्गल' था। श्रीलोचनदास ठाकुरके निजरचित ग्रन्थ 'चैतन्यमङ्गल' गान आरम्भ करनेपर श्रीवृन्दावनदास ठाकुरने अपने ग्रन्थका नाम परिवर्तित कर दिया—इस प्रकार प्रसिद्धि है॥ 33॥

कृष्णलीला भागवते कहे वेदव्यास।
चैतन्य-लीलार व्यास—वृन्दावन-दास॥ 34॥

अनुवाद—जिस प्रकार श्रीवेदव्यासने श्रीमद्भागवतमें

श्रीकृष्णलीलाका वर्णन किया है, उसी प्रकार श्रीचैतन्यलीलाके व्यास श्रीवृन्दावनदास ठाकुर हैं॥ 34॥

अनुभाष्य—भाष्यकारके (श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुरके) द्वारा सम्पादित श्रीचैतन्य-भागवतकी भूमिकामें 'श्रीवृन्दावनदास ठाकुरकी' जीवनी द्रष्टव्य है॥ 34॥

वृन्दावन-दास कैल 'चैतन्यमङ्गल'।
याँहार श्रवणे नाशे सर्व-अमङ्गल॥ 35॥

चैतन्यभागवत—श्रीगौर-निताइ-महिमा और भक्तिसिद्धान्तकी खान :—

चैतन्य-निताइर याते जानिये महिमा।
याते जानि कृष्णभक्ति-सिद्धान्तेर सीमा॥ 36॥

अनुवाद—श्रीवृन्दावनदास ठाकुरने 'चैतन्यमङ्गल' की रचनाकी है, जिसे सुननेसे सभी अमङ्गलोंका नाश होता है। इससे श्रीचैतन्य-नित्यानन्दकी महिमाको समझोगे और जिसके द्वारा श्रीकृष्णभक्ति-सिद्धान्तकी चरम सीमाको भी जानोगे॥ 35-36॥

अनुभाष्य—श्रीमद्भागवत भक्ति-सिद्धान्तका मूल ग्रन्थ है, किन्तु ग्रन्थका कलेवर विशाल होनेके कारण अनेक लोग इसके सारांशको ग्रहण करनेमें समर्थ नहीं होते हैं। श्रीवृन्दावनदास ठाकुरने उसके सारांशको अपने ग्रन्थ 'श्रीचैतन्यभागवत' में लिपिबद्ध किया है। श्रीकृष्णभक्तिके सिद्धान्तोंमें निपुण लोग ही श्रीगौर-नित्यानन्दकी महिमाको भली-भाँति प्रकारसे जाननेमें समर्थ हैं। समस्त भक्तिग्रन्थ एक स्वरमें यही गान करते हैं कि भक्तिसिद्धान्तके बिना भक्तिदेवीकी सेवा नहीं हो सकती॥ 36॥

भागवते यत भक्तिसिद्धान्तेर सार।
लिखियाछेन इँहा जानि' करिया उद्धार॥ 37॥

चैतन्यभागवत-श्रवणसे दुर्जनोंका भी सज्जन बनना :—

चैतन्यमङ्गल शुने यदि पाषण्डी, यवन।
सेह महावैष्णव हय ततक्षण॥ 38॥

उनकी अलौकिक रचना :—

मनुष्ये रचिते नारे ऐछे ग्रन्थ धन्य।
वृन्दावन-दास मुखे वक्ता श्रीचैतन्य॥ 39॥

एक ग्रन्थके द्वारा ही जगत्का उद्धार :—

वृन्दावनदास-पदे कोटि नमस्कार।
ऐछे ग्रन्थ करि' तेँहो तारिला संसार॥ 40॥

अनुवाद—श्रीमद्भागवतमें जो भक्तिसिद्धान्तोंका सार है, उसे ही श्रीवृन्दावनदास ठाकुरने अपने ग्रन्थ श्रीचैतन्यमङ्गलमें उद्धृत किया है। यदि श्रीचैतन्यमङ्गलको कोई पाषण्डी (धर्मके विरुद्ध आचरण करनेवाला) अथवा यवन भी श्रवण करे, तो वह तत्क्षणात् महावैष्णव बन जाता है। ऐसे महिमायुक्त ग्रन्थकी रचना किसी मनुष्यके द्वारा सम्भव नहीं है। श्रीवृन्दावनदास ठाकुरके मुखसे श्रीचैतन्य महाप्रभु ही इस ग्रन्थके वक्ता अर्थात् रचयिता हैं। श्रीवृन्दावनदासके चरणोंमें मैं कृष्णदास कोटि-कोटि नमस्कार करता हूँ, जिन्होंने ऐसे ग्रन्थकी रचना करके संसारके जीवोंका उद्धार किया है॥ 37-40॥

महाप्रभुकी कृपापात्री नारायणीके पुत्र—श्रीवृन्दावनदास :—

नारायणी—चैतन्येर उच्छिष्ट-भाजन।
ताँर गर्भे जन्मिला श्रीदास-वृन्दावन॥ 41॥

अनुवाद—श्रीचैतन्य महाप्रभुके उच्छिष्ट महाप्रसादको बाल्यकालमें ग्रहण करनेवाली श्रीमती नारायणी देवीके गर्भसे ही श्रीवृन्दावनदास ठाकुरका जन्म हुआ॥ 41॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीमती नारायणी देवी श्रीवास पण्डितके भ्राताकी पुत्री थीं। उन्हें शिशुकालमें महाप्रभुके कीर्तनके अन्तमें उनका उच्छिष्ट-प्रसाद प्राप्त होता था॥ 41॥

अनुभाष्य—श्रीगौर-गणोद्देशदीपिकामें श्रीकविकर्णपूरने श्रीमती नारायणी देवीके सम्बन्धमें इस प्रकार वर्णन किया है—

"अम्बिकायाः स्वसा यासीन्नाम्नी श्रील-किलिम्बिका।
कृष्णोच्छिष्टं प्रभुआना सेयं नारायणी मता॥ 43॥"

"पूर्वकालमें श्रीकृष्णको स्तनपान करानेवाली अम्बिका नामक धात्रीकी छोटी बहन किलिम्बिका थीं। वे श्रीकृष्णके उच्छिष्ट भोजनको ग्रहण करती थीं। अब वे ही श्रीगौरावतारमें 'नारायणी देवी' हुई हैं।"

श्रीवास पण्डितकी भतीजी नारायणी देवीके गर्भसे श्रीवृन्दावनदास ठाकुरका जन्म हुआ। माता नारायणी देवी श्रीगौरसुन्दरका उच्छिष्ट खानेवाली और कृपापात्री थीं। उनके परिचयसे ही वृन्दावनदास ठाकुर जाने जाते हैं। वैष्णवोंके परिचयमें उनके पूर्व-पुरुषों (पूर्वजों) का परिचय जानना आवश्यक नहीं है, इसलिये उसका त्याग हुआ है अर्थात् वृन्दावनदास ठाकुरके पितृकुलका वर्णन कहीं नहीं मिलता॥ 41॥

श्रीगौरचरित्र-वर्णनके द्वारा उनका जगत्-उद्धार :—

ताँर कि अद्भुत चैतन्यचरित-वर्णन।
याहार श्रवणे शुद्ध कैल त्रिभुवन॥ 42॥

'श्रीनिताइ-गौर-भजनसे ही मङ्गल'—जीवको उसके लिये अनुरोध :—

अतएव भज, लोक, चैतन्य-नित्यानन्द।
खण्डिबे संसार-दुःख, पाबे प्रेमानन्द॥ 43॥

अनुवाद—श्रीवृन्दावनदास ठाकुरने कैसा यह अद्भुत चैतन्य महाप्रभुके चरित्रका वर्णन किया है, जिसे सुनने मात्रसे तीनों लोक पवित्र हो जाते हैं। अतः हे जगत्के जीवों! श्रीचैतन्य-नित्यानन्दका भजन करो। तुम्हारे संसारके दुःखोंका नाश हो जायेगा और तुम्हें प्रेमानन्दका प्राप्ति होगी॥ 42-43॥

वृन्दावनदास ठाकुरके द्वारा पहले सूत्ररूपमें और बादमें विस्तृतरूपसे श्रीगौरलीलाका वर्णन :—

वृन्दावन-दास कैल 'चैतन्यमङ्गल'।
ताहाते चैतन्य-लीला वर्णिल सकल॥ 44॥
सूत्र करि' सब लीला करिल ग्रन्थन।
पाछे विस्तारिया ताहार कैल विवरण॥ 45॥
चैतन्यचन्द्रेर लीला अनन्त अपार।
वर्णिते वर्णिते ग्रन्थ हइल विस्तार॥ 46॥

किन्तु ग्रन्थ-विस्तार भयसे विस्तार करनेमें अनिच्छा :—

विस्तार देखिया किछु सङ्कोच हैल मन।
सूत्रधृत कोन लीला ना कैल वर्णन॥ 47॥

श्रीनिताइकी लीला-वर्णनके आवेशसे श्रीगौरकी अन्त्यलीलाका वर्णन असम्पूर्ण :—

नित्यानन्द-लीला-वर्णने हइल आवेश।
चैतन्येर शेष-लीला रहिल अवशेष॥ 49॥

अनुवाद—श्रीवृन्दावनदास ठाकुरने चैतन्यमङ्गल ग्रन्थकी रचना की और उसमें चैतन्य महाप्रभुकी सभी लीलाओंका वर्णन किया। पहले उन्होंने सूत्र रूपमें सभी लीलाओंका वर्णन किया और बादमें विस्तारपूर्वक उनकी व्याख्या की। श्रीचैतन्यचन्द्रकी लीलाएँ अनन्त और अपार हैं। वर्णन करते-करते ग्रन्थ बहुत विस्तृत हो गया। ग्रन्थके विस्तारको देखकर उनके मनमें कुछ सङ्कोच हुआ। इसलिये सूत्र रूपमें कही गयी कुछ लीलाओंका विस्तारपूर्वक वर्णन छोड़ दिया। श्रीनित्यानन्द प्रभुकी लीला वर्णन करनेमें वे इतने आविष्ट हो गये कि श्रीचैतन्य महाप्रभुकी शेषलीलाका वर्णन अवशेष रह गया॥ 44-48॥

श्रीगौरकी शेषलीलाओंको सुननेकी वृन्दावनवासियोंकी इच्छा :—

सेइ सब लीलार शुनिते विवरण।
वृन्दावनवासी भक्तेर उत्कण्ठित मन॥ 49॥

अनुवाद—उन समस्त अवशेष लीलाओंको सुननेके लिये वृन्दावनवासी भक्तोंका मन उत्कण्ठित है॥ 49॥

कल्पवृक्षतले रत्नसिंहासनपर विराजमान श्रीगोविन्दकी सेवाका वर्णन :—

वृन्दावने कल्पद्रुमे सुवर्ण-सदन।
महा-योगपीठ ताँहा, रत्न-सिंहासन॥ 50॥
ताते बसि' आछे सदा व्रजेन्द्रनन्दन।
'श्रीगोविन्द-देव' नाम साक्षात् मदन॥ 51॥

अनुवाद—परमरमणीय श्रीवृन्दावनमें कल्पवृक्षके नीचे सुवर्ण-भवनमें महायोगपीठ है, जहाँ रत्नजड़ित सिंहासनपर श्रीव्रजेन्द्रनन्दन सदैव विराजमान हैं। उनका नाम श्रीगोविन्ददेव है और वे साक्षात् कामदेव हैं॥ 50-51॥

राजसेवा हय ताँहा विचित्र प्रकार।
दिव्य सामग्री, दिव्य वस्त्र, अलङ्कार॥ 52॥

सहस्र सेवक सेवा करे अनुक्षण।
सहस्र-वदने सेवा ना याय वर्णन॥ 53॥

अनुवाद—राजा-महाराजाओंके भाँति विचित्र प्रकारकी दिव्य सामग्री और दिव्य वस्त्र-अलङ्कारोंसे उनकी सेवा होती है। सैंकड़ों सेवक प्रतिक्षण उनकी सेवामें लगे रहते हैं। उस सेवाके वैभवका सैंकड़ों मुखोंके द्वारा भी वर्णन करना सम्भव नहीं है॥ 52-53॥

उनके सेवाध्यक्ष श्रीहरिदास पण्डितके
सद्गुणोंका वर्णन :—

सेवार अध्यक्ष—श्रीपण्डित हरिदास।
ताँर यशः-गुण सर्वजगते प्रकाश॥ 54॥

अनुवाद—श्रीगोविन्देवकी सेवाके अध्यक्ष श्रीहरिदास पण्डित हैं, जिनका यश और गुण सारे जगत्में प्रसिद्ध हैं॥ 54॥

अनुभाष्य—'पण्डित हरिदास'—श्रीगदाधर पण्डित गोस्वामीके शिष्य श्रीअनन्ताचार्य ही इनके श्रीगुरुदेव हैं। परवर्ती पयार संख्या 59-65 और अनुभाष्य द्रष्टव्य है॥ 54॥

सुशील, सहिष्णु, शान्त, वदान्य, गम्भीर।
मधुर-वचन, मधुर-चेष्टा, महाधीर॥ 55॥

सबार सम्मान-कर्त्ता, करेन सबार हित।
कौटिल्य-मात्सर्य-हिंसा शून्य ताँर चित्त॥ 56॥

कृष्णेर ये साधारण सद्गुण पञ्चाश।
से-सब गुणेर ताँर शरीरे निवास॥ 57॥

अनुवाद—वे सुशील, सहनशील, शान्त, कृपालु, गम्भीर और मधुर-भाषी हैं। उनकी सभी चेष्टाएँ मधुर हैं और वे धैर्यके सागर हैं। वे सभीका सम्मान और हित करनेवाले हैं। उनके हृदयमें कुटिलता, ईर्ष्या, हिंसादि दोष लेषमात्र भी नहीं है। श्रीकृष्णमें जो पचास साधारण सद्गुण हैं, वे सब इनमें विद्यमान हैं॥ 55-57॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीकृष्णमें साधारण जो पचास सद्गुण हैं, उनका उल्लेख "अयं नेता सुरम्याङ्ग" आदि (भ:र:सि:, दक्षिण विभाग, 1 लहरीके) श्लोकोंमें वर्णित है॥ 57॥

अमृतानुकणिका—भक्तिरसामृतसिन्धु दक्षिण विभाग प्रथम लहरीमें श्रीकृष्णके साधारण जो पचास गुणोंका वर्णन किया गया है, वे इस प्रकार हैं—

अयं नेता सुरम्याङ्गः सर्वसल्लक्षणान्वितः।
रुचिरस्तेजसा युक्तो बलीयान् वयसान्वितः॥
विविधाद्भुतभाषावित् सत्यवाक्यः प्रियंवदः।
वावदूकः सुपाण्डित्यो बुद्धिमान् प्रतिभाऽन्वितः॥
विदग्धश्चतुरो दक्षः कृतज्ञः सुदृढ़व्रतः।
देशकालसुपात्रज्ञः शास्त्रचक्षुः शुचिर्वशी॥
स्थिरो दान्तः क्षमाशीलो गम्भीरो धृतिमान् समः।
वदान्यो धार्मिकः शूरः करुणो मान्यमानकृत्॥
दक्षिणो विनयी ह्रीमान् शरणागतपालकः।
सुखी भक्तसुहृत् प्रेमवश्यः सर्वशुभङ्करः॥
प्रतापी कीर्तिमान् रक्तलोकः साधुसमाश्रयः।
नारीगणमनोहारी सर्वाराध्यः समृद्धिमान्॥
वरीयानीश्वरश्चेति गुणास्तस्यानुकीर्तिताः।
समुद्रा इव पञ्चाशद् दुर्विगाहा हरेरमी॥

(1) **सुरम्याङ्गः**—अति रमणीय अङ्गसन्निवेश
(2) **सर्वसल्लक्षणान्वितः**—सभी सद्-लक्षणोंसे युक्त
(3) **रुचिर**—सभीके नेत्रोंको आनन्द प्रदान करनेवाला सौन्दर्य
(4) **तेजसायुक्तो**—तेजसे युक्त तथा अतिशय प्रभावयुक्त
(5) **बलीयान्**—अति बलशाली
(6) **वयसान्वितः**—नानाविध विलासमय नवकिशोर अवस्था

(7) **विविधाद्भुतभाषावित्**—विविध भाषाओंके (पशु-पक्षी आदि की भाषाओंके भी) विद्वान

(8) **सत्यवाक्यः**—जिनका वाक्य कभी मिथ्या नहीं होता

(9) **प्रियंवदः**—अपराधीके प्रति भी प्रिय वाक्य बोलनेवाले

(10) **वावदूकः**—जिनके वाक्य कानोंको प्रिय लगनेवाले और रसभावादि युक्त हैं

(11) **सुपाण्डित्यो**—विद्वान और नीतिज्ञ

(12) **बुद्धिमान्**—मेधावी और सूक्ष्म बुद्धियुक्त

(13) **प्रतिभाऽन्वितः**—नव-नव विषयोंके उद्भावनमें समर्थ

(14) **विदग्ध**—चौंसठ विद्याओंमें निपुण

(15) **चतुरो**—एक ही समयमें अनेक कार्य करनेवाले

(16) **दक्षः**—दुष्कर कार्यको भी अति शीघ्र सम्पादन करनेवाले

(17) **कृतज्ञः**—दूसरोंके द्वारा की गयी सेवाको माननेवाले

(18) **सुदृढव्रतः**—जिनकी प्रतिज्ञा और नियम सदा सत्य होते हैं

(19) **देशकालसुपात्रज्ञः**—काल-पात्रके अनुसार कार्यमें निपुण

(20) **शास्त्रचक्षुः**—शास्त्रके अनुसार कार्य करनेवाले

(21) **शुचिः**—पापनाशक और दोष रहित

(22) **वशी**—जितेन्द्रिय

(23) **स्थिरो**—फलोदयमें विलम्ब देखकर भी कार्यसे निवृत न होनेवाले

(24) **दान्तः**—दुःसह होते हुए भी उपयुक्त क्लेश सहन करनेवाले

(25) **क्षमाशीलो**—दूसरोंके अपराध क्षमा करनेवाले

(26) **गम्भीरो**—जिनका अभिप्राय दूसरोंके लिये दुर्बोध है

(27) **धृतिमान्**—क्षोभका तीव्र कारण होनेपर भी क्षोभशून्य

(28) **समः**—राग-द्वेषशून्य

(29) **वदान्यो**—दानवीर

(30) **धार्मिकः**—स्वयं धर्मका आचरण करके दूसरोंको भी धर्मका आचरण करानेवाले

(31) **शूरः**—युद्धके उत्साही और अस्त्र प्रयोगमें निपुण

(32) **करुणो**—दूसरोंके दुःखको सहन न कर सकनेवाले

(33) **मान्यमानकृत्**— गुरु, ब्राह्मण और वृद्धजनोंका सम्मान करनेवाले

(34) **दक्षिणो**—सुस्वभाववश कोमल चित्तवाले

(35) **विनयी**— उद्धताशून्य

(36) **ह्रीमान्**—दूसरोके द्वारा स्तुत्य होनेपर सङ्कोच करनेवाले

(37) **शरणागतपालकः**—शरणमें आये हुए का पालन करनेवाले

(38) **सुखी**—सुख भोग करनेवाले और दुःखकी गन्धमात्रसे रहित

(39) **भक्तसुहृत्**—'सुसेव्य' और 'बन्धु' भेदसे दो प्रकारसे भक्तसुहृद हैं। 'सुसेव्य'—चुल्लू भर जल और तुलसी पत्र अर्पण करनेवालेको आत्मदान करनेवाले; 'बन्धु'—निज प्रतिज्ञाको भङ्ग करके भक्तकी प्रतिज्ञाकी रक्षा करनेवाले

(40) **प्रेमवश्यः**—प्रेमके वशीभूत रहनेवाले

(41) **सर्वशुभङ्करः**—सबके मङ्गलकारी

(42) **प्रतापी**—अपने प्रतापसे शत्रुको ताप देनेमें प्रसिद्ध

(43) **कीर्तिमान्**—निर्मल यशके द्वारा विख्यात

(44) **रक्तलोकः**—समस्त लोकोंके अनुरागके पात्र

(45) **साधुसमाश्रयः**—साधुके प्रति विशेष कृपाके कारण उनका पक्षपात करनेवाले

(46) **नारीगणमनोहारी**—सौन्दर्य, माधुर्य, वैदग्धीके द्वारा सभी नारियोंके चित्तको हरण करनेवाले

(47) **सर्वाराध्यः**—सभीके आराध्य

(48) **समृद्धिमान्**—अत्यन्त सम्पद्शाली

(49) **वरीयान्**—ब्रह्मा, शिवादिसे भी श्रेष्ठ

(50) **ईश्वर**—स्वतन्त्र, अन्यसे निरपेक्ष और जिनकी आज्ञा दुर्लङ्घ्य है।

ये पचास गुण श्रीकृष्णमें समुद्रवत् असीम रूपमें नित्य विराजमान रहते हैं॥ 57॥

(श्रीमद्भागवत 5/18/12)—

यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिञ्चना
सर्वेगुणैस्तत्र समासते सुराः।
हरावभक्तस्य कुतो महद्गुणा
मनोरथेनासति धावतो बहिः॥ 58॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है॥ 58॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीकृष्णमें जिनकी केवला भक्ति है, उन व्यक्तियोंमें समस्त गुणोंके सहित देवता वास करते हैं। हरिभक्तिविहीन व्यक्तियोंका मन सदा असत् बाह्य विषयोंमें दौड़ता रहता है, इसलिये उनमें महद्गुणोंका होना असम्भव है॥ 58॥

अनुभाष्य—परमभक्त प्रह्लादके गुण वर्णन करते हुए श्रीशुकदेवने महाराज परीक्षितको कहा—

यस्य (भक्तस्य) भगवति (श्रीविष्णौ) अकिञ्चना (निष्कामा) भक्तिः (आनुकूल्येन सेवनप्रवृत्तिः) अस्ति (विद्यते), तत्र (तस्मिन् भक्ते) सुराः (सर्वे देवाः) सर्वैः गुणैः (निखिल-सद्गुण-राशिभिः सह) समासते (सम्यग् आसते नित्यं वसन्ति)। असति (अनित्य विषयसुखे) मनोरथेन (मनोधर्मेण) बहिः धावतः (भोग-प्रवृत्तस्य) हरौ अभक्तस्य (अन्याभिलाष-कर्म-ज्ञान-योगपन्थिनः, अतः गृहाद्यासक्तस्य जनस्य हरिभक्त्यसम्भवात्) कुतः महद्गुणाः (महतां गुणाः ज्ञानवैराग्यादयः, श्रेष्ठ सद्गुणराशयः वा भवन्ति इति शेषः)।

श्लोक भावानुवाद—जिनमें भगवान् श्रीविष्णुकी अकिञ्चना (निष्काम) भक्ति अर्थात् अनुकूल भावसे सेवाकी प्रवृत्ति है, उन भक्तोंमें सभी देवता निखिल सद्गुणोंके साथ सदा विराजते हैं। अनित्य विषयसुखोंमें मनोधर्मवाले व्यक्तियोंकी भोग करनेकी प्रवृत्ति होती है, वे श्रीकृष्णेतर कर्म-ज्ञान-योगमार्गमें चलते हैं, इसलिये गृहादिमें आसक्त व्यक्तियोंमें हरिभक्तिकी सम्भावना नहीं है। ऐसे अभक्त लोगोंमें ज्ञान-वैराग्यादि महत् गुण कहाँसे आयेंगे?॥ 58॥

पण्डित हरिदासका परिचय और गुरुपरम्परा :—

पण्डित-गोसाञि शिष्य—अनन्त आचार्य।
कृष्णप्रेममय-तनु, उदार, सर्व-आर्य॥ 59॥

ताँहार अनन्त गुण के करु प्रकाश।
ताँर प्रिय शिष्य इँहो—पण्डित हरिदास॥ 60॥

अनुवाद—श्रीअनन्ताचार्य श्रीगदाधर पण्डित गोस्वामीके शिष्य हैं। वे श्रीकृष्ण-प्रेमकी मूर्ति, उदार और सभी प्रकारसे श्रेष्ठ हैं। उनके अनन्त गुणोंका कौन वर्णन कर सकता है? हरिदास पण्डित इन्हींके प्रिय शिष्य हैं॥ 59-60॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'पण्डित गोसाञि'—श्रीगदाधर पण्डित॥ 59॥

अनुभाष्य—श्रीअनन्ताचार्यकी शिष्य परम्परा इस प्रकार है—

(1) श्रीगौर-गणोद्देशदीपिकाके 165वें श्लोकमें वर्णित है—

"अनन्ताचार्य गोस्वामी या सुदेवी पुरा व्रजे।"

"व्रजकी अष्टसखियोंमें श्रीसुदेवी सखी श्रीगौरावतारमें श्रीअनन्ताचार्य हैं।" श्रीपुरुषोत्तम (श्रीजगन्नाथपुरी) का प्रसिद्ध 'गङ्गामाता मठ' इन्हींके मठोंकी शाखा है। इनकी गुरुपरम्परामें इनका 'विनोद-मञ्जरी' के नामसे उल्लेख है। (2) हरिदास पण्डित इनके शिष्य हैं। उनका नाम 'श्रीरघुगोपाल' भी है और वे व्रजलीलामें श्रीरासमञ्जरी हैं। (3) इनकी शिष्या श्रीलक्ष्मीप्रिया (गङ्गामाताकी मामी) हैं। (4) श्रीगङ्गामाता पुटियाकी राजकन्या थीं और उन्होंने जयपुरके कृष्णमिश्रसे 'श्रीरसिकराय' नामक विग्रहको लाकर श्रीजगन्नाथपुरीमें श्रीसार्वभौमके घरमें उनकी सेवाको प्रकाशित किया था। (5) श्रीवनमाली, (6) श्रीभगवानदास (बङ्गालवासी), (7) श्रीमधुसूदनदास (उत्कलवासी), (8) श्रीनीलाम्बरदास, (9) श्रीनरोत्तमदास, (10) श्रीपीताम्बरदास, (11) श्रीमाधवदास॥ 59-60॥

उनका श्रीनिताइ-गौरमें अनुराग :—

चैतन्य-नित्यानन्दे ताँर परम विश्वास।
चैतन्य-चरिते ताँर परम उल्लास॥ 61॥

वैष्णवोंमें गाढ़ प्रीति :—

वैष्णवेर गुणग्राही, ना देखये दोष।
कायमनोवाक्ये करे वैष्णव-सन्तोष॥ 62॥

वैष्णवसभामें उनका श्रीचैतन्यभागवत पाठ :—

निरन्तर शुने तेँहो 'चैतन्यमङ्गल'।
ताँहार प्रसादे शुनेन वैष्णवसकल॥ 63॥

कथाय सभा उज्ज्वल करे, येन पूर्णचन्द्र।
निज-गुणामृते बाड़ाय वैष्णव-आनन्द॥ 64॥

अनुवाद—हरिदास पण्डितकी श्रीचैतन्य-नित्यानन्दमें परम श्रद्धा है और श्रीचैतन्य-चरित्रके श्रवण-कीर्तनसे उनको परम उल्लास होता है। वे वैष्णवोंके केवल गुणोंको ही देखते हैं और किसीमें भी दोष-दृष्टि नहीं रखते हैं। वे तन-मन-वचनसे सदा वैष्णवोंको सन्तुष्ट रखते हैं। वे निरन्तर श्रीचैतन्यमङ्गलका श्रवण करते हैं और उनकी कृपासे सभी वैष्णवोंको भी ऐसा सुयोग प्राप्त होता है। चैतन्यमङ्गलकी कथा करते हुए पूर्णचन्द्रकी भाँति वे सभाको प्रकाशित करते हैं और अपने गुणरूपी अमृतसे वैष्णवोंका आनन्द वर्धित करते हैं॥ 61-64॥

ग्रन्थकारको श्रीगौर-शेषलीला वर्णन करनेका आदेश :—

तेँहो अति कृपा करि' आज्ञा दिल मोरे।
गौराङ्गेर शेषलीला वर्णिवार तरे॥ 65॥

अनुवाद—उन्होंने अत्यन्त कृपा करके मुझे श्रीगौराङ्ग महाप्रभुकी शेषलीलाका वर्णन करनेका आदेश प्रदान किया है॥ 65॥

इसी प्रकार आदेशकारी अन्य भक्तोंका परिचय :—

काशीश्वर गोसाञि शिष्य—गोविन्द गोसाञि।
गोविन्देर प्रियसेवक ताँर सम नाञि॥ 66॥

अनुवाद—श्रीकाशीश्वर पण्डितके शिष्य श्रीगोविन्द गोस्वामी हैं, जिनके समान श्रीगोविन्ददेवजीका प्रिय सेवक और कोई नहीं है॥ 66॥

अनुभाष्य—श्रीकाशीश्वर (पण्डित) गोस्वामी श्रीईश्वरपुरीके शिष्य और काञ्जिलाल कानु वंशमें वात्स्यगौत्रीय वासुदेव भट्टाचार्यके पुत्र थे। चौधुरी इनकी उपाधि थी। इनके भाँजे वल्लभपुरके श्रीरुद्र पण्डित थे (संख्या 106 द्रष्टव्य है)। चातरा ग्राममें श्रीकाशीश्वरके द्वारा प्रतिष्ठित श्रीराधा-गोविन्द और श्रीगौराङ्गके विग्रह हैं। ये बहुत बलवान थे। जब महाप्रभु प्रातःकाल श्रीजगन्नाथजीके दर्शनके लिये जाते थे, तो ये आगे-आगे चलकर भीड़को हटाकर उनका मार्ग सुगम बनाते थे (चैःचः आदिलीला 10/138-142; मध्यलीला 12/207; 13/89 संख्या द्रष्टव्य हैं)। पुरीमें ये कीर्तनके अन्तमें भक्तोंको प्रसाद वितरण करते थे। महाप्रभुके साथ इनके मिलनके प्रसङ्गके लिये चैःचः मध्यलीला 10/134, 185 संख्या द्रष्टव्य हैं। श्रीगौरगणोद्देश दीपिका (श्लोक 137) के अनुसार ये व्रजमें श्रीकृष्णके सेवक 'भृङ्गार' और (श्लोक 166) के अनुसार व्रजकी 'शशिरेखा' सखी ही गौरावतारके काशीश्वर हैं (?)॥ 66॥

यादवाचार्य गोसाञि श्रीरूपेर सङ्गी।
चैतन्यचरिते तेँहो अति बड़ रङ्गी॥ 67॥

पण्डित-गोसाञिर शिष्य—भूगर्भ गोसाञि।
गौरकथा बिना ताँर मुखे अन्य नाइ॥ 68॥

ताँर शिष्य—गोविन्द-पूजक चैतन्यदास।
मुकुन्दानन्द चक्रवर्ती, प्रेमी कृष्णदास॥ 69॥

आचार्य गोसाञिर शिष्य—चक्रवर्ती शिवानन्द।
निरवधि ताँर चित्ते श्रीचैतन्यानन्द॥ 70॥

अनुवाद—श्रीरूप गोस्वामीके सङ्गी श्रीयादवाचार्य गोस्वामी भी श्रीचैतन्य-चरित्रके अति रसिक हैं। श्रीगदाधर पण्डितके शिष्य श्रीभूगर्भ गोस्वामी भी हैं, जिनके मुखमें

श्रीगौर-कथाके अतिरिक्त और कुछ नहीं आता है। उनके शिष्य श्रीगोविन्ददेवजीके पुजारी श्रीचैतन्यदास, श्रीमुकुन्दानन्द चक्रवर्ती और प्रेमी कृष्णदास हैं। श्रीअनन्ताचार्यके शिष्य श्रीशिवानन्द चक्रवर्ती हैं, जिनके चित्तमें सदा श्रीगौराङ्ग-नित्यानन्द वास करते हैं॥ 67-70॥

अनुभाष्य—भूगर्भ गोस्वामी (चैःचः आदिलीला 12/81) के शिष्य श्रीचैतन्यदास, मुकुन्ददास और कृष्णदास हैं। 'शिवानन्द'—चैःचः आदिलीला 12/87 संख्या द्रष्टव्य है॥ 69-70॥

इति अनुभाष्ये अष्टम परिच्छेदः।
आठवें अध्यायका अनुभाष्य पूर्ण हुआ।

आर यत वृन्दावने बैसे भक्तगण।
शेष-लीला शुनिते सबार हैल मन॥ 71॥
मोरे आज्ञा करिला सबे करुणा करिया।
ताँ-सबार बोले लिखि निर्लज्ज हइया॥ 72॥

अनुवाद—और भी वृन्दावनमें जितने भक्त हैं, सभीका मन श्रीचैतन्यकी शेष-लीलाको सुननेके लिये उत्सुक है। सभीने कृपा करके मुझे आज्ञा प्रदान की और उन सबके कहनेपर मैं निर्लज्ज होकर लिख रहा हूँ॥ 71-72॥

वैष्णवादेशसे सम्भ्रम सहित
श्रीमदनगोपालसे आज्ञा प्रार्थना :—

वैष्णवेर आज्ञा पाञा चिन्तित-अन्तरे।
मदनगोपाले गेलाङ आज्ञा मागिवारे॥ 73॥

अनुवाद—उन समस्त वैष्णवोंकी आज्ञा प्राप्तकर मैं चिन्तित हो गया और श्रीमदनगोपालसे अनुमति माँगने गया॥ 73॥

गोस्वामीदासके द्वारा प्रार्थना करते ही सभी वैष्णवोंके
सामने श्रीमदनगोपालकी आज्ञा-मालाका गिरना :—

दरशन करि कैलुँ चरण वन्दन।
गोसाञिदास पूजारी करे चरण-सेवन॥ 74॥
प्रभुर चरणे यदि आज्ञा मागिल।
प्रभुकण्ठ हैते माला खसिया पड़िल॥ 75॥
सर्व वैष्णवगण हरिध्वनि दिल।
गोसाञिदास आनि' माला मोर गले दिल॥ 76॥

अनुवाद—श्रीमदनगोपालका दर्शन करके मैंने उनके चरणोंकी वन्दना की। उस समय श्रीगोसाईंदास पुजारी श्रीविग्रहकी चरणसेवा कर रहे थे। श्रीमदनगोपालके चरणोंमें मैंने जब आज्ञा माँगी, तब प्रभुके गलेसे एक पुष्पमाला खुलकर नीचे गिर गयी। यह देखकर सभीने हरिध्वनि की और पुजारी गोसाईंदासने वह माला मेरे गलेमें डाल दी॥ 74-76॥

आज्ञा-माला लाभसे ही इस ग्रन्थ-लेखनमें प्रवृत्ति :—

आज्ञामाला पाञा आमार हइल आनन्द।
ताहाइ करिनु एइ ग्रन्थेर आरम्भ॥ 77॥

अनुवाद—आज्ञामाला पाकर मुझे बहुत आनन्द हुआ, इसलिये मैंने यह ग्रन्थ आरम्भ किया॥ 77॥

ग्रन्थरचनामें श्रीमदनमोहनकी ही
सम्पूर्ण क्रिया या प्रेरणा :—

एइ ग्रन्थ लेखाय मोरे 'मदनमोहन'।
आमार लिखन येन शुकेर पठन॥ 78॥
सेइ लिखि, मदनगोपाल मोरे ये लिखाय।
काष्ठेर पुत्तली येन कुहके नाचाय॥ 79॥

अनुवाद—श्रीमदनमोहन ही मुझसे यह ग्रन्थ लिखवा रहे हैं। मेरा लिखना शुक (तोते) के पाठ करनेके समान है (शुकको जो पढ़ाया जाता है, वह वही बोलता है)। जैसे काठकी पुतलीको मदारी नचाता है, वैसे ही श्रीमदनगोपाल जो मुझसे लिखवा रहे हैं, मैं वही लिख रहा हूँ॥ 78-79॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीमदनगोपालकी प्रेरणासे मैंने

श्रीचैतन्यचरितामृत लिखा है, इसलिये इसमें शुक पक्षीके पाठकी भाँति मेरी कोई महिमा नहीं है॥ 78॥

इति अमृतप्रवाह भाष्ये अष्टम परिच्छेदः।
आठवें अध्यायका अमृतप्रवाह भाष्य पूर्ण हुआ।

कुलाधिदेवता मोर—मदनमोहन।
याँर सेवक—रघुनाथ, रूप, सनातन॥ 80॥

अनुवाद—श्रीरूप, श्रीसनातन और श्रीरघुनाथ जिनके सेवक हैं, वही श्रीमदनमोहन मेरे कुलाधिदेवता हैं॥ 80॥

ग्रन्थकारकी श्रीवृन्दावनदास ठाकुरके प्रति
वैष्णवोचित गुरुबुद्धि और प्रणति :—

वृन्दावन-दासेर पादपद्म करि' ध्यान।
ताँर आज्ञा लञा लिखि याहाते कल्याण॥ 81॥
चैतन्यलीलाते 'व्यास'—वृन्दावन-दास।
ताँर कृपा बिना अन्ये ना हय प्रकाश॥ 82॥

अनुवाद—श्रीवृन्दावनदास ठाकुरके चरणकमलोंका ध्यान करते हुए उनसे आज्ञा लेकर मैं यह ग्रन्थ लिख रहा हूँ, जिससे सभीका कल्याण होगा। श्रीचैतन्यलीलाके 'व्यास' श्रीवृन्दावनदास ठाकुर हैं, इसलिये उनकी कृपाके बिना किसीके भी हृदयमें श्रीचैतन्यलीलाकी स्फूर्ति नहीं हो सकती॥ 81-82॥

ग्रन्थकारकी दैन्योक्ति :—

मूर्ख, नीच, क्षुद्र मुञि विषय-लालस।
वैष्णवाज्ञा-बले करि एतेक साहस॥ 83॥
श्रीरूप-रघुनाथ-चरणेर एइ बल।
याँर स्मृते सिद्ध हय वाञ्छितसकल॥ 84॥

अनुवाद—मैं मूर्ख, नीच, अति क्षुद्र और विषयोंका लोभी हूँ। केवल वैष्णवोंकी आज्ञाके बलपर मैं (यह ग्रन्थ लिखनेका) साहस कर रहा हूँ। श्रीरूप-रघुनाथके चरणोंमें इतना बल है कि केवल उनके स्मरणमात्रसे समस्त कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं॥ 83-84॥

श्रीरूप-रघुनाथ-पदे यार आश।
चैतन्यचरितामृत कहे कृष्णदास॥ 85॥

अनुवाद—श्रीरूप-रघुनाथ गोस्वामीके चरणकमलोंकी कृपाभिलाषा करते हुए कृष्णदास इस श्रीचैतन्यचरितामृतका वर्णन कर रहा है॥ 85॥

इति श्रीचैतन्यचरितामृते आदिखण्डे ग्रन्थकरणे
वैष्णवाज्ञारूपकथनं नामाष्टम-परिच्छेदः।

श्रीचैतन्यचरितामृतके आदिखण्डके 'ग्रन्थ रचनार्थ वैष्णवोंकी आज्ञा' नामक आठवें अध्यायका अनुवाद समाप्त।

नवाँ अध्याय

चित्र 2

नवाँ अध्याय

नवें अध्यायका सार—इस अध्यायमें भक्तिको एक वृक्षके रूपमें वर्णन करके एक रहस्यको प्रकट किया गया है कि मूलवृक्ष विश्वम्भर-श्रीगौराङ्ग महाप्रभु ही भक्तिवृक्षके माली और उसके फलके दाता एवं भोक्ताके रूपमें भी हैं। श्रीनवद्वीपधाममें यह फलवृक्ष रोपित हुआ और उसके पश्चात् पुरुषोत्तम, वृन्दावनादि अन्य स्थानोंमें ऐसे प्रेमफलके उद्यानोंकी वृद्धि हुई। श्रीमाधवेन्द्रपुरी इस वृक्षके प्रथम अङ्कुर हैं और उनके शिष्य श्रीईश्वरपुरीने इस अङ्कुरको पुष्ट किया। महाप्रभु श्रीचैतन्यदेव माली होकर अपनी अचिन्त्य-शक्तिके बलसे इस वृक्षके स्कन्ध भी हैं। श्रीपरमानन्दपुरी आदि नौ संन्यासी इस वृक्षके मूल हैं। मूल-स्कन्धके ऊपर श्रीअद्वैताचार्य एवं श्रीनित्यानन्दरूप और भी दो स्कन्ध हुए। इन दो स्कन्धोंसे अनेक प्रकारकी शाखाएँ-उपशाखाएँ निकलीं, जिन्होंने सम्पूर्ण जगत्को आवृत कर लिया। इस वृक्षके प्रेमफलको सर्वत्र सभीको ही दान किया है। इस प्रकार भक्तिवृक्षको रोपण करके उसके फलास्वादनके द्वारा जगत्को आनन्दमें डुबो दिया। यह वर्णन एक रूपक है। (अमृतप्रवाह भाष्य)

श्रीगौर-कृपासे असम्भव भी सम्भव :—

तं श्रीमत्कृष्णचैतन्यदेवं वन्दे जगद्गुरुम्।
यस्यानुकम्पया श्वापि महाब्धिं सन्तरेत् सुखम्॥1॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है॥1॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जिनकी कृपा प्राप्त करके एक कुक्कुर (कुत्ता) भी महासागरको पार करनेमें समर्थ हो जाता है, उन जगद्गुरु श्रीकृष्णचैतन्यदेवकी मैं वन्दना करता हूँ॥1॥

अनुभाष्य—*यस्य (चैतन्यदेवस्य) अनुकम्पया (प्रसादेन) श्वा (कुक्कुरः) अपि महाब्धिं (महासमुद्रं) सुखं सन्तरेत् (सन्तरणेन तत्पारं गच्छेत्), तं जगद्गुरुं (सर्वजगतां गुरुं पूज्यं) श्रीकृष्णचैतन्यदेवम् [अहं] वन्दे।*

श्लोक भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है॥1॥

जय जय श्रीकृष्णचैतन्य गौरचन्द्र।
जय जयाद्वैत जय जय नित्यानन्द॥2॥

अनुवाद—श्रीकृष्णचैतन्य गौरचन्द्रकी जय हो, जय हो। श्रीनित्यानन्द प्रभु और श्रीअद्वैतचार्यकी जय हो, जय हो॥2॥

जय जय श्रीवासादि गौरभक्तगण।
सर्वाभीष्ट-पूर्त्ति हेतु याँहार स्मरण॥3॥

अनुवाद—श्रीवासादि गौरभक्तोंकी जय हो, जय हो, जिनके स्मरणसे समस्त कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं॥3॥

श्रीरूप, सनातन, भट्ट-रघुनाथ।
श्रीजीव, गोपालभट्ट, दास-रघुनाथ॥4॥
एसब-प्रसादे लिखि चैतन्य-लीलागुण।
जानि वा ना जानि, करि आपन-शोधन॥5॥

अनुवाद-श्रीरूप, श्रीसनातन, श्रीरघुनाथभट्ट, श्रीजीव, श्रीगोपालभट्ट और श्रीरघुनाथदास गोस्वामी—इन सबकी कृपासे मैं श्रीचैतन्य महाप्रभुकी लीलाओं और गुणोंको लिख रहा हूँ। मैं इन्हें जानता हूँ अथवा नहीं जानता हूँ, तो भी अपने चित्तकी शुद्धिके लिये मैं इन्हें लिख रहा हूँ॥4-5॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'आपन शोधन'—अपने शुद्धिकरणके लिये॥5॥

महाप्रभु स्वयं 'माली' :—

मालाकारः स्वयं कृष्ण-प्रेमामरतरुः स्वयम्।
दाता भोक्ता तत्फलानां यस्तं चैतन्यमाश्रये॥6॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है॥6॥

अमृतप्रवाह भाष्य-श्रीचैतन्य स्वयं ही प्रेमरूप-कल्पवृक्ष और स्वयं ही उसके माली हैं। जो उस वृक्षके फलोंके दाता और भोक्ता हैं, उन श्रीकृष्णचैतन्यका मैं आश्रय ग्रहण करता हूँ॥6॥

अनुभाष्य— यः (चैतन्यदेवः) स्वयं मालाकारः (उद्यानरक्षकः) स्वयं कृष्णप्रेमामरतरुः (कृष्णस्य प्रेमैव अमरतरुः अविनाशी वृक्षः) तत्फलानां (कल्पवृक्षस्य प्रेमफलानां) दाता, भोक्ता च, [स्वयं एव] तं चैतन्यम् [अहम्] आश्रये (प्रपद्ये)।

श्लोक भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है॥6॥

माली होनेका कारण—अभिधेय-अधिदेवता होनेकी सार्थकता :—

प्रभु कहे, आमि 'विश्वम्भर' नाम धरि।
नाम सार्थक हय, यदि प्रेमे विश्व भरि॥7॥

अनुवाद—श्रीचैतन्य महाप्रभुने विचार किया कि मेरा नाम 'विश्वम्भर' (विश्वका पालन करनेवाला) है। यदि मैं कृष्णप्रेमसे सम्पूर्ण विश्वको भर दूँ, तभी मेरा यह नाम सार्थक होगा॥7॥

नवद्वीपमें भक्तिफलके उद्यानकी रचना :—

एत चिन्ति' लैला प्रभु मालाकार-धर्म।
नवद्वीपे आरम्भिला फलोद्यान-कर्म॥8॥
श्रीचैतन्य मालाकार पृथिवीते आनि'।
भक्ति-कल्पतरु रोपिला सिञ्चि' इच्छा-पानि॥9॥

अनुवाद—ऐसा विचार करके महाप्रभुने माली बनकर नवद्वीपमें फलका उद्यान लगाना आरम्भ किया। श्रीचैतन्य मालीने भक्ति-कल्पवृक्षको पृथ्वीपर लाकर रोपण किया और इच्छारूपी जलके द्वारा उसका सिञ्चन किया॥8-9॥

उसके प्रथम अङ्कुर—श्रीमाधवेन्द्रपुरी :—

जय श्रीमाधवपुरी कृष्णप्रेमपूर।
भक्तिकल्पतरुर तेँहो प्रथम अङ्कुर॥10॥

अनुवाद—श्रीमाधवेन्द्रपुरीकी जय हो, जिनका हृदय कृष्णप्रेमसे परिपूर्ण है। वे भक्ति-कल्पवृक्षके प्रथम अङ्कुर हैं॥10॥

अमृतप्रवाह भाष्य— 'श्रीमाधवपुरी'—इनका नाम श्रीमाधवेन्द्रपुरी है। ये श्रीमध्वाचार्य सम्प्रदायमें एक प्रसिद्ध संन्यासी थे। श्रीचैतन्यदेव इनके अनुशिष्य (शिष्यके शिष्य) थे। इनसे पहले श्रीमध्व-सम्प्रदायमें प्रेमभक्तिका कोई लक्षण नहीं था। इनके द्वारा रचित "अयि दयार्द्रनाथ' श्लोकमें श्रीमन्महाप्रभुके द्वारा शिक्षित तत्त्व बीजरूपमें था॥10॥

अमृतानुकणिका—श्रीमाधवेन्द्र पुरी श्रीमध्व गौड़ीय सम्प्रदायके द्वारा सेवित भक्ति कल्पतरुके प्रथम अङ्कुर हैं। इनसे पूर्व श्रीमध्व सम्प्रदायमें शृङ्गार रसात्मिका भक्तिका कोई भी लक्षण नहीं देखा जाता। श्रीमाधवेन्द्रपुरीकी महिमा श्रीचैतन्यभागवत और श्रीभक्तिरत्नाकर ग्रन्थमें वर्णित हुई है। श्रीभक्तिरत्नाकर पाँचवीं तरङ्ग—

"माधवेन्द्रपुरी प्रेमभक्तिरसमय।
याँर नामस्मरणे सकल सिद्धि हय॥2272॥"

"श्रीमाधवेन्द्रपुरी प्रेमभक्तिके रसस्वरूप हैं, जिनके नाम स्मरण मात्रसे ही सब सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं।" चैःभाः आदिखण्ड नौवाँ अध्याय—

"माधवेन्द्र-कथा अति अद्भुत-कथन।
मेघ देखिलेइ मात्र हय अचेतन॥175॥
अहर्निश कृष्णप्रेम मद्यपेर प्राय।
हासे, कान्दे, है है करे हाय हाय॥176॥"

"श्रीमाधवेन्द्रपुरीकी ऐसी अद्भुत कथा है कि मेघ देखने मात्रसे ही नवजलधर मेघ कान्तिवाले श्रीकृष्णकी उद्दीपना होनेपर वे उसी समय अचेतन हो जाते। वे रात-दिन श्रीकृष्णप्रेममें मदिरापान करनेवालेके भाँति कभी हँसते, कभी रोते और कभी उल्लसित होकर 'है है' करते तथा कभी दुःखी होकर 'हाय हाय' करते॥"

चैःभाः आदिखण्डके नौवें अध्यायमें श्रीमाधवेन्द्र पुरीके साथ श्रीनित्यानन्द प्रभुके मिलनका प्रसङ्ग वर्णित है।

"एइमत नित्यानन्दप्रभुर भ्रमण।
दैवे माधवेन्द्र-सह हैल दरशन॥ 154॥
माधवेन्द्रपुरी प्रेममय कलेवर।
प्रेममय यत सब सङ्गे अनुचर॥ 155॥
कृष्णरस बिनु आर नाहिक आहार।
माधवेन्द्रपुरी-देहे कृष्णेर विहार॥ 156॥
याँर शिष्य प्रभु आचार्यवर-गोसाञि।
कि कहिब आर ताँर प्रेमेर बड़ाइ॥ 157॥
माधवपुरीरे देखिलेन नित्यानन्द।
तत्क्षणे प्रेम मूर्च्छा हइला निष्पन्द॥ 158॥
नित्यानन्द देखि' मात्र श्रीमाधवपुरी।
पड़िला मूर्च्छित हइ' आपना' पासरि'॥ 159॥
भक्तिरसे माधवेन्द्र आदि-सूत्रधार।
गौरचन्द्र इहा कहियाछेन बारे-बार॥"160॥

"इस प्रकार भ्रमण करते-करते श्रीनित्यानन्द प्रभुको दैवयोगसे श्रीमाधवेन्द्रपुरीके दर्शन हुए। श्रीमाधवेन्द्र पुरीका शरीर प्रेममय था और उनके सङ्गी-अनुचर जितने भी थे, सभी प्रेममें मत्त थे। कृष्णरस ही उनका आहार था। उनके दिव्य कलेवरको देखकर ऐसा अनुभव होता था कि वह श्रीकृष्णकी विहार-स्थली है। और उनकी अधिक बड़ाई क्या करें कि स्वयं श्रीअद्वैताचार्य उनके शिष्य थे। जैसे ही श्रीनित्यानन्द प्रभुने श्रीमाधवेन्द्रपुरीको देखा, उसी क्षण वे प्रेममें मूर्च्छित हो गये। श्रीनित्यानन्द प्रभुको देखकर श्रीमाधवेन्द्रपुरी भी स्वयंको भूलकर उसी क्षण मूर्च्छित होकर भूमिपर गिर पड़े। श्रीमाधवेन्द्रपुरी भक्तिरसके आदि सूत्रधार हैं, ऐसा श्रीगौरचन्द्रने बार-बार कहा है।"

"नित्यानन्द बोले,—"यत तीर्थ करिलाङ।
सम्यक् ताहार फल आजि पाइलाङ॥ 166॥
नयने देखिनु माधवेन्द्रेर चरण।
ए प्रेम देखिया धन्य हइल जीवन॥"167॥

"मूर्च्छा भङ्ग होनेपर श्रीनित्यानन्द प्रभु कहने लगे—"मैंने जितने तीर्थोंमें भ्रमण किया है, आज उन सबका सम्पूर्ण फल पाया है। मैंने अपने नेत्रोंसे श्रीमाधवेन्द्रपुरीके चरणोंके दर्शन किये हैं और इनके प्रेमको देखकर मेरा जीवन धन्य हो गया है।"

"माधवेन्द्रपुरी नित्यानन्दे करि' कोले।
उत्तर ना स्फुरे,—कण्ठरुद्ध प्रेमजले॥ 168॥
हेन प्रीत हइलेन माधवेन्द्रपुरी।
वक्ष हैते नित्यानन्दे बाहिर ना करि॥ 169॥
जानिलुँ कृष्णेर कृपा आछे मोर प्रति।
नित्यानन्द-हेन बन्धु पाइनु संहति॥ 183॥
नित्यानन्दे याहार तिलेक द्वेष रहे।
भक्त हइलेओं से कृष्णेर प्रिय नहे॥ 186॥"

"श्रीमाधवेन्द्रपुरी श्रीनित्यानन्द प्रभुको छातीसे लगाकर उनसे कुछ कहना चाहते थे, किन्तु प्रेमके कारण उनका गला रुँद्ध गया। उनके हृदयमें इतना प्रेम उमड़ आया कि वे श्रीनित्यानन्द प्रभुको छातीसे अलग नहीं कर सके और कहने लगे कि आज मैं समझ गया हूँ कि श्रीकृष्णकी मेरे प्रति अपार कृपा है, इसलिये तो उन्होंने श्रीनित्यानन्द जैसे परम बन्धुसे मुझे मिला दिया है। श्रीनित्यानन्द प्रभुके प्रति यदि किसीके हृदयमें तिलमात्र भी द्वेष रहेगा, वह भक्त होनेपर भी श्रीकृष्णका प्यारा नहीं हो सकता।"

भक्तिरत्नाकर पाँचवीं तरङ्गमें उन दोनोंके पुनः मिलन और उनके परस्पर सम्बन्धका वर्णन है—

"कथोदिन परे माधवेन्द्रर सहिते।
देखा हैल प्रतीची-तीर्थेर समीपेते॥ 2330॥
ये प्रेम प्रकाश हइल दोँहार मिलने।
ताहा के वर्णिब?—ये देखिल सेइ जाने॥ 2331॥
नित्यानन्दे बन्धुज्ञान करे माधवेन्द्र।
माधवेन्द्रे गुरुबुद्धि करे नित्यानन्द॥ 2332॥"

"पुनः कितने दिनोंके बाद प्रतीची-तीर्थके समीप श्रीमाधवेन्द्रपुरी और श्रीनित्यानन्द प्रभु परस्पर मिले, उन दोनोंके मिलनेपर जिस प्रेमका प्रकाश हुआ उसे कौन वर्णन कर सकेगा? इसे तो वही जान सकता है जिसने उस दृश्यको देखा है। श्रीमाधवेन्द्रपुरी श्रीनित्यानन्द प्रभुको अपना परम बन्धु समझते थे और श्रीनित्यानन्द प्रभु श्रीमाधवेन्द्रपुरीके प्रति गुरु बुद्धि रखते थे।"

श्रीमाधवेन्द्रपुरीके लिये श्रीगोपीनाथके द्वारा क्षीर चुरानेका प्रसङ्ग चैःचः मध्यलीला चौथे अध्यायमें तथा

अपने शिष्य रामचन्द्रपुरीपर गुरु-अवज्ञाके कारण क्रोध प्रकाश एवं त्याग तथा अन्य शिष्य श्रीईश्वरपुरीकी सेवा देखकर कृपाशीर्वादके प्रसङ्ग चैःचः अन्त्यलीलाके आठवें अध्यायमें द्रष्टव्य हैं॥10॥

ईश्वरपुरीमें उसकी वृद्धि प्राप्ति :—

श्रीईश्वरपुरी-रूपे अङ्कुर पुष्ट हैल।
आपने चैतन्यमाली स्कन्ध उपजिल॥11॥

अनुवाद—श्रीईश्वरीपुरीरूपमें यह अङ्कुर पुष्ट हुआ और स्वयं चैतन्यमाली इस वृक्षके तनेके रूपमें प्रकट हुए॥11॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीईश्वरीपुरी श्रीचैतन्य महाप्रभुके दीक्षामन्त्र गुरु थे। इनका जन्म कुमारहट्टमें अर्थात् हालिसहर गाँवमें एक ब्राह्मण कुलमें हुआ था और ये श्रीमाधवेन्द्रपुरीके शिष्य थे॥11॥

अनुभाष्य—श्रीईश्वरपुरी कुमारहट्टमें ब्राह्मणकुलमें उत्पन्न हुए थे और ये श्रीमाधवेन्द्रपुरीके प्रियतम शिष्य थे। चैःचः अन्त्यलीलाके 8/26-29 संख्यामें—

"ईश्वरपुरी करे श्रीपदसेवन।
स्वहस्ते करेन मल-मूत्रादि मार्जन॥
निरन्तर कृष्णनाम कराय स्मरण।
कृष्णनाम, कृष्णलीला शुनाय अनुक्षण॥
तुष्ट हञा पुरी ताँरे कैल आलिङ्गन।
वर दिल कृष्णे तोमार हउक् प्रेमधन॥
सेइ हैते ईश्वरपुरी प्रेमेर सागर।"

"श्रीईश्वरपुरी श्रीमाधवेन्द्रपुरीके चरणोंकी सेवा करते थे। (श्रीमाधवेन्द्रपुरी जब वृद्धावस्थाके कारण चलने-फिरनेमें असमर्थ हो गये थे, तब) वे अपने हाथोंसे उनके मल-मूत्रका मार्जन करते थे। वे निरन्तर श्रीकृष्णनाम तथा श्रीकृष्णलीलाका कीर्तन करते और श्रीमाधवेन्द्रपुरीको सुनाते थे। उनकी सेवासे सन्तुष्ट होकर श्रीमाधवेन्द्रपुरीने उनका आलिङ्गन किया और उन्हें वर दिया कि श्रीकृष्ण उनके प्रेमधन हों। उस आशीर्वादके फलस्वरूप श्रीईश्वरपुरी 'प्रेमके सागर' हो गये।"

श्रीईश्वरपुरी महाप्रभुको गयामें दशाक्षर-मन्त्र दीक्षा देनेसे पूर्व एक बार नवद्वीप आये थे और श्रीगोपीनाथाचार्यके घर कुछ मास रहे। उस समय उनका महाप्रभुसे कई बार वार्तालाप हुआ और उन्होंने महाप्रभुको स्वरचित 'कृष्णलीलामृत' ग्रन्थका श्रवण कराया। (चैःभाः आदिखण्ड सातवाँ अध्याय द्रष्टव्य है)।

महाप्रभु जब श्रीईश्वरपुरीके जन्मस्थान कुमारहट्टके दर्शन करने आये, तो जीवोंको गुरुभक्तिकी शिक्षा देनेके लिये उन्होंने इस लीलाका प्रदर्शन किया था—

"सेइ स्थानेर मृत्तिका आपने प्रभु तुलि'।
लइलेन बहिर्वासे बान्धि' एक झुलि॥"

—(चैःभाः आदिखण्ड, 12वाँ अः)

"उन्होंने उस स्थानसे मिट्टी लेकर उसे अपने बहिर्वास वस्त्रमें बाँध लिया। उस समयसे जो श्रीईश्वरपुरीके स्थानके दर्शनके लिये आते हैं, वे सभी वहाँसे कुछ मिट्टी अपने साथ ले जाते हैं॥"11॥

अचिन्त्यशक्तिके प्रभावसे माली होकर भी स्वयं स्कन्ध और सब शाखाओंके आश्रय :—

निजाचिन्त्यशक्त्ये माली हञा स्कन्ध हय।
सकल शाखार सेइ स्कन्ध मूलाश्रय॥12॥

अनुवाद—श्रीचैतन्य महाप्रभु अपनी अचिन्त्य शक्तिके प्रभावसे माली होते हुए भी उस वृक्षका तना भी बने। यह तना सभी शाखाओंका मूल आश्रय है॥12॥

नौ संन्यासी—नौ जड़ें :—

परमानन्द पुरी, आर केशव भारती।
ब्रह्मानन्द पुरी, आर ब्रह्मानन्द भारती॥13॥
विष्णु पुरी, केशव पुरी, पुरी कृष्णानन्द।
श्रीनृसिंह तीर्थ, आर पुरी सुखानन्द॥14॥
एइ नव मूल निकसिल वृक्षमूले।
एइ नव मूले वृक्ष करिल निश्चले॥15॥

अनुवाद—परमानन्द पुरी, केशव भारती, ब्रह्मानन्द

पुरी, ब्रह्मानन्द भारती, विष्णु पुरी, केशव पुरी, कृष्णानन्द पुरी, श्रीनृसिंहतीर्थ और सुखानन्द पुरी—ये नौ जड़ें वृक्षके मूलसे निकलीं, जिन्होंने वृक्षको स्थिर किया॥ 13–15॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'पुरी' नामके ये सभी संन्यासी श्रीईश्वरपुरीके सम्बन्धसे और 'भारती' नामके ये संन्यासी श्रीचैतन्य महाप्रभुके संन्यास गुरु श्रीकेशव भारतीके सम्बन्धसे आत्मीयवर्ग हैं॥ 14॥

अनुभाष्य—श्रीपरमानन्दपुरी त्रिहुत नामक देशमें ब्राह्मण कुलमें आविर्भूत हुए और वे श्रीमाधवेन्द्र पुरीके शिष्य तथा श्रीचैतन्य महाप्रभुके परम प्रियपात्र थे। (चै:भा: अन्त्यखण्ड 10/46–49, 42) में—

"संन्यासीर मध्ये ईश्वरेर प्रियपात्र।
आर नाहि, एक पुरी गोसाञि से मात्र॥ 46॥
दामोदरस्वरूप, परमानन्द-पुरी।
संन्यासीपार्षदे एइ दुइ अधिकारी॥ 47॥
निरवधि निकटे थाकेन दुईजन।
प्रभुर संन्यासे करे दण्डेर ग्रहण॥ 48॥
पुरी ध्यानपर, दामोदरेर कीर्त्तन।
न्यासी-रूपे न्यासी-देहे बाहु दुइ जन॥ 49॥
यत प्रीति ईश्वरेर पुरी-गोसाञिरे।
दामोदर-स्वरूपेरेओ तत प्रीति करे॥ 42॥"

"दामोदर-स्वरूप संन्यासियोंमें से महाप्रभुके प्रियपात्र थे। एक परमानन्दपुरीके अतिरिक्त उनके समान और कोई न था। संन्यासी पार्षदोंमें दामोदर-स्वरूप और परमानन्दपुरी—ये दोनों अधिकारी थे। दोनों निरन्तर महाप्रभुके पास ही रहते थे। महाप्रभुके संन्यासके पश्चात् इन्होंने दण्ड ग्रहण किया। परमानन्दपुरी विरक्त ध्यानपरायण भजनमें अनुरक्त रहते थे और दामोदर स्वरूप कीर्तनानन्दी थे। भगवान् श्रीगौरसुन्दरके संन्यासी शरीरमें ये दोनों भुजा सदृश थे। श्रीपरमानन्दपुरीके प्रति भगवान् श्रीगौरसुन्दरका जिस प्रकारका मर्यादाभाव था, दामोदर स्वरूपके प्रति भी वह भाव किसी भी प्रकारसे न्यून नहीं था।"

श्रीपरमानन्दपुरीका दर्शनकर महाप्रभु कहने लगे—(चै:भा: अन्त्यखण्ड 3रा अध्याय संख्या 171–172, 175)—

"आजि धन्य लोचन, सफल आजि जन्म।
सफल आमार आजि हैल सर्वधर्म॥"171॥
प्रभु बले,—"आजि मोर सफल संन्यास।
आजि माधवेन्द्र मोरे हइल प्रकाश॥"172॥
कत क्षणे अन्योऽन्ये करेन परणाम।
परमानन्दपुरी—चैतन्येर प्रेम-धाम॥"

"हरि हरि! नेत्रोंसे परमानन्दपुरीके दर्शनकर आज मेरे नेत्र धन्य हो गये, आज जन्म सफल हो गया, धन्य हो गया। आज मेरे सभी धर्म सफल हो गये।" महाप्रभुने आगे कहा—"आज मेरा संन्यास सफल हुआ है। आज श्रीमाधवेन्द्रपुरीका प्रकाश मेरे सामने प्रकट हुआ है।" कुछ क्षणों पश्चात् दोनोंने एक दूसरेको प्रणाम किया। श्रीपरमानन्दपुरी चैतन्य-प्रेमके धाम हैं।

श्रीपरमानन्दपुरी पुरुषोत्तम क्षेत्रमें श्रीमन्दिरके पश्चिम दिशाकी ओर एक मठका और एक कुँआ निर्माणकर रहते थे। कुँएका जल पवित्र न देख महाप्रभुने कहा—(चै:भा: अन्त्यखण्ड 3रा अध्याय)—

"महाप्रभु जगन्नाथ मोरे देह एइ वर।
गङ्गा प्रवेशुक एई कूपेर भितर॥"242॥
प्रभु बले,—"शुनह सब भक्तगण।
ए कूपेर जले ये करिबे स्नान पान॥ 251॥
सत्य सत्य हबे तार गङ्गास्नान-फल।
कृष्णे भक्ति हबे तार परम निर्मल॥"252॥
प्रभु बले,—"आमि ये आछिये पृथिवीते।
निश्चयइ जानिह पुरी-गोसाञिर प्रीते॥"255॥

श्रीचैतन्य महाप्रभु भुजाएँ उठाकर कहने लगे,—"जगन्नाथ महाप्रभु, मुझे यह वर दीजिये कि गङ्गा इस कुँएके भीतर प्रविष्ट हो जाय।" तब श्रीचैतन्य महाप्रभु कहने लगे,—"सभी भक्तों सुनो! इस कुँएके जलमें जो स्नान करेगा और जो इसका जल पान करेगा, उसे सत्य ही गङ्गा-स्नानका फल मिलेगा और परम निर्मल कृष्णभक्तिकी प्राप्ति होगी।" आगे श्रीचैतन्य महाप्रभुने कहा,—"केवल

पुरी गोसाईंकी प्रीतिके कारण ही मैं पृथ्वीपर आया हूँ, यह निश्चय ही जानना।"

श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका (118 श्लोक) में इस प्रकार वर्णन आता है—

"पुरी श्रीपरमानन्दो य आसीदुद्धवः पुरा।"

"पहले जो उद्धव थे, वे ही अब श्रीगौरलीलामें श्रीपरमानन्द पुरी हैं।"

केशवभारती—श्रीशङ्कर-प्रवर्त्तित दशनामी दण्डिगणोंके अन्यतम 'भारती' सम्प्रदायके अन्तर्भुक्त हैं। सरस्वती, पुरी और भारती—ये तीन सम्प्रदाय दक्षिणापथके शृंगेरी मठके अधीन हैं। श्रीकेशवभारती उस समय काटोयाके शाखा मठमें अधिष्ठित थे। किसी-किसीका यह कहना है कि ये ब्रह्म संन्यासी होनेपर भी श्रीमाध्व-सम्प्रदायके अन्तर्भुक्त श्रीमाधवेन्द्रपुरीके मन्त्र-शिष्य और वैष्णव संन्यासी थे। वर्द्धमान जिलाके कान्दरा डाकघरके अन्तर्गत खाटुन्दि गाँवमें इनकी देवसेवा और मठ स्थापित हैं। मठाधिकारियोंके मतानुसार वे सब श्रीकेशवभारतीके वंशज हैं। श्रीकेशवके पुत्र (अन्य मतानुसार शिष्य)—निशापति और ऊषापति हैं। [श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुरके द्वारा यह टीका लिखे जानेके समय] निशापतिके वंशमें श्रीनकड़िचन्द्र विद्यारत्न सेवाधिकारीके रूपमें वर्त्तमान थे और ऊषापतिके वंशज हुगलीके वैंचिके निकट राखालदासपुरमें विद्यमान थे। किसी अन्यके मतानुसार ये (निशापति और ऊषापति) श्रीकेशव भारतीके पूर्वाश्रमके वंशज भी हो सकते हैं। किसी अन्यके मतानुसार, श्रीकेशवभारतीके भ्राता, मतान्तरसे उनके शिष्य माधव भारतीके शिष्य बलभद्र भी भारती थे। बलभद्रके पूर्वाश्रमके दो पुत्र मदन और गोपाल थे, मदन आउरियामें और गोपाल देन्दुड़में वास करते थे। मदनके वंशमें 'भारती' और गोपालके वंशमें 'ब्रह्मचारी' उपाधि हैं। इन दोनों वंशोंके अनेक उत्तराधिकारी विद्यमान हैं। श्रीगौरगणोद्देश दीपिकाके 52 श्लोकमें इस प्रकार वर्णन आता है—

"मथुरायां यज्ञसूत्रं पुरा कृष्णाय यो मुनिः।
ददौ सान्दीपनिः सोऽभूत अद्य केशवभारती॥"

"पूर्वकालमें मथुरामें श्रीकृष्णका यज्ञोपवीत संस्कार करानेवाले श्रीसान्दीपनि मुनि अब श्रीगौरलीलामें श्रीकेशव भारती हैं।" श्रीगौरगणोद्देश-दीपिकाका 117 श्लोक—

"इति केचित् प्रभाषन्तेऽक्रूरः केशवभारती॥"

"कोई-कोई श्रीकेशव भारतीको अक्रूरका अवतार भी कहते हैं।" 1432 शकाब्दमें कटोयामें इन्होंने निमाइ पण्डितको संन्यास प्रदान किया। वैष्णवमञ्जुषा—द्वितीय संख्या द्रष्टव्य है।

श्रीब्रह्मानन्दपुरी—श्रीमहाप्रभुकी नवद्वीपलीलामें ये कीर्तनके सङ्गी थे। संन्यास ग्रहण करनेसे पहले भी और संन्यासके बाद भी महाप्रभु उनपर विशेष विश्वास करते थे। नीलाचलमें भी ये महाप्रभुके सङ्गी होकर आये थे।

श्रीब्रह्मानन्द भारती—जब वे नीलाचलमें महाप्रभुके दर्शनके लिये गये, तब उनका नीचेका वस्त्र मृगके चमड़ेसे निर्मित था। यद्यपि वे महाप्रभुके निकट थे, तो भी महाप्रभु छल करते हुए कहने लगे कि मैं ब्रह्मानन्द भारतीको देखना चाहता हूँ। यह सुनकर अर्थात् महाप्रभुके अभिप्रायको जानकर श्रीब्रह्मानन्दने चमड़ेके वस्त्र परित्यागकर काषाय-बहिर्वासको ग्रहण किया। इन्होंने महाप्रभुके निकट फिर कुछ दिनों तक नीलाचलमें वास किया॥ 13॥

केशवपुरी, कृष्णानन्दपुरी, नृसिंहतीर्थ और सुखानन्दपुरीके सम्बन्धमें श्रीगौरगणोद्देश दीपिकामें (97-101 श्लोक) इस प्रकार वर्णन आता है—

"अनन्तश्च सुखानन्दो गोविन्दो रघुनाथकः।
कृष्णानन्दः केशवश्च श्रीदामोदर-राघवौ।
पुर्युपाधिक्रमात् ज्ञेया अणिमाद्यष्टसिद्धयः॥ 97॥
जायन्तेयाः स्थिता ऊर्ध्वरेतसः समदर्शिनः।
नव भागवताः पूर्वं श्रीभागवतसंहिताः॥ 98॥
प्रत्यूचुर्जनकं तेऽद्य भूत्वा संन्यासिनः सदा।
प्रभुणा गौरहरिणा विहरन्ति स्म ते यथा॥ 99॥

श्रीनृसिंहानन्दतीर्थः श्रीसत्यानन्दभारती।
श्रीनृसिंह-चिदानन्द-जगन्नाथा हि तीर्थकाः॥ 100॥
तीर्थाभिधो वासुदेवः श्रीरामः पुरुषोत्तमः।
गरुड़ाख्यावधूतश्च श्रीगोपेन्द्राख्य आश्रमः॥ 101॥

"पूर्वकालमें श्रीवृन्दावनमें जो अणिमा आदि अष्टसिद्धियाँ थीं, उन्होंने गौड़देशमें आठ भक्तोंके रूपमें जन्म ग्रहण किया है। क्रमसे उन आठोंके नाम इस प्रकार हैं—अनन्त, सुखानन्द, गोविन्द, रघुनाथ, कृष्णानन्द, केशव, दामोदर और राघव। ये आठों 'पुरी' उपाधिसे युक्त थे। पूर्वकालमें राजा जनकको श्रीभागवत संहिताका श्रवण करानेवाले जयन्तीके ऊर्ध्वरेताः अर्थात् ब्रह्मचर्यमें प्रतिष्ठित, समदर्शी एवं भगवद्भक्त नौ-के-नौ पुत्र ही अब संन्यासी होकर सदैव महाप्रभु श्रीगौरहरिके साथ विहार कर रहे हैं। अब उनके नाम श्रीनृसिंहानन्द तीर्थ, श्रीसत्यानन्द भारती, श्रीनृसिंह तीर्थ, श्रीचिदानन्द तीर्थ, श्रीजगन्नाथ तीर्थ, श्रीवासुदेव तीर्थ, श्रीराम तीर्थ, श्रीगरुड़ अवधूतके नामसे भी प्रसिद्ध श्रीपुरुषोत्तम तीर्थ तथा श्रीगोपेन्द्र आश्रम हैं॥ 14॥

परमानन्दपुरी मध्यमूल :—

मध्यमूल परमानन्द पुरी महाधीर।
एइ नव मूले वृक्ष करिल सुस्थिर॥ 16॥

अनुवाद—जिन नौ जड़ोंने वृक्षको स्थिर किया है, महाधीर श्रीपरमानन्दपुरी उसकी मध्य जड़ हैं॥ 16॥

उनके द्वारा असंख्य शाखा और उपशाखा :—

स्कन्धेर उपरे बहु शाखा निकसिल।
उपरि उपरि शाखा असंख्य हइल॥ 17॥

विश विश शाखा करि' एक एक मण्डल।
महा-महा-शाखा छाइल ब्रह्माण्ड सकल॥ 18॥

एकैक शाखाते उपशाखा शत शत।
यत उपजिल शाखा के गणिबे कत॥ 19॥

मुख्य मुख्य शाखागणेर नाम गणन।
आगे ता' करिब, शुन वृक्षेर वर्णन॥ 20॥

अनुवाद—तनेसे ऊपर अनेक शाखाएँ निकलीं और उन शाखाओंके ऊपर असंख्य शाखाएँ और निकलीं। बीस-बीस शाखाओंको लेकर एक मण्डल बना। बड़ी-बड़ी शाखाएँ सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमें छा गयीं। एक-एक शाखासे सौ-सौ उपशाखाएँ उपजीं। इन शाखाओंकी कौन कहाँ तक गिनती कर सकता है? मुख्य-मुख्य शाखाओंके नामोंकी गणना आगे करूँगा। अभी चैतन्यवृक्षका वर्णन सुनिये॥ 17-20॥

मूल तनेके दोनों ओर दो तने—
श्रीनिताइ और श्रीअद्वैत :—

शाखार उपरे हैल वृक्ष-दुइ स्कन्ध।
एक 'अद्वैत' नाम, आर 'नित्यानन्द'॥ 21॥

अनुवाद—वृक्षके तनेके ऊपरवाले सिरेपर तनेके दो भाग हुए। एक तनेका नाम 'श्रीअद्वैत' और दूसरेका नाम 'श्रीनित्यानन्द' हुआ॥ 21॥

शिष्य-प्रशिष्यरूप शाखा-उपशाखा-परम्परासे विस्तार :—

सेइ दुइस्कन्धे शाखा यत उपजिल।
तार उपशाखागणे जगत छाइल॥ 22॥

बड़ शाखा, उपशाखा, तार उपशाखा।
जगत व्यापिल तार के करिबे लेखा॥ 23॥

शिष्य, प्रशिष्य, आर उपशिष्यगण।
जगत व्यापिल तार नहिक गणन॥ 24॥

उडुम्बर-वृक्ष येन फले सर्व अङ्गे।
एइ मत भक्तिवृक्षे सर्वत्र फल लागे॥ 25॥

अनुवाद—इन दोनों तनोंसे जितनी भी शाखाएँ उत्पन्न हुईं, उनकी उपशाखाओंने सम्पूर्ण जगत्को आच्छादित कर दिया। बड़ी शाखाएँ, उपशाखाएँ और उनकी भी उपशाखाओंने जगत्को व्याप्त कर लिया, उनके बारेमें कौन लिख सकता है? इस प्रकार शिष्य, प्रशिष्य (शिष्यके शिष्य) और उनके भी उपशिष्य इतनी संख्यामें सम्पूर्ण जगत्में फैल गये कि उनकी गिनती

करना सम्भव नहीं है। जिस प्रकार गूलर वृक्षके सभी अङ्गोंमें फल लगता है, उसी प्रकार भक्ति-वृक्षके प्रत्येक अङ्गमें फल लग गये॥ 22-25॥

उससे माली श्रीगौरकी श्रीकृष्ण-प्रेमामृत फल-वितरण-लीला :—

मूलस्कन्धेर शाखा आर उपशाखागणे।
लागिल ये प्रेमफल,—अमृतके जिने॥ 26॥

अनुवाद—(चैतन्य महाप्रभुरूपी) मूल तनेकी शाखाओं-उपशाखाओंमें जो फल लगे, वे अमृतको भी पराभूत करनेवाले थे॥ 26॥

बिना मूल्य प्रेमफल-वितरण :—

पाकिल ये प्रेमफल अमृत-मधुर।
बिलाय चैतन्यमाली, नाहि लय मूल॥ 27॥

त्रिजगते यत आछे धन-रत्नमणि।
एकफलेर मूल्य करि' ताहा नाहि गणि॥ 28॥

अनुवाद—जो प्रेमफल पक गये, उनका स्वाद अमृतसे भी मधुर था। माली श्रीचैतन्य महाप्रभु उन मधुर फलोंको बिना मोलके ही बाँटने लगे। तीनों लोकोंमें जितनी भी धन-रत्न-मणि आदि सम्पत्ति है, उसका मूल्य इस वृक्षके एक प्रेमफलके समान भी नहीं है॥ 27-28॥

अनुभाष्य—'मूल'—मूल्य॥ 27॥

पात्र-अपात्र विचार बिना वितरण :—

मागे वा ना मागे केह, पात्र वा अपात्र।
इहार विचार नाहि जाने, देय मात्र॥ 29॥

अनुवाद—किसीने माँगा अथवा नहीं माँगा, कोई इसका अधिकारी था या नहीं था, इसपर बिना कोई विचार किये श्रीचैतन्य महाप्रभु सबको यह प्रेमफल देते गये॥ 29॥

दीन-दुःखी जीवोंका उद्धार :—

अञ्जलि अञ्जलि भरि' फेले चतुर्द्दिशे।
दरिद्र कुड़ाञा खाय, मालाकार हासे॥ 30॥

अनुवाद—महाप्रभु अञ्जली भर-भरकर प्रेमफलको चारों ओर फेंकने लगे। दरिद्र (साधन-भजन अथवा प्रेम रूपी धनसे विहीन) लोग उन्हें उठा-उठाकर खाने लगे, तो श्रीचैतन्यमाली उनको देखकर हँसने लगे॥ 30॥

मालाकार कहे,—शुन, वृक्ष-परिवार।
मूलशाखा-उपशाखा यतेक प्रकार॥ 31॥

चैतन्य-वृक्षके सभी अङ्ग ही चेतनमय और चेतनमय फलास्वादनसे अचेतन जीवोंका चैतन्य होना :—

अलौकिक वृक्ष करे सर्वेन्द्रिय-कर्म।
स्थावर हइया धरे जङ्गमेर धर्म॥ 32॥

ए वृक्षेर अङ्ग हय सब सचेतन।
बाड़िया व्यापिल सबे सकल भुवन॥ 33॥

अनुवाद—माली कहने लगे—"वृक्षके परिवारकी मूलशाखाओं! उपशाखाओं! सब सुनो। यह भक्तिवृक्ष अलौकिक है, यह सभी इन्द्रियोंसे दूसरी इन्द्रियोंके कार्य करनेमें सक्षम है और स्थावर होते हुए भी इसने जङ्गमके धर्मको अपनाया हुआ है। इस वृक्षके समस्त अङ्ग चेतन हैं, जो फैलकर समस्त जगत्में व्याप्त हो गये हैं॥ 31-33॥

नामप्रचार अकेले असम्भव देखकर सबको बिना विचार किये वितरणका आदेश :—

एकला मालाकार आमि काहाँ काहाँ याब।
एकला वा कत फल पाड़िया विलाब॥ 34॥

एकला उठाञा दिते हय परिश्रम।
केह पाय, केह ना पाय, रहे मने भ्रम॥ 35॥

अतएव आमि आज्ञा दिलुँ सबाकारे।
याँहा ताँहा प्रेमफल देह' यारे तारे॥ 36॥

एकला मालाकार आमि कत फल खाब।
ना दिया वा एइ फल आर कि करिब॥ 37॥
आत्म-इच्छामृते वृक्ष सिञ्चि निरन्तर।
ताहाते असंख्य फल वृक्षेर उपर॥ 38॥

अनुवाद—मैं माली अकेला कहाँ-कहाँ जा सकता हूँ और कितने फलोंको तोड़कर बाँट सकता हूँ? मुझ अकेलेको फल उठानेमें बहुत परिश्रम हो रहा है। उसपर भी किसे मिला और किसे नहीं मिला, यह भ्रम मेरे मनमें रह जाता है। इसलिये मैं सबको आज्ञा देता हूँ कि जहाँ-तहाँ जिस-किसीको भी यह प्रेमफल प्रदान करो। मैं अकेला माली कितने फल खा सकता हूँ? यदि इन्हें नहीं बाँटूगा, तो इन फलोंका मैं क्या करूँगा? मैं अपनी इच्छारूपी अमृतके द्वारा इस वृक्षको निरन्तर सींचता हूँ, इसलिये इसके ऊपर असंख्य फल लगे हैं॥ 34-38॥

प्रेमास्वादनसे जीवोंको अमृतत्वकी प्राप्ति :—

अतएव सब फल देह' यारे तारे।
खाइया हउक् लोक अजर अमरे॥ 39॥

अनुवाद—इसलिये इन सब प्रेमफलोंको जहाँ-तहाँ सभीको प्रदान करो, जिससे वे इसे खाकर अजर-अमर हो जाँय॥ 39॥

अमृतानुकणिका—जीव स्वरूपतः अजर और अमर है। गीता (2/20)—

"न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं
भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥"

"यह जीवात्मा कभी न तो जन्म लेता है और न ही कभी मरता है अथवा पुनः पुनः इसकी उत्पत्ति या वृद्धि नहीं होती है। यह अजन्मा, नित्य, शाश्वत और प्राचीन होनेपर भी नित्य नवीन है। शरीरके नष्ट होनेपर भी जीवात्माका विनाश नहीं होता।"

श्रीकृष्णको भूल जानेके कारण ही जीव मायाके वशीभूत होकर नश्वर शरीरोंको धारण और फिर उनका त्याग करता है। महाप्रभु और उनके पार्षदोंकी कृपासे जब जीव प्रेमरूपी फल प्राप्त करता है, तब आनुषङ्गिक रूपसे उसका मायाका बन्धन कट जाता है और वह अपने स्वरूप जो अजर-अमर है, उसको प्राप्त करता है। इसलिये महाप्रभुने अपने सभी पार्षदोंको इस प्रेमरूपी फलको सर्वत्र बाँटनेके लिये आदेश एवं यथायोग्य शक्ति भी प्रदान की है॥ 39॥

श्रीगौरकी दया देखकर श्रीगौरनाम-कीर्तनसे ही जीवोंका नित्य मङ्गल :—

जगत व्यापिया मोर हबे पुण्य ख्याति।
सुखी हइया लोक मोर गाहिबेक कीर्त्ति॥ 40॥

अनुवाद—जगत्को प्रेम वितरण करनेसे सम्पूर्ण जगत्में मेरी ख्याति होगी और लोग सुखी होकर मेरी कीर्तिका गान करेंगे॥ 40॥

अनुभाष्य—जिस प्रकार संसारमें पुण्यके प्रभावसे लोग सुखी होते हैं, पापोंके विस्तारसे मनुष्योंके दुःखोंकी वृद्धि होती है, पुण्यवानोंकी पवित्र चरित्र-गाथा गायी जाती है और पापियोंके दुष्कर्मोंकी बात लोग अपने मुखमें लानेकी इच्छा नहीं करते, उसी प्रकार कृष्णप्रेमको प्राप्तकर जगत्के लोग सुखी होंगे और इससे प्रेमप्रदाताके सुखकी वृद्धि होगी॥ 40॥

भारतभूमिमें जन्म लेकर मानवमात्रकी मानवके प्रति नित्यदया या उनको श्रीकृष्णोन्मुखी करना आवश्यक कर्त्तव्य :—

भारतभूमिते हैल मनुष्य-जन्म यार।
जन्म सार्थक करि' कर पर-उपकार॥ 41॥

अनुवाद—भारत भूमिपर जिसने मनुष्यका जन्म ग्रहण किया है, उसका आवश्यक कर्त्तव्य है कि वह परोपकार कर अपना जन्म सार्थक करे॥ 41॥

अनुभाष्य—पवित्र भारतवर्षमें मनुष्य जन्म ग्रहणकर

जगत्का वास्तव नित्य उपकार करना ही सबसे पवित्र देशमें और सबकी अपेक्षा श्रेष्ठ मनुष्य शरीर धारण करनेकी सफलता है॥41॥

अमृतानुकणिका—साधारणतः लोक समाजमें अभावग्रस्त प्राणियोंके दुःखोंको अन्न-वस्त्र-धन-औषधि दानदिके द्वारा दूर करनेको ही परोपकार कहा जाता है, परन्तु यह उपाय तात्कालिक है, इसके द्वारा दुःखोंका समूल नाश नहीं होता, अपितु वे पुनः पुनः आते हैं। समस्त दुःखोंका मूल कारण तो जीवोंकी श्रीकृष्ण विस्मृति है, (चैःचः मध्यलीला 20/117)—

कृष्ण भूलि सेई जीव अनादि-बहिर्मुख।
अतएव माया तारे देय संसार-दुःख॥

भारत भूमि अति पवित्र भूमि है, यहींपर भगवान्के अनेकों अवतार हुए हैं, जीवोंके परम कल्याणका मार्गदर्शन करानेवाले वेद-पुराणादि शास्त्र भी यहीं प्रकट हुए हैं और यह अनेकों ऋषियों-मुनियोंकी भजन स्थली है। इसलिये सुकृति-सम्पन्न जीवोंको इस पवित्र भूमिमें जन्म प्राप्त होता है। ऐसी भारत भूमिमें जन्मका सुअवसर प्राप्त होनेको विशेष भगवद्-कृपा ही जानना चाहिये। इसलिये श्रीचैतन्य महाप्रभु भारतमें जन्में सभी मनुष्योंको यह स्मरण करा रहें कि इस सुअवसरका पूर्ण लाभ उठाओ और श्रीकृष्ण भजन करके अपने जीवनको सार्थक बनाओ और साथ-ही-साथ सम्पूर्ण विश्वके मनुष्योंके जीवनको सार्थक करानेका दायित्व भी तुम्हारा है॥41॥

कायमनोवाक्यसे जीवको श्रीकृष्णभक्तिमें उन्मुखी कराना ही सर्वापेक्षा श्रेष्ठ दया या मङ्गलाचरण :—
श्रीमद्भागवत (10/22/35)—

एतावज्जन्मसाफल्यं देहिनामिह देहिषु।
प्राणैरर्थैर्धिया वाचा श्रेय आचरणं सदा॥42॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है॥42॥

अमृतप्रवाह भाष्य—प्राण, धन, बुद्धि और वचनके द्वारा दूसरोंके प्रति निरन्तर श्रेय आचरण करना ही देहधारी जीवोंके जन्मकी सार्थकता है॥42॥

अनुभाष्य—वस्त्रहरण-लीलाके अन्तमें अपने सखा गोपबालकोंके साथ बहुत दूर जाकर वृक्षके नीचे विश्राम करते हुए वृक्षोंके परोपकार या दया-प्रवृत्ति और सहिष्णुताका दर्शनकर श्रीकृष्ण गोपबालकोंसे कहने लगे—

सदा प्राणैः अर्थैः धिया वाचा (सर्वतोभावेन) देहिषु (जीवेषु) श्रेय आचरणं (नित्यं-मङ्गलानुष्ठानं भगवद्वैमुख्या-पनोदनपूर्वक-तदुन्मुखीकरणेन नित्य-दयायाः सुष्ठु प्रदर्शन-मित्यर्थः)—एतावत् एव इह (संसारे) देहिनां (जीवानां) जन्मसाफल्यं [भवतीती शेषः]।

*श्लोक भावानुवाद—*अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है॥42॥

विष्णुपुराण (3/12/42)—

प्राणिनामुपकाराय यदेवेह परत्र च।
कर्मणा मनसा वाचा तदेव मतिमान् भजेत्॥43॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है॥43॥

अमृतप्रवाह भाष्य—कर्म, मन और वचनके द्वारा इस जन्मके तथा अगले जन्मोंके लिये प्राणियोंके जो उपकार योग्य है, उसीका ही बुद्धिमान व्यक्ति आचरण करते हैं॥43॥

अनुभाष्य—*मतिमान् (बुद्धिमान् जनः) यत् एव कर्म इह (जगति) परत्र (अमूत्र) च, प्राणिनाम् उपकाराय (नित्य मङ्गलाय) भवति, तदेव (भगवद्भक्त्युन्मुखि-सुकृतोत्पादनमेव) कर्मणा, मनसा, वाचा (कायमनोवाक्येन) भजेत्।*

*श्लोक भावानुवाद—*अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है॥43॥

माली मनुष्य आमार नाहि राज्य-धन।
फल-फूल दिया करि' पुण्य उपार्जन॥44॥

अनुवाद—मैं एक माली हूँ, मेरे पास राज्य-धन आदि कुछ भी नहीं है। मैं तो केवल फल-फूल देकर पुण्य कमाता हूँ॥44॥

वृक्षोंकी निर्हेतुक दया-दर्शनसे, मूल कल्पवृक्ष होनेकी इच्छा :—

माली हञा वृक्ष हइलाङ एइ त' इच्छाते।
सर्वप्राणीर उपकार हय वृक्ष हैते॥45॥

अनुवाद—वृक्षसे समस्त प्राणियोंका उपकार होता है, इसी इच्छासे मैं माली होते हुये भी वृक्ष बना हुआ हूँ॥46॥

श्रीमद्भागवत (10/22/33)—

अहो एषां वरं जन्म सर्वप्राण्युपजीविनाम्।
सुजनस्येव येषां वै विमुखा यान्ति नार्थिनः॥46॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है॥46॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीकृष्ण गोपबालकोंसे वृक्षों को लक्ष्य करके कह रहे हैं,—"अहो! ये [वृक्ष] सब प्राणियोंके उपजीविका स्वरूप हैं अर्थात् समस्त प्राणियोंका उपकार करते हैं, इसलिये इनका जन्म सफल है। इनके निकट आकर कोई भी याचक विमुख होकर नहीं लौटता। ये सब सुजनगणकी भाँति व्यवहार करते हैं॥"46॥

इति अमृतप्रवाह भाष्ये नवम परिच्छेद।
नौंवें अध्यायका अमृतप्रवाह भाष्य समाप्त।

अनुभाष्य—वस्त्रहरण-लीलाके अन्तमें अपने सखा गोपबालकोंके साथ बहुत दूर जाकर वृक्षके नीचे बैठकर विश्राम करते हुए वृक्षोंकी सहिष्णुता और सदा परोपकार-प्रवृत्ति देखकर उनको लक्ष्य करके श्रीकृष्ण गोपबालकोंसे कहने लगे—

अहो एषां (वृक्षाणां) सर्वप्राण्युपजीवनं (सर्वेषां प्राणिनाम् उपजीवनं) जन्म सुजनस्य इव वरं (श्रेष्ठं),—येषां (येभ्यः) अर्थिनः (प्रार्थिनः) विमुखाः (विफलाभीष्टाः सन्तः) न यान्ति (प्रत्यावर्त्तन्ते)।

श्लोक भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है॥46॥

इति अनुभाष्ये नवम परिच्छेद।
नौंवें अध्यायका अनुभाष्य समाप्त हुआ।

यह सुनकर वृक्षके अङ्गोंको आनन्द :—

एइ आज्ञा कैल यदि चैतन्य-मालाकार।
परम आनन्द पाइल वृक्ष-परिवार॥47॥

अनुवाद—जब श्रीचैतन्य मालीने यह आज्ञा प्रदान की, तो वृक्ष-परिवार अर्थात् महाप्रभुके पार्षद परमानन्दित हुए॥47॥

अधिकारके विचार बिना प्रेमफल-वितरण :—

येइ याँहा ताँहा दान करे प्रेमफल।
फलास्वादे मत्त लोक हइल सकल॥48॥

महामादक प्रेमफल पेट भरि' खाय।
मातिल सकल लोक—हासे, नाचे, गाय॥49॥

केह गड़ागड़ि याय, केह त' हुँकार।
देखि' आनन्दित हञा हासे मालाकार॥50॥

अनुवाद—फिर वे जहाँ-तहाँ प्रेमफल प्रदान करने लगे, जिसका आस्वादनकर सभी लोग प्रेमोन्मत्त हो उठे। महामत्त करनेवाले उस प्रेमफलको पेट भर खाकर सभी लोग मत्तवालोंकी भाँति हँसने, नाचने, गाने लगे। कोई भूमिपर लोट-पोट होने लगे, तो कोई हुँकार करने लगे। यह सब देखकर श्रीचैतन्य माली आनन्दित होकर हँसने लगे॥48-50॥

जीवोंको अपने समान श्रीकृष्णप्रेमार्पणके द्वारा महाभागवत बनाना :—

एइ मालाकार खाय एइ प्रेमफल।
निरवधि मत्त रहे, विवश-विह्वल॥51॥

सर्वलोके मत्त कैला आपन-समान।
प्रेमे मत्त लोक बिना नाहि देखि आन॥52॥

अनुवाद—श्रीचैतन्य माली स्वयं भी इस प्रेमफलका आस्वादनकर निरन्तर उन्मत्त रहते और वे प्रेमके द्वारा विवश तथा विह्वल हो जाते। उन्होंने सभी लोगोंको अपने समान इतना प्रेमोन्मत्त कर दिया कि कोई भी ऐसा नहीं दीखता था, जो प्रेममें मत्त न हो॥51-52॥

अधम निन्दकादिका भी
श्रीकृष्णप्रेम-प्राप्ति-फलसे उद्धार :—

ये ये पूर्वे निन्दा कैल, बलि' मातोयाल।
सेइ फल खाय, नाचे, बले—भाल, भाल॥ 53॥

अनुवाद—जिन्होंने पहले श्रीचैतन्य महाप्रभुको मतवाला कहकर उनकी निन्दा की थी, वे भी फलको खाकर नाचते हुए कहने लगे कि 'बहुत अच्छा है', 'बहुत अच्छा है'॥ 53॥

एइ त' कहिलुँ प्रेमफल-वितरण।
एबे शुन, फलदाता ये ये शाखागण॥ 54॥

अनुवाद—यहाँ तक प्रेमफलके वितरणके सम्बन्धमें मैंने वर्णन किया। अब फल प्रदान करनेवाली जो-जो शाखाएँ हुईं, उनको श्रवण करो॥ 54॥

श्रीरूप-रघुनाथ-पदे यार आश।
चैतन्यचरितामृत कहे कृष्णदास॥ 55॥

अनुवाद—श्रीरूप-रघुनाथ गोस्वामीके चरणकमल ही जिसके एकमात्र आश्रय हैं, वह कृष्णदास श्रीचैतन्यचरितामृतका वर्णन कर रहा है॥ 55॥

इति श्रीचैतन्यचरितामृते आदिखण्डे भक्तिकल्पतरुवर्णनं नाम नवमः परिच्छेदः।

श्रीचैतन्यचरितामृतके आदिखण्डमें भक्तिकल्पवृक्षका वर्णन नामक नौवें अध्यायका अनुवाद समाप्त।

दसवाँ अध्याय

चित्र 3

दसवाँ अध्याय

दसवें अध्यायका सार—इस दसवें अध्यायमें श्रीचैतन्य महाप्रभुकी निजशाखाका वर्णन हुआ है।

(अमृतप्रवाह भाष्य)

श्रीगौरभक्त-वन्दना :—

श्रीचैतन्यपदाम्भोज-मधुपेभ्यो नमो नमः।
कथञ्चिदाश्रयाद् येषां श्वापि तद्गन्धभाग्भवेत्॥1॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है॥1॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीचैतन्य महाप्रभुके चरणकमलोंके भ्रमररूपी भक्तोंको मैं बारम्बार नमस्कार करता हूँ। उनका किसी प्रकारसे आश्रय लेनेसे (अभक्तरूपी) कुत्ता भी उनके चरणकमलोंकी गन्ध प्राप्त करनेका सौभाग्य प्राप्त करता है॥1॥

अनुभाष्य—श्रीचैतन्यपदाम्भोजमधुपेभ्यः (श्रीचैतन्यस्य पदाम्भोजयोः मधुः भक्तिरसं पिबन्ति ये मधुपाः भृङ्गाः तेभ्यः गौरभक्तेभ्यः) नमो नमः;—येषां कथञ्चित् (केनचित् अपि प्रकारेण) आश्रयात् श्वा (कुक्कुरः—भोगापरः भगवद्भक्तौ श्रद्धाहीनः) अपि तद्-गन्धभाक् (तयोः गौरपदकमलयोः गन्धं भजति प्राप्नोति इति गौरभक्तिमान्) भवेत्।

श्लोक भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है। श्रीगौरसुन्दरके चरणकमलोंकी गन्धको प्राप्त करते हैं अर्थात् उनके भक्त बन जाते हैं॥1॥

जय जय श्रीकृष्णचैतन्य-नित्यानन्द।
जयाद्वैतचन्द्र जय गौरभक्तवृन्द॥2॥

अनुवाद—श्रीचैतन्य महाप्रभु और श्रीनित्यानन्द प्रभुकी जय हो, जय हो। श्रीअद्वैतचन्द्रकी जय हो, सभी गौरभक्तोंकी जय हो॥2॥

श्रीगौर-कल्पतरुकी मूलशाखाका वर्णन :—

एइ मालीर—एइ वृक्षेर अकथ्य कथन।
एबे शुन मुख्य-शाखार नाम-विवरण॥3॥

अनुवाद—श्रीचैतन्यमालीके इस भक्ति-कल्पवृक्षका वर्णन अनिर्वचनीय है। अब उनकी मुख्य शाखाओंके नाम और विवरण सुनिये॥3॥

श्रीगौरभक्तोंमें बड़े-छोटेका भेद नहीं :—

चैतन्य-गोसाञिर यत पारिषदचय।
लघु-गुरु-भाव ताँर ना हय निश्चय॥4॥
यत यत महान्त कैला ताँ-सबार गणन।
केह करिवारे नारे ज्येष्ठ-लघु-क्रम॥5॥
अतएव ताँ-सबारे करि' नमस्कार।
नाम-मात्र करि, दोष ना लबे आमार॥6॥

अनुवाद—श्रीचैतन्य गोस्वामीके पार्षदोंमें कौन बड़ा है? कौन छोटा है?—यह निर्णय करना सम्भव नहीं है। जिन-जिन महापुरुषोंने उन सबकी गणना की है, उनमेंसे किसीने भी बड़े-छोटेके क्रमानुसार उनका परिचय नहीं दिया। इसलिये मैं उन सबको प्रणामकर केवलमात्र उनके नामोंका उल्लेख कर रहा हूँ, वे मेरे इस दोषको ग्रहण न करें॥4-6॥

वन्दे श्रीकृष्णचैतन्य-प्रेमामरतरोः प्रियान्।
शाखारूपान् भक्तगणान् कृष्णप्रेमफलप्रदान्॥7॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है॥7॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीकृष्णचैतन्यरूप प्रेम-कल्पवृक्षके श्रीकृष्णप्रेमफलदाता शाखारूप उनके प्रिय भक्तोंकी मैं वन्दना करता हूँ॥7॥

अनुभाष्य—*श्रीकृष्णचैतन्यप्रेमामरतरोः (गौरप्रेम-देववृक्षस्य) कृष्णप्रेमफलप्रदान् शाखारूपान् प्रियान् भक्तगणान् अहं वन्दे।*

श्लोक भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है॥7॥

(1-क, ख, ग, घ) श्रीवास-श्रीरामादि चार भ्राता-शाखा :—

श्रीवास पण्डित आर श्रीराम पण्डित।
दुइ भाइ—दुइ शाखा, जगते विदित॥8॥

श्रीपति, श्रीनिधि—ताँर दुइ सहोदर।
चारि भाइर दास-दासी, गृह-परिकर॥9॥

उनकी ऐकान्तिकी गौरभक्ति :—

दुइ शाखार उपशाखाय ताँ-सबार गणन।
याँर गृहे महाप्रभुर सदा सङ्कीर्त्तन॥10॥

सवंशे करेन याँरा चैतन्येर सेवा।
गौरचन्द्र बिना नाहि जाने देवी-देवा॥11॥

अनुवाद—श्रीवास पण्डित और श्रीराम पण्डित—ये दोनों भाई दो शाखाओंके रूपमें जगत्में जाने जाते हैं। इन दोनोंके भाई श्रीपति और श्रीनिधि एवं इन चारों भाइयोंके दास-दासियाँ तथा समस्त गृह-परिवारकी गणना उन दो शाखाओंकी उपशाखाके रूपमें होती है। इनके घरमें श्रीचैतन्य महाप्रभु सदा सङ्कीर्तन करते थे। ये चारों भाई अपने वंश सहित श्रीचैतन्यदेवकी सेवा करते थे और श्रीगौरचन्द्रके अतिरिक्त किसी अन्य देवी-देवताको नहीं जानते थे॥8-11॥

अनुभाष्य—श्रीगौरगणोद्देश-दीपिकाके 90वें श्लोकमें श्रीवास पण्डितके विषयमें इस प्रकार वर्णन आता है—

"श्रीवासपण्डितो धीमान् यः पुरा नारदो मुनिः।
पर्वताख्यो मुनिवरो य आसीन्नारदप्रियः।
स रामपण्डितः श्रीमान् तत्कनिष्ठसहोदरः॥"90॥

"जो पूर्वकालमें श्रीनारद मुनि थे, वे ही अब श्रीवास पण्डितरूपमें विख्यात हैं। श्रीनारद-प्रिय श्रीपर्वतमुनि ही श्रीवासके कनिष्ठ भ्राता श्रीमान् राम पण्डित हैं।"

और 42वें श्लोकमें यह वर्णित है—

"नाम्नाम्बिका व्रजे धात्री स्तन्यदात्री स्थिता पुरा।
सैवेऽयं 'मालिनी' नाम्नी श्रीवासगृहिणीमता॥"42॥

"पूर्वकालमें जो व्रजमें श्रीकृष्णको स्तनपान करानेवाली धात्री-माता 'अम्बिका' थीं, वे ही अब श्रीवास पण्डितकी पत्नी मालिनीदेवी हैं।" श्रीवासके भाईकी पुत्री ही श्रीवृन्दावनदास ठाकुरकी जननी नारायणीदेवी हैं।

श्रीचैतन्य महाप्रभुके संन्यास ग्रहणके पश्चात् श्रीवास पण्डित नवद्वीपके वास-स्थानको छोड़कर कुमारहट्टमें वास करने लगे—चैःभाः अन्त्यखण्डके पाँचवें अध्यायमें इसका वर्णन है॥8-11॥

(2) श्रीचन्द्रशेखर-शाखा :—

'आचार्यरत्न'-नाम धरे बड़ एक शाखा।
ताँर परिकर, ताँर शाखा-उपशाखा॥12॥

आचार्यरत्नेर नाम 'श्रीचन्द्रशेखर'।
याँर घरे देवी-भावे नाचिला ईश्वर॥13॥

अनुवाद—'आचार्यरत्न' नामकी एक बड़ी शाखा है और उनके परिकर उनकी शाखा और उपशाखा हैं। आचार्यरत्नका नाम श्रीचन्द्रशेखर है और उनके घरमें महाप्रभुने देवीके (रुक्मिणीके) भावमें नृत्य किया था॥12-13॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीचन्द्रशेखर आचार्यरत्न किसी-किसी ग्रन्थके अनुसार महाप्रभुके मौसा हैं।

अनुभाष्य—'श्रीचन्द्रशेखर'—श्रीमान् नवनिधिमेंसे प्रमुख, अथवा चन्द्र (?) हैं। इनके घरमें ही महाप्रभुका देवीभावमें नृत्य-अभिनय हुआ था (चैःभाः मध्यखण्ड, 18वाँ अः)। श्रीचन्द्रशेखरका घर अब 'व्रजपत्तन'—नामसे सुप्रसिद्ध है। श्रीमन्महाप्रभुके संन्यास ग्रहण करनेके विषयमें श्रीनित्यानन्द प्रभुने उन्हें अवगत कराया था (चैःभाः मध्यखण्ड, 28वाँ अः) और संन्यासके समय श्रीनित्यानन्द एवं मुकुन्द दत्तके साथ कटोआमें उपस्थित

होकर संन्यासके उपयुक्त कार्योंका सम्पादनकर इन्होंने नवद्वीप लौटकर सबको महाप्रभुके संन्यास-ग्रहणकी सूचना दी थी। इनके घरपर महाप्रभुके कीर्तनका विषय—चैःभाः मध्यखण्ड, 8वें अः, चाँद-काजीके दलनके समय ये नगरसङ्कीर्तनमें सम्मिलित थे और श्रीधरपर महाप्रभुकी कृपा करनेके समय भी ये वहाँ उपस्थित थे (चैःभाः मध्यखण्ड, 23वाँ अः)। ये भक्तोंके साथ श्रीचैतन्यदेवके दर्शनके लिये गौड़देशसे श्रीजगन्नाथपुरी आया करते थे॥ 13॥

(3) श्रीपुण्डरीक-शाखा :—

पुण्डरीक विद्यानिधि—बड़शाखा जानि।
याँर नाम लञा प्रभु कान्दिला आपनि॥ 14॥

अनुवाद—भक्ति-कल्पवृक्षकी एक और बड़ी शाखा श्रीपुण्डरीक विद्यानिधि हैं, जिनका नाम लेकर महाप्रभु स्वयं क्रन्दन करते थे॥ 14॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीपुण्डरीक विद्यानिधि चट्टग्रामके निवासी थे॥ 14॥

अनुभाष्य—श्रीगौरगणोद्देश-दीपिकाके 54-57वें श्लोकोंमें इस प्रकार वर्णन आता है—

"वृषभानुतया ख्यातः पुरा यो व्रजमण्डले।
अधुना पुण्डरीकाक्षो विद्यानिधि-महाशयः॥ 54॥
स्वकीयभावमास्वाद्य राधा-विरहकातरः।
चैतन्यः पुण्डरीकाक्षमये तातावदत् स्वयम्॥ 55॥
'प्रेमनिधि' तया ख्यातिं गौरो यस्मै ददौ सुधीः।
माधवेन्द्रस्य शिष्यत्वात् गौरवञ्च सदाकरोत्॥ 56॥
तत्प्रकाशविशेषोऽपि मिश्रः श्रीमाधवो मतः।
रत्नावती तु तत्पत्नी कीर्त्तिदा कीर्त्तिता बुधैः॥"57॥

"पूर्वकालमें जो व्रजमण्डलमें श्रीवृषभानुरूपमें विख्यात थे, वे ही अब पुण्डरीकाक्ष विद्यानिधि हैं। स्वकीयभावका अवलम्बन करते राधाभावमें विरहकातर श्रीचैतन्य महाप्रभु श्रीपुण्डरीकाक्षको स्वयं पिता कहकर सम्बोधन करते थे। श्रीगौरसुन्दरने उन्हें 'प्रेमनिधि' उपाधि दी थी और श्रीमाधवेन्द्रपुरीपादका शिष्य जानकर उनका सदा सम्मान करते थे। इनकी पत्नी 'रत्नावती' थीं, किन्तु पण्डितलोग उन्हें 'कीर्त्तिदा' कहते थे।"

इनके पिताका नाम वाणेश्वर (अन्य मतके अनुसार 'शुक्लाम्बर' ब्रह्मचारी) और माताका नाम गङ्गादेवी था। अन्य मतके अनुसार, वाणेश्वर शिवराम गङ्गोपाध्यायके वंशमें जन्में थे। इनके पिता जिला ढाका जिलाके बाघिया ग्रामके वारेन्द्र-श्रेणीके ब्राह्मण थे, इसलिये वहाँके राढ़ीय ब्राह्मण समाजने उन्हें स्वीकार नहीं किया; इस कारणसे उनके शाक्त अधस्तनगण 'बहिष्कृत' होकर समाजके 'बहिष्कृत' लोगोंके ही पुरोहितका कार्य करते आ रहे हैं। इनमेंसे सरोजानन्द गोस्वामी नामक एक व्यक्ति वृन्दावनमें आकर रह रहे हैं। इनके वंशकी यह विशेषता यह है कि सभी भाइयोंमें केवल एकको ही पुत्रकी प्राप्ति होती थी और अन्य भाइयोंके घरोंमें कन्याका जन्म होता था या कोई सन्तान नहीं होती थी। इस कारणसे इनके वंशका विस्तार न हो सका। चट्टग्रामके उत्तर-पूर्वमें 'मेखलाग्राम'में इनका पूर्व निवास था।

[टीका लिखनेके समय—] विद्यानिधिका भजन मन्दिर अत्यन्त जीर्ण और अस्वच्छ है, इसका संस्कार नहीं करनेपर शीघ्र ही लुप्त होनेकी सम्भावना है। मन्दिरकी दीवारपर ईंटके पटलपर दो श्लोक खुदे हैं; अक्षर विकृत होनेके कारण पढ़े नहीं जा सकते और उनके अर्थ भी समझे नहीं जा सकते। इस मन्दिरसे दक्षिण-पूर्व दिशामें 400-500 हाथ दूरीपर एक और मन्दिर देखा जाता है, उसकी दीवारपर ईंटके पटलपर लिखे अक्षर भी नहीं पढ़े जाते हैं। इसके ही सामने 15-20 हाथकी दूरीपर बाईं ओर एक और मन्दिर होनेकी बात वहाँ गिरी हुई अनेक ईंटोंके टुकड़ोंको देखकर जानी जाती है। वहाँके लोगोंसे सुननेमें आता है कि यही मुकुन्द दत्तका भजन मन्दिर था। पुण्डरीक विद्यानिधिके वंशमें श्रीहरकुमार स्मृतितीर्थ और श्रीकृष्णकिङ्कर विद्यालङ्कार अभी भी वर्तमान हैं। (वैष्णव-मञ्जुषा—प्रथम संख्या द्रष्टव्य है)।

महाप्रभु इनको 'बाप' कहकर बुलाते थे और इन्हें 'प्रेमनिधि' नाम दिया था। ये श्रीगदाधर पण्डित गोस्वामीके गुरु और श्रीदामोदर स्वरूपके सुहृद थे। अबोध लोगोंको सतर्क करके मङ्गल शिक्षा देनेके उद्देश्यसे श्रीगदाधर पण्डित गोस्वामीने श्रीविद्यानिधिको पहले विषयी समझकर भूल करनेका अभिनयकर फिर अन्तमें उन्हींसे दीक्षा-अभिनय लीला की। श्रीजगन्नाथदेवके द्वारा उन्हें थप्पड़ मारनेका वृत्तान्त—चैःभाः अन्त्यखण्ड, 10वें अध्यायमें द्रष्टव्य है॥14॥

अमृतानुकणिका—(चैःभाः अन्त्यखण्ड, 10अः संख्या 90-151) ओड़न अथवा उड़न-षष्टी नामक यात्रामें श्रीजगन्नाथदेव नये माँड़युक्त वस्त्र धारण करते हैं। माँड़युक्त वस्त्र धारण किये हुए श्रीजगन्नाथदेवको देखकर विद्यानिधिके मनमें सन्देह हुआ। विद्यानिधिने दामोदर स्वरूपसे पूछा,—"ईश्वरको माँड़युक्त वस्त्र क्यों प्रदान किये जाते हैं? इस देशमें तो श्रुति-स्मृतिका प्रचुर परिमाणमें प्रचार है, फिर क्यों बिना धोए माँड़युक्त वस्त्र पहनाये जाते हैं? माँड़युक्त वस्त्रोंको स्पर्श करनेसे हाथ धोकर शुद्ध होना पड़ता है।" दामोदर स्वरूपने कहा,—"यद्यपि श्रीजगन्नाथदेवके सेवक नियम जानते हैं, तो भी इस यात्रा-उत्सवपर सब समय ऐसा ही होता है। यह श्रीजगन्नाथदेवकी ही इच्छा है, इसलिये राजा भी इसके लिये निषेध नहीं करते।" विद्यानिधिने कहा,—"ठीक है, श्रीजगन्नाथदेव ईश्वर हैं, उनके लिये सब कुछ सम्भव है, परन्तु उनके सेवक ईश्वर जैसा आचरण क्यों कर रहे हैं? इन पूजा-पण्डा आदिने अपवित्र वस्त्र क्यों धारण किये हैं? राजाने भी माँड़युक्त वस्त्र सिरपर क्यों धारण किया है?" दामोदर स्वरूपने कहा,—"सुनो भाई! लगता है, ओड़न-यात्रामें दोष नहीं है। श्रीजगन्नाथदेव परमब्रह्म हैं। यहाँ वे विधि-निषेधका विचार नहीं करते हैं।" विद्यानिधिने कहा,—"भाई, एक बात सुनो! श्रीजगन्नाथदेव विग्रह परम ब्रह्मस्वरूप हैं। वे यदि विधि-निषेधोंका उल्लङ्घन करें, तो इसमें कोई दोष नहीं है। परन्तु ये सब लोग भी नीलाचलमें रहकर लोक व्यवहार छोड़ चुके हैं, क्या सभी ब्रह्मरूप-अवतार हो गये हैं?" इतना कहकर दोनों सम्पूर्ण मार्गमें हँसते-हँसते श्रीजगन्नाथदेवके सेवकोंके प्रभावको न जानकर उनके आचरणपर दोषारोपण कर रहे थे। भिक्षाके उपरान्त दोनों गौराङ्ग महाप्रभुके पास चले आये। महाप्रभुके पास आकर वे सो गये।

केवल श्रीकृष्ण ही जानते हैं कि किसमें कितना अनुराग है। श्रीकृष्ण अपने दासोंको भ्रममें डाल देते हैं, और बादमें दयावान होकर भ्रम दूर भी करते हैं।

गौराङ्ग महाप्रभु सब कुछ जानते थे। श्रीजगन्नाथके रूपमें महाप्रभु स्वप्नमें उनके पास गये। विद्यानिधि महाशयने स्वप्नमें देखा कि श्रीजगन्नाथ-बलरामका शुभागमन हुआ है, परन्तु दोनों क्रोधित होकर उन्हें पकड़कर उनके दोनों गालोंपर थप्पड़ मार रहे हैं। थप्पड़ इतने ज़ोरसे मारे कि उनके गाल फूल गये और उनपर उँगलियोंके निशान बन गये। विद्यानिधि कहने लगे,—"हे कृष्ण! रक्षा करो, अपराध क्षमा करो, हे स्वामी! किस अपराधके कारण आप मुझे मार रहे हैं?" श्रीजगन्नाथने कहा,—"तेरे अपराधोंका अन्त नहीं है। मेरी और मेरे सेवकोंकी जाति नहीं है। मुझे परब्रह्मके रूपमें स्थापित करके भी तुमने माँड़युक्त वस्त्रके प्रति दोष-दृष्टि रखकर मेरे सेवकोंकी निन्दा की है।"

स्वप्नमें विद्यानिधि मनसे महाभयभीत होकर श्रीचरणोंपर सिर पटकते हुए क्रन्दन करने लगे। विद्यानिधि कहने लगे,—"हे प्रभु! मुझ पापीके सभी अपराध क्षमा कीजिये। हे प्रभु, जिस मुखसे मैंने आपके सेवकोंकी हँसी उड़ाई है, आपने मेरे उस मुखको भलीभाँति दण्ड प्रदान किया है। आज मेरे सौभाग्यका दिन है। मेरे मुख और ललाटको आपके श्रीहस्तका स्पर्श मिला है।" श्रीजगन्नाथने कहा,—"सेवक समझकर तुमपर अनुग्रह करनेके लिये मैंने तुम्हें दण्ड प्रदान किया है।"

स्वप्न देखनेके उपरान्त विद्यानिधि जाग उठे। फिर सूजे हुए गालोंपर थप्पड़ोंके निशान देखकर वे हँसने लगे। यह देखकर विद्यानिधिने कहा,—"बहुत अच्छा

हुआ, बहुत अच्छा हुआ। अपराधानुसार मुझे सजा मिली है। अच्छा ही किया प्रभुने, मुझे तो कम सजा मिली है।"

विद्यानिधिकी इस महिमाको देखिये। सेवकके प्रति प्रभु-दयाकी यही सीमा है। अपने पुत्र प्रद्युम्नको भी शिक्षा हेतु प्रभु इस प्रकार (स्वप्नमें) थप्पड़ नहीं मारते। जानकी, रुक्मिणी, सत्यभामा आदि कितने ही ईश्वर-ईश्वरी हैं, उनको भी स्वप्नमें भी दण्ड नहीं देते। अपराधीको प्रभु साक्षात् ही मारते हैं। स्वप्नमें प्रदान की गई कृपा अथवा दण्ड बाहरसे कभी दिखायी नहीं देते। स्वप्नमें भले ही कोई दण्डित होता है अथवा किसीको अर्थकी प्राप्ति होती है, परन्तु पुरुषके जग जानेपर उन सबका कुछ भी अस्तित्व नहीं रहता है। प्रभु स्वप्नमें जिन्हें दण्ड अथवा कृपा प्रदान करते हैं, जागनेपर जब वे उसके साक्षात् दर्शन करते हैं, तब उन्हें उस बातकी प्रतीति होती है कि उनसे बढ़कर भाग्यवान् संसारमें दूसरा नहीं है। प्रभु अभक्तजनोंको स्वप्नमें भी कुछ नहीं कहते। स्वप्नमें प्रभुने साक्षात् भावसे स्वयं विद्यानिधिको थप्पड़ मारे थे। इस प्रकारकी कृपा केवल विद्यानिधिको ही मिली॥14॥

(4) श्रीगदाधर-शाखा :—

बड़ शाखा—गदाधर पण्डित-गोसाञि।
तेँहो लक्ष्मीरूपा, ताँर सम केह नाइ॥15॥

ताँर शिष्य-उपशिष्य,—ताँर उपशाखा।
एइमत सब शाखा-उपशाखार लेखा॥16॥

अनुवाद—एक और बड़ी शाखा श्रीगदाधर पण्डित हैं। वे लक्ष्मीस्वरूपा (श्रीराधिका) हैं, जिनके समान और कोई नहीं है। इनके शिष्य और उपशिष्य इनकी उपशाखाएँ हैं। इस प्रकार समस्त शाखाओं और उपशाखाओंका उल्लेख किया गया है॥15-16॥

अनुभाष्य—श्रीगौरगणोद्देश-दीपिकाके 147-150 श्लोकोंमें इस प्रकार वर्णन आता है—

"श्रीराधाप्रेमरूपा या पुरा वृन्दावनेश्वरी।
सा श्रीगदाधरो गौरवल्लभः पण्डिताख्यकः॥147॥
निर्णीतः श्रीस्वरूपैर्यो व्रजलक्ष्मीतया यथा॥148॥
पुरा वृन्दावने लक्ष्मीः श्यामसुन्दर-वल्लभा।
साद्य गौरप्रेम-लक्ष्मीः श्रीगदाधरपण्डितः॥149 ॥
राधामनुगता यत्तल्ललिताप्यनुराधिका।
अतः प्राविशदेषा तं गौरचन्द्रोदये यथा॥"150॥

"पहले जो वृन्दावनेश्वरी प्रेमरूपा श्रीमती राधिका थीं, वे ही अब श्रीगौरप्रिय श्रीगदाधर पण्डित हैं। श्रीस्वरूप दामोदर गोस्वामीने श्रीगदाधर पण्डितको व्रजलक्ष्मीके रूपमें निर्धारित किया है। पूर्वकालमें श्रीश्यामसुन्दर-वल्लभा वृन्दावन-लक्ष्मी ही इस लीलामें गौरप्रेम-लक्ष्मी श्रीगदाधर पण्डित हैं। 'श्रीचैतन्यचन्द्रोदय' ग्रन्थके अनुसार श्रीराधाकी अनुगता होनेके कारण 'अनुराधा'-रूपसे विख्यात श्रीललितादेवीने श्रीगदाधर पण्डितमें प्रवेश किया है॥"15-16॥

(5) श्रीवक्रेश्वर-महिमा और शाखा :—

वक्रेश्वर पण्डित—प्रभुर बड़ प्रिय भृत्य।
एक-भावे चब्बिश प्रहर याँर नृत्य॥17॥

आपने महाप्रभु गाय याँर नृत्यकाले।
प्रभुर चरण धरि' वक्रेश्वर बले॥18॥

"दशसहस्र गन्धर्व मोरे देह' चन्द्रमुख।
तारा गाय, मुञि नाचि—तबे मोर सुख॥"19॥

अनुवाद—श्रीवक्रेश्वर पण्डित श्रीचैतन्य महाप्रभुके अत्यन्त प्रिय सेवक हैं, जिन्होंने एक ही भावमें चौबीस प्रहर (तीन दिन) तक नृत्य किया था। जब महाप्रभुने स्वयं इनके नृत्यपर गान किया, तब इन्होंने महाप्रभुके चरण पकड़कर निवेदन किया,—"हे चन्द्रमुख! मुझे दस-हजार गन्धर्व (गायक) दे दीजिये, जिससे वे सब गान करते रहें और मैं नृत्य करता रहूँ। तब ही मुझे सुख प्राप्त होगा॥"17-19॥

अनुभाष्य—श्रीगौरगणोद्देश-दीपिकाके 71-73वें श्लोकोंमें इस प्रकार वर्णन आता है—

"व्यूहस्तुर्योऽनिरुद्धो यः स वक्रेश्वरपण्डितः।
कृष्णावेशज नृत्येन प्रभोः सुखमजीजनत्॥ 71॥
सहस्रगायकान्मह्यं देहि त्वं करुणामय।
इति चैतन्यपादे य उवाच मधुरं वचः॥ 72॥
स्वप्रकाशविभेदेन शशिरेखा तमाविशत्॥"73(क)॥

"चतुर्व्यूहमें जो श्रीअनिरुद्ध हैं, वे ही श्रीवक्रेश्वर पण्डित हैं। श्रीकृष्णावेश-जनित नृत्यके द्वारा इन्होंने महाप्रभुका सुख विधान किया। इन्होंने मधुर वाणीसे महाप्रभुको कहा—'हे करुणामय! आप मुझे हजार गायक प्रदान करें।' अपने प्रकाश भेदसे (श्रीराधिकाकी प्रिय सखी) श्रीशशिरेखाने इनमें प्रवेश किया है।" श्रीध्यानचन्द्र गोस्वामी प्रभुने लिखा है—

"राधाकृष्णरसप्रकाशनपरं गानावलीभूषितं,
वृन्दारण्यसुखप्रचारजनितं स्तम्भादिभावान्वितम्।
श्रीगौराङ्गमहाप्रभो रसमिलनृत्यावताराङ्कुरं
श्रीवक्रेश्वरपण्डितं द्विजवरं चैतन्यभक्तं भजे॥
नित्यं तिष्ठति तत्रैव तुङ्गविद्या समुत्सुका।
विप्रलब्धात्वामापन्ना श्रीकृष्णे रतियुक् सदा॥
अस्या वयः प्रमाणं स्यात् असौ गौररसे पुनः।
वक्रेश्वर इति ख्यातमापन्ना हि कलौ युगे॥"

श्रीध्यानचन्द्र गोस्वामीके वर्णनानुसार—"श्रीराधाकृष्ण रसको प्रकाश करनेवाली गानावली जिनका भूषण है, वृन्दावन-रसतत्त्व प्रचारके समय स्तम्भादि भावोंसे जो शोभित हैं, श्रीगौराङ्ग महाप्रभुके रसात्मक-नृत्य प्रकाशमें जो अङ्कुर-स्वरूप हैं, उन श्रीचैतन्यभक्त द्विजवर श्रीवक्रेश्वर पण्डितका मैं भजन करता हूँ। उनमें ही सदा-उत्सुका श्रीमती तुङ्गविद्या नित्य विराजित हैं। सदा श्रीकृष्णमें रतियुक्ता और विप्रलम्भ-भावान्विता श्रीतुङ्गविद्या पुनः कलियुगमें गौररसमें 'वक्रेश्वर' नामसे विख्यात हैं।"

इन्होंने श्रीवास-आङ्गनमें और श्रीचन्द्रशेखर-भवनमें महाप्रभुके कीर्तनमें नृत्य किया था। महाप्रभुने देवानन्दसे वक्रेश्वरकी जो महिमा कही थी, उसके लिये चैःभाः अन्त्यखण्ड, तीसरा अध्याय द्रष्टव्य है।

श्रीवक्रेश्वर पण्डितके सम्बन्धमें उत्कल-कवि श्रीगोविन्दके रचित श्रीगौरकृष्णोदयमें—

"प्रभोः प्रथमशिष्य इत्यर्थ विमृश्य वक्रेश्वरं निवेश्य च तदाश्रमे निजनिजं निवासं ययो।"

इनके शिष्य श्रीगोपालगुरु हैं और उनके शिष्य श्रीध्यानचन्द्र हैं। उत्कल-प्रदेशमें श्रीवक्रेश्वरके शिष्य-सम्प्रदायमें अधिकांश भक्त ही अपना परिचय गौड़ीय-वैष्णवके रूपमें देते हैं॥ 17॥

अमृतानुकणिका—देवानन्द पण्डित स्मार्त्त धर्ममें प्रविष्ट होनेपर भी महाज्ञानी और संयमी थे, परन्तु महाप्रभुके प्रति उनकी श्रद्धा जाग्रत नहीं हुई थी। वे श्रीमद्भागवतम्को छोड़कर अन्य किसी ग्रन्थका पाठ नहीं करते थे। इसी कारण एक बार वक्रेश्वर पण्डित उनके आश्रममें ठहर गये और देवानन्द पण्डितने उनकी सेवा की। वक्रेश्वर पण्डितके सङ्गके प्रभावसे देवानन्द पण्डितमें महाप्रभुके प्रति श्रद्धाका उदय हुआ था और वे वक्रेश्वर पण्डितके साथ महाप्रभुके दर्शनके लिये गये। महाप्रभु चन्द्र आसनपर विराजमान थे। देवानन्द पण्डित उन्हें दण्डवत् प्रणाम करके सङ्कोचके साथ एक तरफ खड़े हो गये। महाप्रभु भी उन्हें देखकर सन्तुष्ट हुए और एकान्तमें उन्हें साथ लेकर बैठे। उनके जो कुछ भी पूर्व अपराध थे, उन सभी अपराधोंको क्षमा करके महाप्रभुने उनपर कृपा की। महाप्रभुने कहा,—"तुमने जो वक्रेश्वर पण्डितकी सेवा की है, इसी कारण तुम्हें मेरे दर्शन हुए हैं। वक्रेश्वर पण्डित प्रभुकी पूर्णशक्ति हैं। जो उनकी सेवा करते हैं, उन्हें कृष्णकी प्राप्ति होती है। वक्रेश्वरका हृदय कृष्णका अपना घर है। वक्रेश्वर जब नृत्य करते हैं, तब कृष्णका नृत्य होता है। जिस किसी भी स्थानपर वक्रेश्वरका सङ्ग क्यों न हो, वह स्थान श्रीवैकुण्ठमय सर्वतीर्थस्वरूप हो जाता है॥"19॥

प्रभु बलेन—तुमि मोर पक्ष एक शाखा।
आकाशे उड़िया याङ, पाङ आर पाखा॥ 20॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है॥ 20॥

अमृतप्रवाह भाष्य—यह सुनकर महाप्रभुने कहा,—"वक्रेश्वर! तुम मेरे एक पंख हो, एक और तुम्हारे जैसा पंख मुझे मिलता, तो मैं आकाशमें उड़ जाता॥"20॥

(6) श्रीजगदानन्दका माहात्म्य :—

पण्डित जगदानन्द प्रभुर प्राणरूप।
लोके ख्याते येँहो सत्भामार स्वरूप॥21॥
प्रीत्ये करिते चाहे प्रभुरे लालन-पालन।
वैराग्य-लोक-भये प्रभु ना माने कखन॥22॥
दुइजने खट्मटि लागाय कोन्दल।
ताँर प्रीत्येर कथा आगे कहिब सकल॥23॥

अनुवाद—श्रीजगदानन्द पण्डित महाप्रभुके प्राण स्वरूप थे। लोगोंमें वे सत्यभामाके रूपमें विख्यात हैं। वे प्रेमसे महाप्रभुका लालन-पालन करना चाहते थे, किन्तु उससे वैराग्य (संन्यास धर्म) नष्ट होगा और लोगोंमें निन्दा होगी—इस भयसे अर्थात् मर्यादा रक्षाके लिये महाप्रभु उनकी बात नहीं मानते थे। इसलिये इन दोनोंमें परस्पर प्रेम कलह हो जाती थी। इनकी प्रीतिका वर्णन आगे विस्तारपूर्वक किया जायेगा॥21-23॥

अमृतप्रवाह भाष्य—चैःचः अन्त्यलीलाके चौथे, सातवें, बारहवें और तेरहवें अध्याय द्रष्टव्य हैं॥23॥

अनुभाष्य—श्रीगौरगणोद्देश-दीपिकाके 51वें श्लोकमें इस प्रकार वर्णन आता है—

"केनावान्तरभेदेन भेदं कुर्वन्ति सात्वताः।
सत्यभामाप्रकाशोऽपि जगदानन्दपण्डितः॥"51॥

"भगवद्भक्त जन किसी अवान्तर भेदसे अर्थात् (सत्यभामा विष्णुप्रिया हैं—इस) विचारसे भेद करते हुए कहते हैं कि श्रीजगदानन्द पण्डित श्रीसत्यभामाके प्रकाश हैं।" ये श्रीवास-आङ्गनमें और श्रीचन्द्रशेखर भवनमें महाप्रभुके कीर्तनके सङ्गी थे। महाप्रभुके संन्यासके पश्चात् उड़ीसा जाते समय श्रीजगदानन्द पण्डितने उनका दण्ड वहन किया और भिक्षा की॥21॥

(7) श्रीराघव पण्डित-शाखा :—

राघव-पण्डित—प्रभुर आद्य अनुचर।
ताँर शाखा मुख्य एक,—मकरध्वज कर॥24॥

अनुवाद—श्रीराघव पण्डित श्रीचैतन्यदेवके नित्य सेवक हैं। इनकी एक मुख्य शाखा श्रीमकरध्वज-कर हैं॥24॥

अनुभाष्य—श्रीगौरगणोद्देश-दीपिकाके 166वें श्लोकमें इस प्रकार वर्णन आता है—

"धनिष्ठा भक्ष्यसामग्रीं कृष्णायादात् व्रजेऽमिताम्।
सैव सम्प्रति गौराङ्गप्रियो राघवपण्डितः॥"166॥

"व्रजकी धनिष्ठा नामक जो सखी श्रीकृष्णके लिये अपरिमित स्वादिष्ट खाद्य सामग्री प्रस्तुत करती थीं, वे अब गौराङ्गप्रिय श्रीराघव पण्डित हैं।"

पाणिहाटी ग्राममें राघवभवन है। [टीका लिखनेके समय] राघव पण्डितकी समाधिके ऊपर लताकुञ्ज-आवृत एक ऊँची वेदी स्थापित है। जिस स्थानपर समाधि है, उसकी उत्तर दिशामें एक खण्डहर-प्राय जीर्ण-शीर्ण घरमें बिना किसी विशेष यत्नसे सेवित श्रीमदनमोहनका विग्रह विराजमान है। पाणिहाटीके वर्तमान जमीन्दार श्रीशिवचन्द्र राय चौधुरीके तत्त्वावधानमें इस सेवाकी व्यवस्था चल रही है।

श्रीगौरगणोद्देश-दीपिकाके 141वें श्लोकमें इस प्रकार वर्णन आता है—

"नटश्चन्द्रमुखः प्राग् यः स करो मकरध्वजः॥"141॥

"पूर्वकालके नट अर्थात् नाटकमें अभिनय करनेवाले चन्द्रमुख अब मकरध्वज-कर हुए हैं।" ये पाणिहाटी ग्राममें रहते थे॥24॥

उनकी बहन दमयन्ती गुणोंकी राशि :—

ताँहार भगिनी दमयन्ती प्रभुर प्रिय दासी।
प्रभुर भोगसामग्री ये करे बारमासी॥25॥

अनुवाद—श्रीराघव पण्डितकी बहन श्रीदमयन्ती देवी महाप्रभुकी प्रिय दासी हैं, जो बारह मासोंके लिये एक बारमें ही प्रभुके लिये समस्त भोगसामग्री प्रस्तुत करती थीं॥25॥

अनुभाष्य—श्रीगौरगणोद्देश-दीपिकाके 167वें श्लोकमें इस प्रकार वर्णन आता है—

"गुणमाला व्रजे यासीद्दमयन्ती तु तत्स्वसा॥"167॥

"व्रजकी गुणमाला सखी अब श्रीराघव पण्डितकी बहन दमयन्ती हैं॥"25॥

से-सब सामग्री यत झालिते भरिया।
राघव लइया या'न गुपत करिया॥26॥

बारमास ताहा प्रभु करेन अङ्गीकार।
'राघवेर झालि' बलि' प्रसिद्धि याहार॥27॥

से-सब सामग्री आगे करिब विस्तार।
याहार श्रवणे भक्तेर बहे अश्रुधार॥28॥

अनुवाद—वह सब सामग्रीको यत्नसे एक टोकरीमें भरकर रख देती, जिसे राघव पण्डित छिपाकर महाप्रभुके लिये श्रीपुरुषोत्तम धाम ले जाते। महाप्रभु बारह मास तक उस सामग्रीका आस्वादन करते, इसलिये यह 'राघवकी डलिया'के नामसे प्रसिद्ध है। उस सब सामग्रीका आगे विस्तारपूर्वक वर्णन करूँगा, जिसे सुनकर भक्तोंके नेत्रोंसे अश्रुधारा प्रवाहित होने लगती है॥26-28॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'आगे'—चैःचः अन्त्यलीलाके दसवें अध्यायमें यह द्रष्टव्य है॥28॥

अनुभाष्य—चैःचः अन्त्यलीलाके दसवें अध्यायमें 'झाली' का वर्णन द्रष्टव्य है॥27॥

(8) श्रीगङ्गादास :—

प्रभुर अत्यन्त प्रिय—पण्डित गङ्गादास।
याँहार स्मरणे हय सर्वबन्ध-नाश॥29॥

अनुवाद—श्रीगङ्गादास पण्डित श्रीचैतन्यदेवके अत्यन्त प्रिय हैं, जिनके केवल स्मरणमात्रसे समस्त बन्धनोंका नाश हो जाता है॥29॥

अनुभाष्य—श्रीगौरगणोद्देश-दीपिकाके 53 और 111 श्लोकोंमें इस प्रकार वर्णन आता है—

"पुरासीत् रघुनाथस्य यो वशिष्ठमुनिर्गुरुः।
स प्रकाशविशेषेण गङ्गादास-सुदर्शनौ॥53॥
गङ्गादासः प्रभुप्रियः।
आसीन्निधुवने प्राग् यो दुर्वासा गोपिका-प्रियः॥"111॥

"पूर्वकालमें जो श्रीरघुनाथके गुरु श्रीवशिष्ठ मुनि थे, वे ही अब प्रकाश भेदसे श्रीगङ्गादास और श्रीसुदर्शन हैं। पूर्वकालमें जो निधुवनमें गोपिकाप्रिय श्रीदुर्वासा थे, वे ही महाप्रभुके प्रिय श्रीगङ्गादास हैं॥29॥

(9) श्रीपुरन्दर आचार्य :—

चैतन्य-पार्षद—श्रीआचार्य पुरन्दर।
पिता करि' याँरे बले गौराङ्गसुन्दर॥30॥

अनुवाद—श्रीपुरन्दर आचार्य श्रीचैतन्य महाप्रभुके पार्षद थे, जिन्हें श्रीगौराङ्गसुन्दर 'पिता' कहकर सम्बोधित करते थे॥30॥

अनुभाष्य—(चैःभाः अन्त्यखण्ड, पाँचवें अध्यायमें)—

"प्रभु आइलेन मात्र पण्डितेर घर।
वार्त्ता पाइ' आइला आचार्य पुरन्दर॥15॥
ताहाने देखिया प्रभु पिता करि' बले।
प्रेमावेशे मत्त ताने करिलेन कोले॥16॥
परम-सुकृति से आचार्य पुरन्दर।
प्रभु देखि' कान्दे अति हइ असम्बर॥"17॥

"कुमारहट्टमें स्थित श्रीवास पण्डितके घर श्रीचैतन्य महाप्रभुके आनेका समाचार पाते ही श्रीपुरन्दर आचार्य वहाँ आ पहुँचे। उन्हें देखकर महाप्रभुने उन्हें 'पिता' कहकर सम्बोधित किया और प्रेमके आवेशमें मत्त होकर उन्हें अपनी गोदमें ले लिया। परम सुकृतिवान् श्रीपुरन्दर आचार्य महाप्रभुको देखकर अधीर होकर बहुत क्रन्दन करने लगे॥"30॥

(10) श्रीदामोदर पण्डित-शाखा :—

दामोदर पण्डित-शाखा प्रेमेते प्रचण्ड।
प्रभुर उपरे येँहो कैल वाक्यदण्ड॥31॥

दण्ड-कथा कहिब आगे विस्तार करिया।
दण्डे तुष्ट प्रभु ताँरे पाठाइला नदीया॥32॥

अनुवाद—एक अन्य शाखा श्रीदामोदर पण्डित हैं, जिनकी महाप्रभुमें प्रचण्ड प्रीति है। इन्होंने वाक्यके द्वारा महाप्रभुको भी शासन किया था, जिसका आगे विस्तारसे वर्णन करूँगा। इनके इस वाक्य-दण्डसे प्रसन्न होकर महाप्रभुने इन्हें नवद्वीपमें भेजा था॥ 31-32॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'आगे' अर्थात् चैःचः अन्त्यलीलाका तीसरा अध्याय द्रष्टव्य है॥ 32॥

अनुभाष्य—श्रीगौरगणोद्देश-दीपिकाके 159वें श्लोकमें इस प्रकार वर्णन आता है—

"शैव्या यासीत् व्रजे चण्डी स दामोदरपण्डितः।
कुतश्चित् कार्यतो देवी प्राविशत्तं सरस्वती॥"159॥

"व्रजमें जो प्रखरा शैव्या थीं, वे ही श्रीदामोदर पण्डित हैं। किसी कार्यवशतः श्रीसरस्वतीदेवी भी इनमें प्रविष्ट हुई हैं।"

महाप्रभुकी आज्ञासे श्रीदामोदर शचीमाताके दर्शनके लिये गौड़देश आते और रथयात्रासे पहले भक्तोंके साथ पुरुषोत्तम धाम जाते थे। महाप्रभुके द्वारा शचीदेवीकी श्रीकृष्णभक्तिके विषयमें जिज्ञासा सुनकर श्रीदामोदरने जो कहा—वह चैःभाः अन्त्यखण्ड, नौवें अध्यायमें वर्णित है। चैःचः अन्त्यलीला, तीसरे अध्यायमें महाप्रभुके प्रति दामोदर पण्डितके वाक्य-दण्डका वृत्तान्त द्रष्टव्य है॥ 31-32॥

अमृतानुकणिका—दामोदर पण्डित आइ (शचीमाता) को देखनेके लिये नवद्वीप गये थे, वे आइको देखकर शीघ्र चले आये। दामोदरको देखकर महाप्रभुने उन्हें एकान्तमें बुलाया और आइका वृत्तान्त पूछने लगे। महाप्रभुने कहा,—"तुम तो उनके (आइके) पास थे। सत्य कहना, क्या आइकी विष्णुमें भक्ति है?" यह सुनकर परम तपस्वी निरपेक्ष दामोदर क्रोधित होकर कहने लगे,—"क्या कहा गोसाईं, आइकी विष्णुमें भक्ति है? आप किस प्रयोजनसे यह पूछ रहे हैं? आइकी कृपासे ही आपमें विष्णुभक्ति है। आपका जो कुछ भी है, वह सब उन्हींकी शक्ति है। आपमें जितनी विष्णुभक्ति उदित हुई है, निश्चय ही जान लीजिये, यह सब आइकी कृपासे ही है। अश्रु, कम्प, स्वेद, मूर्च्छा, पुलक, हुँकार आदि विष्णुभक्तिके जितने भी विकार समूह हैं, आइके श्रीअङ्गोंमें उन सबका एक क्षणके लिये भी विराम नहीं है। आइके श्रीमुखमें निरन्तर कृष्णनाम स्फुरित होता रहता है। आप आइकी भक्तिकी कथा पूछ रहे हैं! आइको देखनेसे ही पता चलता है कि 'विष्णुभक्ति' किसे कहते हैं। मैं आपसे कह रहा हूँ कि आइ मूर्तिमती भक्तिस्वरूपा हैं। आप यह जानकर भी माया विस्तारपूर्वक मुझसे पूछ रहे हैं। प्राकृत-शब्दके रूपमें भी जो 'आइ' कहेगा, आइ-शब्दके प्रभावसे उसे कोई दुःख नहीं रहेगा।"

पुत्र-सङ्गसे वञ्चित होकर आइकी भक्ति कैसी है, इसलिये महाप्रभुने यह प्रश्न किया था और दामोदरके मुखसे आइकी महिमा सुनकर महाप्रभुको असीम आनन्द हुआ॥ 32॥

(11) श्रीशङ्कर पण्डित-माहात्म्य और शाखा :—

ताँहार अनुज शाखा—शङ्कर पण्डित।
'प्रभु-पादोपाधान' याँर नाम विदित॥ 33॥

अनुवाद—श्रीदामोदर पण्डितके छोटे भाई श्रीशङ्कर पण्डित एक अन्य शाखा हैं। ये महाप्रभुके 'चरणोंके तकिया'के नामसे प्रसिद्ध थे॥ 33॥

अनुभाष्य—श्रीगौरगणोद्देश-दीपिकाके 157वें श्लोकमें इस प्रकार वर्णन आता है—

"यस्या वक्षसि सुष्वाप कृष्णो वृन्दावने पुरा।
सा श्रीभद्राद्य गौराङ्गप्रियः शङ्करपण्डितः॥"157॥

"वृन्दावनमें श्रीकृष्ण जिनके वक्षःस्थलपर शयन करते थे, वे श्रीभद्रा सखी ही अब श्रीशङ्कर पण्डित हैं।" (चैःचः अन्त्यलीला 19/67-74 संख्या द्रष्टव्य है)।

महाप्रभु श्रीदामोदर पण्डितके प्रति गौरव बुद्धिके साथ प्रीति रखते थे और उनके छोटे भाई श्रीशङ्कर पण्डितसे उनका केवल शुद्ध प्रेम था (चैःचः मध्यलीला 11/146-148 संख्या द्रष्टव्य है)॥ 33॥

(12) श्रीसदाशिव पण्डित :—

सदाशिव-पण्डित याँर प्रभुपदे आश।
प्रथमेइ नित्यानन्देर याँर घरे वास॥ 34॥

अनुवाद—श्रीसदाशिव पण्डित सदा श्रीमन्महाप्रभुके चरणोंकी सेवाकी अभिलाषा करते थे। नवद्वीपमें आकर श्रीनित्यानन्द प्रभु सबसे पहले इनके घरमें रहे थे॥ 34॥

अनुभाष्य—(चैःभाः अन्त्यखण्ड, 8/19—श्रीरथयात्राके समय)—

"सदाशिव पण्डित चलिला शुद्धमति।
याँर घरे पूर्वे नित्यानन्देर वसति॥"

"पहले श्रीनित्यानन्द प्रभु जिनके घरमें रहे थे, वे शुद्धमति श्रीसदाशिव पण्डित रथयात्राके लिये नीलाचलकी ओर अग्रसर हुए।"

ये नवद्वीपमें महाप्रभुके कीर्तनके सङ्गी थे। गयासे लौटनेके पश्चात् महाप्रभुने इन्हें और अन्य भक्तोंको शुक्लाम्बरके घरमें अपने श्रीकृष्ण-भजनके विषयमें बतलाया था। श्रीचन्द्रशेखर-भवनमें लक्ष्मीके वेषमें नृत्य करनेके समय महाप्रभुने इनको वेषभूषादि तैयार करनेके लिये कहा था (चैःभाः मध्यखण्ड, 18वाँ अध्याय द्रष्टव्य है)॥ 34॥

(13) श्रीप्रद्युम्न ब्रह्मचारी :—

श्रीनृसिंह-उपासक—प्रद्युम्न ब्रह्मचारी।
प्रभु ताँर नाम कैला 'नृसिंहानन्द' करि'॥ 35॥

अनुवाद—श्रीप्रद्युम्न ब्रह्मचारी श्रीनृसिंह भगवान्के उपासक थे, इसलिये महाप्रभुने इनका नाम 'श्रीनृसिंहानन्द' रखा था॥ 35॥

अनुभाष्य—(चैःचः अन्त्यलीला 2/53)—

"प्रद्युम्न ब्रह्मचारी ताँर निजनाम।
'नृसिंहानन्द' नाम ताँर कैल गौरधाम॥"

"प्रद्युम्न ब्रह्मचारी उनका अपना नाम था, [नृसिंह भगवान्के प्रति उनकी निष्ठा देखकर] महाप्रभुने उनको 'नृसिंहानन्द' नाम दिया।" पाणिहाटीमें श्रीराघव पण्डितके घरसे लौटकर कुमारहट्टमें श्रीशिवानन्दसेनके घरमें महाप्रभुने श्रीप्रद्युम्न ब्रह्मचारीके हृदयमें आविर्भूत होकर श्रीजगन्नाथ, श्रीनृसिंह और अपना—तीनोंका भोग ग्रहण किया था (चैःचः अन्त्यलीला 2/48-78 संख्या द्रष्टव्य है)।

कुलियासे महाप्रभुका वृन्दावन जानेका समाचार सुनकर ये ध्यानमग्न चित्तमें कुलियासे वृन्दावन तकके मार्गको रत्नादिके द्वारा सजाने लगे, किन्तु बीचमें ही ध्यान भङ्ग होनेके कारण वे भक्तोंसे बोले—"महाप्रभु इस बार कानाई-नाटशाला तक ही जायेंगे, वृन्दावन नहीं जायेंगे।"—(चैःचः मध्यलीला संख्या 1/55-62)। (श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 74वाँ श्लोक)—

"आवेशश्च तथा ज्ञेयो मिश्रे प्रद्युम्नसंज्ञके॥"74(क)॥

"श्रीप्रद्युम्न ब्रह्मचारीमें श्रीगौरहरिका आवेश जानना चाहिये।" (चैःभाः अन्त्यखण्ड, 3/186 संख्यामें)—

"याँहार शरीरे नृसिंहेर परकाश।"

"जिनके शरीरमें श्रीनृसिंहदेवका प्रकाश था।" और (चैःभाः अन्त्यखण्ड, 9वें अध्यायमें)—

"साक्षात् नृसिंह याँर सने कथा कय।"

"साक्षात् श्रीनृसिंहदेव इनके साथ बात करते थे॥"35॥

(14) श्रीनारायण पण्डित :—

नारायण-पण्डित एक बड़इ उदार।
चैतन्यचरण बिनु नाहि जाने आर॥ 36॥

अनुवाद—श्रीनारायण पण्डित बड़े ही उदार थे। वे श्रीचैतन्य-चरणोंके अतिरिक्त और कुछ नहीं जानते थे॥ 36॥

अनुभाष्य—(चैःभाः अन्त्यखण्ड, 9/93 संख्यामें)—श्रीवास पण्डितके भ्राता श्रीराम पण्डितके साथ श्रीनारायण पण्डित महाप्रभुके दर्शनके लिये नीलाचल गये थे॥ 36॥

(15) श्रीमान् पण्डित-शाखा :—

श्रीमान्पण्डित शाखा—प्रभुर निज भृत्य।
देउटि धरेन, यबे प्रभु करेन नृत्य॥ 37॥

अनुवाद—एक और शाखा श्रीमान् पण्डित श्रीचैतन्य महाप्रभुके निज दास हैं। महाप्रभुके नृत्यके समय ये हाथमें जलती हुई मशाल धारण करते थे॥ 37॥

अनुभाष्य—नवद्वीपवासी 'श्रीमान् पण्डित' महाप्रभुके प्रथम कीर्तनके सङ्गी थे। वेषसज्जाके दिन महाप्रभुके देवीभावमें और सर्वत्र महाप्रभुके नृत्यकालमें ये जलती हुई मशाल धारण करते थे। (चैःभाः मध्यखण्ड, 18/154,157 संख्यामें)—

"आद्याशक्ति-वेशे नाचे प्रभु गौरसिंह।
सुखे देखे ताँर यत चरणेर भृङ्ग॥ 154॥
सम्मुखे देउटी धरे पण्डित श्रीमान्॥ 157॥"

"आद्याशक्तिके वेशमें प्रभु गौरसिंह नृत्य कर रहे थे। उनके चरणकमलोंके भ्रमररूपी भक्त बड़े आनन्दसे उस नृत्यको देख रहे थे। सामने हाथमें मशाल लेकर श्रीमान् पण्डित खड़े थे॥"37॥

(16) श्रीशुक्लाम्बर ब्रह्मचारी :—

शुक्लाम्बर-ब्रह्मचारी बड़ भाग्यवान्।
याँर अन्न मागि' काड़ि' खाइला भगवान्॥ 38॥

अनुवाद—श्रीशुक्लाम्बर ब्रह्मचारी बड़े भाग्यवान् हैं, जिनकी भिक्षा-झोलीमेंसे प्रभुने अन्न निकालकर खाया था॥ 38॥

अनुभाष्य—'श्रीशुक्लाम्बर ब्रह्मचारी'—श्रीनवद्वीपवासी थे और महाप्रभुके प्रथम कीर्तनके सङ्गी थे। (चैःभाः मध्यखण्ड, प्रथम अध्याय)—गयासे लौटनेके पश्चात् महाप्रभुने इनके घरमें सभी भक्तोंको मिलकर इनसे श्रीकृष्ण-कथा सुनानेका अनुरोध किया था। (चैःभाः मध्यखण्ड, सोहलवाँ और पच्चीसवाँ अध्याय)—नवद्वीपलीलामें महाप्रभु इनको भिक्षामें मिले चावलको छीनकर परमानन्दसे खाते थे। श्रीगौरगणोद्देश-दीपिकाके 191वें श्लोकमें—

"शुक्लाम्बरो ब्रह्मचारी पुरासीद् यज्ञपत्निका।
प्रार्थयित्वा यदन्नं श्रीगौराङ्गो भुक्तवान् प्रभुः।
केचिदाहुर्ब्रह्मचारी याज्ञिकब्राह्मणः पुरा॥"191॥

"जो पहले यज्ञपत्नी थीं, वे ही अब श्रीशुक्लाम्बर ब्रह्मचारी हैं। श्रीगौराङ्ग महाप्रभु इन्हींसे अन्नकी प्रार्थनाकर भोजन करते थे। कोई-कोई कहते हैं कि ये पहले याज्ञिक ब्राह्मण थे॥"38॥

(17) श्रीनन्दन-आचार्य-शाखा :—

नन्दन-आचार्य-शाखा जगते विदित।
लुकाइया दुइ प्रभुर याँर घरे स्थित॥ 39॥

अनुवाद—श्रीनन्दनाचार्य-शाखाको सारा जगत् जानता है। इन्हींके घरमें दोनों प्रभु (श्रीचैतन्य-श्रीनित्यानन्द) छिपकर रहे थे॥ 39॥

अनुभाष्य—'श्रीनन्दन आचार्य'—श्रीनवद्वीपवासी थे और महाप्रभुके कीर्तनके सङ्गी थे। श्रीनित्यानन्द प्रभु अवधूत वेषमें अनेक तीर्थ-भ्रमणके उपरान्त सर्वप्रथम इन्हींके घरमें आये थे। वहींपर ही उनका महाप्रभु और भक्तोंसे मिलन हुआ था। महाप्रकाशके दिन महाप्रभुने श्रीअद्वैताचार्यको लानेके लिये श्रीरामाई पण्डितको भेजा था। श्रीअद्वैताचार्य श्रीनन्दनाचार्यके घरमें आकर छिपे थे और सर्वान्तर्यामी श्रीगौरसुन्दर यह जान गये थे। महाप्रभु भी एक दिन इनके घरमें छिपे थे। (चैःभाः मध्यखण्ड, छठा और सतरहवाँ अध्याय द्रष्टव्य है)॥ 39॥

(18) श्रीमुकुन्द दत्त-शाखा :—

श्रीमुकुन्द-दत्त शाखा—प्रभुर समाध्यायी।
याँहार कीर्त्तने नाचे चैतन्य-गोसाञि॥ 40॥

अनुवाद—श्रीमुकुन्द दत्त नामक शाखा महाप्रभुके सहपाठी हैं, जिनके कीर्तनमें महाप्रभु स्वयं नृत्य करते थे॥ 40॥

अनुभाष्य—श्रीमुकुन्द दत्त चट्टग्राम जिलेके पाटिया थानेके अन्तर्गत 'छनहरा' ग्राममें आविर्भूत हुए थे। यह स्थान श्रीविद्यानिधिके श्रीपाट 'मेखला ग्राम' से दस कोसकी दूरी पर है। (श्रीगौरगणोद्देश-दीपिकाके 140वें श्लोकमें)—

"व्रजे स्थितौ गायकौ यौ मधुकण्ठ-मधुव्रतौ।
मुकुन्द-वासुदेवौ तौ दत्तौ गौराङ्ग-गायकौ॥"

"व्रजके मधुकण्ठ नामक गायक अब श्रीगौराङ्गदेवके गायक श्रीमुकुन्द दत्त हैं।" विद्या-शिक्षाके समय निमाइ अपने सहपाठी मुकुन्दके साथ न्यायशास्त्रकी पहेलियोंको लेकर झगड़ा किया करते थे (चैःभाः आदिखण्ड, सातवाँ और आठवाँ अध्याय)। गयासे लौटनेके पश्चात् श्रीकृष्णप्रेममें मत्त महाप्रभुको मुकुन्द भागवतके श्लोक पढ़कर आनन्द प्रदान करते थे। इनकी ही चेष्टासे सङ्गी श्रीगदाधर पण्डितने श्रीपुण्डरीक विद्यानिधिसे दीक्षा प्राप्त की (चैःचः मध्यलीला सातवाँ अध्याय)। श्रीवास-आङ्गनमें जब ये कीर्तन करते थे, तब महाप्रभु नृत्य करते थे। और महाप्रभुके 'सातप्रहरिया' भावकालमें इन्होंने 'अभिषेक' नामक गीत गाया था। मुकुन्दके प्रति दण्ड और कृपा (चैःभाः मध्यखण्ड, दसवाँ अध्याय द्रष्टव्य है)। श्रीचन्द्रशेखर-भवनमें महाप्रभुके द्वारा लक्ष्मी-वेषमें नृत्यके समय इन्होंने कीर्तन आरम्भ किया था। संन्यास ग्रहण करनेका निर्णय श्रीनित्यानन्द प्रभुको बतलानेके पश्चात् महाप्रभु मुकुन्दके घरमें उपस्थित हुए थे। सब बातोंसे अवगत होकर इन्होंने महाप्रभुसे कुछ और दिन तक नवद्वीपमें कीर्तनलीला करनेका अनुरोध किया था (चैःभाः मध्यखण्ड, पच्चीसवाँ अध्याय)। श्रीनित्यानन्द प्रभुके द्वारा महाप्रभुके संन्यास लेनेका समाचार श्रीगदाधर, चन्द्रशेखरके साथ मुकुन्दको भी मिला और वे उनके साथ कटोआ गये। वहाँ मुकुन्द कीर्तन और संन्यासोचित क्रियाओंको सम्पादनकर महाप्रभुके संन्यासके उपरान्त उनके पीछे-पीछे श्रीनिताइ, श्रीगदाधर और श्रीगोविन्दके साथ गये (चैःचः मध्यलीला, छब्बीसवाँ अध्याय; अन्त्य, प्रथम अध्याय) और इस प्रकार महाप्रभुके पीछे-पीछे पुरुषोत्तम तक गमन किया (चैःचः अन्त्यलीला, द्वितीय अध्याय)। जलेश्वर जाते समय श्रीनित्यानन्द प्रभुके द्वारा महाप्रभुका दण्डभङ्ग करनेके समय मुकुन्द भी उपस्थित थे, कुछ समय बाद महाप्रभु भी जलेश्वरमें उपस्थित हुए। मुकुन्द प्रतिवर्ष भक्तोंके साथ नवद्वीपसे प्रभुके दर्शनोंके लिये नीलाचल आते थे॥ 40॥

अमृतानुकणिका—महाप्रभुने महा-प्रकाश-लीलामें सभी भक्तोंको मनोवाञ्छित वर प्रदान किये। उस समय मुकुन्द बाहर ही खड़े थे। श्रीवासने जब मुकुन्दके लिये कृपाकी भिक्षा माँगी, तब महाप्रभुने कहा,—"मुकुन्द उनके दर्शनका अधिकारी नहीं है, क्योंकि मुकुन्द प्रत्येक सम्प्रदायसे मिलकर विभिन्न सम्प्रदायोंके भावोंको ग्रहण किया करता है। उसकी मति अभी अस्थिर है एवं भक्तिके प्रति उसकी निष्ठा नहीं है। वह 'खड़-जठिया' है,—कभी दाँतोंमें 'खड़' (तृण) धारण करता है, तो कभी 'जाठि' (लाठी) भी उठा लेता है। भक्ति ही सर्वश्रेष्ठ है,—इस बातको न मानना ही भगवान्के अङ्गमें 'जाठि' (लाठी) मारना है।"

यह बात सुनकर मुकुन्दने उसी दिन अपने देह त्याग देनेका सङ्कल्प कर लिया और श्रीवाससे कहा कि आप महाप्रभुसे पूछकर आओ कि क्या मैं कभी उनका दर्शन कर पाऊँगा या नहीं? श्रीवासने आकर उत्तर दिया कि कोटि जन्मके पश्चात् दर्शन मिलेगा। यह सुनकर मुकुन्द आनन्दपूर्वक स्वयंको भूलकर नृत्य करने लगे कि कोटि जन्मके पश्चात् तो मुझे महाप्रभुका दर्शन मिलेगा। तब महाप्रभुने उसे अपने पास बुलाकर उसके सभी अपराध क्षमा कर दिये एवं अपनी पराजय स्वीकार करते हुए कहा,—"मुकुन्द, तुम्हारी जिह्वामें मेरा नित्य अधिष्ठान है।" यह सुनकर मुकुन्दने भक्तिहीनताके लिये अपनेको धिक्कारते हुए भक्तियोगके प्रभाव एवं भक्तिहीनताके भयावह परिणामके बारेमें दृष्टान्त सहित वर्णन किया। मुकुन्दके खेद-दर्शनसे लज्जित विश्वम्भरने अपनी भक्तिका श्रेष्ठत्व बतलाते हुए वेदोंमें उल्लिखित कर्मकाण्डके फलस्वरूप सभी प्रकारके कर्म-बन्धनोंसे मुक्ति दिलानेके लिये केवल अपनी भक्तिका ही प्रभुत्व स्थापित किया एवं मथुरावासी अभक्त धोबीकी भाग्यहीनताकी कथाका उल्लेख करते हुए मुकुन्दको यह वर दिया कि उनके सभी अवतारोंमें मुकुन्द उनके गायक बनेंगे॥ 40॥

(19) श्रीवासुदेवदत्त ठाकुरकी गुणराशि :—

वासुदेव दत्त—प्रभुर भृत्य महाशय।
सहस्र-मुखे याँर गुण कहिले ना हय॥ 41॥

अनुवाद—श्रीवासुदेव दत्त महाप्रभुके सेवक हैं। हजार मुखोंके द्वारा भी उनके गुणोंको कहा नहीं जा सकता॥ 41॥

अनुभाष्य—श्रीवासुदेव दत्तका जन्म चट्टग्राममें हुआ था और ये श्रीमुकुन्द दत्तके भाई हैं। (चैःभाः अन्त्यखण्ड, 8/14)—

"याँर स्थाने कृष्ण हय आपने विक्रय।"

"जिनके प्रेमके कारण श्रीकृष्ण उनके हाथों बिक गये हैं।" (चैःभाः अन्त्यखण्ड, 5वाँ अः)—

"हेन से प्रभुर प्रीति दत्तेर विषय।
प्रभु बले,—"आमि वासुदेवेर निश्चय॥"26॥
आपने श्रीगौरचन्द्र बले बार बार।
"ए शरीर वासुदेव दत्तेर आमार॥ 27॥
दत्त आमा' यथा बेचे, तथाइ बिकाइ।
सत्य, सत्य, इहाते अन्यथा किछु नाइ॥ 28॥
सत्य आमि कहि, शुन, वैष्णवमण्डल।
ए देह आमार वासुदेवेर केवल॥"

"वासुदेव दत्तसे महाप्रभुकी इतनी प्रीति थी कि महाप्रभु कहने लगे—"मैं निश्चित रूपसे वासुदेवका हूँ। मेरा यह शरीर वासुदेवका है। दत्त मुझे जहाँ बेचता है, मैं वहीं बिक जाता हूँ। यही सत्य है, सत्य है, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। हे वैष्णव मण्डली! सुनिये, मैं सत्य कह रहा हूँ कि मेरा यह शरीर केवल वासुदेवका है।" इनके ही अनुगृहीत श्रीरघुनाथदास गोस्वामीके दीक्षा गुरु श्रीयदुनन्दन आचार्य थे (चैःचः अन्त्यलीला, 6/161)। इनमें प्रचुर धन व्यय करनेकी प्रवृत्तिको देखकर महाप्रभुने श्रीशिवानन्द सेनको इनका 'सरखेल' (प्रबन्धक) बनाकर व्ययके समाधानके लिये आदेश दिया (चैःचः मध्यलीला, 15/93-96)। जीवोंके दुःखोंको देखकर महाप्रभुसे इनकी प्रार्थनाके लिये (चैःचः मध्यलीला, 15/159-180) द्रष्टव्य है॥ 41॥

जगते यतेक जीव, तार पाप लञा।
नरक भुञ्जिते चाहे जीव छाड़ाइया॥ 42॥

अनुवाद—(वासुदेव दत्तने महाप्रभुसे प्रार्थना की)—"जगत्के समस्त लोगोंके पापोंको लेकर मैं स्वयं नरक भोग करूँ और वे सब पाप-बन्धनसे मुक्त होकर सुखको प्राप्त करें॥"42॥

(20) नामाचार्य ठाकुर हरिदासकी गुणराशि और उनकी शाखा :—

हरिदास ठाकुर-शाखार अद्भुत चरित।
तिनलक्ष नाम तेँहो लयेन अपतित॥ 43॥

ताँहार अनन्त गुण,—करि दिङ्मात्र।
आचार्य गोसाञि याँरे भुञाय श्राद्धपात्र॥ 44॥

प्रह्लाद-समान ताँर गुणेर तरङ्ग।
यवन-ताड़नेओ याँर नाहिक भ्रूभङ्ग॥ 45॥

तेँहो सिद्धि पाइले ताँर देह लञा कोले।
नाचिल चैतन्यप्रभु महाकुतूहले॥ 46॥

ताँर लीला वर्णियाछेन वृन्दावनदास।
येबा अवशिष्ट, आगे करिब प्रकाश॥ 47॥

अनुवाद—श्रीहरिदास ठाकुर नामक शाखाका अद्भुत चरित्र है। वे नित्य ही नियमपूर्वक तीन लाख नाम करते थे। इनके अनन्त गुण हैं, किन्तु मैं उनका केवल दिग्दर्शन करा रहा हूँ। श्रीअद्वैताचार्यने सर्वप्रथम इन्हें अपने पिताके श्राद्धपात्रका अन्न भोजन कराया। इनमें प्रह्लादके समान गुण हैं, यवनोंके द्वारा अत्याचार किये जानेपर भी इनकी भृकुटि जरा भी टेढ़ी नहीं हुई। इनके तिरोभावपर महाप्रभुने स्वयं इनकी चिन्मय देहको गोदमें लेकर महा-आनन्द सहित नृत्य किया था। श्रीवृन्दावनदास ठाकुरने इनकी लीलाओंका वर्णन अपने ग्रन्थ श्रीचैतन्यभागवतमें किया है। जो कुछ शेष रह गया है, उसका आगे विस्तारपूर्वक वर्णन करूँगा॥ 43-47॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'अपतित' अर्थात् विधिभङ्ग किये बिना॥43॥

अनुभाष्य—(चैःभाः आदिखण्ड, द्वितीय अध्याय)—

"बूढ़ने हइला अवतीर्ण हरिदास॥"37॥

(चैःभाः आदिखण्ड, सोलहवाँ अध्याय)—

"कतदिन थाकि' आइला गङ्गातीरे।
आसिया रहिल फुलियाय शान्तिपुरे॥"19॥

"इनका आविर्भाव 'बूढ़ने' ग्राममें हुआ था। कुछ समयके बाद वे शान्तिपुरमें गङ्गातटपर फुलिया ग्राममें रहने लगे।"

यवनोंके द्वारा अत्याचारका प्रसङ्ग (चैःभाः आदिखण्ड 16वें अध्याय)में वर्णित है। श्रीहरिदासकी दैन्योक्ति और महाप्रभुकी कृपा (चैःभाः मध्यखण्ड, 10वाँ अध्याय); द्वार-द्वारपर नाम प्रचार (चैःचः मध्यलीला, 13वाँ अध्याय); चन्द्रशेखर-भवनमें अभिनयके समय श्रीहरिदासका कोतवालवेष (चैःभाः मध्यखण्ड, 18वाँ अध्याय); बेनोपोलमें हरिनाम-भजन और परीक्षा (चैःचः अन्त्यलीला, 3रा अध्याय) और श्रीहरिदास ठाकुरका निर्याण—(चैःचः अन्त्यलीला, 11वाँ अध्याय) द्रष्टव्य हैं॥43-47॥

(20क) हरिदास-शिष्य सत्यराज खाँ (बसु) आदि :—

ताँर उपशाखा,—यत कुलीनग्रामी जन।
सत्यराज आदि—ताँर कृपार भाजन॥48॥

अनुवाद—श्रीहरिदास ठाकुरकी एक उपशाखा सभी कुलीन ग्रामके निवासी हैं, जिनमें सत्यराज खान आदि उनके कृपाके विशेष पात्र हैं॥48॥

अनुभाष्य—सत्यराज खान कुलीन ग्रामके गुणराज खानके पुत्र और रामानन्द बसुके पिता हैं। एक समय श्रीहरिदास ठाकुरने चातुर्मास्यके समय कुलीन ग्राममें रहकर भजन किया था और बसु-वंशजनोंको कृपा प्रदान की थी। कुलीन ग्रामवासियोंको श्रीमन्महाप्रभुने प्रतिवर्ष रथयात्राके समय श्रीजगन्नाथदेवके लिये रेशमी डोरी लानेके लिये आदेश दिया था (चैःचः मध्यलीला, 14वाँ अध्याय)। इन्होंने श्रीमन्महाप्रभुसे गृहस्थ-भक्तोंके कर्त्तव्यके विषयमें जिज्ञासा की और उनसे वैष्णव (कनिष्ठ), वैष्णवतर (मध्यम) और वैष्णवतम (उत्तम)के अधिकार-तारतम्य और उनके लक्षणोंका श्रवण किया था (चैःचः मध्यलीला 15/102-109, 16/67-75 संख्या द्रष्टव्य है)। इनकी भजनस्थलीपर आज भी श्रीमन्महाप्रभुका विग्रह विराजमान है। कुलीनग्रामके माहात्म्यके सम्बन्धमें महाप्रभुकी उक्तिके लिये चैःचः आदिलीला 10/82-83, मध्यलीला 10/100-101 संख्या द्रष्टव्य है॥48॥

(21) श्रीमुरारि गुप्त-महिमा और शाखा :—

श्रीमुरारि गुप्त-शाखा—प्रेमेर भाण्डार।
प्रभुर हृदय द्रवे शुनि' दैन्य याँर॥49॥

प्रतिग्रह नाहि करे, ना लय कार धन।
आत्मवृत्ति करि' करे कुटुम्ब भरण॥50॥

चिकित्सा करेन यारे हइया सदय।
देहरोग, भवरोग,—दुइ तार क्षय॥51॥

अनुवाद—श्रीमुरारी गुप्त नामक शाखा प्रेमका भण्डार है। इनकी दीनताको सुनकर महाप्रभुका हृदय द्रवित हो जाता था। वे किसीसे भी दान ग्रहण नहीं करते थे और न ही किसीसे धन लेते थे। केवल चिकित्सा व्यवसायसे अपने कुटुम्बका पालन करते। वे दयापूर्वक जिसकी भी चिकित्सा करते, उसका शरीरका रोग और भवरोग (संसार-बन्धन) दोनों ही दूर हो जाते थे॥49-51॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'आत्मवृत्ति'—स्व-वर्णवृत्ति, श्रीमुरारीगुप्तका व्यवसाय कविराजी (चिकित्सा) था॥50॥

अनुभाष्य—श्रीमुरारीगुप्त 'श्रीचैतन्यचरित' ग्रन्थके लेखक हैं। इनका जन्म श्रीहट्टके वैद्यवंशमें हुआ था और बादमें ये नवद्वीपमें आकर रहने लगे। वे आयुमें महाप्रभुसे बड़े थे। इनके घरमें महाप्रभुने अपना वराह रूप दिखाया था (चैःभाः मध्यखण्ड, तीसरा अध्याय) और महाप्रकाशके समय महाप्रभुने इन्हें श्रीरामरूपके

दर्शन कराये थे (चैःभाः मध्यखण्ड, दसवाँ अध्याय)। श्रीवासके घरमें श्रीनित्यानन्द प्रभुके साथ बैठे हुए श्रीगौरसुन्दरको देखकर इन्होंने सर्वप्रथम श्रीगौरको प्रणाम निवेदन किया और तत्पश्चात् श्रीनित्यानन्द प्रभुको दण्डवत् किया। यह देखकर महाप्रभुने मुरारीगुप्तसे कहा—"तुमने व्यवहारका व्यतिक्रम करके नमस्कार किया है" और महाप्रभुने रातमें स्वप्नमें इनको श्रीनित्यानन्द-तत्त्वकी महिमा बतलायी। तब अगले दिन प्रातःकाल इन्होंने पहले श्रीनित्यानन्द प्रभुके और उसके बाद महाप्रभुके चरणोंकी वन्दना की। यह देखकर महाप्रभुने प्रसन्न होकर अपना चर्वित ताम्बुल इन्हें प्रदान किया। एक दिन इन्होंने महाप्रभुको अधिक घीमें निर्मित अन्न खिलाया। अधिक मात्रामें अन्न खाकर महाप्रभुको अगले दिन अपच हो गया और चिकित्साके लिये वे इनके पास आये। 'मुरारीके जलपात्रका जल ही उसकी औषधि है', यह कहकर इन्होंने महाप्रभुको जल पीनेके लिये दिया, जिससे महाप्रभु स्वस्थ हो गये। एक दिन श्रीवास-भवनमें महाप्रभुने चतुर्भुज रूप धारण किया, तब इन्होंने गरुड़ भावका प्रदर्शन करते हुए महाप्रभुको अपने कन्धोंपर चढ़ाया। 'महाप्रभुके अप्रकटका विरह असहनीय होगा', ऐसा सोचकर महाप्रभुके प्रकटकालमें ही इन्होंने देहत्यागका सङ्कल्प किया और अन्तर्यामी महाप्रभुने उनके सङ्कल्पका निवारण किया (चैःभाः मध्यखण्ड, 20वाँ अः)। एक दिन इनके घरपर महाप्रभुने भावावेशमें अपनी वराह-मूर्ति प्रकट की और उसे देखकर इन्होंने उनकी स्तुति की (चैःभाः मध्यखण्ड, 3रा अः)। इनकी दैन्योक्ति (चैःचः मध्यलीला 11/152-158) और इनकी श्रीरामनिष्ठा (चैःचः मध्यलीला 15/137-157 द्रष्टव्य है)॥ 49॥

(22) श्रीमान् सेन :—

श्रीमान् सेन प्रभुर सेवक प्रधान।
चैतन्य-चरण बिनु नाहि जाने आन॥ 52॥

अनुवाद—श्रीमान् सेन महाप्रभुके एक और प्रधान सेवक हैं, जो श्रीचैतन्य महाप्रभुके चरणकमलोंके अतिरिक्त और कुछ नहीं जानते हैं॥ 52॥

अनुभाष्य—श्रीमान् सेन नवद्वीपवासी और महाप्रभुके सङ्गी थे॥ 52॥

(23) श्रीगदाधरदास-शाखा :—

श्रीगदाधरदास-शाखा सर्वोपरि।
काजीगणेर मुखे येँह बोलाइल हरि॥ 53॥

अनुवाद—श्रीगदाधरदास नामक शाखा सर्वप्रधान है। इन्होंने काजीके मुखसे भी हरिनाम उच्चारण कराया था॥ 53॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीगदाधरदास एँड़ियादहवासी थे॥ 53॥

अनुभाष्य—कोलकातासे चार कोस उत्तरमें 'एँड़ियादह' ग्राम है। श्रीगदाधरदास महाप्रभुके अप्रकट होनेके पश्चात् नवद्वीपसे कटोआमें आ गये (भक्तिरत्नाकर 7वीं तरङ्ग) और उसके बाद एँड़ियादह ग्राममें रहने लगे। जिस प्रकार श्रीगदाधर पण्डित श्रीमती वृषभानुनन्दिनीरूपा हैं, श्रीगदाधरदास भी उसी प्रकार ही श्रीमतीकी अङ्गशोभा हैं। ये 'श्रीराधाभावद्युति-सुवलित' श्रीगौराङ्गकी द्युति स्वरूप हैं। श्रीगौरगणोद्देश-दीपिकामें इन्हें श्रीवृषभानुनन्दिनीकी विभूतिरूप कहकर निर्देश किया है। इनकी श्रीगौर और श्रीनित्यानन्द, दोनोंके परिकरोंमें गणना होती है। श्रीगौराङ्ग महाप्रभुके जन सभी व्रजके मधुररसके रसिक हैं और श्रीनित्यानन्द प्रभुके जन शुद्ध-भक्ति प्रधान सख्यादि रसके रसिक हैं। श्रीगदाधर दास श्रीनित्यानन्दके जन होते हुए भी सख्यभाव गोपाल न होकर मधुर रसिक हैं। कटोआमें इनके पास श्रीगौरसुन्दरका अर्चा-विग्रह था।

1434 शकाब्दमें जब श्रीनित्यानन्द प्रभु महाप्रभुके अनुरोधपर भक्ति-प्रचारके लिये नीलाचलसे गौड़देश गये, तब श्रीगदाधर दास उनके प्रचार कार्यमें एक प्रधान

सहायक बने (चैःचः आदिलीला 11/13-14)। ये सबको हरिनाम करनेका उपदेश देते थे, किन्तु वहाँका काजी कीर्तन-विरोधी था। एक दिन रातके समय कीर्तन करते-करते ये काजीके घर उसके उद्धारके उद्देश्यसे जा पहुँचे और उससे हरिनामका उच्चारण करनेके लिये अनुरोध करने लगे। यह सुनकर काजी कहने लगा—"मैं कल हरि बोलूँगा।" ऐसा सुनकर श्रीगदाधरदास प्रेमसुखपूर्ण होकर बोले—"कल क्यों? अभी तो तुमने अपने मुखसे हरि कहा है।" (श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 154-155वें श्लोकमें)—

"राधाविभूतिरूपा या चन्द्रकान्तिः पुरा व्रजे।
सः श्रीगौराङ्ग-निकटे दासवंशयो-गदाधरः॥ 154॥
पूर्णानन्दा साद्य व्रजे यासीत् बलदेवप्रियाग्रणीः।
सापि कार्यवशादेव प्राविशत्तं गदाधरम्॥"155॥

"जो पहले राधिकाकी विभूति स्वरूपा अर्थात् श्रीमतीकी अङ्गशोभा चन्द्रकान्ति थीं, वे अब श्रीगौराङ्गके निकट दासवंशके गदाधर अर्थात् श्रीगदाधर दास हैं। व्रजमें श्रीबलरामकी प्रियाओंमें श्रेष्ठ पूर्णानन्दा भी किसी कारणवश इन्हीं श्रीगदाधर दासमें प्रविष्ट हुई हैं।"

नीलाचलसे गौड़देश आते हुए श्रीनित्यानन्द प्रभुने देखा कि श्रीगदाधरदास श्रीराधाभावमें जोरसे अट्टहास करते हुए स्वयंको दही बेचनेवाली समझकर अपना बाहिरी परिचय भूल गये। कभी ये गोपीभावमें विभोर होकर गङ्गाजलसे भरे घड़ेको सिरपर लेकर दूध बेचने लगते।

(चैःभाः अन्त्यखण्ड 5वाँ अः)—श्रीमन्महाप्रभु गौड़देशसे वृन्दावन जाते हुए जब पाणिहाटीमें श्रीराघव-भवनमें आये थे—

"राघव-मन्दिरे शुनि' श्रीगौरसुन्दर।
गदाधरदास धाइ' आइला सत्वर॥ 92॥
प्रभुओ देखिया गदाधर सुकृतिरे।
श्रीचरण तुलिया दिलेन ताँर शिरे॥"94॥

"तब उनके आगमनका समाचार सुनकर श्रीगदाधर दास भागकर वहाँ पहुँचे। महाप्रभुने इनकी सुकृतिको देखकर अपने चरणकमल इनके मस्तकपर स्थापित किये थे।"

एँड़ियादहमें इनके घरमें इनके प्रकटकालमें 'बाल-गोपाल' की मूर्ति थी। श्रीमाधव घोषने गोपाल-विग्रहके सामने श्रीनित्यानन्द प्रभु और श्रीदास गदाधरके साथ 'दानखण्ड' (दानकेलि-लीलाके) अभिनयके द्वारा नृत्य किया था (चैःभाः अन्त्यखण्ड 5/378)। श्रीगदाधरके तिरोभावके पश्चात् उनको उसी गाँवमें समाधि दी गयी। यह समाधि संयोगि-वैष्णवोंके अधिकारमें थी। कालनाके सिद्ध श्रीभगवान् दास बाबाजीने कोलकाताके नारिकेलडाङ्गाके निवासी मधुसूदन मल्लिकके द्वारा सिंहासन-भवन स्थापित करवाकर 1256 सालमें 'श्रीराधाकान्त'की विग्रह-सेवाकी व्यवस्था की और उनके पुत्र बलाइ मल्लिकने 1312 सालमें 'श्रीगौर-नित्यानन्द'की एक सेवा प्रतिष्ठित की। मन्दिरके सिंहासनपर श्रीगौर-नित्यानन्द-विग्रह और श्रीराधाकृष्णकी मूर्ति विराजमान है, सिंहासनके नीचे एक संस्कृत श्लोक खुदा है। एक गोपेश्वर शिवलिङ्ग भी वहाँ प्रतिष्ठित है। मन्दिरके द्वारके पास एक पत्थरके पटलपर उपरोक्त कथा खुदी है। वैष्णव-मञ्जुषा-समाहृति (प्रथम संख्या) द्रष्टव्य है॥ 53॥

(24) श्रीशिवानन्द सेन-शाखा :—

शिवानन्द सेन—प्रभुर भृत्य अन्तरङ्ग।
प्रभुस्थाने याइते सबे लयेन याँर सङ्ग॥ 54॥

प्रति वर्षे प्रभुर गण सङ्गेते लइया।
नीलाचले चलेन पथे पालन करिया॥ 55॥

अनुवाद—श्रीशिवानन्दसेन महाप्रभुके अन्तरङ्ग सेवक हैं। ये महाप्रभुसे मिलनेके लिये उनके स्थान नीलाचल सब भक्तोंको साथ लेकर जाते थे। प्रत्येक वर्ष भक्तोंको साथ लेकर गौड़देशसे नीलाचल जाते समय मार्गमें उन सबके भोजन-निवासादिका प्रबन्ध अपने धनके द्वारा करते थे॥ 54-55॥

महाप्रभुकी तीन रूपोंमें अवतीर्ण होकर कृपा :—

भक्ते कृपा करेन प्रभु ए तिन स्वरूपे।
'साक्षात्', 'आवेश' आर 'आविर्भाव'-रूपे॥ 56॥

अनुवाद—भगवान् तीन स्वरूपोंसे अपने भक्तोंपर कृपा करते हैं, 'साक्षात्' रूपसे, 'आवेश' रूपसे और 'आविर्भाव' रूपसे॥ 56॥

अमृतप्रवाह भाष्य—सभी भक्तोंके समक्ष एक रूपका दर्शन देकर भगवान् 'साक्षात्' कृपा करते हैं, किन्तु श्रीनकुल ब्रह्मचारीकी देहमें समय-समयपर आविष्ट होते हैं; प्रद्युम्न ब्रह्मचारीकी देहमें श्रीचैतन्यका आविर्भाव होता है॥ 56॥

अनुभाष्य—'साक्षात्'—स्वयंरूप श्रीगौरसुन्दर; **'आवेश'**—नकुल और प्रद्युम्न ब्रह्मचारीमें। **'आविर्भाव'**—(चैःचः अन्त्यलीला 2/34-35)—

"शचीर मन्दिरे आर नित्यानन्द-नर्त्तने।
श्रीवास-कीर्त्तने, आर राघव-भवने॥
एइ चारि ठाँइ प्रभुर सदा 'आविर्भाव'।
प्रेमाविष्ट हय प्रभुर सहज स्वभाव॥"

"शची माताके गृहके मन्दिरमें, जहाँ श्रीनित्यानन्द प्रभु नृत्य करते हैं, श्रीवास पण्डितके गृहमें सङ्कीर्तनमें और श्रीराघव पण्डितके गृहमें श्रीगौरसुन्दरका सदा आविर्भाव होता है।" (श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 73-74वें श्लोकोंमें)—

"आविर्भावो गौरहरेर्नकुल-ब्रह्मचारिणि॥ 73(ख)॥
आवेशश्च तथा ज्ञेयो मिश्रे प्रद्युम्नसंज्ञके॥ 74(क)॥

"श्रीनकुल ब्रह्मचारीमें श्रीगौरहरिका आविर्भाव और श्रीप्रद्युम्न मिश्रमें उनका आवेश जानना चाहिये॥"56॥

'साक्षाते' सकल भक्ते देखे निर्विशेष।
नकुल ब्रह्मचारी-देहे प्रभुर 'आवेश'॥ 57॥

अनुवाद—सभी भक्त अपने समक्ष प्रकट महाप्रभुको जब देखते हैं, तब उसे 'साक्षात्' कहा जाता है। नकुल ब्रह्मचारीके शरीरमें महाप्रभुकी शक्ति-विशेष सञ्चारित होनेपर उसे 'आवेश' कहते हैं॥ 57॥

अनुभाष्य—प्रत्यक्ष रूपसे सभी भक्तोंको परस्पर वैशिष्ट्य-विहीन अर्थात् एक ही प्रकारके सेवक अथवा अभिन्न रूपमें देखा जाता है, किन्तु नकुल ब्रह्मचारीमें महाप्रभुका आवेश होनेपर उनको श्रीगौरसुन्दरके समान, अन्य सभी भक्तोंसे अधिक अलौकिक ईश्वर-चेष्टायुक्त श्रीकृष्णप्रेममय-रूपमें श्रीशिवानन्द सेन आदि भक्तोंने दर्शन किया।

नकुल ब्रह्मचारीका पूर्व निवास कालनाके निकट 'पियारीगञ्ज' नामक पल्लीमें था। चैःचः अन्त्यलीला 2/3-83 संख्यामें इस प्रसङ्गका उल्लेख है॥ 57॥

'प्रद्युम्न ब्रह्मचारी' ताँर आगे नाम छिल।
'नृसिंहानन्द' नाम प्रभु पाछे त' राखिल॥ 58॥

अनुवाद—पहले उनका नाम श्रीप्रद्युम्न ब्रह्मचारी था, परन्तु बादमें महाप्रभुने उनका नाम 'नृसिंहानन्द' रख दिया॥ 58॥

अनुभाष्य—चैःचः आदिलीला 10/35 और चैःभाः अन्त्यखण्ड 3रा तथा 8वाँ अध्याय द्रष्टव्य है॥ 58॥

ताँहाते हइल चैतन्येर 'आविर्भाव'।
अलौकिक ऐछे प्रभुर अनेक स्वभाव॥ 59॥

अनुवाद—इनकी देहमें श्रीचैतन्यदेवके आविर्भावके लक्षण दिखलायी देते थे। महाप्रभु इस प्रकार अनेक अलौकिक लीलाएँ करते हैं॥ 59॥

आस्वादिल एसब रस सेन शिवानन्द।
विस्तारि' कहिब आगे एसब आनन्द॥ 60॥

अनुवाद—श्रीशिवानन्द सेनने इन सभी रसों (साक्षात्, आवेश और आविर्भाव) का आस्वादन किया। इन सब आनन्दमयी लीलाओंका आगे विस्तारपूर्वक वर्णन करूँगा॥ 60॥

(24क) शिवानन्दके पुत्र-सेवकादि-शाखा :—

शिवानन्देर उपशाखा—ताँर परिकर।
पुत्र-भृत्य-आदि करि' चैतन्य-किङ्कर॥ 61॥

अनुवाद—श्रीशिवानन्दकी उपशाखा उनके परिकर हैं। इनके पुत्र-सेवकादि सभी श्रीचैतन्यदेवके दास हैं॥ 61॥

अनुभाष्य—श्रीशिवानन्दसेन कुमारहट्ट या हालिसहरके निवासी और महाप्रभुके भक्त थे। वहाँसे डेढ़ मील दूर काँचड़ापाड़ामें इनके द्वारा प्रतिष्ठित श्रीगौरगोपालके विग्रह हैं और ये श्रीकृष्णरायके मन्दिरमें अभी वर्तमान हैं। इनके पुत्र श्रीपरमानन्द (पुरीदास) ने श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका (176 श्लोक) में लिखा है—

"पुरा वृन्दावने वीरादूती सर्वाश्च गोपिकाः।
निनाय कृष्णनिकटं सेदानीं जनको मम।"

"पहले जो वृन्दावनमें गोपियोंको श्रीकृष्णके निकट ले जाती थीं, वे वीरा दूती ही अब मेरे पिता श्रीशिवानन्द हैं।" ये प्रतिवर्ष गौड़देशसे भक्तोंका पथप्रदर्शन करके यातायातका सारा व्यय स्वयं वहन करते हुए और उनके रहनेकी व्यवस्था करते हुए उन्हें महाप्रभुके पास नीलाचल ले जाते थे (चैःचः मध्यलीला 16/19-26)। इनके तीन पुत्र—श्रीचैतन्यदास, श्रीरामदास और श्रीपरमानन्द (कविकर्णपूर) थे। कविकर्णपूरके दीक्षा गुरुदेव (इनके गुरु-पुरोहित) श्रीनाथ पण्डितके सम्बन्धमें इसी अध्यायकी 107 संख्या द्रष्टव्य है। वासुदेव दत्तकी अधिक व्यय करनेकी प्रवृत्तिको देखकर महाप्रभुने इनको उनका सरखेल (प्रबन्धक) के रूपमें बने रहनेके लिये आदेश दिया था (चैःचः मध्यलीला 15/93-97)।

महाप्रभु 'साक्षात्', 'आवेश' और 'आविर्भाव'—इन तीन उपायोंसे अपने भक्तोंपर कृपा करते हैं, इन तीनों रसोंको श्रीशिवानन्दसेनने परीक्षा करके आस्वादन किया (चैःचः अन्त्यलीला, 2रा अः)। इनके श्रीगौरचरण-दर्शन पिपासु कुत्तेका विवरण चैःचः अन्त्यलीलाके प्रथम अध्यायमें वर्णित है।

श्रीरघुनाथदास गोस्वामी जब गृह त्यागकर महाप्रभुके दर्शनके लिये नीलाचलमें भागकर आ गये थे, तब उनके पिता श्रीगोवर्धन मजूमदारने अपने पुत्रके कुशल-मङ्गलका संवाद जाननेके लिये पत्र भेजा। इनसे श्रीरघुनाथका समाचार पाकर प्रति वर्ष इनके द्वारा वे अपने पुत्रकी सुख-सुविधाके लिये रसोइया, सेवक और बहुतसा धन नीलाचल भिजवाते थे (चैःचः अन्त्यलीला 6/245-267)।

एक बार नीलाचलमें इन्होंने महाप्रभुको निमन्त्रितकर गरिष्ठ (कठिनतासे पचनेवाला भारी) भोजन खिलाया, जिस कारण महाप्रभुका चित्त प्रसन्न नहीं हुआ। अगले दिन इनके पुत्र श्रीचैतन्यदासने महाप्रभुको पाचक औषधि देकर उनके सन्तोषका विधान किया (चैःचः अन्त्यलीला 10/124-151)।

एक बार नीलाचल जाते हुए घाटका 'कर' आदि देनेमें इनके व्यस्त हो जानेसे श्रीनित्यानन्द प्रभु और अन्य भक्तोंको गङ्गा पार करनेके उपरान्त ठहरनेका स्थान न मिलनेके कारण वहीं पासमें स्थित गाँवके एक वृक्षके नीचे रहना पड़ा। श्रीनित्यानन्द प्रभुने भूखसे पीड़ित और क्रोधित होनेका अभिनय करते हुए अभिशाप दिया—"शिवानन्दके तीनों पुत्र मर जाँय।" यह सुनकर इनकी पत्नी अमङ्गलकी आशङ्काकर विलाप करने लगी। इन्होंने घाटसे लौटकर जब सारा वृत्तान्त सुना, तो वे अपने अपूर्व भाग्यकी प्रशंसा करते हुए श्रीनित्यानन्द प्रभुके पास आये और उनसे लात खानेका सौभाग्य प्राप्त किया। इनके भाञ्जे श्रीकान्त यह देखकर अभिमानी होकर अकेले ही महाप्रभुके पास पहुँचे। अन्तर्यामी महाप्रभु सब जान गये और उन्हें क्षमाकर सान्त्वना प्रदान की। उसी यात्राके समय ही महाप्रभुने इनके छोटे पुत्र श्रीपुरीदासके मुखमें अपने पाँवका अंगूठा दिया, तब वे मौन रहे, परन्तु बादमें किसी दिन महाप्रभुकी आज्ञासे उन्होंने श्लोककी रचना

की (चैःचः अन्त्यलीला, 13/15-74)। उसी समय महाप्रभुने गोविन्दको आज्ञा दी—

"शिवानन्देर प्रकृति, पुत्र यावत् हेथाय।
आमार अवशेष-पात्र तारा येन पाय॥"

"शिवानन्दसेन और उनके स्त्री-पुत्र जब तक यहाँ रहें, मेरा उच्छिष्ट भोजन उनको प्रतिदिन प्रदान करना (चैःचः अन्त्यलीला, 12/15-53)॥61॥

उनके तीन पुत्र :—

चैतन्यदास, रामदास, आर कर्णपूर।
तिन पुत्र शिवानन्देर प्रभुर भक्तशूर॥62॥

अनुवाद—श्रीशिवानन्दके तीन पुत्र—श्रीचैतन्यदास, श्रीरामदास और श्रीपरमानन्द महाप्रभुके भक्तोंमें प्रधान हैं॥62॥

अनुभाष्य—'श्रीचैतन्यदास'—शिवानन्दके ज्येष्ठ पुत्र हैं। इनके द्वारा रचित 'श्रीकृष्णकर्णामृत' की टीका सहित श्रील भक्तिविनोद ठाकुरका अनुवाद 'श्रीसज्जनतोषणी' पत्रिकामें प्रकाशित हुआ है। जानकार व्यक्तियोंके अनुसार ये ही संस्कृत भाषामें रचित महाकाव्य 'श्रीचैतन्यचरित' के प्रणेता हैं, कविकर्णपूर नहीं।

'श्रीरामदास'—शिवानन्दसेनके मंझले पुत्र हैं। (श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 145वाँ श्लोक)—

"वृन्दावने यौ विख्यातौ शुकौ दक्ष-विचक्षणौ।
तावद्य जातौ मज्ज्येष्ठौ चैतन्य-रामदासकौ॥"145॥

"वृन्दावनके दक्ष और विचक्षण नामक दो शुकपक्षी अब मेरे ज्येष्ठ भ्राता श्रीचैतन्य और श्रीरामदास हुए हैं।"

'कर्णपूर'—परमानन्ददास अथवा पुरीदास अथवा कविकर्णपूर। ये श्रीअद्वैतशाखामें श्रीनाथ पण्डितके शिष्य हैं। इन्होंने 'आनन्दवृन्दावन'-चम्पू, 'अलङ्कार-कौस्तुभ', 'श्रीचैतन्यचरित' (?) महाकाव्य, 'श्रीचैतन्य-चन्द्रोदय'-नाटक, 'श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका' आदि ग्रन्थोंकी रचना की है। इनका जन्म 1448 शकाब्दमें हुआ था और इन्होंने 1498 शकाब्द तक ग्रन्थोंकी रचना की थी॥62॥

(24ख) शिवानन्दसेनके दो भाञ्जे :—

श्रीवल्लभसेन, आर सेन श्रीकान्त।
शिवानन्द-सम्बन्धे प्रभुर भक्त एकान्त॥63॥

अनुवाद—श्रीवल्लभसेन और श्रीकान्तसेन, श्रीशिवानन्दके सम्बन्धसे महाप्रभुके एकान्त भक्त हैं॥63॥

अनुभाष्य—'श्रीवल्लभसेन और श्रीकान्तसेन'—श्रीशिवानन्दके भाञ्जे थे। पुरी आते हुए अपने मामा श्रीशिवानन्दको श्रीनित्यानन्द प्रभुकी गाली, शाप और लात खाते देखकर वे सहन नहीं कर सके और उस दलको त्यागकर पहले ही महाप्रभुके पास पहुँचे। सर्वज्ञ महाप्रभुने यह पहले ही जान लिया था और उसका समाधान किया। महाप्रभुने उनके नीलाचलमें वास करनेके समय तक सेवक गोविन्दको उन्हें अपना महाप्रसाद देनेकी अनुमति दी। रथ-यात्राके समय सात सम्प्रदायोंमेंसे श्रीमुकुन्द दत्तके सम्प्रदायमें ये दोनों भाई कीर्तनीया थे (चैःचः मध्यलीला, 13/41)। (श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 174वाँ श्लोक)—

"व्रजे कात्यायनी यासीदद्य श्रीकान्तसेनकः॥"174॥

"व्रजकी कात्यायनी अब श्रीकान्तसेन हैं॥"63॥

(25) श्रीगोविन्दानन्द और (26) श्रीगोविन्द दत्त :—

प्रभुप्रिय गोविन्दानन्द—महाभागवत।
प्रभुर कीर्त्तनीया आदि—श्रीगोविन्द दत्त॥64॥

अनुवाद—महाभागवत श्रीगोविन्दानन्द महाप्रभुके प्रिय हैं और श्रीगोविन्ददत्त महाप्रभुके मूल कीर्तनीया हैं॥64॥

अनुभाष्य—'श्रीगोविन्दानन्द'—प्रथम कीर्तनके समय महाप्रभुके कीर्तनके सङ्गी थे। श्रीधरके घर जलपानके दिन इन्होंने क्रन्दन किया था। रथयात्राके समय ये श्रीजगन्नाथ पुरी जाते थे।

'श्रीगोविन्ददत्त'—नवद्वीपमें महाप्रभुके कीर्तनके सङ्गी थे, मूल गायक होकर महाप्रभुके सङ्गमें

कीर्तन करते थे (चै:भा: अन्त्यखण्ड 9वाँ अ:)—

"मूल हञा ये कीर्तन करे प्रभुसने।"

इनका घर खड़दहके दक्षिण सीमापर स्थित 'सुखचर' ग्राममें था॥ 64॥

(27) श्रीविजयदास और (28) अकिञ्चन कृष्णदास :—

श्रीविजयदास-नाम प्रभुर आखरिया।
प्रभुरे अनेक ग्रन्थ दियाछे लिखिया॥ 65॥

'रत्नबाहु' बलि' प्रभु थुइल ताँर नाम।
अकिञ्चन प्रभुर प्रिय कृष्णदास-नाम॥ 66॥

अनुवाद—श्रीविजयदास महाप्रभुके ग्रन्थ-लेखक थे। इन्होंने महाप्रभुको अनेक ग्रन्थ लिखकर दिये। महाप्रभुने 'रत्नबाहु' कहकर इनको यह नाम प्रदान किया था। अकिञ्चन श्रीकृष्णदास भी महाप्रभुके परमप्रिय हैं॥ 65-66॥

अनुभाष्य—'श्रीविजयदास'—नवद्वीपवासी लिपिकार हैं; ये नवनिधिमें एक मुख्य हैं। इन्होंने महाप्रभुको अनेक ग्रन्थ लिखकर दिये। इसलिये श्रीगौरहरिने इनको 'रत्नबाहु' नाम दिया था। श्रीशुक्लाम्बरके घरमें महाप्रभुने इनपर कृपा की—चै:भा: मध्यखण्ड, 25वाँ अ: द्रष्टव्य है।

'अकिञ्चन श्रीकृष्णदास'—नवद्वीपवासी और प्रभुके सङ्गी थे। ये रथयात्रामें श्रीजगन्नाथ पुरी आते थे। चै:भा: अन्त्यखण्ड, 9वाँ अ: द्रष्टव्य है॥ 65-66॥

(29) श्रीधरकी गुणराशि :—

खोला-बेचा श्रीधर प्रभुर प्रियदास।
याँहा-सने प्रभु करे नित्य परिहास॥ 67॥

प्रभु याँर नित्य लय थोड़-मोचा-फल।
याँर फुटा-लोहपात्रे प्रभु पिला जल॥ 68॥

अनुवाद—केलेके तनेको बेचने वाले श्रीधर महाप्रभुके प्रिय दास हैं, जिनके साथ महाप्रभु नित्य परिहास करते थे। महाप्रभु उनसे नित्य थोड़-मोचा-फल (केलेके वृक्षका गूदा, फूल, फल) लेते थे और जिनके लोहेके टूटे हुए बरतनमें महाप्रभुने जलपान किया था॥ 67-68॥

अनुभाष्य—'श्रीधर'—नवद्वीपवासी, केलेके बागानमें उत्पन्न वस्तुओंसे ही अपना जीवन चलाने वाले एक दरिद्र ब्राह्मण थे। (चै:भा: आदिखण्ड, 8वें अ:) में महाप्रभुकी इनके साथ खींचातानी, (चै:भा: मध्यखण्ड, 9वें अ:) में महाप्रभुकी 'सात-प्रहरिया' भावमें इनके प्रति कृपा और (चै:भा: मध्यखण्ड, 23वें अ:) काजीदलनके समय कीर्तन सुनकर श्रीधरके द्वारा नृत्यमें इनके छिद्रयुक्त जीर्ण लोहेके पात्रसे महाप्रभुका परमानन्दसे जल पीना तथा (चै:भा: मध्यखण्ड, 28वें अ:)में महाप्रभुके संन्यास ग्रहण करनेकी पूर्व रात्रिमें इनके द्वारा दी हुई लौकी शचीमाताके द्वारा बनवाकर भोजनका प्रसङ्ग द्रष्टव्य हैं। ये रथयात्राके उपलक्ष्यमें पुरुषोत्तम धाममें गये थे। कवि कर्णपूरके मतमें ये बारह गोपालोंमें अन्यतम सखा कुसुमासव गोपाल हैं। श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 133वाँ श्लोक—

"खोलाबेचातया ख्यातः पण्डितः श्रीधरो द्विजः।
आसीद्व्रजे हास्यकरो यो नाम्ना कुसुमासवः॥ 133॥

"व्रजमें हँसने-हँसानेवाले कुसुमासव नामक सखा अब ब्राह्मणवंशमें उत्पन्न केले बेचनेवाले श्रीधरके नामसे विख्यात हैं॥"67॥

(30) श्रीभगवान् पण्डित :—

प्रभुर अतिप्रिय दास भगवान् पण्डित।
याँर देहे कृष्ण पूर्वे हैल अधिष्ठित॥ 69॥

अनुवाद—भगवान् पण्डित महाप्रभुके अतिप्रिय दास हैं। इनके शरीरमें पूर्वकालमें श्रीकृष्णका अधिष्ठान हुआ था॥ 69॥

अनुभाष्य—'भगवान् पण्डित'—चै:भा: अन्त्यखण्ड, 9वाँ अ:—

"चलिलेन लेखक पण्डित भगवान्।
याँर देहे कृष्ण हइयाछिला अधिष्ठान॥"

"जिनके शरीरमें श्रीकृष्णका अधिष्ठान हुआ था, वे लेखक श्रीभगवान् पण्डित चले॥"69॥

(31) श्रीजगदीश पण्डित और (32) हिरण्य :—

जगदीश पण्डित, आर हिरण्य महाशय।
यारे कृपा कैल बाल्ये प्रभु दयामय॥70॥
एइ दुइ-घरे प्रभु एकादशी-दिने।
विष्णुर नैवेद्य मागि' खाइल आपने॥71॥

अनुवाद—जगदीश पण्डित और हिरण्य महाशय, इन दोनोंपर महाप्रभुमें अपने बाल्यकालमें कृपा की थी। इन दोनोंके घर महाप्रभुने एकादशीके दिन विष्णुके नैवेद्यको माँगकर खाया था॥70-71॥

अनुभाष्य—'जगदीश पण्डित'—श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 192वाँ श्लोक—

"अपरे यज्ञपत्न्यौ श्रीजगदीश-हिरण्यकौ।
एकादश्यां ययोरन्नं प्रार्थयित्वाऽघसत् प्रभुः॥"192॥

"अन्य दो यज्ञपत्नियोंने श्रीजगदीश और श्रीहिरण्यक नाम धारणकर जन्म ग्रहण किया है, श्रीमन्महाप्रभुने एकादशीके दिन इन्हींसे अन्न माँगकर भोजन किया था।" (श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 143वाँ श्लोक)—

"आसीद्व्रजे चन्द्रहासो नर्त्तको रसकोविदः।
सोऽयं नृत्यविनोदी श्रीजगदीशाख्य-पण्डितः॥143॥

"व्रजके चन्द्रहास नामक विख्यात रसज्ञ नर्त्तक अब नृत्यविनोदी श्रीजगदीश पण्डित हैं।"

(चैःचः आदिलीला, 11/30, 14/39 और चैःभाः आदिखण्ड, 4था अः)—एकादशी तिथिपर महाप्रभुके द्वारा हिरण्य-जगदीशके गृहमें स्थित विष्णु भगवान्के नैवेद्यके भोजनका वर्णन है। (चैःभाः अन्त्यखण्ड, 6ठा अः)—

"जगदीश पण्डित परम ज्योतिर्धाम।
सपार्षदे नित्यानन्द याँर धनप्राण॥"

"जगदीश पण्डित परम ज्योतिके धाम हैं। परिकर सहित श्रीनित्यानन्द प्रभु इनके प्राणधन हैं।"

'हिरण्यपण्डित'—(चैःभाः अन्त्यखण्ड, 5वाँ अः)—नवद्वीपमें हिरण्य पण्डित नामक एक सुब्राह्मणके घरमें श्रीनित्यानन्द प्रभु एक बार बहुमूल्य अलङ्कार पहनकर विराजमान थे। एक डाकुओंके सरदारने उनके श्रीअङ्गसे उन सब अलङ्कारोंको अपहरण करनेकी बार-बार चेष्टा की, परन्तु वह इसमें सफल नहीं हुआ। तब श्रीनित्यानन्द प्रभुकी महिमाको जानकर वह उनके शरणागत हुआ॥70-71॥

(33) श्रीपुरुषोत्तम और (34) श्रीसञ्जय :—

प्रभुर पडुया दुइ,—पुरुषोत्तम, सञ्जय।
व्याकरणे दुइ शिष्य—दुइ महाशय॥72॥

अनुवाद—महाप्रभुके दो व्याकरणके छात्र पुरुषोत्तम और सञ्जय थे। ये दोनों महान् व्यक्ति हैं॥72॥

अनुभाष्य—'पुरुषोत्तम और सञ्जय'—ये दोनों नवद्वीपके वासी थे; पहले ये महाप्रभुके छात्र थे तथा बादमें वे महाप्रभुके कीर्तनके आरम्भसे उनके सङ्गी बने। (चैःभाः आदिखण्ड, 15/5-7)—

"अनेक जन्मेर भृत्य मुकुन्द सञ्जय।
पुरुषोत्तम दास हेन (हन) याँहार तनय॥5॥
प्रतिदिन सेइ भाग्यवन्तेर आलय।
पड़ाइते गौरचन्द्र करेन विजय॥6॥
चण्डीगृहे गिया प्रभु वसेन प्रथमे।
तबे शेषे शिष्यगण आइसेन क्रमे॥7॥"

"मुकुन्द सञ्जय महाप्रभुके अनेक जन्मोंके सेवक हैं और पुरुषोत्तमदास उनके पुत्र हैं। प्रतिदिन महाप्रभु उनके घर पढ़ानेके लिये जाया करते थे। पहले महाप्रभु चण्डीमण्डपमें जाकर विराजमान होते, तब धीरे-धीरे उनके शिष्य वहाँ आते।" (चैःभाः अन्त्यखण्ड 8वाँ अः)—

"पुरुषोत्तम सञ्जय चलिला हर्षमने।
ये प्रभुर मुख्य शिष्य पूर्व अध्ययने॥"

"पहले अध्ययनमें जो महाप्रभुके मुख्य शिष्य थे, वे पुरुषोत्तम सञ्जय हर्षित मनसे चले।" इसलिये श्रीचैतन्यभागवतके वर्णनके अनुसार मुकुन्द-सञ्जयके

पुत्र पुरुषोत्तम सञ्जय हैं, किन्तु श्रीकविराज गोस्वामीने 'पुरुषोत्तम' और 'सञ्जय'को अलग-अलग दो व्यक्ति बतलानेके लिये इस पयारमें 'दुइ' शब्दका तीन बार प्रयोग करके श्रीचैतन्यभागवतकी धारणाको शुद्ध किया है॥ 72॥

(35) श्रीवनमाली पण्डित-शाखा :—

वनमाली पण्डित शाखा विख्यात जगते।
सोनार मुषल हल ये देखिल प्रभुर हाते॥ 73॥

अनुवाद—वनमाली शाखा जगत्में विख्यात है। इन्होंने महाप्रभुके हाथमें सोनेका मूसल और हल देखा था॥ 73॥

अनुभाष्य—'वनमाली पण्डित'—
(श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 144वाँ श्लोक)—

"वेणुञ्च मुरलीं योऽधात्राम्ना मालाधरो व्रजे।
सोऽधुना वनमाल्याख्यः पण्डितो गौरवल्लभः॥"144॥

"व्रजमें जो मालाधर नामक दास वेणु और मुरली धारण करते थे, वे अब गौरप्रिय श्रीवनमाली पण्डित हैं।" (चैःचः आदिलीला, 17/119) और (चैःभाः अन्त्यखण्ड 8वाँ अः)—

"चलिलेन वनमाली पण्डित मङ्गल।
ये देखिल सुवर्णेर श्रीहलमुषल॥"

"मङ्गलमय वनमाली पण्डित चले। इन्होंने महाप्रभुके (बलदेवभावमें) उनके हाथोंमें श्रीहल और मूसलके दर्शन किये थे।" (चैःभाः मध्यखण्ड, 5वाँ अः)—परन्तु श्रीवास पण्डितके घरमें जब महाप्रभुने विष्णु सिंहासनपर चढ़कर बलदेवभाव प्रकट करते हुए श्रीनित्यानन्द प्रभुसे हल-मूसल लेकर जिस लीलाका प्रदर्शन किया था, वहाँपर श्रीवनमालीने उस दिन महाप्रभुके हाथोंमें स्वर्णके हल-मूसलको देखा था, ऐसा वर्णन नहीं है॥ 73॥

(36) श्रीबुद्धिमन्त खान :—

श्रीचैतन्येर अति प्रिय बुद्धिमन्त खान।
आजन्म आज्ञाकारी तेँहो सेवक-प्रधान॥ 74॥

अनुवाद—बुद्धिमन्त खान श्रीचैतन्य महाप्रभुके अति प्रिय हैं, उन्होंने जीवन पर्यन्त उनकी आज्ञाका पालन किया और वे महाप्रभुके सेवकोंमें प्रधान हैं॥ 74॥

अनुभाष्य—'बुद्धिमन्त खान'—ये नवद्वीपके एक धनवान् भक्त थे। इन्होंने राजपण्डित सनातनमिश्रकी कन्या विष्णुप्रियादेवीके साथ महाप्रभुके दूसरे विवाहका समस्त व्यय वहन किया था। महाप्रभुको वायुव्याधि होनेपर इन्होंने चिकित्सा की थी। ये महाप्रभुकी जलक्रीड़ा और कीर्तनके सङ्गी थे। श्रीचन्द्रशेखरके घरपर महाप्रभुके महालक्ष्मीके अभिनयके लिये ये वस्त्र और भूषण लाये थे। ये रथयात्राके समय नीलाचल जाते थे॥ 74॥

(37) श्रीगरुड़ पण्डित :—

गरुड़ पण्डित लय श्रीनाम-मङ्गल।
नाम-बले विष याँरे ना करिल बल॥ 75॥

अनुवाद—गरुड़ पण्डित सदा मङ्गलमय हरिनाम करते रहते थे। नामके प्रभावसे उनपर सर्पके विषका भी प्रभाव नहीं हुआ था॥ 75॥

अनुभाष्य—'गरुड़ पण्डित'—ये नवद्वीपमें महाप्रभुके सङ्गी थे। (चैःभाः अन्त्यखण्ड आठवाँ अध्याय)—

"चलिलेन श्रीगरुड़ पण्डित हरिषे।
नामबले याँरे ना लङ्घिल सर्पविषे॥ 34॥"

"नामके बलपर जिनपर सर्पविषने भी प्रभाव नहीं दिखाया, वे श्रीगरुड़ पण्डित हर्षसे (रथयात्राके उपलक्ष्यमें नीलाचलकी ओर) चल पड़े।" (श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 117वाँ श्लोक)—

"गरुड़ः पण्डितः सोऽद्यो गरुड़ो यः पुरा श्रुतः।"

"पूर्वकालके गरुड़ ही अब गरुड़ पण्डित हैं॥"75॥

(38) श्रीगोपीनाथ सिंह :—

गोपीनाथ सिंह—एक चैतन्येर दास।
अक्रूर बलि' प्रभु याँरे कैला परिहास॥ 76॥

अनुवाद—श्रीचैतन्य महाप्रभुके एक दास श्रीगोपीनाथ सिंह हैं, जिन्हें महाप्रभु परिहासमें अक्रूर कहते थे॥ 76॥

अनुभाष्य—'गोपीनाथ सिंह'—(चै:भा: अन्त्यखण्ड आठवाँ अध्याय)—

"चलिलेन गोपीनाथ सिंह महाशय।
'अक्रूर' करिया याँरे गौरचन्द्र कय॥35॥"

"[रथयात्रामें] गोपीनाथ सिंह महाशयने प्रस्थान किया जिन्हें महाप्रभु 'अक्रूर' कहकर बुलाते थे।" (श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 117वाँ श्लोक)—

"पुरा योऽक्रूरनामासीत् स गोपीनाथसिंहकः।"

"पूर्वकालमें जो अक्रूर थे, वे अब गोपीनाथ सिंह हैं॥"76॥

(5क) देवानन्द पण्डित शाखा :—

भागवती देवानन्द वक्रेश्वर-कृपाते।
भागवतेर भक्ति-अर्थ पाइल प्रभु हैते॥77॥

अनुवाद—भागवत वाचक देवानन्द पण्डित श्रीवक्रेश्वरकी कृपासे महाप्रभुके द्वारा भागवतके भक्ति-परक अर्थको जान पाये॥77॥

अनुभाष्य—'देवानन्द'—(चै:भा: मध्यखण्ड, 21वाँ अ:)—

"सार्वभौम-पिता विशारद महेश्वर।
ताँहार जाङ्गाले गेला प्रभु विश्वम्भर॥6॥
सेइखाने देवानन्दपण्डितेर वास।7।"

"[एक दिन] भ्रमण करते-करते महाप्रभु विश्वम्भर सार्वभौमके पिता महेश्वर विशारदके घरके सामने पहुँचे। वहाँ बाढ़से घरको बचानेके लिये एक बाँध था। वहीं देवानन्द पण्डित भी रहा करते थे।"

(चै:च: मध्यलीला, 1/153)—

"कुलिया-ग्रामे कैल देवानन्देर प्रसाद।"

"उन्होंने कुलिया ग्राममें देवानन्दपर कृपा की।"

(चै:भा: मध्यखण्ड, 21वाँ अ:)—ये मोक्षकी अभिलाषासे भागवतका पाठ करते थे। एक दिन इनके पाठको सुनकर भावावेशमें श्रीवास पण्डित रोने लगे। यह देखकर इनके पाषण्डी छात्रोंने श्रीवासको डाँटकर वहाँसे निकाल दिया। इसके बहुत समय बाद, एक दिन महाप्रभुने मार्गमें जाते हुए इन्हें भागवतकी व्याख्या करते देखा, तो उन्होंने क्रोधित होकर वैष्णवमें श्रद्धाहीन देवानन्दकी तीव्र भर्त्सना की। इनका महाप्रभुमें भी विश्वास नहीं था। इनके परम सौभाग्यसे एक बार वक्रेश्वर पण्डितने इनके घरमें रहते हुए श्रीकृष्ण-कीर्तन किया था। तब उनकी कृपासे ये महाप्रभुकी महिमासे अवगत हुए। तब महाप्रभुने इन्हें भविष्यमें भागवतकी भक्ति-परक व्याख्या करनेके लिये कहा।

(श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 106ठा श्लोक)—

"पुराणानामर्थवेत्ता श्रीदेवानन्दपण्डितः।
पुरासीन्नन्दपरिषत्पण्डितो भागुरिर्मुनिः॥"106॥

"श्रीनन्दकी सभाके पण्डित भागुरि मुनि नामक पुरोहित अब पुराणोंके अर्थज्ञाता श्रीदेवानन्द पण्डित हैं॥"77॥

श्रीखण्डवासी—(39) मुकुन्द, (39क) रघुनन्दन, (40) नरहरि, (41) चिरञ्जीव, (42) सुलोचन :—

खण्डवासी मुकुन्ददास, श्रीरघुनन्दन।
नरहरि दास, चिरञ्जीव, सुलोचन॥78॥

एइ सब महाशाखा—चैतन्य-कृपाधाम।
प्रेम-फल-फूल करे याँहा ताँहा दान॥79॥

अनुवाद—खण्डवासी मुकुन्ददास, श्रीरघुनन्दन, नरहरि दास, चिरञ्जीव और सुलोचन, ये सब कृपाके धाम श्रीचैतन्य महाप्रभुकी महाशाखा हैं। ये श्रीकृष्णप्रेमके फल-फूलको जहाँ-तहाँ, सर्वत्र ही दान करते थे॥78-79॥

अनुभाष्य—'मुकुन्ददास'—ये नारायणदासके पुत्र और नरहरि सरकार ठाकुरके बड़े भाई थे। इनके मंझले भाईका नाम माधवदास था। रघुनन्दन इनके पुत्र थे। रघुनन्दनकी वंशावली आज भी कटोआसे चार मील पश्चिममें श्रीखण्ड-ग्राममें वास करती है। रघुनन्दनके पुत्र कानाइ और उनके दो पुत्र—मदनराय (नरहरि ठाकुरके शिष्य) एवं वंशीवदन थे। टीका लिखनेके समय इनके वंशके चार सौसे अधिक व्यक्ति जीवित

थे। उनकी धारावाहिक वंशप्रणाली श्रीखण्डमें है। (श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 175वाँ श्लोक)—

"व्रजाधिकारिणी यासीद्वृन्दा देवी तु नामतः।
सा श्रीमुकुन्ददासोऽद्य खण्डवासः प्रभुप्रियः॥175॥"

"व्रजकी अधिकारिणी वृन्दादेवी अब श्रीमन्महाप्रभुके प्रिय खण्डग्राम-वासी श्रीमुकुन्द दास हैं।" इनके अति आश्चर्यमय श्रीकृष्णप्रेमका वर्णन (चैःचः मध्यलीला, 15/113-131)में द्रष्टव्य है।

'रघुनन्दन'—ये श्रीगौरविग्रहकी सेवा करते थे (भक्तिरत्नाकर आठवीं तरङ्ग)। (श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 70वाँ श्लोक)—

"व्यूहस्तृतीयः प्रद्युम्नः प्रियनर्मोसखोऽभवन्।
चक्रे लीलासहायं यो राधा-माधवयोर्व्रजे।
श्रीचैतन्याद्वैततनुः स एव रघुनन्दनः॥70॥"

"व्रजमें जो श्रीकृष्णके प्रियनर्म सखा होकर श्रीराधा-माधवकी लीलामें सहायता करते थे तथा जो चतुर्व्यूहमें तृतीय श्रीप्रद्युम्न हैं, वे ही अब श्रीचैतन्यकी अभिन्न देह-स्वरूप श्रीरघुनन्दन हैं।" भक्तिरत्नाकर ग्रन्थकी नौवीं तरङ्गमें श्रीखण्डके महोत्सवका विवरण द्रष्टव्य है।

'नरहरिदास सरकार ठाकुर'—(श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 177वाँ श्लोक)—

"पुरा मधुमती प्राणसखी वृन्दावने स्थिता।
अधुना नरहर्याख्यः सरकारः प्रभोः प्रियः॥177॥

"पहले वृन्दावनमें मधुमती नामक जो प्राणसखी थीं, वे अब महाप्रभुके प्रियपात्र श्रीनरहरि सरकार हैं।" झामटपुरके निकट कोग्रामके निवासी श्रीचैतन्यमङ्गलके प्रणेता श्रीलोचनदास ठाकुर इनके शिष्य हैं। इस ग्रन्थमें श्रीगदाधर और श्रीनरहरिको महाप्रभुका अत्यन्त प्रिय बतलाया गया है। चैतन्यभागवतमें खण्डवाससियोंका उस प्रकारसे विशेष उल्लेख नहीं मिलता।

'चिरञ्जीव और सुलोचन'—ये दोनों खण्डवासी थे। उनका स्थान आज भी श्रीखण्डमें देखा जाता है। इनका वंश भी अभी विद्यमान है। चिरञ्जीव सेनके दो पुत्र थे। श्रीनिवासाचार्यके शिष्य और श्रीनरोत्तम ठाकुरके सङ्गी, श्रीरामचन्द्र कविराज इनके ज्येष्ठ पुत्र थे और पदकर्त्ता श्रीगोविन्ददास कविराज इनके कनिष्ठ पुत्र थे। चिरञ्जीवकी पत्नी सुनन्दा और ससुर दामोदर सेन कविराज खण्डवासी थे। (श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 209वाँ श्लोक)—

"खण्डवासौ नरहरेः साहचर्यान्महत्तरौ।
गौराङ्गैकान्तशरणौ चिरञ्जीव-सुलोचनौ॥209॥"

"खण्डवासी श्रीनरहरिके सङ्ग हेतु श्रीचिरञ्जीव और सुलोचन महत्तर हैं तथा वे श्रीगौराङ्ग महाप्रभुके एकान्त आश्रित हैं॥"78॥

कुलीनग्रामवासी—(20ख) रामानन्द, (20ग) यदुनाथ, (20घ) पुरुषोत्तम, (20ङ) शङ्कर, (20च) विद्यानन्द :—

कुलीनग्रामवासी सत्यराज, रामानन्द।
यदुनाथ, पुरुषोत्तम, शङ्कर, विद्यानन्द॥80॥

(20छ) वाणीनाथ बसु आदि कुलीन-ग्रामवासियोंका माहात्म्य :—

वाणीनाथ बसु आदि यत ग्रामी जन।
सबेइ चैतन्यभृत्य,—चैतन्य-प्राणधन॥81॥

प्रभु कहे,—'कुलीनग्रामेर ये हय कुक्कुर।
सेइ मोर प्रिय, अन्य जन बहु दूर॥82॥

कुलीनग्रामीर भाग्य कहेन ना याय।
शूकर चराय डोम, सेइ कृष्ण गाय'॥83॥

अनुवाद—श्रीसत्यराज, श्रीरामानन्द, श्रीयदुनाथ, श्रीपुरुषोत्तम, श्रीशङ्कर, श्रीविद्यानन्द और श्रीवाणीनाथ बसु आदि कुलीनग्रामके वासी हैं। ये श्रीचैतन्य महाप्रभुके सेवक हैं और महाप्रभु इनके प्राणधन हैं। महाप्रभुका कहना है कि औरोंकी बात तो दूर की है, कुलीनग्रामका कुत्ता भी मुझे प्रिय है। कुलीनग्रामवासियोंके भाग्यका वर्णन नहीं किया जा सकता, वहाँके सूअर चरानेवाले डोम भी श्रीकृष्णनामका कीर्तन करते हैं॥80-83॥

अनुभाष्य—'रामानन्द वसु'—(श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 173वाँ श्लोक)—

"कलकण्ठी-सुकण्ठ्यौ ये व्रजे गान्धर्वनाटिके।
रामानन्दवसुः सत्यराजश्चापि यथायथम्॥173॥

"व्रजमें जो कलकण्ठी (कलाकण्ठी) और सुकण्ठी नामक गान्धर्व नाटिका अर्थात् नृत्य, गीत-वाद्यादि कलाओंमें निपुण थीं, वे दोनों अब यथाक्रमसे श्रीरामानन्द बसु और श्रीसत्यराज (खाँ) हैं।" श्रीयदुनाथ, श्रीपुरुषोत्तम, श्रीशङ्कर, श्रीविद्यानन्द आदि सभी बसुवंशमें ही जन्में थे। इस बसुवंशमें सभी लोग ही श्रीकृष्णभक्त और श्रीकृष्णलीलाके अभिनयमें सुदक्ष थे। अभी भी श्रीकृष्णलीला अभिनयकी स्मृति रक्षित है। ये श्रीहरिदास ठाकुरके अनुगत शुद्धभक्त थे। पूर्वोल्लिखित 48 संख्या द्रष्टव्य है॥80॥

(43) श्रीसनातन, (44) श्रीरूप और (45) श्रीअनुपम-शाखा :—

अनुपम वल्लभ, श्रीरूप, सनातन।
एइ तिन शाखा वृक्षेर पश्चिमे गणन॥84॥

अनुवाद—श्रीअनुपम वल्लभ, श्रीरूप और श्रीसनातन—इन तीन शाखाओंकी वृक्षकी पश्चिम दिशामें गणना होती है॥84॥

अनुभाष्य—'श्रीअनुपम'—श्रीजीव गोस्वामीके पिता और श्रीसनातन एवं श्रीरूप गोस्वामीके छोटे भाई थे। पहले इनका नाम 'श्रीवल्लभ' था और महाप्रभुने इनको 'अनुपम' नाम दिया था। गौड़देशके बादशाहकी नौकरी करनेके कारण इनकी 'मल्लिक' उपाधि थी। चैःचः मध्यलीला 19/36—

"अनुपम मल्लिक,—ताँर नाम श्रीवल्लभ।
श्रीरूप गोसाञि छोट भाई परम वैष्णव॥"

भरद्वाज-गोत्रीय जगद्गुरु 'सर्वज्ञ'-नामक एक महात्मा बारहवीं शक-शताब्दीमें कर्णाटक देशमें ब्राह्मण राजवंशमें उत्पन्न हुए। उनके पुत्र अनिरुद्धके रूपेश्वर और हरिहर नामक दो पुत्र जन्में। किन्तु ये दोनों ही राज्यसे वञ्चित हो गये और ज्येष्ठ रूपेश्वरने शिखरभूमिमें वास स्थान स्थापित किया। रूपेश्वरके पुत्र पद्मनाभके गङ्गातटपर 'नैहाटी' नामक ग्राममें वास करते हुए पाँच पुत्र हुए। उनमेंसे सबसे छोटे मुकुन्दके पुत्र परम सदाचारी कुमारदेव हुए। कुमारदेव—सनातन, रूप और अनुपमके पिता हैं। कुमारदेव वाक्ला-चन्द्रद्वीपमें रहते थे। उस समयके 'यशोहर' प्रदेशके अन्तर्गत 'फतेहाबाद' नामक स्थानमें उनका घर था। उनके कई पुत्रोंमेंसे तीन पुत्रोंने वैष्णव-धर्मको ग्रहण किया। बादशाहके राजपदपर कार्य करनेके कारण श्रीवल्लभ अपने ज्येष्ठ भ्राता श्रीरूप और श्रीसनातनके साथ चन्द्रद्वीपसे आकर 'रामकेलि' ग्राममें वास करने लगे। यहींपर ही जीव गोस्वामीका जन्म हुआ था। नवाब सरकारका कार्य करनेके कारण तीनोंको ही 'मल्लिक' उपाधि मिली थी। महाप्रभु जब रामकेलि ग्राममें गये थे, तब अनुपमका उनके साथ पहला साक्षात्कार हुआ। श्रीरूप गोस्वामी जब विषय-कार्योंका त्यागकर महाप्रभुके चरणाश्रय ग्रहण करनेके लिये वृन्दावन गये, तब अनुपम भी उनके साथ थे। प्रयागमें महाप्रभुसे इनके मिलनका प्रसङ्ग चैःचः मध्यलीलाके 19वें अध्यायमें द्रष्टव्य है।

महाप्रभुसे भेंट करनेके बाद श्रीरूप और अनुपम वृन्दावन गये। यह महाप्रभुकी सनातन गोस्वामीके प्रति उक्तिसे जाना जाता है,—"रूप-अनुपम दुँहे वृन्दावन गेला।" उस समय सुबुद्धि राय मथुरा-नगरीमें सूखी लकड़ियाँ बेचकर अपना पोषण और अन्य वैष्णवोंकी सेवा करते थे। श्रीरूप और अनुपमके वहाँ पहुँचनेपर वे अति प्रसन्न हुए और उनको साथ लेकर वृन्दावनके बारह वनोंका भ्रमण किया। दोनों भाई वृन्दावनमें एक मास तक रहे और श्रीसनातन गोस्वामीको ढूँढनेके लिये ये गङ्गाके किनारे चलते-चलते प्रयाग पहुँचे, किन्तु श्रीसनातन राजपथसे मथुरा आ गये थे, इस कारण उनकी भेंट नहीं हो सकी। मथुरामें सुबुद्धि रायने श्रीसनातन गोस्वामीको अनुपम और श्रीरूपका समाचार दिया। श्रीरूप और अनुपम, दोनों तब काशी पहुँचे और महाप्रभुसे सारा वृत्तान्त सुनकर दस दिन बाद गौड़देशकी यात्रा की। वहाँ पहुँचकर अपनी सम्पत्तिकी व्यवस्थाका

समाधान करके महाप्रभुकी आज्ञानुसार वे दोनों नीलाचलमें आये। 1436 शकाब्दमें मार्गमें गङ्गातटपर अनुपमने श्रीरामचन्द्रके धामको प्राप्त किया। यह समाचार श्रीरूप गोस्वामीने नीलाचलमें महाप्रभुको दिया। श्रीवल्लभ श्रीरामचन्द्रके उपासक थे और महाप्रभुके द्वारा प्रदर्शित व्रजभजनके मार्गको वे पूर्णरूपसे ग्रहण नहीं कर पाये। वे महाप्रभुको साक्षात् श्रीरामचन्द्रके रूपमें ही जानते थे। भक्तिरत्नाकर ग्रन्थमें अनुपमके विषयमें इस प्रकार लिखा है—

"अनुपम नाम थुइल श्रीगौरसुन्दर।
सदा मत्त रघुनाथ-विग्रह-सेवन॥
रघुनाथ बिना येँइ अन्य नाहि जाने।
साक्षात् श्रीरघुनाथ—चैतन्य गोसाञि॥"

"श्रीगौरसुन्दरने उन्हें अनुपम नाम दिया। वे सदा श्रीरघुनाथके विग्रहकी सेवामें मत्त रहते थे। श्रीरघुनाथके अतिरिक्त वे किसीको नहीं जानते थे। श्रीचैतन्य गोसाञिको वे साक्षात् श्रीरघुनाथके रूपमें देखते थे।"

'श्रीरूप गोस्वामी'—(श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 180वाँ श्लोक)—

"श्रीरूपमञ्जरी ख्याता यासीद् वृन्दावने पुरा।
साद्य रूपाख्य-गोस्वामी भूत्वा प्रकटतामियात्॥ 180॥"

"पहले वृन्दावनमें जो श्रीरूपमञ्जरीके नामसे विख्यात थीं, वे ही अब श्रीरूप गोस्वामीके रूपमें प्रकट हुई हैं।"

भक्तिरत्नाकरकी प्रथम तरङ्गमें—

"श्रीरूप गोस्वामी ग्रन्थ षोड़श करिल।
(1) काव्य 'हंसदूत', आर (2) 'उद्धवसन्देश'।
(3) 'कृष्णजन्मतिथिविधि' विधान अशेष॥
(4-5) 'गणोद्देशदीपिका' बृहत्-लघुद्वय।
(6) 'स्तवमाला', (7) 'विदग्धमाधव'—रसमय॥
(8) 'ललितमाधव' विप्रलम्भेर अवधि।
'दानलीला कौमुदी' आनन्द-महोदधि॥
(9) 'दानकेलिकौमुदी' विदित एइ नाम।
(10) 'भक्तिरसामृतसिन्धु' ग्रन्थ अनुपम॥
(11) 'श्रीउज्ज्वलनीलमणि' ग्रन्थ रसपूर। प्रयुक्ता
(12) 'आख्यातचन्द्रिका' ग्रन्थ सुमधुर॥
(13) 'मथुरा-महिमा', (14) 'पद्यावली' ए विदित।
(15) 'नाटकचन्द्रिका', (16) 'लघुभागवतामृत'॥
वैष्णव-इच्छाय एकादश श्लोक कैल।
कृष्णदास कविराजे विस्तारिते दिल॥
पृथक् पृथक् स्तव गोस्वामी वर्णिल।
श्रीजीव-संग्रहे 'स्तवमाला' नाम हैल॥
संक्षेपे करिल आर विरुद्लक्षण।
'गोविन्द-विरुदावली' ताहार लक्षण॥"

"श्रीलरूप गोस्वामीने सोलह ग्रन्थोंकी रचना की। ये इस प्रकार हैं—

(1) 'हंसदूत' (काव्य),
(2) 'उद्धवसन्देश',
(3) 'कृष्णजन्मतिथिविधि' (विधान),
(4-5) 'गणोद्देशदीपिका' बृहद् और लघु,
(6) 'स्तवमाला',
(7) 'विदग्धमाधव' (रसमय),
(8) 'ललितमाधव' (विप्रलम्भकी सीमा),
(9) 'दानकेलिकौमुदी' (आनन्दका महासमुद्र),
(10) 'भक्तिरसामृतसिन्धु' (एक अनुपम ग्रन्थ),
(11) 'श्रीउज्ज्वलनीलमणि' (रसपूर्ण ग्रन्थ),
(12) 'आख्यातचन्द्रिका' (सुमधुर ग्रन्थ),
(13) 'मथुरा-महिमा',
(14) 'पद्यावली',
(15) 'नाटकचन्द्रिका' और
(16) 'लघुभागवतामृत'।

वैष्णवोंकी इच्छासे उन्होंने ग्यारह श्लोक रचे। श्रीकृष्णदास कविराजने उनका विस्तार किया। श्रीरूप गोस्वामीने अलग-अलग स्तव लिखे, जिन्हें श्रीजीव गोस्वामीने संग्रह करके 'स्तवमाला' नाम दिया। संक्षेपमें विरुद्लक्षणको 'गोविन्द-विरुदावली'में लिखा।" (चैःचः मध्यलीला, 1/35-44 एवं अन्त्य, 4/219-231 संख्या द्रष्टव्य है)।

चैःचः मध्यलीलाके 19वें अध्यायमें श्रीरूपका विषय-त्याग, धनका विभाग, प्रयागमें महाप्रभुसे मिलन, अनुपमके साथ वल्लभभट्टके घर प्रसाद-सेवा, प्रयागमें

महाप्रभुसे शिक्षा ग्रहण, महाप्रभुके द्वारा उन्हें वृन्दावन जानेका आदेश वर्णित हुआ है। चैःचः अन्त्यलीलाके प्रथम अध्यायमें श्रीरूपका पुनः गौड़देशमें आगमन, अनुपमकी गङ्गा प्राप्ति, श्रीक्षेत्रमें हरिदास ठाकुरकी कुटीमें आगमन, सपरिकर महाप्रभुसे मिलन, महाप्रभुके द्वारा श्रीरूपके हस्ताक्षरकी प्रशंसा, महाप्रभुके हृदयके भावोंके अनुरूप श्लोककी रचना, ललितमाधव और विदग्धमाधवकी रचना आरम्भ, श्रीरायरामानन्दके द्वारा प्रशंसा, महाप्रभुकी भक्तिशास्त्रोंके प्रकाशकी इच्छा एवं श्रीरूपको वृन्दावन जानेकी आज्ञा, श्रीरूपका वृन्दावन गमनका वर्णन है। चैःचः अन्त्यलीला चौथे अध्यायमें सनातन गोस्वामीका वृन्दावनमें जाकर श्रीरूपके साथ मिलन, महाप्रभुकी आज्ञा पालनका वर्णन है।

'श्रीसनातन गोस्वामी'—(श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 181वाँ श्लोक)—

"या रूपमञ्जरीप्रेष्ठा पुरासीद्रतिमञ्जरी।
सोच्यते नामभेदेन लवङ्गमञ्जरी बुधैः॥181॥
साद्य गौराभिन्नतनुः सर्वाराध्यः सनातनः।
तमेव प्राविशत् कार्यान्मुनिरत्नः सनातनः॥182॥"

"पहले जो श्रीरूपमञ्जरीकी प्रिय रतिमञ्जरी थीं और पण्डितगणोंके द्वारा नामभेदसे लवङ्गमञ्जरी कहलाती थीं, वे ही अब श्रीगौराङ्गके अभिन्न तनु, सबके आराध्य श्रीसनातन गोस्वामी हैं। मुनिरत्न सनातन भी कार्यवशतः इनमें प्रविष्ट हुए हैं।" भक्तिरत्नाकरकी प्रथम तरङ्गमें—

"श्रीसनातनेर गुरु विद्यावाचस्पति।
मध्ये मध्ये रामकेलि-ग्रामे ताँर स्थिति॥
सर्वशास्त्र अध्ययन करिला याँर ठाँइ।
यैछे गुरुभक्ति कहि,—ऐछे साध्य नाइ॥
यवन देखिले पिता प्रायश्चित करय।
हेन यवनेर सङ्ग निरन्तर हय॥
करि' मुखापेक्षा यवनेर गृहे यान।
एहेतु आपना माने म्लेच्छेर समान॥
इथे अति दीनहीन आपना मानय॥
यबे मग्न हन दैन्य-समुद्र माझारे।
म्लेच्छादिक हइते नीच माने आपनारे॥
नीचजाति-सङ्गे सदा नीच व्यवहार।
एइ हेतु "नीचजात्यादिक" उक्ति ताँर॥
विप्रराज हइया महाखेदयुक्त अन्तरे।
आपनाके विप्रज्ञान कभु नाहि करे॥"

भक्तिरत्नाकर प्रथम तरङ्गमें—

"सनातन गोस्वामीर ग्रन्थ-चतुष्टय।
टीकासह 'भागवतामृत'-खण्डद्वय॥
हरिभक्तिविलास-टीका 'दिक्प्रदर्शनी'।
'वैष्णव-तोषणी'-नाम दशम-टिप्पणी॥
'लीलास्तव' दशम-चरित यारे कय।
सनातन गोस्वामीर एइ चतुष्टय॥"
"चोद्दशत सप्त छये सम्पूर्ण वृहत्।
पनरशत चारिशके लघुतोषणी सुसम्मत॥
(महाप्रभु) रामानन्दद्वारे कन्दर्पेर दर्प नाशे।
दामोदर-द्वारे नैरपेक्ष्य परकाशे॥
हरिदास-द्वारे सहिष्णुता जानाइल।
सनातन-रूप-द्वारे दैन्य प्रकाशिल॥"

"श्रीसनातनके गुरु विद्यावाचस्पति थे और वे कभी-कभी रामकेलि ग्राममें ठहरते थे। इन्होंने (श्रीसनातनने) उनसे सभी शास्त्रोंका अध्ययन किया था। इनकी गुरुभक्तिका वर्णन नहीं किया जा सकता है।

यवनके दर्शन होनेपर प्रायश्चित करना होता है, परन्तु ये तो सदा उनका सङ्ग करते थे। ये इन नियमोंका उल्लङ्घन करके यवनोंके घर जाते थे, इस कारण वे स्वयंको मलेच्छके समान मानते थे। ये अपनेको अति दीन-हीन मानते थे और इस प्रकार ये दैन्य-समुद्रमें डूब जाते थे। इनका कहना था कि मैं मलेच्छादिसे भी नीच हूँ, नीच जातिका सङ्ग करता हूँ और मेरा व्यवहार भी सदा नीच है। इस प्रकार ये स्वयंको नीच-जातिका कहते थे। ब्राह्मणोंमें सर्वश्रेष्ठ होकर भी कभी स्वयंको ब्राह्मण नहीं मानते थे और यवनोंकी सेवा करनेके कारण सदा इनके हृदयमें महाखेद होता था।" तथा "सनातन गोस्वामीने चार ग्रन्थोंकी रचना की। टीकासहित वृहद्भागवतामृत, हरिभक्तिविलास-टीका 'दिक्दर्शिनी', 'वैष्णव-तोषणी' नामक

दशम स्कन्धकी टीका और 'लीलास्तव' जिसमें दशम-चरित (श्रीकृष्ण-चरित) कहा है।" 1476में वैष्णव-तोषणी और 1504में लघुतोषणी पूर्ण की। महाप्रभुने श्रीरायरामानन्दके द्वारा कामदेवके अभिमानको तोड़ा, श्रीदामोदर पण्डितके द्वारा निरपेक्षता प्रकाश की, श्रीहरिदासके द्वारा सहिष्णुता दिखलायी और श्रीसनातन-श्रीरूपके द्वारा दैन्यका प्रकाश किया।"

चैःचः मध्यलीला उन्नीसवें अध्यायमें इनका विषय त्यागका चिन्तन, रोगी होनेके बहानेसे घरमें भागवत आलोचना, बादशाहका इन्हें देखने आना, बादशाहके द्वारा इन्हें बन्दी बनाना, बादशाहके साथ उड़ीसा युद्धमें जाना अस्वीकार करना, गृहत्यागके समय श्रीरूपका इनके पास कारागारमें पत्र भेजनेका वर्णन है। चैःचः मध्यलीलाके बीसवें अध्यायमें इनकी कारागार रक्षकको धन देकर मुक्ति, केवल एक सेवक ईशानके राज्यसे पलायन और आठ स्वर्ण मुद्राएँ देकर डाकुओंसे रक्षा और उनकी सहायतासे पर्वतको पार करना, ईशानको विदाकर अकेले यात्रा, हाजिपुरमें बहनोई श्रीकान्तके साथ मिलन और वहाँ रहना अस्वीकारकर केवल उनसे एक कम्बल ग्रहण करना, वाराणसीमें आगमन और चन्द्रशेखरके घर महाप्रभुसे मिलन, मुण्डन करवाकर तपनमिश्रके द्वारा प्रदत्त पुराने वस्त्रका बहिर्वास और कौपीन ग्रहण करना, महाराष्ट्र

ग्रहण करना, महाप्रभुसे तत्त्वकी जिज्ञासा और महाप्रभुके द्वारा इन्हें शिक्षा प्रदान करना वर्णित है। (1) 'सम्बन्ध ज्ञान'की शिक्षा चैःचः मध्यलीलाके बीसवें और इक्कीसवें अध्यायमें वर्णित है। (2) अभिधेय-विचार—बाइसवें अध्यायमें और (3) प्रयोजन-विचार—तेइसवें अध्यायमें; महाप्रभुके द्वारा इन्हें भक्तिसिद्धान्तके ग्रन्थोंकी रचना, लुप्ततीर्थोंका उद्धार, वैष्णवस्मृति सङ्कलनके द्वारा वैष्णव-समाजका संस्थापन और भक्तिशास्त्र-प्रचारका आदेश, आशीर्वादका वर्णन है। चौबीसवें अध्यायमें इनको 'आत्माराम' श्लोककी पहले अठारह प्रकारसे और बादमें इकसठ प्रकारसे अर्थ-व्याख्या, इनका राजपथसे मथुरा गमन और सुबुद्धिरायके साथ मिलनका वर्णन है। चैःचः अन्त्यलीलाके चौथे अध्यायमें इनका झारखण्डके जङ्गलोंसे होते हुए पुनः नीलाचल आगमन, रथके पहियेके नीचे अपनी देहत्यागका सङ्कल्प, हरिदास ठाकुरसे मिलन और सपरिकर महाप्रभुके दर्शन, अनुपमकी गङ्गा-प्राप्ति और माहात्म्य श्रवण, इनके देहत्यागके सङ्कल्पमें महाप्रभुकी अस्वीकृति, इनके द्वारा महाप्रभुके प्रयोजनके अनुरूप साधनकी इच्छा, इनके द्वारा हरिदास ठाकुरकी महिमाका वर्णन, मर्यादामार्गीय श्रीजगन्नाथजीके सेवकोंको उनका स्पर्श न हो जाय, इस भयसे तप्तबालूके ऊपरसे होकर महाप्रभुके पास जाना और इनके दर्शनसे महाप्रभुकी प्रसन्नता, महाप्रभुसे जगदानन्दको वृन्दावन जानेकी आज्ञा देनेकी प्रार्थना, महाप्रभुके द्वारा इनकी स्तुति, इनकी अप्राकृत देहमें महाप्रभुकी प्रीति और आलिङ्गन, उसके फलस्वरूप दिव्यदेहकी प्राप्ति, एक वर्ष नीलाचलमें रहनेका महाप्रभुका आदेश, तत्पश्चात् इन्हें वृन्दावन भेजना, श्रीरूपके साथ बहुत समयके बाद वृन्दावनमें मिलन और महाप्रभुकी आज्ञापालनका वर्णन है।

श्रीरूप और श्रीसनातन गोस्वामीका श्रीपाट श्रीरामकेलि ('गुप्त वृन्दावन')—वर्तमान शहर इंरेजबाजार (मालदह) से प्राय आठ मील दक्षिणमें अवस्थित है। वहाँ निम्नलिखित देखने योग्य स्थान हैं—

(1) श्रीमदनमोहन विग्रह—श्रीसनातन गोस्वामीके द्वारा प्रतिष्ठित विग्रह। (2) केलिकदम्ब वृक्ष—जिसके नीचे श्रीरूप और श्रीसनातनका महाप्रभुके साथ रात्रिमें साक्षात्कार हुआ था और सपार्षद महाप्रभुने भक्तोंको प्रेमामृतका दान किया था, ऐसा कहा जाता है। (3) रूपसागर—श्रीरूप गोस्वामीप्रभुके द्वारा प्रतिष्ठित विशाल सरोवर। इस सरोवरकी सफाई और श्रीरामकेलिपाटकी लुप्तकीर्त्ति उद्धारके लिये मालदहमें 8 जून 1924 ई॰ में 'रामकेलि-संस्कार-समिति' प्रतिष्ठित हुई थी॥ 84॥

(44क) श्रीजीव :—

ताँर मध्ये रूप-सनातन—बड़ शाखा।
अनुपम, जीव, राजेन्द्रादि—उपशाखा॥ 85॥

अनुवाद—इनके मध्य श्रीरूप और श्रीसनातन बड़ी शाखा हैं तथा श्रीअनुपम, श्रीजीव, श्रीराजेन्द्रादि उपशाखा हैं॥ 85॥

अनुभाष्य— 'श्रीजीव गोस्वामी'—(श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 204 एवं 195 श्लोक)—

*"**विलासमञ्जरी** कामलेखा च मौनमञ्जरी॥ 195ख॥"*
"सुशीलः पण्डितः श्रीमान् जीवः श्रीवल्लभात्मजः।204क।"

"विलासमञ्जरी श्रीवल्लभके सुशील एवं पण्डित सुपुत्र श्रील जीव गोस्वामी हैं।"

श्रीजीव बाल्यकालसे श्रीमद्भागवतके अनुरागी थे। बादमें नवद्वीपमें आकर श्रीनित्यानन्द प्रभुके आनुगत्यमें इन्होंने श्रीनवद्वीप-धामकी परिक्रमा और दर्शन किये। इन्होंने काशीमें जाकर मधुसूदन वाचस्पतिसे सभी शास्त्रोंका अध्ययन किया। उसके बाद वे वृन्दावनमें आकर श्रीरूप और श्रीसनातनके आश्रित हुए। (श्रीभक्तिरत्नाकरकी प्रथम तरङ्गमें)—

"श्रीजीवेर ग्रन्थ पञ्चविंशति विदित।
(1) 'हरिनामामृत व्याकरण' दिव्यरीत॥
(2) 'सूत्रमालिका' (3) 'धातुसंग्रह' सुप्रकार।
(4) 'कृष्णार्च्चादीपिका'-ग्रन्थ अति चमत्कार॥
(5) गोपालविरुदावली' (6) रसामृतशेष'।
(7) 'श्रीमाधव-महोत्सव' सर्वांशे विशेष॥
(8) 'श्रीसङ्कल्पकल्पवृक्ष-ग्रन्थेर प्रचार।
(9) 'भावार्थसूचक'-चम्पू अति चमत्कार॥
(10) 'गोपालतापनी-टीका' (11) टीका 'ब्रह्मसंहितार'।
(12) 'रसामृत-टीका' (13) 'श्रीउज्ज्वल-टीका' आर॥
(14) 'योगसारस्तवेर टीका'ते सुसङ्गति।
(15) 'अग्निपुराणस्थ श्रीगायत्री-भाष्य' तथि॥
(16) पद्मपुराणोक्त 'श्रीकृष्णेर पदचिह्न'।
(17) 'श्रीराधिका-कर-पदस्थित चिह्न' भिन्न॥
(18) 'गोपालचम्पू'—पूर्व-उत्तर-विभागेते।
(19-25) सप्त-सन्दर्भ विख्यात भागवत-रीति।
(क्रम-तत्त्व-भगवत्-परमात्म-कृष्ण-भक्ति-प्रीति)॥"

"श्रीजीव गोस्वामीके द्वारा रचित पच्चीस ग्रन्थ विदित हैं।

(1) 'हरिनामामृत व्याकरण',
(2) 'सूत्रमालिका'
(3) 'धातुसंग्रह',
(4) 'कृष्णार्च्चादीपिका',
(5) 'गोपालविरुदावली',
(6) 'रसामृतशेष',
(7) 'श्रीमाधव-महोत्सव',
(8) 'श्रीसङ्कल्पकल्पवृक्ष',
(9) 'भावार्थसूचक'—चम्पू,
(10) 'गोपालतापनी-टीका',
(11) 'ब्रह्मसंहिताकी टीका',
(12) 'भक्तिरसामृतसिन्धु-टीका',
(13) 'श्रीउज्ज्वलनीलमणि-टीका',
(14) 'योगसार-स्तव-टीका',
(15) 'अग्निपुराणके श्रीगायत्रीका भाष्य',
(16) पद्मपुराणमें उक्त 'श्रीकृष्ण-पदचिह्न',
(17) 'श्रीराधिका-कर-पदस्थित चिह्न',
(18) 'गोपालचम्पू' पूर्व एवं उत्तर विभाग,
(19-25) सप्त-सन्दर्भ (क्रम-तत्त्व-भगवत्-परमात्म-कृष्ण-भक्ति-प्रीति सन्दर्भ)।

इन्होंने श्रीरूप-सनातनादिके अप्रकट होनेके बाद उत्कल-गौड़-माथुर-मण्डलके गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायके सर्वश्रेष्ठ आचार्यपदपर अधिष्ठित होकर सबको श्रीगौरसुन्दरके द्वारा प्रचारित सत्यका प्रचारकर भजनमें लगाया। बीच-बीचमें ये भक्तोंके साथ व्रजधामकी परिक्रमा करते और मथुरामें विठ्ठल-देवके दर्शन करने जाते। श्रीकविराज गोस्वामीने इनके प्रकटकालमें श्रीचैतन्यचरितामृतकी रचना की थी। इन्होंने कुछ समय बाद गौड़देशसे आये श्रीनिवास, नरोत्तम और दुःखी कृष्णदासको क्रमशः

'आचार्य', 'ठाकुर' और 'श्यामानन्द' नाम देकर सारे गोस्वामि-ग्रन्थोंके साथ गौड़देशमें नामप्रेमके प्रचारके लिये भेजा। इन्हें पहले ग्रन्थोंके अपहरणका समाचार और बादमें उनके प्राप्त होनेका समाचार मिला। इन्होंने श्रीनिवासके शिष्य रामचन्द्र सेनको और उनके छोटे भाई गोविन्दको 'कविराज' नाम प्रदान किया। इनके प्रकटकालमें श्रील जाह्नवा देवी कुछ भक्तोंके साथ वृन्दावनमें पधारीं। गौड़देशसे आये हुए भक्तोंके ठहरने और प्रसादकी इन्होंने व्यवस्था की। इनके शिष्य श्रीकृष्णदास अधिकारीने अपने ग्रन्थमें श्रीरूप-सनातन-जीव प्रभुओंके ग्रन्थोंकी तालिका दी है।

अनभिज्ञ प्राकृत सहजिया-सम्प्रदायमें श्रीजीव गोस्वामीके विरुद्ध तीन अपवाद प्रचलित हैं, उनके द्वारा श्रीकृष्ण-विमुखताके कारण हरि-गुरु-वैष्णव-विरोध-मूलमें अवश्य ही उनके अपराध ही वर्धित हो रहे हैं।

(1) जड़-प्रतिष्ठाका इच्छुक एक दिग्विजयी पण्डित निष्किञ्चन श्रीरूप-सनातनके पास आकर उन्हें शास्त्रार्थ करनेकी चुनौती देने लगा। इस चुनौतीको अपने भजनमें बाधा जानकर और तृणादपि सुनीच, अमानी-मानद व्यवहार करते हुए उन्होंने बिना शास्त्रार्थके पराजय स्वीकारकर उसे जयपत्र लिखकर दे दिया। वह उस जयपत्रको लेकर श्रीजीव गोस्वामीके पास आया और उनके गुरुवर्गको (श्रीरूप-सनातनको) मूर्ख कहकर उनको भी जयपत्र लिखनेके लिये कहने लगा। यह सुनकर जयपत्र लिखकर देनेके बदले श्रीजीव गोस्वामीने उसे शास्त्रार्थमें ललकारकर उसे पराजितकर मौन कर दिया। इस प्रकार गुरुकी निन्दा करनेवालेकी जिह्वाको स्तम्भितकर गुरुदेवके पद-नखकी शोभाकी मर्यादा प्रदर्शित करते हुए 'गुरु-देवात्मा'के अनुरूप शिष्यके आदर्शका प्रदर्शन किया। इस घटनाके विषयमें सहजिया लोग कहते हैं,—"श्रीजीवके इस प्रकार आचरणसे तृणादपि सुनीचता और मानद-धर्मके विरोधके कारण श्रीरूप गोस्वामी प्रभुने इनकी तीव्र भर्त्सना की और इनका परित्याग कर दिया। बादमें श्रीसनातन गोस्वामी प्रभुके कहनेपर उन्होंने श्रीजीवको पुनः ग्रहण किया।"

ये गुरु-वैष्णव विरोधी लोग श्रीकृष्णकी कृपासे जिस दिन अपनेको गुरु-वैष्णवका दास समझेंगे, उस दिन श्रीजीव गोस्वामीकी कृपा लाभकर वास्तविक 'तृणादपि सुनीच' और 'मानद' होकर हरिनाम-कीर्तनमें अधिकारी होंगे।

(2) कोई-कोई अनभिज्ञ व्यक्ति कहते हैं—"श्रीकविराज गोस्वामी प्रभुके 'श्रीचैतन्यचरितामृत'के रचना-सौन्दर्य और अप्राकृत व्रजरस-माहात्म्य दर्शनसे अपनी प्रतिष्ठाकी हानिकी आशङ्कासे श्रीजीव गोस्वामीके हृदयमें ईर्ष्या उदित हुई और उन्होंने मूल 'श्रीचैतन्यचरितामृत'को कुँएमें फेंक दिया। इसे सुनकर कविराज गोस्वामीने अपने प्राण त्याग दिये। उनके मुकुन्द नामक एक शिष्यने पहलेसे मूल पाण्डुलिपिकी एक नकल करके रखी थी, इसलिये 'श्रीचैतन्यचरितामृत' पुनः प्रकाशित हुई, अन्यथा यह ग्रन्थ जगत्से लुप्त हो जाता।"

इस प्रकारकी वैष्णव-विद्वेषमूलक कल्पना—नितान्त मिथ्या और असम्भव है।

(3) अन्य कोई-कोई इन्द्रिय-भोगी व्यभिचारी लोग कहते हैं—"श्रीजीव प्रभु श्रीरूपगोस्वामीके मतानुयायी व्रजगोपियोंके 'पारकीय' रसको स्वीकार न करके 'स्वकीय' रसका अनुमोदन करते हैं। इस कारण वे रसिक भक्त नहीं थे, इसलिये उनका आदर्श ग्रहणीय नहीं है।"

प्रकटकालमें अपने अनुगत लोगोंके बीच किसी-किसी भक्तकी 'स्वकीय रस' में रुचि देखकर उनके मङ्गलके लिये उनके अधिकारको जानकर और बादमें अनधिकारी व्यक्ति अप्राकृत परम-चमत्कारमय पारकीय-व्रजरसके सौन्दर्य एवं महिमाको न बूझकर उसका अनुकरणकर व्यभिचारमें प्रवृत होंगे, इसलिये वैष्णवाचार्य श्रीजीव प्रभुने स्वकीयवादको स्वीकार किया। किन्तु इस कारणसे उन्हें अप्राकृत पारकीय व्रजरसका विरोधी नहीं मानना चाहिये, क्योंकि ये स्वयं श्रीरूपानुगवर हैं और साक्षात् श्रीकविराज गोस्वामीके शिक्षागुरुवर्गके अन्यतम हैं॥85॥

अमृतानुकणिका—जीव गोस्वामीने बारह कारण दिखलाकर श्रीकृष्णके साथ गोपियोंका स्वकीय भावमें सम्बन्ध स्थापित किया। लौकिक रीतिके अनुसार उपपति भाव बहुत ही निन्दनीय और अस्वर्गकर आदि है। शास्त्रोंमें भी उपपतिको घृणित बतलाया गया है। श्रीकृष्णने भी स्वयं कहा है कि कुलीन स्त्रियोंके लिये जार पुरुषकी सेवा सब प्रकारसे निन्दनीय है, उनका लोक-परलोक, दोनों ही बिगड़ता है। यह कुकर्म तो अत्यन्त तुच्छ और क्षणिक है, वर्तमानमें भी कष्टदायक है और नरकका द्वार है। परीक्षित महाराजने भी श्रीशुकदेव गोस्वामीसे प्रश्न किया कि श्रीकृष्ण तो आप्तकाम हैं, तब किसलिये उन्होंने ऐसा निन्दनीय कर्म किया? इसलिये यह निन्दनीय कर्म है। यहाँपर जानना आवश्यक है कि यह श्रीकृष्णके सम्बन्धमें नहीं, अपितु अन्य लोगोंके लिये निन्दनीय कहा गया है। श्रीकृष्णके साथ गोपियोंका नित्य दाम्पत्य सम्बन्ध है, स्त्री-पतिका सम्बन्ध है। जैसे श्रीब्रह्म-संहितामें यह बतलाया है—

"आनन्दचिन्मयरसप्रतिभाविताभि-
स्ताभिर्य एव निजरूपतया कलाभिः।"

ह्लादिनीशक्तिकी वृत्तिरूपा प्रेयसियाँ—श्रीकृष्णके स्वरूपसे अभिन्न उन्हींकी कलाएँ हैं। शक्ति-शक्तिमान् अभेद हैं, इसलिये वे उनकी ही अपनी शक्ति हैं। गौतमीय-तन्त्रके अप्रकट-नित्यलीलाशीलन दशाक्षर मन्त्रकी व्याख्यामें भी ऐसा कहा गया है—'अनेक जन्म सिद्धानां गोपिनां पतिरेव वा' अर्थात् श्रीकृष्ण अनेक जन्मोंमें सिद्ध होनेवाली गोपियोंके पति हैं। वे समस्त विश्व-ब्रह्माण्डके पति हैं, गोपियोंके पतियोंके पति हैं, सबके पति हैं। लक्ष्मियाँ कभी भी परकीया नहीं हैं। ये लक्ष्मियोंकी भी लक्ष्मियाँ हैं, इनके लिये परकीया कैसे सम्भव है? आदि बहुतसी बातें जीव गोस्वामीजीने कही हैं और इसके अन्तमें उन्होंने लिख दिया (उज्ज्वलनीलमणि 1/21 की टीका)—

"स्वेच्छया लिखितं किञ्चित् किञ्चदत्र परेच्छया।
यत् पूर्वापरसम्बन्धं तत् पूर्वमपरं परम्॥"

"मैंने कुछ अपनी इच्छासे लिखा है और कुछ दूसरोंके अनुरोध करनेपर लिखा है। जिसमें पूर्वापर (पहले और पीछेका) सम्बन्ध है, उसे अपनी इच्छासे लिखा है। जिसमें पूर्वापर सम्बन्ध नहीं है, उसको दूसरोंकी इच्छासे लिखा है।" अर्थात् उन्होंने कहीं पति लिखा है और कहीं उपपति—इसमें सङ्गति नहीं है, इसलिये यह उनका विचार नहीं है।

यदि श्रीजीव गोस्वामी रूपानुग नहीं होते, तो वे श्रीरूप गोस्वामी रचित श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु और उज्ज्वलनीलमणि आदि ग्रन्थोंकी टीकाओंकी रचना क्यों करते?

श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरने भी कहा है कि श्रीजीव गोस्वामी कभी भी स्वकीयाके पक्षमें अपनी राय नहीं दे सकते हैं। उन्होंने स्वयंकी इच्छासे नहीं, अपितु दूसरोंकी इच्छासे ही ऐसी व्याख्या की है। इसलिये उन्होंने अपनी व्याख्याके उपसंहारमें स्वयं ही इस बातको स्वीकार किया है। उनकी अपनी इच्छा क्या है? जो श्रीरूप गोस्वामी और जो श्रीसनातन गोस्वामीकी इच्छा है। दूसरोंकी इच्छासे उन्होंने स्वकीयाका प्रतिपादन किया है जिससे लौकिक दृष्टिसे अनाधिकारी व्यक्ति उनमें प्रवेश न करें। विशेषकर महाप्रभुके चरणाश्रित अन्तरङ्ग भक्तोंके लिये स्वकीयाके पक्षमें व्याख्या कदापि ग्राह्य नहीं हो सकती।

जीव गोस्वामीके आशयको समझना बहुत कठिन है। श्रीनिवासाचार्य, श्रीनरोत्तम ठाकुर और श्रीश्यामानन्द प्रभु—ये तीनों ही श्रीजीव गोस्वामीके शिक्षा-शिष्य हैं तथा पारकीया भावको माननेवाले हैं। इसलिये इन शिष्योंके विचारोंसे समझा जायेगा कि श्रीजीव गोस्वामीने उन्हें जो शिक्षा दी, उसीका उन्होंने प्रचार किया। श्रीनिवासाचार्य प्रभुकी ज्येष्ठ कन्या हेमलता ठाकुराणी हैं और उनके शिष्य यदुनन्दनदास ठाकुरने अपने ग्रन्थ 'कर्णानन्द'के चतुर्थ निर्यासमें लिखा है—

"एइ सब निर्द्धार करि श्रीदासगोसाञि।
नियम करि कुण्डतीरे बसिला तथाइ॥

सङ्गे कृष्णदास आर गोसाञि लोकनाथ।
दिवानिशि कृष्ण कथा सदा अविरत॥
हेनइ समये ग्रन्थ गोपालचम्पू नाम।
सबे मेलि आस्वादये सदा अविराम॥
आस्वादिया चित्ते अति आनन्द उल्लास।
अत्यन्त दुरुह किवा श्लोकेर अभिलाष॥
बाह्यार्थे बुझाय ताहा स्वकीय बलिया।
भितरेर अर्थ मात्र केवल परकीया॥
श्रीजीवेर गम्भीर हृदय ना बुझिया।
बहिर्लोक बाखानये स्वकीया बलिया॥
ग्रन्थेर मर्मार्थ बुझाय येन परकीया।
आनन्दे निमग्न सबे ताहा आस्वादिया॥
चम्पू ग्रन्थ मर्म जानि गोसाञि कविराज।
नित्यलीला स्थापन लिखिला ग्रन्थ माझ॥
श्रीगोपालचम्पू नामे ग्रन्थ महाशूर।
नित्यलीला स्थापन याते व्रजरसपूर॥
रसपूर शब्दे कहि नित्य परकीया।
हृदये धरह तुमि यतन करिया॥"

महाप्रभुकी विचारधारा जिसका रूप गोस्वामीने भक्तिरसामृतसिन्धु और उज्ज्वलनीलमणि आदि ग्रन्थोंमें वर्णन किया है, उनका विचार करते हुए श्रीरघुनाथदास गोस्वामी कुण्डके तटपर रहकर नियमपूर्वक भजन करते थे। उनके साथमें श्रीकृष्णदास कविराज और श्रीलोकनाथ गोस्वामी रहते थे। श्रीकृष्णकथामें और श्रीमद्भागवतके अनुशीलनमें इनका सब समय व्यतीत होता था। उसी समय गोपालचम्पू ग्रन्थको पाकर सभी मिलकर उसका निरन्तर आस्वादन करने लगे। श्रीरघुनाथदास गोस्वामीने भी उस ग्रन्थको देखा और उसका आस्वादन किया। यदि यह स्वकीय भावका ग्रन्थ होता, तो दास गोस्वामी कभी भी उसे आँख बन्द करके भी नहीं देखते। यह उस ग्रन्थके परकीया भावका होनेका उज्ज्वल प्रमाण है। और यदुनन्दनदास ठाकुर भी असत्य बात नहीं कह सकते, क्योंकि वे हेमलता ठाकुराणीके शिष्य हैं। ग्रन्थको पढ़कर सभीको बहुत उल्लास हुआ। इसके श्लोकोंके गूढ़ अभिप्राय बड़ी कठिनतासे समझ आनेवाले हैं। ग्रन्थका इसीमें सौन्दर्य और माधुर्य है कि ऊपरसे देखनेमें एक भाव है और भीतरमें अन्य भाव है। ऊपरसे देखनेमें स्वकीय है, परन्तु भीतरसे केवल परकीया है। जीव गोस्वामीके हृदयके गम्भीर भावोंको समझ नहीं पानेके कारण विजातीय लोग इस ग्रन्थको स्वकीया भावका ग्रन्थ बतलाते हैं। ग्रन्थका जो मर्मार्थ है, वह परकीया है और सभी उसीका बड़े आनन्दसे आस्वादन करते। श्रीगोपालचम्पू ग्रन्थके वास्तविक भावको श्रीकविराज गोस्वामीने भली-भाँति जानकर अपने ग्रन्थमें नित्यलीलाके रूपमें लिखा है और यह व्रजरससे परिपूर्ण है; 'रसपूर' का अर्थ है—नित्य परकीया, इसे हृदयमें यत्नपूर्वक धारण करो॥85॥

श्रीरूप-सनातन-शाखाका विस्तार और कार्य :—

मालीर इच्छाय शाखा बहुत बाड़िल।
बाड़िया पश्चिमदेशे सब आच्छादिल॥86॥

समस्त भारतका उद्धार :—

आ-सिन्धुनदी-तीर आर हिमालय।
वृन्दावन-मथुरादि यत तीर्थ हय॥87॥

सभीकी प्रेमोन्मत्तता :—

दुइ शाखार प्रेमफले सकल भासिल।
प्रेमफलास्वादे लोक उन्मत्त हइल॥88॥

अनुवाद—मालीकी इच्छासे शाखा बहुत बढ़ गयी और इसने पश्चिम (भारत) देशको आच्छादित कर लिया। सिन्धुनदीके तटसे लेकर हिमालय और वृन्दावन-मथुरादि जितने तीर्थ हैं, सभी दोनों शाखाओंके प्रेमफलके कारण प्रेममें डूब गये। प्रेमफलका आस्वादन करके लोग उन्मत्त हो गये॥86-88॥

(1) भक्ति-आचरणका प्रवर्तन :—

पश्चिमेर लोक सब मूढ़ अनाचार।
ताहाँ प्रचारिल दुँहे भक्ति-सदाचार॥89॥

अनुवाद—पश्चिम देशके लोग धर्मके विषयमें मूर्ख

और आचरण-विहीन थे। इन दो भाइयों (श्रीरूप और श्रीसनातन) ने भक्ति-सदाचारका प्रचार किया॥ 89॥

अमृतप्रवाह भाष्य—पश्चिमप्रदेशके लोग यवनोंके संसर्गसे कुछ कर्त्तव्य-विमूढ़ और बङ्गालदेशके सदाचारकी तुलनामें अनेक लोग आचार-रहित थे। वे उस समय मुसलमानादिके संसर्गसे कुछ अधिक अनाचारी हो गये थे। श्रीरूप-सनातनकी कृपासे उनकी सदाचारमें प्रवृत्ति हुई॥ 89॥

(2) लुप्त तीर्थोंका उद्धार और
(3) श्रीमूर्ति-पूजा-प्रचार :—

शास्त्रदृष्टे कैल लुप्ततीर्थेर उद्धार।
वृन्दावने कैल श्रीमूर्त्ति-पूजार प्रचार॥ 90॥

अनुवाद—शास्त्रके प्रमाणके आधारपर उन्होंने व्रजमण्डलके लुप्त तीर्थोंका उद्धार किया और वृन्दावनमें श्रीमूर्तिकी पूजाका प्रचार किया॥ 90॥

अमृतप्रवाह भाष्य— 'लुप्ततीर्थ'—श्रीराधाकुण्डादि लुप्ततीर्थ। **'श्रीमूर्त्ति'**—श्रीमदनमोहन, श्रीगोविन्द, श्रीगोपीनाथादि सात मूर्तियोंकी पूजाका प्रचार किया॥ 90॥

(45) श्रीरघुनाथदास :—

महाप्रभुर प्रिय भृत्य—रघुनाथदास।
सर्व त्यजि' कैल प्रभुर पदतले वास॥ 91॥

अनुवाद—महाप्रभुके प्रिय सेवक श्रीरघुनाथदास हैं, जिन्होंने सब कुछ त्यागकर उनके चरणोंमें वास किया॥ 92॥

अनुभाष्य—'श्रीरघुनाथदास'—1416 शकाब्दके लगभग हुगली जिलामें 'श्रीकृष्णपुर' ग्राममें कायस्थकुलमें इनका आविर्भाव हुआ था। इनके पिता श्रीगोवर्धन मजूमदार और इनके ताऊ श्रीहिरण्य मजूमदार थे। सप्तग्रामसे श्रील रघुनाथदास गोस्वामी प्रभुकी प्रकटभूमि 'श्रीकृष्णपुर' एक मीलसे कुछ अधिक और त्रिशबिघा-स्टेशनसे प्राय डेढ़ मीलकी दूरीपर होगी। इस स्थानपर श्रील दासगोस्वामी प्रभुके पूर्वाश्रमके पिता श्रीगोवर्धन दासके द्वारा प्रतिष्ठित प्रसिद्ध श्रीराधागोविन्दके श्रीविग्रह विराजमान हैं। मन्दिरके सामने एक विस्तृत प्राङ्गण है, कोई भी नाट्य मन्दिर नहीं है, केवल एक जगमोहन* है।'

कोलकाता सिमला-निवासी श्रीयुक्त हरिचरण घोषने [टीका लिखनेके] एक वर्ष पूर्व मन्दिरका संस्कार (उद्धार) किया था। मन्दिरके प्राङ्गणके चारों ओर दीवारें हैं। जिस कक्षमें श्रीविग्रह विराजमान हैं, उसके साथवाले एक छोटेसे कक्षमें पत्थरसे बने आसनको श्रील रघुनाथदास गोस्वामी प्रभुका 'भजनासन' बतलाते हैं। यह आसन बहुत ऊँचा नहीं है (यह डेढ़ हाथ लम्बा, एक हाथ चौड़ा और पौना हाथ ऊँचा है)। ऐसा प्रसिद्ध है कि इस आसनपर बैठकर श्रील दास गोस्वामी प्रभु भजन करते थे। मन्दिरके पास बहुत ही कम पानीवाली स्रोतहीन सरस्वती नदी विराजमान है।

श्रील दास गोस्वामीके पिता वैष्णवप्राय थे और वे अत्यन्त धनी थे। यदुनन्दन आचार्य श्रील दास गोस्वामीके दीक्षा गुरु थे। गृहस्थ आश्रममें प्रवेश करनेके बहुत अल्प समय बाद ही ये श्रीमहाप्रभुके आश्रयकी प्रार्थना करने लगे। कुछ दिन बाद ही 1439 शकाब्दमें सुयोग पाकर गृह त्यागकर पुरुषोत्तम क्षेत्र आये। वहाँ श्रीचैतन्यदेवके सुशीतल चरण लाभकर श्रीस्वरूप दामोदरके आनुगत्यमें रहने लगे। सोलह वर्ष नीलाचलमें रहनेपर महाप्रभुके अप्रकट होनेपर ये श्रीवृन्दावन आकर श्रीरूप-सनातनके पास रहने लगे। श्रीभक्तिरत्नाकरकी प्रथम तरङ्गमें—

"रघुनाथदास गोस्वामीर ग्रन्थत्रय।
'स्तवमाला' नाम 'स्तवावली' यारे कय॥
'श्रीदान-चरित', 'मुक्ताचरित' मधुर।"

"श्रीरघुनाथ गोस्वामीके तीन ग्रन्थ हैं—'स्तवमाला' या 'स्तवावली', 'श्रीदान-चरित' और 'मुक्ताचरित'।"

---

*विग्रहके सिंहासनके सामने जो कक्ष होता है, उसे नाट्य मन्दिर कहते हैं। नाट्य मन्दिरके बाद जो कक्ष होता है, उसे जगमोहन कहते हैं।

इनकी दीर्घ आयु थी। श्रीनिवासाचार्यने वृन्दावनसे ग्रन्थादि लेकर पुनः लौटनेसे पूर्व श्रीदास गोस्वामीकी कृपा लाभ की थी। जैसे भक्तिरत्नाकर छठी तरङ्गमें—

"अतिक्षीण शरीर, दुर्बल क्षणे क्षणे।
करये भक्षण किछु दुइ चारिदिने॥
दिवानिशि ना जानये श्रीनाम-ग्रहणे।
नेत्रे निद्रा नाइ, अश्रुधारा दु'नयने॥
श्रीनिवास दास गोस्वामीर सन्दर्शने।
आपना मानये धन्य पड़िला चरणे॥
श्रीदास गोस्वामी श्रीनिवासे आलिङ्गिला।
श्रीनिवास श्रीगौड़ गमन निवेदिला॥
शुनि' श्रीगोस्वामी मुखे अनुमति दिल।"

"इनका शरीर धीरे-धीरे दुर्बल होता जा रहा था। दो-चार दिनमें ये कुछ खाते थे और दिन-रात श्रीनाम जप करते थे। इनके नेत्रोंमें निद्रा नहीं होती थी, अपितु सदा अश्रुधारा बहती रहती थी। श्रीनिवासने श्रीदास गोस्वामीके दर्शन करके अपनेको धन्य माना और उनके चरणोंमें गिर गये। श्रीदास गोस्वामीने उनका आलिङ्गन किया। श्रीनिवासने उनसे गौड़देश जानेके लिये आज्ञा माँगी। यह सुनकर श्रीदास गोस्वामीने उन्हें जानेकी अनुमति प्रदान की।" यह घटना 1512 शकाब्दके बाद की है। (श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 186वाँ श्लोक)—

"दासश्रीरघुनाथस्य पूर्वाख्या रसमञ्जरी।
अमुं केचित् प्रभाषन्ते श्रीमतीं रतिमञ्जरीम्।
भानुमत्याख्यया केचिदाहुस्तं नामभेदतः॥ 186॥"

"श्रीरघुनाथदास गोस्वामीका पूर्वनाम श्रीरसमञ्जरी है। उन्हें कोई-कोई श्रीरतिमञ्जरी भी कहते हैं। नामभेदसे कोई-कोई उन्हें भानुमति भी कहते हैं॥"91॥

श्रीस्वरूपके आनुगत्यमें श्रीरघुनाथकी श्रीगौरसेवा :—

प्रभु समर्पिल ताँरे स्वरूपेर हाते।
प्रभुर गुप्तसेवा कैल स्वरूपेर साथे॥ 92॥

श्रीगौर और श्रीस्वरूपके अप्रकटपर वृन्दावन आगमन :—

षोड़श वत्सर कैल अन्तरङ्ग-सेवन।
स्वरूपेर अन्तर्धाने आइला वृन्दावन॥ 93॥

अनुवाद—महाप्रभुने इन्हें श्रीस्वरूप दामोदरके हाथोंमें सौंप दिया। ये श्रीस्वरूप दामोदरके साथ महाप्रभुकी गुप्त रूपसे (अन्तरङ्ग) सेवा करते थे। श्रीदास गोस्वामीने सोलह वर्षतक अन्तरङ्ग सेवा की और श्रीस्वरूपके अन्तर्धान होनेपर वृन्दावन आ गये॥ 92-93॥

अमृतप्रवाह भाष्य— 'गुप्तसेवा'—जिन सब सेवाओंमें बाहरके लोगोंका अधिकार नहीं है। महाप्रभुका स्नान, भोजन, विश्राम, कीर्तनादिके समय जो सब अभीष्ट प्रियसेवाका प्रयोजन है, उसे ही 'अन्तरङ्ग-सेवा' कहा जाता है॥ 93॥

वृन्दावने दुइ भाइर चरण देखिया।
गोवर्धने त्यजिब देह भृगुपात करिया॥ 94॥

अनुवाद—वृन्दावन आकर ये (श्रीरूप-सनातन) दोनों भाइयोंके चरणोंमें उपस्थित हुए। (महाप्रभु और श्रीस्वरूपके विरहमें इतने दुःखी थे कि) इन्होंने गोवर्धन पर्वतसे कूदकर प्राण त्यागनेका निश्चय किया था॥ 94॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'भृगुपात करिया'—पर्वतके शिखरसे कूदना॥ 94॥

श्रीरूप-सनातनके साथ मिलन :—

एइ त' निश्चय करि' आइल वृन्दावने।
आसि' रूप-सनातनेर वन्दिल चरणे॥ 95॥

श्रीरूप-सनातनके तीसरे भाई :—

तबे दुइ भाइ ताँरे मरिते ना दिल।
निज तृतीय भाइ करि' निकटे राखिल॥ 96॥

अनुवाद—यह निश्चय करके ये वृन्दावन आये थे। वृन्दावन आकर इन्होंने श्रीरूप-सनातनके चरणोंमें गिरकर वन्दना की। तब उन दोनों भाइयोंने इन्हें ऐसे प्राण त्यागनेसे निषेध किया और अपने तीसरे भाईके समान इन्हें अपने पास प्रेमसे रखा॥ 95-96॥

महाप्रभुर लीला यत बाहिर-अन्तर।
दुइ भाइ ताँर मुखे शुने निरन्तर॥ 97॥

उनके दैनिक कृत्य :—

अन्न-जल त्याग कैल अन्य-कथन।
पल दुइ-तिन माठा करेन भक्षण॥ 98॥

सहस्र दण्डवत् करे, लय लक्ष नाम।
दुइ सहस्र वैष्णवेरे नित्य परणाम॥ 99॥

अनुवाद—महाप्रभुकी जो भी बहिरङ्ग और अन्तरङ्ग लीलाएँ थीं, दोनों भाई इनके मुखसे निरन्तर सुनते थे। श्रीदास गोस्वामीने अन्न-जल और भगवद्-कथाके अतिरिक्त अन्य किसी चर्चाका त्याग कर दिया। दो-तीन पलके समयमें थोड़ासा मठ्ठा पीते थे। श्रीदास गोस्वामी प्रतिदिन (लीला-स्थलियोंको) एक हजार दण्डवत् प्रणाम करते थे और वैष्णवोंको दो हजार प्रणाम निवेदन करते थे॥ 97-99॥

अनुभाष्य—'माठा'—मठ्ठा॥ 98॥

रात्रिदिने राधाकृष्णेर मानस-सेवन।
प्रहरेक महाप्रभुर चरित्र-कथन॥ 100॥

तिन सन्ध्या राधाकुण्डे अपतित स्नान।
व्रजवासी वैष्णवेरे आलिङ्गन दान॥ 101॥

सार्द्ध सप्त प्रहर करे भक्तिर साधने।
चारि दण्ड निद्रा, सेइ नहे कोनदिने॥ 102॥

अनुवाद—वे रात-दिन श्रीराधा-कृष्णकी मानसिक सेवा करते थे। एक प्रहर महाप्रभुके चरित्रकी कथा करते थे। वे नियमपूर्वक दिनमें तीन बार श्रीराधाकुण्डमें स्नान करते थे और व्रजवासियोंको अपना आलिङ्गन प्रदानकर उनका सम्मान करते थे। दिनमें साढ़े सात प्रहर भक्ति-साधनमें रत रहते थे और केवल चार दण्ड* निद्रा लेते थे, किसी दिन तो वे सोते भी नहीं थे॥ 100-102॥

*एक प्रहर = तीन घंटे
साठ दण्ड = एक दिन
एक दण्ड = चौबीस मिनट

अमृतप्रवाह भाष्य—'रात्रिदिने राधाकृष्णेर मानस-सेवन'—हरिनामके (कीर्तनके) साथ अष्टकालीय सेवाका मनन॥ 100॥

श्रीरूप-रघुनाथके प्रति ग्रन्थकारका नित्यदासाभिमान :—

ताँहार साधन-रीति शुनिते चमत्कार।
सेइ रूप-रघुनाथ प्रभु ये आमार॥ 103॥

अनुवाद—उनकी साधनकी रीति सुननेसे हृदयमें चमत्कार होता है। वे ही श्रीरूप-रघुनाथ गोस्वामी मेरे (कृष्णदास कविराजके) प्रभु अर्थात् शिक्षा-गुरु हैं॥ 103॥

अनुभाष्य—श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी प्रभु श्रील दासगोस्वामी और श्रीरूप गोस्वामीको 'अपना प्रभु' मानते थे और उन्होंने प्रत्येक अध्यायके अन्तमें 'श्रीरूप-रघुनाथ-पदे यार आश। चैतन्यचरितामृत कहे कृष्णदास॥' लिखा है। कोई-कोई 'रघुनाथ' शब्दसे श्रीरघुनाथभट्टको कहना चाहते हैं और वे उनको श्रीकविराजके पाञ्चरात्रिक दीक्षागुरु कहना चाहते हैं, परन्तु इस बातका कोई प्रमाण नहीं है। कविराज-शाखा-गुरुपरम्परामें श्रीरघुनाथभट्टका उनके दीक्षागुरुके रूपमें जो उल्लेख देखा जाता है, उसकी सत्यताका कोई विशेष परिचय नहीं मिलता है॥ 103॥

इँहा सबार यैछे हैल प्रभुर मिलन।
आगे विस्तारिया ताहा करिब वर्णन॥ 104॥

अनुवाद—ये सब अर्थात् श्रीरूप-सनातन-रघुनाथ गोस्वामी महाप्रभुसे कैसे मिले, इसका मैं बादमें विस्तारसे वर्णन करूँगा॥ 104॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'आगे'—श्रीरघुनाथ गोस्वामीके साथ महाप्रभुके मिलनका प्रसङ्ग चै:च: अन्त्यलीला छठे अध्यायमें द्रष्टव्य है॥ 104॥

अनुभाष्य—श्रीरूप गोस्वामीके साथ महाप्रभुका मिलन चै:च: मध्यलीला 19/45 संख्या, श्रीसनातनके साथ महाप्रभुका मिलन चै:च: मध्यलीला 20/51 संख्या और

श्रीरघुनाथके साथ महाप्रभुका मिलन चैःचः अन्त्यलीला 6/191 संख्या द्रष्टव्य हैं॥104॥

(46) श्रीगोपाल भट्ट-शाखा :—

श्रीगोपालभट्ट—एक शाखा सर्वोत्तम।
रूप-सनातन-सङ्गे याँर प्रेम-आलापन॥105॥

अनुवाद—श्रीगोपालभट्ट एक सर्वोत्तम शाखा हैं। उनका श्रीरूप-सनातनके साथ प्रेमालाप होता था॥105॥

अनुभाष्य—'श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी'—ये श्रीरङ्गक्षेत्रके प्रवासी श्रीव्यैङ्कटभट्टके पुत्र और (पहले रामानुजीय और बादमें गौड़ीय) श्रीप्रबोधानन्दके शिष्य थे। 1433 शकाब्दमें महाप्रभुके श्रीरङ्गक्षेत्रमें 'श्री'-सम्प्रदायी व्यैङ्कटभट्टके घरपर चातुर्मास्य व्रतके उपलक्षमें अवस्थान करनेके समय इन्होंने महाप्रभुकी तन-मन-प्राणसे सेवा की। इन्होंने अपने चाचा त्रिदण्डी श्रीमत् प्रबोधानन्द सरस्वतीसे दीक्षा ग्रहण की, जैसा हरिभक्तिविलास, प्रथम विलास, द्वितीय श्लोक—

"भक्तेर्विलासांश्चिनुते प्रबोधानन्दस्य शिष्यो भगवत्प्रियस्य।
गोपालभट्टो रघुनाथदासं सन्तोषयन् रूप-सनातनौ च॥"

"भगवान् श्रीचैतन्यदेवके प्रिय परिकर श्रीप्रबोधानन्दके शिष्य श्रीगोपालभट्ट श्रीरूप-सनातन और श्रीरघुनाथदास गोस्वामीको सन्तुष्ट करनेके लिये श्रीहरिभक्तिविलास नामक ग्रन्थका प्रणयन कर रहे हैं।" भक्तिरत्नाकरकी प्रथम तरङ्गमें—

"गोपालेर माता पिता महाभाग्यवान्।
श्रीचैतन्यपदे ये सँपिल मनःप्राण॥163॥
वृन्दावने याइते पुत्रेर आज्ञा दिया।
दोँहे सङ्गोपन हैला प्रभु सोङरिया॥164॥
कतदिने गोपाल गेलेन वृन्दावन।
रूप-सनातन सङ्गे हइल मिलन॥165॥"
(नीलाचले प्रभुके) "लिखिलेन पत्रीते श्रीरूप-सनातन।
गोपालभट्टेर वृन्दावने आगमन॥180॥"
(प्रभु) "लिखये पत्रीते प्रिय रूप-सनातने।
पाइल आनन्द गोपालेर आगमने॥189॥
निज-भ्राता-सम गोपाले जानिबे।।190क।"
"गोपालेर नामे श्रीगोस्वामी सनातन।
करिल श्रीहरिभक्तिविलास-वर्णन॥198॥
श्रीरूपगोस्वामी भट्टे प्राणसम जाने।
श्रीराधारमण-सेवा कराइल ताने॥200॥"
(कविराज गोस्वामीके)
"श्रीगोपाल भट्ट हृष्ट हैया आज्ञा दिल।
ग्रन्थे निज-प्रसङ्ग वर्णिते निषेधिल॥222॥
केने निषेधिल इहा के बुझिते पारे।
निरन्तर अति दीन माने आपनारे॥223॥
कविराज ताँर आज्ञा नारे लङ्घिवारे।
नाम-मात्र लिखे, अन्य ना करे प्रचारे॥224॥"
"प्राचीन वैष्णव-मुखे ए-सब शुनिल॥225॥"
—(ग्रन्थकार घनश्यामदासेर उक्ति)।

"श्रीगोपालभट्ट गोस्वामीके माता-पिता महाभाग्यवान् हैं, जिन्होंने अपने मन-प्राण श्रीचैतन्यदेवके चरणोंमें समर्पित कर दिये हैं। उन्होंने अपने पुत्रको वृन्दावन जानेकी अनुमति प्रदान की और महाप्रभुका स्मरण करते हुए अपनी देहका त्याग किया। वृन्दावन आनेके कुछ दिन बाद इनका श्रीरूप-सनातनके साथ मिलन हुआ। श्रीरूप-सनातनने इनके वृन्दावन आनेका समाचार पत्रके द्वारा महाप्रभुको नीलाचलमें भेजा। यह समाचार पाकर महाप्रभु अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने श्रीरूप-सनातनको इनको अपने छोटे भाईके समान प्रेम करनेके लिये कहा। श्रीसनातनने श्रीहरिभक्तिविलास ग्रन्थका सङ्कलनकर प्रेमवश इनके नामसे उसे प्रकाशित किया। श्रीरूप गोस्वामी भी इन्हें अपने प्राणोंके समान मानते थे। श्रीरूप-सनातनके आदेशसे इन्होंने श्रीराधारमणके विग्रहकी स्थापना की। श्रीकविराज गोस्वामीने जब श्रीचैतन्यचरितामृतके रचनाके लिये सभी वैष्णवोंसे आज्ञा ली, तो इन्होंने उस ग्रन्थमें अपने विषयमें वर्णन करनेका निषेध किया। इन्होंने क्यों निषेध किया, इसे कौन समझ सकता है? ये स्वयंको सदा अति दीन मानते थे। श्रीकविराजने इनकी आज्ञाका उल्लङ्घन नहीं किया और केवल इनका नाममात्र लिखा तथा अन्य कोई विवरण नहीं दिया। ग्रन्थकार घनश्यामदासने कहा कि यह सब उन्होंने पुराने वैष्णवोंके मुखसे सुना है।"

षट्सन्दर्भमें तत्त्व-सन्दर्भके आरम्भमें श्रीजीव गोस्वामीने श्रीरूप-सनातनको प्रणामके बाद लिखा है—

"कोऽपि तद्बान्ध्वो भट्टो दक्षिण-द्विज-वंशजः।
विविच्य व्यलिखद्-ग्रन्थं लिखिताद्बद्धवैष्णवैः॥
तस्याद्यं ग्रन्थनालेखं क्रान्त-व्युत्क्रान्त-खण्डितम्।
पर्यालोच्याथ पर्यायं कृत्वा लिखति जीवकः॥"

"श्रीमध्व-श्रीरामानुज-श्रीधरस्वामी आदि प्राचीन वैष्णवाचार्योंके द्वारा लिखित ग्रन्थोंके विचारादिका सङ्कलन करके श्रीरूप-सनातन, इन दोनों प्रभुओंके प्रिय सुहृद ब्राह्मणकुलमें उत्पन्न दक्षिणदेशके वासी श्रीगोपालभट्टने एक ग्रन्थ लिखा था, वह कहीं क्रमसे था और उसमें कहीं क्रम भङ्ग हुआ था तथा कहीं-कहीं खण्ड-खण्ड करके लिखा हुआ था, उसे एक क्षुद्र जीव, मैंने, पर्यालोचना करके क्रमानुसार यथायथ लिखा है।" 'भगवत्' आदि अन्यान्य सन्दर्भोंके आरम्भमें भी इस प्रकार वर्णन है। श्रीगोपालभट्ट 'सत्क्रियासार-दीपिका' के रचियता, 'हरिभक्तिविलास' के सम्पादक और षट्सन्दर्भके पूर्व लेखक हैं। भक्तिरत्नाकर प्रथम तरङ्गमें—

"करिलेन कृष्णकर्णामृतेर टिप्पणी।
वैष्णवेर परम आनन्द याहा शुनि'॥ 228॥"

"इन्होंने कृष्णकर्णामृत ग्रन्थकी टिप्पणी लिखी है, जिसे श्रवण करके वैष्णव परमानन्दित होते हैं।" इन्होंने श्रीराधारमण-विग्रहकी स्थापना की। (श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 184वाँ श्लोक)—

"अनङ्गमञ्जरी यासीत् साद्य गोपालभट्टकः।
भट्टगोस्वामिनं केचिदाहुः श्रीगुणमञ्जरी॥ 184॥"

"श्रीअनङ्गमञ्जरी ही अब श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी हैं। कोई-कोई इन्हें गुणमञ्जरी भी कहते हैं।" श्रीनिवासाचार्य और गोपीनाथ पुजारी इनके शिष्य हैं॥ 105॥

(47) शङ्करारण्य-शाखा, (47क) मुकुन्द,
(47ख) काशीनाथ, (47ग) रुद्र :—

शङ्करारण्य-आचार्य—वृक्षेर एक शाखा।
मुकुन्द, काशीनाथ, रुद्र,—उपशाखा लेखा॥ 106॥

अनुवाद—शङ्करारण्य-आचार्य वृक्षकी एक और शाखा हैं और मुकुन्द, काशीनाथ और रुद्र उनकी उपशाखा हैं॥ 106॥

अनुभाष्य— 'शङ्करारण्य'—(श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 60वाँ श्लोक)—

"अस्याग्रजस्त्वकृतदारपरिग्रहः सन् सङ्कर्षणः
स भगवान् भुवि विश्वरूपः।
स्वीयं महः किल पुरीश्वरमापयित्वा
पूर्वं परिव्रजित एव तिरोबभूव॥"इति॥ 60॥

"श्रीगौराङ्गके बड़े भाई, जो विश्वरूपके नामसे विख्यात हैं, वे भगवान् सङ्कर्षण हैं। वे विवाहसे पूर्व ही संन्यास ग्रहण करके अपने तेजको श्रीईश्वरपुरीमें स्थापित करके अन्तर्हित हो गये थे।" ये 1432 शकाब्दमें शोलापुर जिलाके अन्तर्गत पाण्डवपुर-तीर्थमें अप्रकट हुए थे—चैःचः मध्यलीला, 9/299-300 संख्या द्रष्टव्य हैं।

'मुकुन्द (मुकुन्दसञ्जय)'—इनके घरमें श्रीविश्वम्भरने पाठशाला खोली थी और इनके पुत्र पुरुषोत्तम महाप्रभुके छात्र थे।

'काशीनाथ'—ये श्रीविश्वम्भरके विवाहका संयोग करवानेवाले ब्राह्मण पण्डित थे। इन्होंने राजपण्डित सनातनको उनकी कन्या विष्णुप्रियादेवीके साथ महाप्रभुके विवाहका परामर्श दिया था। (श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 50वाँ श्लोक)—

"यश्च सत्राजिता विप्रः प्रहितो माधवं प्रति।
सत्योद्वाहाय कुलकः श्रीकाशीनाथ एव सः॥ 50॥"

"राजा सत्राजितने सत्यभामाके विवाहके लिये जिन कुलक नामक ब्राह्मणको श्रीमाधवके निकट भेजा था, वे ही अब काशीनाथ हैं।"

'रुद्र'—(श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 135वाँ श्लोक)—

"वरूथपः सखा नाम्ना कृष्णचन्द्रस्य यो व्रजे।
आसीत् स एव गौराङ्गवल्लभः रुद्रपण्डितः॥ 135॥"

"व्रजमें वरूथप-नामक श्रीकृष्ण सखा ही अब श्रीगौराङ्ग महाप्रभुके प्रिय श्रीरुद्रपण्डित हैं।"

'वल्लभपुर'—कमलाकर पिप्पलाइके श्रीपाट माहेशके एक मील उत्तरमें है। इस स्थानपर एक विशाल मन्दिरमें काशीश्वर गोस्वामीके भाञ्जे श्रीरुद्रराम पण्डितके द्वारा स्थापित श्रीराधा-वल्लभजी विराजमान हैं। रुद्रराम पण्डितके छोटे भाई यदुनन्दन बन्दोपाध्याय महाशयके वंशधर 'चक्रवर्त्तिगण' श्रीराधावल्लभजीके वर्तमान सेवायित हैं। पहले रथयात्राके समय माहेशसे श्रीजगन्नाथदेव वल्लभपुरमें श्रीराधा-वल्लभके मन्दिरमें आते थे, किन्तु 1262 वर्षसे श्रीराधा-वल्लभजीके सेवायितोंका परस्पर मन-मलिनताके कारण यह प्रथा रुक गयी॥ 106॥

(48) श्रीनाथ पण्डित :—

श्रीनाथ पण्डित—प्रभुर कृपार भाजन।
याँर कृष्णसेवा देखि' वश त्रिभुवन॥ 107॥

अनुवाद—श्रीनाथ पण्डित महाप्रभुकी कृपाके विशेष पात्र हैं, जिनकी श्रीकृष्णसेवाको देखकर तीनों लोकोंके लोग आश्चर्यचकित हो जाते हैं॥ 107॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीनाथ पण्डित काँचड़ापाड़ाके निवासी थे॥ 107॥

अनुभाष्य—श्रीनाथ पण्डित—(श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 211वाँ श्लोक)—

"व्याचकार पारिपाट्यात् यो भागवत-संहिताम्।
कुमारहट्टे यत्कीर्त्तिः कृष्णदेवो विराजते॥ 211॥"

"ये परिपाटीके साथ भागवत-संहिताकी व्याख्या करते थे। कुमारहट्टमें इनकी कीर्त्ति श्रीकृष्णदेवके विग्रहरूपमें विराजमान है।"

कुमारहट्टसे लगभग डेढ़ मीलकी दूरीपर काँचड़ापाड़ामें श्रीशिवानन्दसेनका स्थान है। उस स्थानपर शिवानन्दसेनके द्वारा प्रतिष्ठित 'श्रीगौरगोपाल' का विग्रह है और श्रीनाथ पण्डितके द्वारा प्रतिष्ठित 'श्रीकृष्णराय' नामक श्रीराधाकृष्णकी मूर्त्ति एक विशाल मन्दिरमें विराजमान है। मन्दिरके सामने बड़ा आङ्गन, भोग बनानेके लिये पाकशाला और अतिथिगृह आदि हैं। प्राङ्गणके चारों ओर ऊँची दीवारें हैं। माहेशके मन्दिरसे भी यह मन्दिर बड़ा है। 1708 शकाब्दमें इस मन्दिरका निर्माण हुआ था। मन्दिरके सम्मुख एक अनुष्टुप श्लोकमें मन्दिरके प्रतिष्ठाताका नाम, उनके पिताका नाम, पितामहका नाम और तिथि खुदी है। कलकत्ता-पाथुरियाघाटाके निवासी परलोकगत निमाइ मल्लिक नामक एक धनी व्यक्तिने इस मन्दिरका निर्माण कराया था। श्रीनाथ पण्डित श्रीअद्वैताचार्यके शिष्य थे और शिवानन्द सेनके तीसरे पुत्र गौरगणोद्देशके लेखक परमानन्द कविकर्णपूर श्रीनाथ पण्डितके शिष्य थे। सम्भवतः कविकर्णपूरके समयमें ही श्रीकृष्णरायका विग्रह प्रकाशित हुआ था। किंवदन्तीके अनुसार श्रीवीरभद्र प्रभु एक विशाल सुरम्य पत्थर मुर्शीदाबादसे लाये थे और उस पत्थरसे वल्लभपुरके श्रीराधावल्लभ-विग्रह, खड़देहके श्रीश्यामसुन्दर विग्रह और काँचड़ापाड़ाके श्रीकृष्णरायके विग्रह प्रकाशित हुए थे।

शिवानन्द सेनका प्राचीन स्थान गङ्गातटपर था और वहाँ एक टूटा-फूटा छोटासा मन्दिर था। सुना जाता है कि निमाइ मल्लिक जब काशी जा रहे थे, तब वे इस स्थानपर कुछ समय रुके थे और उन्होंने मन्दिरकी जीर्ण दशाको देखकर बादमें वहाँ एक विशाल मन्दिरका निर्माण कराया था॥ 107॥

(49) श्रीजगन्नाथ आचार्य :—

जगन्नाथ आचार्य प्रभुर प्रिय दास।
प्रभुर आज्ञाते तेँहो कैल गङ्गावास॥ 108॥

अनुवाद—जगन्नाथ आचार्य महाप्रभुके प्रिय दास हैं। महाप्रभुकी आज्ञासे उन्होंने 'गङ्गावास' में वास किया॥ 108॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'गङ्गावास'—श्रीनवद्वीपके एक किनारे 'अलकनन्दा' नदीके तटपर 'गङ्गावास' नामक ग्राममें उन्होंने वास किया॥ 108॥

अनुभाष्य—(श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 111वाँ श्लोक)—

*"आचार्यः श्रीजगन्नाथो **गङ्गावासः** प्रभुप्रियः।*
आसीन्त्रिभुवने प्राग् यो दुर्वासा गोपिकाप्रियः॥ 111॥"

"श्रीजगन्नाथ आचार्य **और गङ्गादास, ये दोनों** महाप्रभुके प्रिय थे। ये दोनों पहले श्रीनिधुवनमें गोपिकाप्रिय श्रीदुर्वासा ऋषि थे॥"108॥

(50) कृष्णदास, (51) शेखर पण्डित,
(52) कविचन्द्र, और (53) षष्ठीवर :—

कृष्णदास वैद्य, आर पण्डित शेखर।
कविचन्द्र, आर कीर्त्तनीया षष्ठीवर॥ 109॥

(54) श्रीनाथ मिश्र, (55) शुभानन्द, (56) श्रीराम,
(57) ईशान, (58) श्रीनिधि, (59) श्रीगोपीकान्त,
(60) भगवान् मिश्र :—

श्रीनाथ मिश्र, शुभानन्द, श्रीराम, ईशान।
श्रीनिधि, श्रीगोपीकान्त, मिश्र भगवान्॥ 110॥

अनुवाद—कृष्णदास वैद्य, शेखर पण्डित, कविचन्द्र, षष्ठीवर, श्रीनाथ मिश्र, शुभानन्द, श्रीराम, ईशान, श्रीनिधि, श्रीगोपीकान्त और भगवान् मिश्र अन्य शाखाएँ हैं। षष्ठीवर कीर्तनीया हैं॥ 109-110॥

अनुभाष्य—'कविचन्द्र और श्रीनाथ मिश्र'—(श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 171वाँ श्लोक)—

"श्रीनाथमिश्रश्चित्राङ्गी कविचन्द्रो मनोहरा॥ 171॥"

"चित्राङ्गी सखी श्रीनाथ मिश्र और मनोहरा सखी कविचन्द्र हैं।"

'शुभानन्द'—श्रीगौरगणोद्देश-दीपिकाके 194 और 199 श्लोकके अनुसार शुभानन्द व्रजकी मालती हैं। ये रथके आगे नृत्यके समय सात-सम्प्रदायोंमें श्रीवास और श्रीनित्यानन्दके दलोंमें एक मुख्य गायक थे और इन्होंने भावाविष्ट महाप्रभुके मुखसे निकलती झागका पान किया था (चै:च: मध्यलीला 13/110 संख्या द्रष्टव्य है)।

'ईशान'—(चै:भा: मध्यखण्ड आठवाँ अध्याय)—

"सेविलेन सर्वकाल आइरे ईशान।
चतुर्द्दशलोकमध्ये महा-भाग्यवान्॥"

"ईशानने सब समय शचीमाताकी सेवा की। चौदह लोकोंमें ये महाभाग्यवान् हैं।" वैष्णव-वन्दनामें (भक्तिरत्नाकर बारहवीं तरङ्ग)—

"वन्दिब ईशानदास करयोड़ करि'।
शचीठाकुराणी याँरे स्नेह कैल बड़ि॥ 94॥"

"मैं हाथ जोड़कर ईशानदासकी वन्दना करता हूँ, जिनका स्नेहसे पालनकर शची ठाकुरानीने बड़ा किया है।" भक्तिरत्नाकरकी 12वीं तरङ्गमें—

"निमाइ चाँदेर अति प्रिय से ईशान॥ 95॥"

"ईशान निमाइ चाँदके अति प्रिय हैं॥"109-110॥

(61) सुबुद्धि मिश्र, (62) हृदयानन्द, (63) कमलनयन,
(64) महेश पण्डित, (65) श्रीकर, (66) मधुसूदन :—

सुबुद्धि मिश्र, हृदयानन्द, कमलनयन।
महेश पण्डित, श्रीकर, श्रीमधुसूदन॥ 111॥

(67) पुरुषोत्तम, (68) श्रीगालीम, (69) जगन्नाथदास,
(70) श्रीचन्द्रशेखर, (71) द्विज हरिदास :—

पुरुषोत्तम, श्रीगालीम, जगन्नाथदास।
श्रीचन्द्रशेखर वैद्य, द्विज हरिदास॥ 112॥

अनुवाद—वृक्षकी अन्य शाखाएँ सुबुद्धि मिश्र, हृदयानन्द, कमलनयन, महेश पण्डित, श्रीकर, श्रीमधुसूदन, पुरुषोत्तम, श्रीगालीम, जगन्नाथदास, श्रीचन्द्रशेखर वैद्य और द्विज हरिदास हैं॥ 111-112॥

अनुभाष्य—'सुबुद्धि मिश्र'—श्रीगौरगणोद्देश-दीपिकाके 194 और 201 श्लोकके अनुसार सुबुद्धि मिश्र व्रजकी गुणचूड़ा हैं। इनका स्थान श्रीखण्डसे तीन मील पश्चिममें 'बेलगाँ' है। यहाँपर श्रीनिताइ-गौरका श्रीविग्रह है। टीका लिखनेके समय इनके जो वंशधर वर्तमान थे, उनका नाम श्रीगोविन्दचन्द्र गोस्वामी था।

'कमलनयन'—श्रीगौरगणोद्देश-दीपिकाके 196 और 205 श्लोकके अनुसार कमलनयन व्रजकी गन्धोन्मादा हैं।

'महेश पण्डित'—चै:च: आदिलीला 11/32 संख्या द्रष्टव्य है।

'चन्द्रशेखर वैद्य'—काशीमें रहनेके समय महाप्रभुने

इनके घरपर वास किया था। ये लेखक थे। चैःचः आदिलीला 7/45 पयार और अनुभाष्य, 10/152, 154; मध्य 17/92, 19/241-243; मध्य 20/46-53, 67-71; 25/62, 172 संख्या द्रष्टव्य हैं।

'द्विज हरिदास'—ये अष्टोत्तरशतनामके रचियता हैं अथवा नहीं, इस विषयमें संशय है। काञ्चनगड़ियाके निवासी इनके दो पुत्र श्रीदाम और गोकुलानन्द श्रीनिवास आचार्यके शिष्य थे॥ 111-112॥

(72) रामदास, (73) कविदत्त, (74) गोपालदास,
(75) रघुनाथ, (76) शार्ङ्गठाकुर :—

रामदास, कविदत्त, श्रीगोपालदास।
भागवताचार्य, ठाकुर सारङ्गदास॥ 113॥

(77) जगन्नाथतीर्थ, (78) जानकीनाथ,
(79) गोपाल आचार्य, (80) द्विज वाणीनाथ :—

जगन्नाथ तीर्थ, विप्र श्रीजानकीनाथ।
गोपाल आचार्य आर विप्र वाणीनाथ॥ 114॥

अनुवाद—रामदास, कविदत्त, श्रीगोपालदास, भागवताचार्य, ठाकुर सारङ्गदास, जगन्नाथ तीर्थ, विप्र श्रीजानकीनाथ, गोपाल आचार्य और विप्र वाणीनाथ, भक्तिवृक्षकी अन्य शाखाएँ हैं॥ 113-114॥

अमृतप्रवाह भाष्य—भागवताचार्य वराहनगरके निवासी थे। अभी भी उनके आश्रमको 'भागवताचार्यका पाट' कहते हैं। ठाकुर सारङ्ग दास मामगाछीके निवासी थे। विप्र वाणीनाथ चम्पाहाटीके निवासी थे॥ 113-114॥

अनुभाष्य—'श्रीगोपाल दास'—(श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 158वाँ श्लोक)—

"पुरा श्रीतारका-पाल्यौ ये स्थिते व्रजमण्डले।
ते साम्प्रतं जगन्नाथ-श्रीगोपालौ प्रभोः प्रियौ॥ 158॥"

"व्रजमण्डलमें जो पहले श्रीतारका और पाली नामक गोपियाँ थीं, वे दोनों ही अब महाप्रभुके प्रिय श्रीजगन्नाथ और श्रीगोपाल हैं।"

'भागवताचार्य'—(श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 203रा श्लोक)—

"निर्मिता पुस्तिका येन 'कृष्णप्रेमतरङ्गिणी'।
श्रीमद्भागवताचार्यो गौराङ्गात्यन्तवल्लभः॥ 203॥"

"श्वेतमञ्जरी श्रीगौराङ्गके अत्यन्त प्रिय वही श्रीभागवताचार्य हैं, जिन्होंने 'कृष्णप्रेमतरङ्गिणी' नामक ग्रन्थकी रचना की है।" (चैःभाः अन्त्यखण्ड पाँचवाँ अध्याय)—

"तबे प्रभु आइलेन वराहनगरे।
महाभाग्यवन्त एक ब्राह्मणेर घरे॥ 110॥
सेइ विप्र बड़ सुशिक्षित भागवते।
प्रभु देखि' भागवत लागिल पड़िते॥ 111॥
शुनिया ताहार भक्तियोगेर पठन।
आविष्ट हइला गौरचन्द्र नारायण॥ 112॥
प्रभु बले, भागवत एमत पड़िते।
कभु नाहि शुनि आर काहारो मुखेते॥ 119॥
एतेके तोमार नाम 'भागवताचार्य'।
इहा बइ आर कोन ना करिह कार्य॥"120॥

"तब महाप्रभु महाभाग्यवान् एक ब्राह्मणके घर वराहनगर आये। वे ब्राह्मण भागवतमें बड़े सुशिक्षित थे। महाप्रभुको देखकर वे भागवत पढ़ने लगे। उनका भक्तियोगका पाठ सुनकर महाप्रभु भावमें आविष्ट हो गये और बोले—'मैंने इस प्रकार भागवतका पाठ किसी औरके मुखसे कभी नहीं सुना है, इसलिये तुम्हारा नाम 'भागवताचार्य' है। अब तुम भागवत पाठके अतिरिक्त कोई और कार्य नहीं करना।" इनका नाम 'रघुनाथ' भी कहते हैं। इनका पाट वराहनगर-मालिपाड़ामें गङ्गाके तटपर है।

'ठाकुर सारङ्गदास'—इनका एक और नाम शार्ङ्ग ठाकुर भी है। इनको कोई-कोई शार्ङ्गपाणि या शार्ङ्गधर भी कहते हैं। ये नवद्वीपके अन्तर्गत मोद्रुमद्वीपमें वास करते हुए गङ्गातटपर निर्जनमें भजन करते थे। भगवान्के पुनः पुनः प्रेरणा देनेपर ही ये किसीको शिष्य बनानेके लिये बाध्य हुए। तब इन्होंने निश्चय किया कि आगामी दिवस प्रातःकालमें जिसे सबसे पहले देखेंगे, उसीको अपना शिष्य बनायेंगे। घटनावश अगले दिन प्रातःकालमें

जब ये गङ्गामें स्नान करने गये, तो इनके चरणोंको बहती हुई एक मृत देहने स्पर्श किया। इन्होंने उसे पुनः जीवन प्रदानकर उसे अपना शिष्य बनाया। उनके शिष्य 'ठाकुर मुरारि' के नामसे प्रसिद्ध हुए और उनकी वंश-परम्परा अब भी 'शर्'-नामक ग्राममें वास करती है। श्रीशार्ङ्गके नामके साथ मुरारिकी कथा जुड़नेके कारण 'शार्ङ्गमुरारि' के नामसे प्रसिद्धि अभी तक भी सुनी जाती है।

आज भी शार्ङ्गठाकुरकी एक प्राचीन सेवा मामगाछि ग्राममें है। बादमें श्रीठाकुरके एक और मन्दिरका प्राचीन बकुल वृक्षके सामने निर्माण किया गया है। (श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 172वाँ श्लोक)—

"व्रजे नान्दीमुखी यासीत् साद्य सारङ्गठक्कुरः।
प्रह्लादो मन्यते कैश्चिन्मत्पिता स न मन्यते॥ 172॥"

"व्रजकी नान्दीमुखी अब सारङ्ग ठाकुर हैं। कोई-कोई महात्मा इन्हें प्रह्लाद कहते हैं, किन्तु मेरे पिता (श्रीशिवानन्द सेन) ने इसे स्वीकार नहीं किया।"

'जगन्नाथ तीर्थ'—चैःचः आदिलीला 9/14 (अनुभाष्य) द्रष्टव्य है।

'वाणीनाथ'—(श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 195 और 204 श्लोक)—

"वाणीनाथद्विजश्चम्पहट्टवासी प्रभोः प्रियः॥ 204॥"

"चम्पाहट्ट निवासी द्विज वाणीनाथ महाप्रभुके अत्यन्त प्रिय हैं। व्रजलीलामें ये कामलेखा हैं।" चम्पाहट्ट या चाँपाहाटि—वर्धमान जिलामें समुद्रगढ़के अन्तर्गत एक छोटासा ग्राम है। इस प्राचीन श्रीपाटकी सेवामें अनियन्त्रित व्यवस्था और अवहेलना देखकर बङ्गाब्द 1328 में श्रीपरमानन्द ब्रह्मचारी (श्रीभक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुरके शिष्य) और चैतन्य मठके सेवकोंने उसका संस्कारकर वहाँ एक नये मन्दिरका निर्माण करवाया। अब वहाँ श्रीवाणीनाथके द्वारा प्रतिष्ठित नयनाभिराम श्रीगौर-गदाधरके विग्रहोंकी शास्त्रविधिके अनुसार अर्चा-पूजा हो रही है॥ 113-114॥

(81) गोविन्द, (82) माधव, (83) वासुदेव :—

गोविन्द, माधव, वासुदेव—तिन भाइ।
याँ-सबार कीर्त्तने नाचे चैतन्य-निताइ॥ 115॥

अनुवाद—गोविन्द, माधव और वासुदेव—ये तीन भाई वृक्षकी एक और शाखा थे। इनके कीर्तनमें महाप्रभु और श्रीनित्यानन्द प्रभु नृत्य करते थे॥ 115॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'गोविन्द'—अग्रद्वीपमें श्रीगोपीनाथके स्थापक॥ 115॥

अनुभाष्य—'गोविन्द, माधव और वासुदेव घोष'—इन तीनों भाइयोंका जन्म उत्तर-राढ़ीय कायस्थकुलमें हुआ था। (चैःभाः अन्त्यखण्ड पाँचवाँ अध्याय)—

"सुकृति माधवघोष कीर्त्तने तत्पर।
हेन कीर्त्तनीया नाहि पृथिवी-भितर॥ 257॥
याहारे कहेन वृन्दावनेर गायन।
नित्यानन्दस्वरूपेर महाप्रियतम॥ 258॥
माधव, गोविन्द, वासुदेव—तिन भाइ।
गाइते लागिला, नाचे ईश्वर निताई॥ 259॥"

"सुकृतिवान् माधव घोष कीर्तन करनेमें तत्पर हो गये। पृथ्वीपर उनके समान कीर्तनीया और कोई नहीं था। उन्हें वृन्दावनके वैभवका गायक कहा जाता था और वे श्रीनित्यानन्द प्रभुके अतिशय प्रिय थे। जब ये तीनों भाई मिलकर गान करते थे, तो महाप्रभु और श्रीनित्यानन्द प्रभु भावावेशमें नृत्य करते थे।" (श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 188वाँ श्लोक)—

"कलावती', 'रसोल्लासा', 'गुणतुङ्गा' व्रजे स्थिता।
श्रीविशाखाकृतं गीतं गायन्ति स्माद्य ता मताः।
गोविन्द-माधवानन्द-वासुदेवा यथाक्रमम्॥ 188॥"

"कलावती, रसोल्लासा और गुणतुङ्गा नामक जो सखियाँ व्रजमें विशाखा सखीके द्वारा रचित गीतोंको गाया करती थीं, अब वे यथाक्रमसे गोविन्द, माधवानन्द और वासुदेव हैं।" श्रीक्षेत्रमें रथको ले जाते समय महाप्रभुके साथ सात कीर्तन सम्प्रदायोंमेंसे एक सम्प्रदायमें ये तीनों भाई मूल गायक थे और उन्हें साक्षात्

श्रीवक्रेश्वर पण्डित प्रधान नर्तक रूपमें प्राप्त हुए थे (चैःचः मध्यलीला, 13/42-43 संख्या द्रष्टव्य है)॥115॥

(84) अभिराम ठाकुर :—

रामदास अभिराम—सख्य-प्रेमराशि।
षोलसाङ्गेर काष्ठ तुलि' ये करिल वाँशी॥116॥

अनुवाद—रामदास अभिराम सख्यप्रेममें सदा डूबे रहते थे। ये सोलह साङ्गकी* लकड़ीको अकेले ही उठाकर (वंशीके जैसे) धारण कर लेते थे। ॥116॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'अभिराम'—खानाकुल-कृष्णनगर-वासी॥116॥

श्रीनिताइके साथ अभिराम, माधव और वासुघोषका गौड़में नामप्रचार और महाप्रभुके साथ गोविन्दका वास :—

प्रभुर आज्ञाय नित्यानन्द गौड़े चलिला।
ताँर सङ्गे तिनजन प्रभु-आज्ञाय आइला॥117॥
श्रीरामदास, माधव, आर वासुदेव घोष।
प्रभु-सङ्गे रहे गोविन्द पाइया सन्तोष॥118॥

अनुवाद—महाप्रभुकी आज्ञा पाकर श्रीनित्यानन्द प्रभु जब प्रचारके लिये गौड़देश चले, तो उनके साथ रामदास, माधव और वासुदेव घोष—ये तीन भक्त थे। परन्तु गोविन्द महाप्रभुके साथ ही जगन्नाथपुरीमें बड़े आनन्दके साथ रहे॥117-118॥

अनुभाष्य—चैःचः मध्यलीला, 15/42-43 संख्या द्रष्टव्य है। **'रामदास'**—चैःचः आदिलीला 11/13-16 और मध्य 15/42-43 संख्या द्रष्टव्य है॥117-118॥

---

*कोई भारी वस्तु उठानेके लिये उसे एक मजबूत लकड़ीके बीचमें बाँधकर दो व्यक्ति दोनों ओरसे उसे उठाते हैं, उस लकड़ीको साङ्ग कहते हैं। इसलिये सोलह साङ्गकी लकड़ीको उठानेके लिये बत्तीस लोग चाहिये।

(76), (41), (39क), (85) माधवाचार्य, (86) कमलाकान्त (87) यदुनन्दन :—

भागवताचार्य, चिरञ्जीव, श्रीरघुनन्दन।
श्रीमाधवाचार्य, कमलाकान्त, श्रीयदुनन्दन॥119॥

अनुवाद—भागवताचार्य, चिरञ्जीव, श्रीरघुनन्दन, श्रीमाधवाचार्य, कमलाकान्त और श्रीयदुनन्दन, महाप्रभुकी अन्य शाखाएँ हैं॥119॥

अनुभाष्य— 'माधवाचार्य'—ये ब्रजकी माधवी हैं (श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 169वाँ श्लोक)। ये श्रीनित्यानन्द-शाखामें हैं और श्रीनित्यानन्द प्रभुकी पुत्री श्रीमती गङ्गादेवीके पति हैं। इन्होंने श्रीनित्यानन्द प्रभुके गण पुरुषोत्तम (नागर) से दीक्षा ग्रहणकी थी। ऐसा कहा जाता है कि गङ्गादेवीके विवाहके समय श्रीनित्यानन्द प्रभुने माधवको पाँजिनगर दानमें दिया था। इनका श्रीपाट जीराट्में है। चैःचः आदिलीला 11/38 संख्या द्रष्टव्य है।

'कमलाकान्त'—ये अद्वैताचार्यके जन कमलाकान्त विश्वास हैं।

'यदुनन्दनाचार्य'—ये श्रीअद्वैतशाखामें हैं (चैःचः अन्त्यलीला, 6/160-169 संख्या द्रष्टव्य है॥119॥

(88) जगाइ और (89) माधाइ :—

महाकृपापात्र प्रभुर जगाइ, मधाइ।
'पतितपावन' नामेर साक्षी दुइ भाइ॥120॥

अनुवाद—जगाइ और मधाइ, महाप्रभुकी महाकृपाके पात्र थे। इन दोनों भाइयोंने इस बातके साक्षी होकर प्रमाणित किया कि महाप्रभुका 'पतितपावन' नाम यथार्थ है॥120॥

अनुभाष्य—'जगाइ और मधाइ'—(श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 115वाँ श्लोक)—

"वैकुण्ठे द्वारपालौ यौ जयाद्यविजयान्तकौ।
तावद्य जातौ स्वेच्छातः श्रीजगन्नाथ-माधवौ॥115॥"

"वैकुण्ठके द्वारपाल जय और विजय स्वेच्छापूर्वक

अब श्रीजगन्नाथ (जगाइ) और माधव (मधाइ) के रूपमें अवतीर्ण हुए हैं।" ये दोनों नवद्वीपमें ब्राह्मण परिवारमें जन्म ग्रहणकर भी चोरी-डकैती और अन्य सभी प्रकारके पापकर्मोंमें लिप्त थे। किन्तु बादमें श्रीमन्महाप्रभु और श्रीनित्यानन्द प्रभुकी कृपासे हरिनाम प्राप्तकर दोनों 'महाभागवत' बन गये। मधाइका वंश आज भी विद्यमान है और वे सब कुलीन ब्राह्मण हैं। आकाइहाट जानेके मार्गमें कटोआसे एक मील दक्षिणकी ओर 'घोषहाट' अथवा माधाइतला-गाँवमें जगाइ और मधाइका समाज है। सुना जाता है कि श्रीगोपीचरणदास बाबाजीने लगभग 300 वर्ष पहले इसका उद्धार करके श्रीनिताइ-गौरके श्रीविग्रहकी प्रतिष्ठाकी थी॥ 120॥

असंख्य गौड़ीयभक्तोंमें उल्लिखित कुछेक वैष्णवगण :—

गौड़देश-भक्तेर कैल संक्षेप कथन।
अनन्त चैतन्यभक्त ना याय गणन॥ 121॥

अनुवाद—महाप्रभुके गौड़देशके भक्तोंका मैंने यहाँ संक्षेपमें वर्णन किया है। श्रीचैतन्यमहाप्रभुके भक्त अनन्त हैं, जिनकी गणना करना सम्भव नहीं है॥ 121॥

गौड़ और उड़ीसा, दोनों स्थानोंपर इनकी गौरसेवा :—

नीलाचले एइसब भक्त प्रभुसङ्गे।
दुइ स्थाने प्रभु-सेवा कैल नानारङ्गे॥ 122॥

अनुवाद—मैंने जिन भक्तोंका वर्णन किया है, वे सब महाप्रभुके पास नीलाचल आते थे। उन्होंने गौड़देश और नीलाचल, इन दोनों स्थानोंमें महाप्रभुकी अनेक प्रकारसे सेवा की थी॥ 122॥

केवल नीलाचलमें मिले सेवकोंका उल्लेख :—

केवल नीलाचले प्रभुर ये ये भक्तगण।
संक्षेपे करिये किछु से-सब कथन॥ 123॥

अनुवाद—केवल नीलाचलमें महाप्रभुके जो-जो भक्त थे, उनका संक्षेपमें मैं कुछ वर्णन करूँगा॥ 123॥

नीलाचले प्रभुसङ्गे सब भक्तगण।
सबार अध्यक्ष—प्रभुर मर्म दुइजन॥ 124॥

सर्वप्रधान-(1) श्रीपरमानन्द और (2) श्रीस्वरूप :—

परमानन्दपुरी, आर स्वरूप दामोदर।
गदाधर, जगदानन्द, शङ्कर, वक्रेश्वर॥ 125॥

दामोदर पण्डित, ठाकुर हरिदास।
रघुनाथ वैद्य, आर रघुनाथदास॥ 126॥

इत्यादिक पूर्वसङ्गी बड़ भक्तगण।
नीलाचले रहि' प्रभुर करेन सेवन॥ 127॥

अनुवाद—नीलाचलमें महाप्रभुके सङ्ग जो भक्त थे, उनमें दो प्रधान—परमानन्दपुरी और स्वरूप दामोदर महाप्रभुके मर्मको जाननेवाले थे। श्रीगदाधर पण्डित, जगदानन्द पण्डित, शङ्कर, वक्रेश्वर, दामोदर पण्डित, हरिदास ठाकुर, रघुनाथ वैद्य तथा रघुनाथदास गोस्वामी आदि बड़े भक्त महाप्रभुके पूर्व सङ्गी थे। उन्होंने नीलाचलमें रहकर महाप्रभुकी सेवा की॥ 124-127॥

अनुभाष्य—'रघुनाथ वैद्य'—(चै:भा: अन्त्यखण्ड पाँचवाँ अध्याय)—

"रघुनाथ वैद्य आइलेन ततक्षणे।
परमवैष्णव, अन्त नाहि याँर गुणे॥ 97॥"

"जब महाप्रभु पाणिहाटीमें थे, तब उनके दर्शनके लिये रघुनाथ वैद्य तुरन्त वहाँ आये। वे परम वैष्णव हैं और उनमें अनन्त गुण हैं।"

श्रीनित्यानन्द प्रभुके साथ गौड़देश आते हुए उनके सहगामी भक्तोंका व्रजभाव—(चै:भा: अन्त्यखण्ड, पाँचवाँ अध्याय)—

"रघुनाथ वैद्य उपाध्याय महामति।
हइलेन मूर्त्तिमति ये हेन रेवती॥ 239॥"

"श्रीनित्यानन्द प्रभुके साथ गौड़देश आते समय मार्गमें साथ चलते हुए रघुनाथ वैद्य मूर्तिमति रेवती जैसे हो गये।"

"रघुनाथ वैद्य उपाध्याय महामति।
याँर दृष्टिपाते कृष्णे हय रति मति॥ 726॥"

"उन्हें देखने मात्रसे ही देखनेवालेका चित्त श्रीकृष्णमें लग जाता था।" चैःचः आदिलीला, 11/22 संख्या द्रष्टव्य है। ये पुरीमें समुद्र तटपर रहते थे और इन्होंने वहाँके 'स्थान-निरूपण' नामक ग्रन्थकी रचना की थी॥ 126॥

आर यत भक्तगण गौड़देशवासी।
प्रत्यब्दे प्रभुरे देखे नीलाचले आसि'॥ 128॥

अनुवाद—और जितने भी गौड़देशके भक्त, जिनका नाम पहले उल्लेख किया है, वे प्रतिवर्ष महाप्रभुसे मिलने नीलाचल आते थे॥ 128॥

नीलाचले प्रभुसह प्रथम मिलन।
सेइ भक्तगणेर एबे करिये गणन॥ 129॥

अनुवाद—नीलाचलमें महाप्रभुसे जिनका प्रथम मिलन हुआ था, उन भक्तोंकी गणना अब मैं करूँगा॥ 129॥

(3) सार्वभौम शाखा, (4) गोपीनाथाचार्य :—

बड़शाखा एक,—सार्वभौम भट्टाचार्य।
ताँर भग्नीपति श्रीगोपीनाथाचार्य॥ 130॥

अनुवाद—सार्वभौम भट्टाचार्य एक बड़ी शाखा हैं, श्रीगोपीनाथाचार्य उनके बहनोई हैं॥ 130॥

अनुभाष्य—'सार्वभौम भट्टाचार्य'—इनका नाम पहले वासुदेव भट्टाचार्य था। ये वर्तमान नवद्वीप अथवा चाँपाहाटीसे दो मील दूर 'विद्यानगर' नामक पल्लीके प्रसिद्ध महेश्वर विशारदके पुत्र थे। कहा जाता है कि ये उस समय भारतके सर्वप्रधान नैयायिक थे। इन्होंने मिथिलाके सुविख्यात न्याय-विद्यालयके प्रधान अध्यापक पक्षधर मिश्रसे समस्त न्यायशास्त्रको कण्ठस्थ करके नवद्वीपमें न्यायविद्यालयकी स्थापना करके वहाँ अध्यापन कार्य आरम्भ किया। न्याय-शास्त्रके इतिहासमें इन्होंने नये युगका आरम्भ किया। तबसे नवद्वीप मिथिलाको गौरवहीन करके आज भी समस्त भारतमें सर्वप्रधान न्याय-विद्यापीठके रूपमें परिचित है। किसी-किसीके मतानुसार 'दीधिति' ग्रन्थोंके रचयिता सुविख्यात नैयायिक रघुनाथ शिरोमणि इनके ही छात्र हैं। जैसा भी हो, (सार्वभौम) न्याय और वेदान्तशास्त्रके प्रकाण्ड पण्डित थे। वे गृहस्थाश्रममें रहकर भी क्षेत्र-संन्यास ग्रहणकर नीलाचलमें वेदान्त पढ़ाया करते थे। इन्होंने श्रीमन्महाप्रभुको शाङ्कर-भाष्यानुमोदित वेदान्त सुनाया। बादमें महाप्रभुसे श्रवण करके ये वेदान्तके वास्तविक अर्थसे अवगत हुए। इन्होंने महाप्रभुकी षड्भुज-मूर्तिका दर्शन किया। इनके द्वारा रचित 'चैतन्यशतक' में गौरभक्ति प्रकटित है; विशेषतः "वैराग्यविद्यानिजभक्ति योग' दो श्लोक सार्वभौमके पाण्डित्यकी सीमा है। महाप्रभुका सार्वभौमके साथ मिलन और इनके साथ विचार और उद्धारके वृत्तान्तके लिये मध्यलीलाका छठा अध्याय द्रष्टव्य है। (श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 119वाँ श्लोक)—

"भट्टाचार्यः सार्वभौमः पुरासीद्गीष्पतिर्दिवि॥ 119॥"

"देवलोकके बृहस्पति अब सार्वभौम भट्टाचार्य हैं।"

'गोपीनाथ आचार्य'—ये नवद्वीपवासी और महाप्रभुके सङ्गी ब्राह्मण हैं। ये सार्वभौम भट्टाचार्यके बहनोई हैं। (श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 178वाँ श्लोक)—

"पुरा प्राणसखी यासीन्नाम्ना रत्नावली व्रजे।
गोपीनाथाख्यकाचार्यो निर्मलत्वेन विश्रुतः॥ 178॥"

"पहले जो व्रजमें रत्नावली नामक प्राणसखी थीं, वे ही अब श्रीगोपीनाथाचार्यके नामसे विख्यात हैं।"

किसी-किसी के मतानुसार, ये ब्रह्मा हैं। (श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 75वाँ श्लोक)—

"गोपीनाथाचार्यनाम्ना ब्रह्मा ज्ञेयो जगत्पतिः।
नवव्यूहे तु गणितो यस्तन्त्रे तन्त्रवेदिभिः॥ 75॥"

"तन्त्रवादी लोग जिनकी तन्त्रमें वर्णित नवव्यूहके अन्तर्गत गणना करते हैं, उन्हीं जगत्पति ब्रह्माको श्रीगोपीनाथाचार्य जानना होगा॥"130॥

(5) काशीमिश्र, (6) प्रद्युम्नमिश्र, (7) राय भवानन्द :—

काशीमिश्र, प्रद्युम्नमिश्र, राय भवानन्द।
याँहार मिलने प्रभु पाइला आनन्द॥ 131॥
आलिङ्गन करि' ताँरे बलिल वचन।
तुमि पाण्डु, पञ्चपाण्डव—तोमार नन्दन॥ 132॥

अनुवाद—काशीमिश्र, प्रद्युम्नमिश्र और राय भवानन्द, जिन्हें मिलकर महाप्रभुको आनन्द हुआ। राय भवानन्दका आलिङ्गन करके महाप्रभुने कहा कि तुम पाण्डु हो और तुम्हारे पुत्र पाँच पाण्डव हैं॥ 131-132॥

अनुभाष्य—'काशीमिश्र'—राजपुरोहित थे। नीलाचलमें श्रीमन्महाप्रभु इनके घरमें ही रहे थे। बादमें यह स्थान श्रीवक्रेश्वर पण्डितको मिला। उनके शिष्य श्रीगोपालगुरु गोस्वामीके समयमें वहाँपर 'श्रीराधाकान्त' विग्रहकी स्थापना हुई थी। (श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 193वाँ श्लोक)—

"मथुरायां पुरा यासीत् सैरिन्ध्री कृष्णवल्लभा।
साद्य नीलाचलावासः काशीमिश्रः प्रभोः प्रियः॥ 193॥"

"पहले मथुरामें जो श्रीकृष्णकी प्रिया सैरिन्ध्री (कुब्जा) थीं, वे ही अब महाप्रभुके प्रियपात्र नीलाचलवासी काशी मिश्र हैं।"

'प्रद्युम्न मिश्र'—उड़ीसाके निवासी थे। (चैःभाः अन्त्यखण्ड, पाँचवाँ अध्याय)—

"श्रीप्रद्युम्न मिश्र कृष्णसुखेर सागर।
आत्मपद याँरे दिला श्रीगौरसुन्दर॥ 211॥"

"श्रीकृष्णप्रेमके सागर श्रीप्रद्युम्न मिश्र, जिन्हें श्रीगौरसुन्दरने आत्म-पद प्रदान किया।" (चैःभाः अन्त्यखण्ड, आठवाँ अध्याय)—

"श्रीप्रद्युम्नमिश्र प्रेमभक्तिर प्रधान॥ 57॥"

"प्रेमाभक्तिके प्रधान श्रीप्रद्युम्न मिश्र।" (चैःचः मध्य, 10/43)—

"प्रद्युम्नमिश्र इहँ वैष्णव-प्रधान।
जगन्नाथेर 'महासोयार' इहँ 'दास' नाम॥ 43॥"

"प्रद्युम्नमिश्र वैष्णवोंमें प्रधान हैं। वे भगवान् श्रीजगन्नाथके प्रधान रसोइया हैं। दास इनका नाम है॥"

अशौक्र-ब्राह्मणकुलमें उत्पन्न महाभागवत श्रीराय रामानन्दके निकट शौक्र-ब्राह्मणकुलमें उत्पन्न प्रद्युम्नमिश्रको हरिकथा-श्रवणरूप शिष्यत्व प्रदानकर महाप्रभुकी कृपाका प्रसङ्ग—चैःचः अन्त्यलीला, पाँचवाँ अध्याय द्रष्टव्य है।

'भवानन्द राय'—श्रीरामानन्द रायके पिता। पुरीसे पश्चिमकी ओर छह कोसकी दूरीपर ब्रह्मगिरी अथवा आलालनाथके निकट इनका वास स्थान था। ये जातिसे शौक्र-करण थे। इनके पाँच पुत्रोंके सम्बन्धमें 133 संख्या द्रष्टव्य है। ये पहले 'पाण्डुराज' के रूपमें परिचित थे॥ 131॥

(8) श्रीराय-रामानन्दादि पाँच भाई :—

रामानन्द राय, पट्टनायक गोपीनाथ।
कलानिधि, सुधानिधि, नायक वाणीनाथ॥ 133॥
एइ पञ्चपुत्र तोमार—मोर प्रियपात्र।
रामानन्द-सह मोर देह-भेद मात्र॥ 134॥

अनुवाद—यद्यपि तुम्हारे ये पाँचों पुत्र रामानन्द राय, गोपीनाथ पट्टनायक, कलानिधि, सुधानिधि और नायक वाणीनाथ, मेरे प्रिय पात्र हैं, किन्तु रामानन्द मेरा ही स्वरूप है, उसके साथ मेरा केवल देह मात्रका भेद है॥ 133-134॥

अनुभाष्य—'रामानन्द राय'—(श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 120-124वें श्लोक)—

"प्रियनर्मसखः कश्चिदर्जुनः पाण्डवोऽर्जुनः।
मिलित्वा समभूद्रामानन्दरायः प्रभोः प्रियः॥ 120॥
अतो राधाकृष्णभक्तिप्रेमतत्त्वादिकं कृती।
रामानन्दो गौरचन्द्रं प्रत्यवर्णयदन्वहम्॥ 121॥
ललितेत्याहुरेके यत्तदेकेनानुमन्यते।
भवानन्दं प्रति प्राह गौरो यत्त्वं पृथापतिः॥ 122॥
गोप्यऽर्जुनीयया सार्द्धमेकीभूयापि पाण्डवः।
अर्जुनो यद्रायरामानन्द इत्याहुरुत्तमाः॥ 123॥
अर्जुनीयाभवत्तूर्णमर्जुनोऽपि च पाण्डवः।
इति पाद्मोत्तरे खण्डे व्यक्तमेव विराजते।
तस्मादेतत्त्रयं रामानन्दराय-महाशयः॥ 124॥"

"श्रीकृष्णके प्रियनर्म सखा श्रीअर्जुन और पाण्डव-अर्जुन मिलकर श्रीगौरप्रिय श्रीरामानन्द राय हुए हैं। इसलिये रामानन्द प्रतिदिन ही श्रीगौरचन्द्रको राधाकृष्णतत्त्व, भक्तितत्त्व, प्रेमतत्त्व आदि वर्णन करते थे। कोई उन्हें श्रीललिता भी कहते हैं, किन्तु अधिकांश महात्मा इस बातको स्वीकार नहीं करते हैं, क्योंकि श्रीगौरसुन्दरने भवानन्दको कहा है कि आप कुन्तीपति राजा पाण्डु हैं। विज्ञजन कहते हैं कि अर्जुनीया नामकी गोपी और पाण्डुपुत्र अर्जुन एक होकर श्रीरायरामानन्द हुए हैं। पाद्मोत्तर-खण्डमें कहा गया है कि अर्जुनीया ही अर्जुन हुईं थी। इसलिये श्रीललितादेवी (अथवा प्रियनर्मसखा अर्जुन?), श्रीमती अर्जुनीया और पाण्डव-अर्जुन, ये तीनोंका मिलित रूप श्रीरायरामानन्द हैं।"

किसी-किसीके मतमें ये विशाखादेवी हैं (चैःचः मध्यलीला, नौवाँ और अन्त्य, पाँचवाँ अध्याय द्रष्टव्य है)। अन्तरङ्ग भक्तोंके बीच इनका बहुत ऊँचा स्थान है। महाप्रभुका कथन है—

"आमि त' संन्यासी, आपना विरक्त करि' मानि।
दर्शन दूरे, प्रकृतिर नाम यदि शुनि॥
तबहिँ विकार पाय मोर तनु मन।
प्रकृति-दर्शने स्थिर हय कोन् जन॥
निर्विकार देह-मन काष्ठ-पाषाण सम।
आश्चर्य तरुणी-स्पर्शे निर्विकार मन॥
एक रामानन्देर हय एइ अधिकार।
ताते जानि,—अप्राकृत देह ताँहार॥
ताँहार मनेर भाव तिनिइ जाने मात्र।
ताहा जानिवारे आर द्वितीय नाहि पात्र॥
गृहस्थ हञा नहे राय षड्वर्गेर वशे।
विषयी हइया संन्यासीरे उपदेशे॥"

"मैं तो संन्यासी हूँ और अपनेको विरक्त मानता हूँ। परन्तु दर्शन तो दूरकी बात है, स्त्रीका नाम भी यदि मैं सुनता हूँ, तो मेरे तन-मनमें विकार आ जाता है। स्त्रीका दर्शन करके कौन स्थिर रह सकता है? किसका तन और मन काष्ठ-पत्थरके सामान निर्विकार रह सकता है? यह बहुत आश्चर्यकी बात है कि तरुणीके स्पर्शसे भी मन निर्विकार रहे। एक रामानन्दका ही ऐसा अधिकार है। इसलिये यह समझना चाहिये कि उनकी देह अप्राकृत है। उनके मनके भावोंको केवल वे ही जान सकते हैं, उनको जाननेवाला कोई दूसरा नहीं है। गृहस्थ होकर भी राय षड्वर्ग (काम, क्रोध, मोह, लोभ, मद और मात्सर्य) के वशमें नहीं हैं। बाह्य दृष्टिसे विषयी दिखनेपर भी वे इतने विरक्त हैं कि वे विषयोंको त्याग किये हुए निर्गुण संन्यासीको भी जड़ विषयोंका त्यागकर श्रीकृष्णविषयके अनुशीलनमें प्रवृत्त करानेमें समर्थ हैं।"

श्रीस्वरूप और इनके साथ महाप्रभु शेषलीलामें निरन्तर श्रीकृष्णविरहणी राधाके महाभाव-वैचित्र्यका आस्वादन करते थे (चैःचः मध्यलीला, 2/77संख्या); इनके शुद्धसख्यके द्वारा महाप्रभु वशीभूत थे (चैःचः मध्यलीला, 2/78 संख्या)। सार्वभौम भट्टाचार्यका कथन—

"रामानन्द राय आछे गोदावरी तीरे।
अधिकारी हयेन तेँहो विद्यानगरे॥
पृथिवीते रसिक भक्त नाहि ताँर सम।
पाण्डित्य आर भक्तिरस, दुँहेर तेँहो सीमा॥"

"रामानन्द राय गोदावरी तटपर विद्यानगरके अधिकारी हैं। पृथ्वीपर उनके समान और कोई रसिक भक्त नहीं है। वे पाण्डित्य और भक्तिरसकी सीमा हैं।"

श्रीरामरायके साथ महाप्रभुका मिलन और रायके मुखसे साध्य-साधन तत्त्वका श्रवण, महाप्रभुका रसराज-महाभाव-रूपका प्रदर्शन, महाप्रभुकी उक्ति—

"आमि एक बातुल, तुमि द्वितीय बातुल।
अतएव तोमाय आमाय हइ समतुल॥"

"मैं एक पागल हूँ और तुम दूसरे पागल हो। इसलिये तुम और मैं एक समान हैं।"

रामरायको राजकार्य त्यागकर श्रीक्षेत्र जानेकी आज्ञा (चैःचः मध्यलीला, आठवाँ अध्याय); महाप्रभुका दक्षिण भारतमें प्रचारसे लौटनेके बाद रामरायके साथ पुनः मिलन और उनका महाप्रभुको नीलाचल जानेका आग्रह

(चैःचः मध्यलीला, 9/319-335 संख्या), बादमें नीलाचलमें महाप्रभुके साथ मिलन (चैःचः मध्यलीला, 11/15 संख्या); राजा प्रतापरुद्रको महाप्रभुकी कृपा दिलवानेका रायका यत्न (चैःचः मध्यलीला, 12/41-57 संख्या), रथयात्राके दिन कीर्तनके अन्तमें सार्वभौमके साथ जलकेलि (चैःचः मध्यलीला, 14/82 संख्या); महाप्रभुको वृन्दावन जाने देनेकी अनिच्छा (चैःचः मध्यलीला, 16/10, 85 संख्या), अन्तमें महाप्रभुके अनुरोधसे बाध्य होकर उनका अनुमोदन और कटक राजाके साथ महाप्रभुका मिलन (चैःचः मध्यलीला, 16/105 संख्या); रेमुणासे रायकी महाप्रभुको विदायी देना (चैःचः मध्यलीला, 16/153 संख्या); वृन्दावन नहीं जाकर महाप्रभुका गौड़देशसे नीलाचल लौटनेपर रायके साथ मिलन (चैःचः मध्यलीला, 16/254 संख्या); श्रीरूपके साथ रसालोचना और श्रीरूपके कवित्वकी प्रशंसा (चैःचः अन्त्यलीला, 1/115-196 संख्या); रामराय और श्रीसनातनमें वैराग्यकी समता (चैःचः अन्त्यलीला, 1/201 संख्या); श्रीराधाकृष्ण-प्रेमरसपात्र साढ़े तीन जनोंमें एक (चैःचः अन्त्यलीला, 2/106 संख्या); सनातन गोस्वामीके साथ मिलन (चैःचः अन्त्यलीला, 4/110 संख्या); महाप्रभुके द्वारा प्रेरित प्रद्युम्न मिश्रको श्रीकृष्णकथा सुनाना, महाप्रभुके द्वारा रायकी प्रशंसा (चैःचः अन्त्यलीला, 5/4-85 संख्या)। (चैःचः अन्त्यलीला, 5/9 संख्या)—

"सुबल यैछे पूर्वे कृष्णसुखेर सहाय।
गौरसुख-दानहेतु तैछे राम राय॥"

"सुबल जिस प्रकार पहले श्रीकृष्णके सुखमें सहायक थे, वैसे ही रामराय गौरसुन्दरको सुख प्रदान करते थे।" (चैःचः अन्त्यलीला, 7/36 संख्या)—

"कहने ना याय रायरामानन्देर प्रभाव।
राय-प्रसादे जानिलाम व्रजेर शुद्धभाव॥"

"रायरामानन्दके प्रभावको मैं कह नहीं सकता, उनकी कृपासे ही मैंने व्रजके शुद्धभावको जाना है।" (चैःचः अन्त्यलीला, 7/23 संख्या)—

"रामानन्दराय—कृष्णरसेर निदान।
तेँह जानाइल, कृष्ण स्वयं भगवान्॥"

"रामानन्दराय श्रीकृष्णरसको सम्पूर्ण रूपसे जाननेवाले हैं, उन्होंने ही मुझे बतलाया है कि श्रीकृष्ण ही स्वयं भगवान् हैं।"

शेषलीलामें रामराय और श्रीस्वरूपके निकट श्रीकृष्णविरह-विलापमें रस-गीतका आस्वादन (चैःचः अन्त्यलीला, चौदहसे बीस अध्याय द्रष्टव्य हैं)। श्रीरामानन्दरायने 'श्रीजगन्नाथ-वल्लभ' नाटककी रचना की थी॥ 134॥

(9) राजा प्रतापरुद्र, (10) कृष्णानन्द,
(11) परमानन्द महापात्र, (12) शिवानन्द :—

प्रतापरुद्र राजा, आर ओढ्र परमानन्द महापात्र, ओढ्र

अनुवाद—राजा प्रतापरुद्र, उड़िया कृष्णानन्द, परमानन्द महापात्र, और उड़िसावासी शिवानन्द महाप्रभुके कृपापात्र हैं॥ 135॥

अनुभाष्य—'प्रतापरुद्र'—ये गङ्गावंशीय (गजपति) उत्कल सम्राट थे। कटक इनकी राजधानी थी। इन्हें महाप्रभुकी गुणावलीको सुनकर उनके दर्शन और कृपा लाभ करनेका लोभ हो गया, परन्तु महाप्रभु संन्यासी होनेके कारण उनसे मिलना नहीं चाहते थे। राजाने दैन्यपूर्वक उनकी अनेक प्रकारसे सेवा की। उनकी सेवा और उत्कण्ठाको देखकर रामानन्दराय और सार्वभौमने उनकी सहायता की। उनके कहनेपर इन्होंने राजवेशका त्यागकर दीन व्यक्तिके वेशमें महाप्रभुके निकट जाकर उनकी कृपा प्राप्त की। (श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 118वाँ श्लोक)—

"इन्द्रद्युम्नो महाराजो जगन्नाथार्चकः पुरा।
जातः प्रतापरुद्रः सन् सम इन्द्रेण सोऽधुना॥ 118॥"

"पहले जो श्रीजगन्नाथके अर्चक महाराज इन्द्रद्युम्न थे, उन्होंने ही इन्द्रके समान वैभवशाली होकर महाराज प्रतापरुद्रके रूपमें जन्म ग्रहण किया है।" इनकी

इच्छानुसार कविकर्णपूरने 'चैतन्यचन्द्रोदय' नाटक लिखा है।

'परमानन्द महापात्र'—(चैःभाः अन्त्यखण्ड पाँचवाँ अध्याय)—

"उत्कले जन्मियाछिल यत अनुचर।
सबे चिनिलेन निज प्राणेर ईश्वर॥ 210॥
श्रीपरमानन्द महापात्र महाशय।
याँर तनु श्रीचैतन्य,—भक्तिरसमय॥ 212॥"

"नीलाचलमें महाप्रभुके जितने भी अनुचरोंका जन्म हुआ था, उन्होंने महाप्रभुको देखते ही पहचान लिया कि वे उनके प्राणेश्वर हैं। श्रीपरमानन्द महापात्रका शरीर ही श्रीचैतन्य-भक्तिरससे बना है॥"135॥

(13) भगवान् आचार्य, (14) ब्रह्मानन्द भारती,
(15) शिखि और (16) मुरारि माहिति :—

भगवान् आचार्य, ब्रह्मानन्दाख्य भारती।
श्रीशिखि माहिति, आर मुरारि माहिति॥ 136॥

अनुवाद—भगवान् आचार्य, ब्रह्मानन्द भारती, शिखि माहिति और मुरारि माहिति, महाप्रभुके अन्य प्रिय परिकर हैं॥ 136॥

अनुभाष्य—'भगवान् आचार्य'—ये हालिसहरके वासी थे, इनके पुत्रका नाम रघुनाथ था (भक्तिरत्नाकर)। ये पङ्गु थे। चैःचः मध्यलीला, 10/184 संख्यामें—

"रामभद्राचार्य आर भगवान् आचार्य।
प्रभु-पदे रहिला दुँहे छाड़ि' सर्व कार्य॥ 184॥"

"ये सब कुछ छोड़कर महाप्रभुके पास जगन्नाथपुरी आ गये।" चैःचः अन्त्यलीला, दूसरा अध्याय—

"पुरुषोत्तमे प्रभुपाशे भगवान् आचार्य।
परम पण्डित तेँहो सुपण्डित आर्य॥
सख्यभावाक्रान्त-चित्त गोप-अवतार।
स्वरूप गोसाञिसह सख्य-व्यवहार॥
एकान्तभावे आश्रियाछे चैतन्य-चरण।
मध्ये मध्ये प्रभुर तेँहो करे निमन्त्रण॥"

"भगवान् आचार्य परम पण्डित थे। सख्यभावसे इनका चित आक्रान्त रहता था। ये व्रजके गोपके अवतार थे। स्वरूप गोस्वामीके साथ इनका सखा जैसे व्यवहार था। महाप्रभुके चरणोंमें इनकी ऐकान्तिक भक्ति थी। कभी-कभी ये महाप्रभुको अपने घर निमन्त्रित करते थे।" इन्हींके घरपर जब महाप्रभु भिक्षा करने आये थे, तब उन्होंने छोटे हरिदासको माधवीदेवीसे चावलकी भिक्षाके बहाने उनसे वार्तालाप करनेके कारण उसका परित्याग किया था (चैःचः अन्त्यलीला, 2/101-166 संख्या द्रष्टव्य है)। ये अत्यन्त उदार और सरल थे, परन्तु इनके पिता शतानन्द खाँ जैसे घोर विषयी थे, इनके अनुज गोपाल भट्टाचार्य भी वैसे ही कट्टर मायावादी थे। गोपाल भट्टाचार्य काशीमें मायावाद-भाष्यका अध्ययन करके पुरीमें अपने बड़े भाई भगवान् आचार्यके पास आये थे, यद्यपि भगवान् आचार्य स्नेहवश इनसे मायावाद सुननेको सहमत हो गये थे, किन्तु मायावाद-भाष्यके भक्ति विरोधी होनेके कारण श्रीस्वरूप दामोदरने इन्हें सुननेके लिये मना किया (चैःचः अन्त्यलीला, 2/89-100 संख्या द्रष्टव्य हैं)। एक दिन इनके पूर्व-परिचित बङ्गालका 'जैसा-तैसा' (जो रसतत्त्व और वैष्णवसिद्धान्तको ठीकसे नहीं जानता) एक कवि एक भक्तिसिद्धान्त-विरोधी नाटककी रचना करके इनके घर आकर ठहरा और उसने महाप्रभुको उस नाटकको सुनानेकी इच्छा प्रकट की। श्रीस्वरूप दामोदरको उनके नाटकपर सन्देह होनेपर भी उस नाटकको सुननेके लिये इनके बहुत अनुरोध करनेपर उसने पहले नान्दी-श्लोकका पाठ किया। उसे सुनते ही श्रीस्वरूप दामोदरने नाटकमें अनेक भक्तिसिद्धान्त-विरोध दिखलाये। अन्तमें उस कविने भक्तोंके चरणोंमें शरण ग्रहण की (चैःचः अन्त्यलीला, 5/91-156 संख्या)। चैःभाः अन्त्यखण्ड, तीसरा अध्याय द्रष्टव्य है। (श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 74वाँ श्लोक)—

"आचार्यो भगवान् खञ्जः कला गौरस्य कथ्यते॥ 74(ख)॥"

"भगवान् आचार्य खञ्ज (पङ्गु) को श्रीगौराङ्गदेवकी कला कहा जाता है।"

'शिखि माहिति'—(श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 189वाँ श्लोक)—

"रागलेखा-कलाकेल्यौ राधादास्यौ पुरा स्थिते।
ते ज्ञेये शिखिमाहिती तत्स्वसा माधवी-क्रमात्॥ 189॥"

"पहले रागलेखा और कलाकेलि नामक जो दो श्रीराधादासी थीं, उन्हें ही अब क्रमशः शिखिमाहिति और उनकी बहन माधवी जानना होगा।" ये और उनकी बहन, दोनों ही महाप्रभुके उत्कलवासी अन्तरङ्ग अधिकारी भक्त हैं। जैसे—श्रीचैतन्यचरित-महाकाव्य (13 सर्ग 89-109) में इस प्रकार वर्णन है—"पुरुषोत्तमक्षेत्रमें शिखि माहिति (महान्ति) नामक एक निर्मल हृदयवाले करुणाशील महात्मा वास करते थे। वे नीलाचल-तिलक श्रीजगन्नाथदेवके दास स्वरूप थे। 'मुरारि माहिति' इनके छोटे भाई थे और इनकी छोटी बहन शुद्ध बुद्धिवाली माधवी देवी थीं। इनके प्रिय भाई और बहन, दोनों ही श्रीगौरसुन्दरमें अनुरक्त थे। उनकी बुद्धि सहज ही निश्चल थी, इसलिये उन्हें कभी भी श्रीगौरसुन्दरकी विस्मृति नहीं होती थी। इस समय वृन्दावनचन्द्र श्रीकृष्ण ही श्रीगौरचन्द्रके रूपमें इस धराधामपर प्रकट हुए हैं, इस भावने भाई-बहनके श्रीगौरस्नेहको और दृढ़ किया। नीलाचलेन्द्र श्रीजगन्नाथके प्रेमी सेवक अपने बड़े भाई शिखि माहितिको श्रीगौरसुन्दरके भजनमें लगानेका दोनों भाई-बहनने बहुत प्रयास किया, किन्तु शिखि माहिति श्रीगौरभजनमें रत नहीं हुए।

एक दिन अपने छोटे भाईके उपदेश सुनकर और उनकी बहुत प्रकारसे आलोचना करते-करते वे सो गये। रात्रिके आखिरी प्रहरमें उन्होंने चकित होकर 'श्रीगौर-चरणकमलोंके दर्शन करते हुए उनके भाई-बहन उन्हें उठा रहे हैं' इस प्रकार एक स्वप्न देखा। आश्चर्यमय स्वप्नको देखकर उनके शरीरमें पुलक हो गया और आनन्दके कारण उनका आश्चर्य दो गुणा बढ़ गया। आँख खोलते ही उन्होंने अपने भाई-बहनको सामने खड़ा पाया। उन्होंने उन दोनोंको अपने गले लगा लिया। इससे सभी आश्चर्यचकित हो गये। शिखि माहिति उनसे कहने लगे,—"भाई! मैंने जो स्वप्न देखा, उसे सुनो, वह बहुत ही विचित्र है। श्रीशचीनन्दनकी महिमा जो असीम है, उसका मैंने आज ही अनुभव किया। मैंने देखा कि श्रीगौरसुन्दर नीलाचलेन्द्रके दर्शनकर बारम्बार उनमें प्रवेश कर रहे हैं और बाहर आ रहे हैं, एवं पुनः-पुनः श्रीजगन्नाथदेवका अवलोकन कर रहे हैं—उन्होंने इस प्रकार लीलाका विस्तार किया। क्या आश्चर्य है? मैं अभी भी परमेश्वर श्रीगौरसुन्दरको उसी अवस्थामें देख रहा हूँ, क्या मेरे नेत्र भ्रमित हो रहे हैं? हाय! उन असीम कृपासिन्धु श्रीगौरसुन्दरने मुझे जगन्नाथदेवके समीप देखकर मुझे नाम लेकर बुलाया और अपनी सुन्दर लम्बी भुजाओंके द्वारा मेरा आलिङ्गन किया।" इस प्रकार पुलकित शरीर और अश्रुपूरित नेत्रोंके साथ प्रेमसे गदगद् वाणीसे यह सब बतलाते हुए वे बाहर आये। मुरारि और माधवीने उनकी यह बात सुनकर उन्हें महाप्रभुके दर्शनके लिये श्रीजगन्नाथजीके दर्शनके लिये जानेको कहा। तब तीनों ही इस बातके लिये सहमत होकर श्रीजगन्नाथजीके दर्शनके लिये गये। मुरारि और माधवी महाप्रभुके जगमोहनमें दर्शन करके आनन्द-अश्रु बहाने लगे, किन्तु उनके बड़े भाई शिखि माहितिने महाप्रभुको जैसा स्वप्नमें देखा था, चारों ओर श्रीगौरसुन्दरको ठीक उसी प्रकार प्रभावसे युक्त देखा और उनके हृदयमें प्रेम उदित हो गया। महावदान्य महाप्रभुने भी 'तुम मुरारिके अग्रज हो' यह कहकर अपनी दोनों भुजाओंसे उनका आलिङ्गन किया। तब शिखि माहितिने श्रीगौरसेवामय बुद्धिसे युक्त होकर परम सुखका अनुभव किया। तबसे शिखि माहिति श्रीगौरसुन्दरके चरणकमलोंकी गन्धसे सब कुछ भूल गये और अपने अभीष्टदेव श्रीगौरकी सेवा करने लगे।

'मुरारि माहिति'—(चैःचः मध्यलीला, 10/44 संख्यामें)—

"मुरारि माहिति इहँ शिखि-माहितिर भाइ।
तोमार चरण बिना अन्य गति नाइ॥"

"मुरारि माहिति—ये शिखि माहितिके छोटे भाई हैं और श्रीगौरसुन्दरके चरणोंके अतिरिक्त इनकी कोई गति नहीं है॥"136॥

(17) माधवीदेवी :—

माधवीदेवी—शिखि माहितिर भगिनी।
श्रीराधार दासीमध्ये याँर नाम गणि॥ 137॥

अनुवाद—माधवी देवी शिखि माहितिकी बहन हैं और उनकी गणना श्रीमती राधिकाकी दासियोंमें होती है॥ 137॥

अनुभाष्य—'माधवी देवी'—(चै:च: अन्त्यलीला, 2/104-106)—

"प्रभु लेखा करे याँरे राधिकार गण।
जगतेर मध्ये पात्र—साड़े तिनजन॥
स्वरूप गोसाञि, आर राय रामानन्द।
शिखि माहिति—तिन, ताँर भगिनी—अर्द्धजन॥"

"महाप्रभु माधवीदेवीको श्रीमती राधिकाके गणोंमें मानते हैं। महाप्रभुके साढ़े तीन लोग अन्तरङ्ग भक्त हैं। श्रीस्वरूप दामोदर, श्रीराय रामानन्द और शिखि माहिति, ये तीन लोग हैं और शिखि माहितिकी बहन माधवी देवी आधा-जन हैं॥"137॥

(18) काशीश्वर, (19) गोविन्द :—

ईश्वरपुरीर शिष्य—ब्रह्मचारी काशीश्वर।
श्रीगोविन्द-नाम ताँर प्रिय अनुचर॥ 138॥
ताँर सिद्धिकाले दोँहे ताँर आज्ञा पाञा।
नीलाचले प्रभुस्थाने मिलिल आसिया॥ 139॥

अनुवाद—ब्रह्मचारी काशीश्वर श्रीईश्वरपुरीके शिष्य और श्रीगोविन्द उनके प्रिय सेवक थे। श्रीईश्वरपुरीके सिद्धिकालमें (अप्रकट होनेके समय) उनसे आज्ञा प्राप्तकर, ये दोनों नीलाचलमें आकर महाप्रभुसे मिले॥ 138-139॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'श्रीगोविन्द और काशीश्वर'—ये दोनों श्रीईश्वरपुरीके शिष्य थे। ईश्वरपुरीके सिद्धिप्राप्तिके समय उनकी आज्ञासे ये नीलाचलमें महाप्रभुके पास आये थे॥ 138॥

अनुभाष्य—'श्रीगोविन्द'—महाप्रभुके निज सेवक थे। (श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 137वाँ श्लोक)—

"पुरा वृन्दावने चेटौ स्थितौ भृङ्गार-भङ्गुरौ।
श्रीकाशीश्वर-गोविन्दौ तौ जातौ प्रभु-सेवकौ॥ 137॥"

"जो पहले वृन्दावनमें भृङ्गार और भङ्गुर नामके दो 'चेट' थे, वे ही श्रीगौरसेवक काशीश्वर और गोविन्द हैं।" महाप्रभुके साथ ईश्वरपुरीके शिष्य गोविन्दके मिलनके वर्णनके लिये चै:च: मध्यलीला, 10/131-148 द्रष्टव्य है। गोविन्दके शुद्धदास्यरसके वशीभूत महाप्रभु—(चै:च: मध्यलीला, 2/78)। महाप्रभुकी सेवाके लिये उनकी देहके ऊपरसे लांघकर जानेमें भी गोविन्दको कोई दुविधा नहीं होती थी, किन्तु अपने लिये ऐसा करनेमें उन्हें अपराधका भय रहता था—

"गोविन्द कहे, आमार सेवा से नियम।
अपराध हउक् किंवा नरके गमन॥"

"गोविन्द कहते थे—मेरा सेवाका यह नियम है, इसके द्वारा अपराध हो अथवा नरकमें जाना पड़े, कोई बात नहीं।" चै:च: मध्यलीला 10/82-100 संख्या द्रष्टव्य है॥ 139॥

गोविन्द और काशीश्वरकी श्रीगौर-सेवा :—

गुरुर सम्बन्धे मान्य कैल दुँहाकारे।
ताँर आज्ञा मानि' सेवा दिलेन दोँहारे॥ 140॥

अनुवाद—अपने गुरु श्रीईश्वरपुरीसे सम्बन्धित होनेके कारण महाप्रभु इन दोनोंका सम्मान करते थे, किन्तु गुरुकी आज्ञा मानकर महाप्रभुने इन दोनोंको अपनी सेवा प्रदान की॥ 140॥

अङ्गसेवा गोविन्देर दिलेन ईश्वर।
जगन्नाथ देखिते आगे चले काशीश्वर॥ 141॥

अपरश याय गोसाञि मनुष्य-गहने।
मनुष्य ठेलि' पथ करे काशी बलवाने॥ 142॥

अनुवाद—महाप्रभुने गोविन्दको अपनी देहकी सेवा प्रदान की। काशीश्वर बहुत बलवान थे और जब महाप्रभु जगन्नाथजीके दर्शनके लिये जाते, तब काशीश्वर महाप्रभु के आगे-आगे चलकर लोगोंको हटाकर मार्ग बनाते, जिससे भीड़में कोई उनको स्पर्श न कर पाये॥ 141-142॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'अपरश'—बिना स्पर्श किये॥ 142॥

इति अमृतप्रवाह-भाष्ये दशम परिच्छेद।
दसवें अध्यायका अमृतप्रवाह भाष्य समाप्त।

(20) रामाइ, (21) नन्दाइ :—

रामाइ-नन्दाइ—दोँहे प्रभुर किङ्कर।
गोविन्देर सङ्गे सेवा करे निरन्तर॥ 143॥

बाइश घड़ा जल दिने भरेन रामाइ।
गोविन्देर आज्ञाय सेवा करेन नन्दाइ॥ 144॥

अनुवाद—रामाइ और नन्दाइ, ये दोनों महाप्रभुके सेवक हैं और दोनों गोविन्दके साथ मिलकर निरन्तर महाप्रभुकी सेवा करते थे। रामाइ दिनमें बाइस घड़े जल भरते और नन्दाइ गोविन्दकी आज्ञानुसार महाप्रभुकी सेवा करते॥ 143-144॥

अनुभाष्य—'रामाइ और नन्दाइ'—(श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 139वाँ श्लोक)—

"पयोद-वारिदौ प्राग् यौ नीरसंस्कारकारिणौ।
तावद्य भृत्यौ रामायिर्नन्दायिश्चेति विश्रुतौ॥ 139॥"

"पहले जो जलसंस्कारकारी (गोचारणके समय श्रीकृष्णके व्यवहारके लिये जलसे परिपूर्ण पात्रोंको उठाकर ले जानेवाले) पयोद और वारिद नामक श्रीकृष्णके सेवक थे, वे ही अब रामाइ और नन्दाइके नामसे प्रसिद्ध हैं।" ये गोविन्दके आनुगत्यमें महाप्रभुकी सेवा करते थे॥ 143॥

(22) कालाकृष्णदास विप्र :—

कृष्णदास-नाम शुद्ध कुलीन ब्राह्मण।
यारे सङ्गे लैया कैल दक्षिण गमन॥ 145॥

अनुवाद—कृष्णदास नामक एक शुद्ध कुलीन ब्राह्मण थे, जिन्हें महाप्रभु अपने साथ लेकर दक्षिण भारतकी यात्रापर गये थे॥ 145॥

अनुभाष्य—'कृष्णदास'—चैःचः मध्यलीला, सातवें और नौवें अध्यायमें इनका प्रसङ्ग वर्णित है। जलपात्रको उठाकर चलनेके लिये ये सरल ब्राह्मण महाप्रभुके साथ दक्षिण भारत गये। महाप्रभुने मालाबार देशमें भटथारियोंके द्वारा इनको स्त्रीरूपसे मोहित करके आबद्ध करनेकी चेष्टाको देखकर इनका उद्धार किया और इनको नीलाचलकी ओर लौटनेके लिये विदा किया॥ 145॥

(23) बलभद्र भट्ट :—

बलभद्र भट्टाचार्य—भक्ति-अधिकारी।
मथुरा-गमने प्रभुर येँहो ब्रह्मचारी॥ 146॥

अनुवाद—बलभद्र भट्टाचार्य भक्तिके योग्य अधिकारी हैं। ये ब्रह्मचारी महाप्रभुके साथ मथुरा गये थे॥ 146॥

अनुभाष्य—'बलभद्र भट्टाचार्य'—व्रजकी मधुरेक्षणा हैं। संन्यासियोंके लिये भोजन बनाना आदि व्यवहारिक कर्म-काण्ड निषिद्ध हैं। वे गृहस्थियोंसे यह सब ग्रहण और स्वीकार करते हैं। संन्यासीगण-गुरु हैं और ब्रह्मचारीगण शिष्य हैं। बलभद्र महाप्रभुके साथ जब वृन्दावन गये, तब उन्होंने ब्रह्मचारीका कार्य किया॥ 146॥

(24) बड़े हरिदास, (25) छोटा हरिदास :—

बड़ हरिदास, आर छोट हरिदास।
दुइ कीर्त्तनीया रहे महाप्रभुर पाश॥ 147॥

अनुवाद—बड़े हरिदास और छोटे हरिदास, ये दो कीर्तनीया महाप्रभुके पास रहते थे॥ 147॥

अनुभाष्य—'छोट हरिदास'—इनका प्रसङ्ग चैःचः अन्त्यलीला, दूसरे अध्यायमें द्रष्टव्य है॥ 147॥

(26) रामभद्र, (27) सिंहेश्वर, (28) तपनाचार्य,
(29) रघुनाथ, (30) नीलाम्बर :—

रामभद्राचार्य, आर ओढ्र
तपन आचार्य, आर रघु, नीलाम्बर॥ 148॥

(31) सिङ्गाभट्ट, (32) कामाभट्ट,
(33) शिवानन्द, (34) कमलानन्द :—

सिङ्गाभट्ट, कामाभट्ट, दस्तुर शिवानन्द।
गौड़े पूर्वे भृत्य प्रभुर प्रिय कमलानन्द॥ 149॥

अनुवाद—रामभद्राचार्य, उड़ीसावासी सिंहेश्वर, तपन आचार्य, रघु, नीलाम्बर, सिङ्गाभट्ट, कामाभट्ट, शिवानन्द दस्तुर और कमलानन्द महाप्रभुके प्रिय भक्त हैं। कमलानन्द पहले महाप्रभुके साथ गौड़देशमें थे और बादमें नीलाचलमें उनके पास आ गये॥ 148-149॥

(35) अच्युतानन्द :—

अच्युतानन्द—अद्वैत-आचार्य तनय।
नीलाचले रहे प्रभुर चरण आश्रय॥ 150॥

अनुवाद—अच्युतानन्द श्रीअद्वैताचार्यके पुत्र हैं। वे नीलाचलमें महाप्रभुके चरणाश्रयमें रहे॥ 150॥

अनुभाष्य—'अच्युतानन्द'—चैःचः आदिलीला, 12/13 संख्या द्रष्टव्य है॥ 150॥

(36) गङ्गादास, (37) विष्णुदास :—

निर्लोम गङ्गादास, आर विष्णुदास।
एइ सबेर प्रभुसङ्गे नीलाचले वास॥ 151॥

अनुवाद—निर्लोम गङ्गादास और विष्णुदास महाप्रभुके अन्य भक्त थे। ये सब भक्त महाप्रभुके साथ नीलाचलमें रहे॥ 151॥

काशीप्रवासी—(1) चन्द्रशेखर,
(2) तपनमिश्र, (3) श्रीरघुनाथ भट्ट :—

वाराणसी-मध्ये प्रभुर भक्त तिनजन।
चन्द्रशेखर वैद्य, आर मिश्र तपन॥ 152॥

रघुनाथ भट्टाचार्य—मिश्रेर नन्दन।
प्रभु यबे काशी आइला देखि' वृन्दावन॥ 153॥

चन्द्रशेखर-गृहे कैल दुइमास वास।
तपन-मिश्रेर घरे भिक्षा दुइ मास॥ 154॥

अनुवाद—चन्द्रशेखर वैद्य, तपन मिश्र और उनके पुत्र रघुनाथ भट्टाचार्य, वाराणसीमें महाप्रभुके ये तीन भक्त थे। महाप्रभु वृन्दावनके दर्शनके पश्चात् जब काशी आये थे, तब वे चन्द्रशेखरके घरमें दो महीने तक रहे और उस कालमें वे तपन मिश्रके घर भिक्षा (प्रसाद) ग्रहण करते थे॥ 152-154॥

अनुभाष्य—'तपनमिश्र'—महाप्रभु जब (पूर्व) बङ्गाल (वर्तमान बङ्गलादेश) में गये थे, तब इन्होंने उनसे साधन और साध्यतत्त्वके विषयमें जिज्ञासा की और महाप्रभुसे हरिनाम ग्रहण किया। बादमें महाप्रभुकी आज्ञासे ये काशीमें वास करने लगे। महाप्रभुने काशीवासकालमें इनके घर भिक्षा करना (प्रसाद सेवन) स्वीकार किया था॥ 152॥

श्रीरघुनाथ भट्टका विवरण :—

रघुनाथ बाल्ये कैल प्रभुर सेवन।
उच्छिष्ट-मार्जन आर पाद-सम्वाहन॥ 155॥

बड़ हैले नीलाचले गेला प्रभुर स्थाने।
अष्टमास रहिल भिक्षा देन कोन दिने॥ 156॥

प्रभुर आज्ञा पाञा वृन्दावनेरे आइला।
आसिया श्रीरूप-गोसाञिर निकटे रहिला॥ 157॥

ताँर स्थाने रूप-गोसाञि शुनेन भागवत।
प्रभुर कृपाय तेँहो कृष्णप्रेमे मत्त॥ 158॥

अनुवाद—जब महाप्रभु तपन मिश्रके घरमें रहे थे, तब रघुनाथ भट्ट छोटे बालक थे। उन्होंने महाप्रभुके बर्तन माँजने और उनके पाद सम्वाहन करनेकी सेवा की थी। बड़े होनेपर वे महाप्रभुके पास नीलाचल गये और वहाँ आठ महीने रहे। इस समयमें वे कभी-कभी

महाप्रभुको प्रसाद निवेदन करते थे। महाप्रभुकी आज्ञा पाकर वे वृन्दावन आ गये। श्रीरूप गोस्वामी उनके स्थानपर आकर उनसे भागवत सुनते थे। महाप्रभुकी कृपासे वे सदा कृष्णप्रेममें मत्त रहते थे॥ 155–158॥

अनुभाष्य—'रघुनाथ भट्टाचार्य'—ये छह गोस्वामियोंमें अन्यतम और तपन मिश्रके पुत्र थे। लगभग 1425 शकाब्दमें इनका जन्म हुआ था। भागवत शास्त्रमें इनकी विशेष निपुणता थी। (चैःचः अन्त्यलीला, तेरहवाँ परिच्छेद)—

"रघुनाथ भट्ट पाके अति सुनिपुण।
येइ रान्धे सेइ हय अमृत-समान॥
परम सन्तोषे प्रभु करेन भोजन।
प्रभुर अवशिष्ट पात्र भट्टेर भक्षण॥
अष्टमास रहि' प्रभु भट्टे विदाय दिल।
'विवाह ना करिह' बलि' निषेध करिल॥
'वृद्ध मातापिता याइ' करह सेवन।
वैष्णव-पाश भागवत कर अध्ययन॥
पुनरपि एकबार आसिह नीलाचले।'
एत बलि' कण्ठमाला दिल ताँर गले॥"
"चारि वत्सर घरे पिता-मातार सेवा कैल।
वैष्णव-पण्डित-ठाँइ भागवत पड़िल॥
पिता-माताय काशी पाइले उदासीन हञा।
पुनः प्रभुर ठाँइ आइला गृहादि छाड़िया॥"
"आमार आज्ञाय, रघुनाथ, याह वृन्दावने।
ताँहा याञा रह रूप-सनातन-स्थाने॥
भागवत पड़, सदा लह कृष्णनाम।
अचिरे करिबेन कृपा कृष्ण भगवान्॥
एत बलि' प्रभु ताँरे आलिङ्गन कैला।
प्रभुर कृपाते कृष्णप्रेममत्त हैला॥
चौद्दहात जगन्नाथेर तुलसीर माला।
सेइ माला, छुटापान प्रभु ताँरे दिला॥"
"रूप-गोसाञिर सभाय करे भागवत पठन।
भागवत पड़िते आउलाय ताँर मन॥
पिकस्वर कण्ठ, ताते रागेर विभाग।
एक श्लोक पड़िते फिराय चारि राग॥
निज-शिष्ये कहि' गोविन्देर मन्दिर कराइल।
वंशी-मकर-कुण्डलादि भूषण करि' दिल॥
ग्राम्यवार्त्ता ना शुने, ना कहे जिह्वाय।
कृष्णकथा-पूजादिते अष्टप्रहर याय॥
वैष्णवेर निन्द्यकर्म नाहि पाड़े काणे।
सबे कृष्णभजन करे,—एइमात्र जाने॥"

"रघुनाथ भट्ट भोजन बनानेमें अति निपुण थे। ये जो कुछ भी बनाते थे, वह अमृतके समान होता था। महाप्रभु परम सन्तोषके साथ इनका बनाया भोजन करते थे और उनका उच्छिष्ट प्रसाद ये पाते थे। आठ महीने नीलाचलमें रहनेके बाद महाप्रभुने इन्हें वहाँसे विदा किया और विवाह करनेसे निषेध किया। महाप्रभुने इन्हें वृद्ध माता-पिताके पास रहकर उनकी सेवा करने और वैष्णवोंसे भागवत श्रवण करने तथा पुनः एक बार नीलाचल आनेकी आज्ञा दी। यह कहकर महाप्रभुने अपने गलेकी माला उनके गलेमें डाल दी।" "घर जाकर इन्होंने चार वर्ष माता-पिताकी सेवा की और वैष्णव-पण्डितसे भागवत पढ़ी। माता-पिताके देहावसानके बाद ये जगत्के प्रति उदासीन हो गये और घर छोड़कर पुनः महाप्रभुके पास नीलाचल आये।" "(महाप्रभुने कहा—) मेरी आज्ञा है कि तुम वृन्दावन जाओ और वहाँ रूप-सनातनके पास रहो। वहाँ भागवतका पाठ करना और सदा कृष्णनाम करना। इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण तुमपर शीघ्र ही कृपा करेंगे। यह कहकर महाप्रभुने इनका आलिङ्गन किया। महाप्रभुकी कृपासे ये कृष्णप्रेममें मत्त हो गये। महाप्रभुने इनको जगन्नाथजीके पान-सुपारी और चौदह हाथ लम्बी तुलसीकी माला दी।" "ये रूप गोस्वामीकी सभामें भागवतका पाठ करते थे और पाठ करते समय इनका हृदय विगलित हो जाता था। इनका कण्ठ बहुत मधुर था और इनको रागोंकी विशेष जानकारी थी। वे एक श्लोकको चार विभिन्न रागोंमें गाते थे। इन्होंने अपने एक शिष्यको आज्ञा देकर उनके द्वारा श्रीगोविन्ददेवजीके मन्दिरका निर्माण करवाया था। श्रीगोविन्ददेवकी वंशी, मकर-कुण्डलादि आभूषणादि इन्होंने अर्पित किये थे। वे कभी भी ग्राम्यवार्ता न करते थे और न ही सुनते थे। कृष्णकथा

और पूजा आदिमें इनके आठों प्रहर व्यतीत होते थे। ये कभी भी वैष्णवकी निन्दा नहीं सुनते थे और इनकी उत्तम भागवतकी दृष्टि थी, जिस कारण ये सभीको श्रीकृष्णका ही भजन करते हुए देखते थे। (श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 185वाँ श्लोक)—

"रघुनाथाख्यको भट्टः पुरा या रागमञ्जरी।185(क)।"

"पूर्वकालकी रागमञ्जरी ही रघुनाथ भट्ट कहलाते हैं।"॥153-158॥

इति अनुभाष्ये दशम परिच्छेद।
दसवें अध्यायका अनुभाष्य समाप्त।

शाखा-प्रशाखाओंके क्रमसे असंख्य गौरभक्तोंके द्वारा त्रिभुवनका उद्धार :—

एइमत संख्यातीत चैतन्य-भक्तगण।
दिङ्मात्र लिखि, सम्यक् ना याय कथन॥159॥

एकैक-शाखाते लागे कोटि कोटि डाल।
तार शिष्य-उपशिष्य, तार उपडाल॥160॥

सकल भरिया आछे प्रेम-फूल-फले।
भासाइल त्रिजगत् कृष्णप्रेम-जले॥161॥

एक एक शाखार शक्ति अनन्त महिमा।
'सहस्र वदने' यार दिते नारे सीमा॥162॥

संक्षेपे कहिल महाप्रभुर भक्तगण।
समग्र बलिते नारे 'सहस्र-वदन'॥163॥

अनुवाद—इस प्रकार श्रीचैतन्य महाप्रभुके भक्तोंकी संख्या अनन्त है। मैंने केवल उनका दिग्दर्शनमात्र करवाया है, सम्पूर्ण रूपसे तो उनका वर्णन करना सम्भव ही नहीं है। एक-एक शाखापर करोड़ों-करोड़ों डालें हैं और उनके शिष्य-उपशिष्य उनकी उपडालें हैं। सभी शाखाएँ, डालें और उपडालें प्रेमरूप फूल और फलोंसे लदी हैं, जिन्होंने त्रिभुवनको कृष्णप्रेमके जलमें डुबो दिया है। एक-एक शाखाकी शक्तिकी महिमा अनन्त है, सैंकड़ों मुखोंसे भी जिनका गान नहीं किया जा सकता है। संक्षेपमें मैंने महाप्रभुके भक्तोंका वर्णन किया है, सम्पूर्ण वर्णन तो (अनन्त शेष) अपने सैंकड़ों मुखोंसे भी नहीं कर सकते॥159-163॥

श्रीरूप-रघुनाथ-पदे यार आश।
चैतन्यचरितामृत कहे कृष्णदास॥164॥

इति श्रीश्रीचैतन्यचरितामृते आदिलीलायां
मूलस्कन्ध-शाखावर्णनं नाम दशम परिच्छेदः।

अनुवाद—श्रीरूप-रघुनाथ गोस्वामीके चरणकमलोंकी कृपाभिलाषा करते हुए कृष्णदास इस श्रीचैतन्यचरितामृतका वर्णन कर रहा है॥164॥

श्रीश्रीचैतन्यचरितामृतमें आदिलीलाका 'मूलस्कन्धकी शाखाका वर्णन' नामक दसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।

ग्यारहवाँ अध्याय

चित्र 4

ग्यारहवाँ अध्याय

ग्यारहवें अध्यायका कथासार—इस अध्यायमें श्रीनित्यानन्द प्रभुके परिकरोंका वर्णन है। (अमृतप्रवाह भाष्य)

श्रीनित्यानन्द प्रभुके गणोंके प्रति नमस्कार :—

नित्यानन्द-पदाम्भोज-भृङ्गान् प्रेममधुन्मदान्।
नत्वाखिलान् तेषु मुख्या लिख्यन्ते कतिचिन्मया॥1॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है॥1॥

अमृतप्रवाह भाष्य—प्रेमरूप मधुपानमें उन्मत्त श्रीनित्यानन्द प्रभुके चरणकमलोंके समस्त भ्रमरोंको नमस्कार करके उनमेंसे कुछ मुख्य भक्तोंके नाम उल्लेख कर रहा हूँ॥1॥

अनुभाष्य—प्रेममधुन्मदान् (प्रेम एव मधु तेन उन्मदान्) अखिलान् (सर्वान्) नित्यानन्दपदाम्भोजभृङ्गान् (प्रभुपादपद्मभ्रमवान्) नत्वा (प्रणम्य) तेषु (भक्तेषु) कतिचित् मुख्याः [भक्ताः] मया लिख्यन्ते।

श्लोक भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है॥1॥

जय जय महाप्रभु श्रीकृष्णचैतन्य।
ताँहार चरणाश्रित येइ, सेइ धन्य॥2॥

जय जय श्रीअद्वैत, जय नित्यानन्द।
जय जय महाप्रभुर सर्वभक्तवृन्द॥3॥

अनुवाद—श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुकी जय हो। जिन्होंने उनके चरणोंका आश्रय ग्रहण किया है, वे धन्य हैं। श्रीअद्वैताचार्यकी जय हो, श्रीनित्यानन्द प्रभुकी जय हो। महाप्रभुके सभी भक्तोंकी जय हो॥2-3॥

नित्यानन्द-स्कन्धकी शाखाका वर्णन :—

तस्य श्रीकृष्णचैतन्य-सत्प्रेमामरशाखिनः।
ऊर्ध्वस्कन्धावधूतेन्दोः शाखारूपान् गणान्नूमः॥4॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है॥4॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीकृष्णचैतन्यरूप प्रेम कल्पवृक्षके ऊपरी स्कन्धरूप श्रीअवधूत नित्यानन्दचन्द्रकी शाखारूप सभी भक्तोंको मैं नमस्कार करता हूँ॥4॥

अनुभाष्य—श्रीकृष्णचैतन्यसत्प्रेमामरशाखिनः (श्रीकृष्णचैतन्य एव सतः नित्यस्थितस्य प्रेमामरवृक्षस्य गौरनामधेयस्य अविनाशिनस्तरोः तस्य) ऊर्ध्वस्कन्धावधूतोन्दोः (उर्ध्वस्कन्धरूपः नित्यानन्दप्रभु एव इन्दु चन्द्र तस्य) शाखारूपान् गणान् (शाखारूपगणान्) नुमः (नमस्कुर्मः)।

श्लोक भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है॥4॥

श्रीनित्यानन्द-वृक्षेर स्कन्ध-गुरुतर।
ताहाते जन्मिल शाखा-प्रशाखा विस्तर॥5॥

अनुवाद—श्रीनित्यानन्द प्रभु भक्तिवृक्षके दो स्कन्धों (श्रीनित्यानन्द और श्रीअद्वैताचार्य) में प्रधान स्कन्ध हैं। उनसे बहुतसी शाखाएँ और उपशाखाएँ निकलीं॥5॥

महाप्रभुकी इच्छासे नित्यानन्द-शाखाकी वृद्धि और प्रधानता :—

मालाकारेर इच्छा-जले बाड़े शाखागण।
प्रेम-फूल-फले भरि' छाइल भुवन॥6॥

अनुवाद—माली (श्रीचैतन्य महाप्रभु) के इच्छारूपी जलसे ये शाखाएँ-उपशाखाएँ बढ़कर असीम हो गयीं और इन्होंने प्रेमरूपी फलों-फूलोंसे सारे जगत्को ढक लिया॥6॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'मालाकारेर'—श्रीमहाप्रभुकी॥6॥

असंख्य अनन्त गण के करु गणन।
आपना शोधिते कहि मुख्य मुख्य जन॥7॥

अनुवाद—शाखा-उपशाखारूपी भक्त असंख्य हैं,

जिनकी गणना कौन कर सकता है? अपना शोधन करनेके लिये उनमेंसे मुख्य-मुख्य भक्तोंके विषयमें कह रहा हूँ॥7॥

(1) श्रीवीरचन्द्र गोसाईं-शाखा :—

श्रीवीरभद्र गोसाञि—स्कन्ध-महाशाखा।
ताँर उपशाखा यत, असंख्य तार लेखा॥8॥

अनुवाद—नित्यानन्दप्रभु रूपी स्कन्धकी महाशाखा श्रीवीरभद्र गोसाईं हैं, जिनकी असंख्य उपशाखाएँ हैं, उन सबका वर्णन करना सम्भव नहीं है॥8॥

अनुभाष्य—'श्रीवीरभद्र गोसाञि'—ये श्रीनित्यानन्द प्रभुके पुत्र थे, जिन्होंने वसुधाके गर्भसे जन्म ग्रहण किया और जाह्नवा-माताके शिष्य थे। (श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 67वाँ श्लोक)—

"सङ्कर्षणस्य यो व्यूहः पयोब्धिशायिनामकः।
स एव वीरचन्द्रोऽभूच्चैतन्याभिन्नविग्रहः॥67॥"

"श्रीसङ्कर्षणके अंशरूप जो क्षीरोदशायी विष्णु हैं, वे ही अब श्रीचैतन्य-अभिन्न विग्रह श्रीवीरचन्द्र हैं।"

श्रीवीरभद्रने हुगली जिलाके अन्तर्गत झामटपुर ग्रामके निवासी अपने शिष्य यदुनाथाचार्यकी पत्नी विद्युन्माला (लक्ष्मी) के गर्भसे जन्मीं श्रीमतीसे और उनकी पालित कन्या नारायणीसे विवाह किया (भक्तिरत्नाकरकी 13वीं तरङ्ग द्रष्टव्य है)। इनके तीन शिष्य—गोपीजनवल्लभ, रामकृष्ण और रामचन्द्र इनके पुत्र कहे जाते हैं, ऐसी प्रसिद्धि है। सबसे छोटे रामचन्द्र खड़दहमें वास करते थे। वे शाण्डिल्य-गोत्रिय शुद्धश्रोत्रिय 'वटव्याल' थे। सबसे बड़े गोपीजनवल्लभ वर्धमान जिलामें मानकरके पास 'लता' ग्राममें और मझले रामकृष्ण मालदहके पास गयेशपुरमें वास करते थे। यदि इन तीनोंका गोत्र और ग्राम एक ही होता, तो इन्हें वीरभद्रके निज पुत्र माननेमें कोई भी सन्देह नहीं करता। रामचन्द्रके चार पुत्र थे; ज्येष्ठ पुत्र राधामाधवके तीसरे पुत्र यादवेन्द्र थे और उनके पुत्र नन्दकिशोर, उनके पुत्र निधिकृष्ण, उनके पुत्र चैतन्यचाँद, उनके पुत्र कृष्णमोहन, उनके पुत्र जगन्मोहन, उनके पुत्र व्रजनाथ और उनके पुत्र परलोकगत श्यामलाल गोस्वामी थे॥8॥

उनकी महिमा—स्वयं विष्णु होते हुए भी वैष्णवके समान चेष्टा :—

ईश्वर हइया कहाय महाभागवत।
वेदधर्मातीत हञा वेदधर्मे रत॥9॥

अनुवाद—यद्यपि श्रीवीरभद्र स्वयं ईश्वर हैं, तथापि वे स्वयंको महाभागवत कहते थे। ईश्वर वेदोंके नियमोंसे अतीत हैं, तो भी वे वेदधर्मका दृढ़तासे पालन करते थे॥9॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'वीरचन्द्र प्रभु'—श्रीसङ्कर्षणके जो पयोब्धिशायी व्यूह हैं, उसीके ही स्वरूप साक्षात् ईश्वर होकर भी अपनेमें वैष्णव अभिमान रखते थे॥9॥

अन्तरे ईश्वर-चेष्टा, बाहिरे निर्दम्भ।
चैतन्यभक्ति-मण्डपे तेँहो मूलस्तम्भ॥10॥

अद्यापि याँहार कृपा-महिमा हइते।
चैतन्य-नित्यानन्द गाय सकल जगते॥11॥

सेइ वीरभद्र-गोसाञिर चरण-शरण।
याँहार प्रसादे इय अभीष्ट-पूरण॥12॥

अनुवाद—श्रीचैतन्य महाप्रभुके द्वारा स्थापित भक्तिमण्डपके वे मुख्य स्तम्भ हैं। भीतर उन्हें ईश्वर होनेका ज्ञान था और उसके अनुरूप उनकी चेष्टाएँ भी थीं, परन्तु उनके बाह्य आचरणमें ऐसा कोई अभिमान नहीं था। यह उनकी कृपाकी ही महिमा है, जिसके कारण आज समस्त जगत् श्रीचैतन्य-नित्यानन्दके नामोंका कीर्तन कर रहा है। मैं उन श्रीवीरभद्र गोसाईंके चरणकमलोंकी शरण ग्रहण करता हूँ, जिनकी कृपासे सभी मनोभीष्ट पूर्ण होते हैं। (इसलिये श्रीचैतन्यचरितामृतकी रचनारूपी मनोभीष्ट भी अवश्य पूर्ण होगा)॥12॥

(2) ठाकुर अभिराम (गोपाल-1), (3) दास गदाधर :—

श्रीरामदास आर, गदाधर दास।
चैतन्य-गोसाञिर भक्त रहे ताँर पाश॥ 13॥

अनुवाद—श्रीरामदास और श्रीगदाधर दास, ये दोनों ही चैतन्य महाप्रभुके भक्त थे और वे उनके पास (नीलाचलमें) रहते थे॥ 13॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'रामदास'—अभिराम दास॥ 13॥

अनुभाष्य—'गदाधर दास'—चैःचः आदिलीला, 10/53 संख्या द्रष्टव्य है।

'श्रीरामदास (अभिराम)'—ठाकुर अभिराम, श्रीनित्यानन्द प्रभु जिनके प्राण हैं, बारह गोपालोंमें अन्यतम व्रजके 'श्रीदाम' सखा हैं। (श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 126वाँ श्लोक)—

"पुरा श्रीदाम-नामासीदभिरामोऽधुना महान्।
द्वात्रिंशता जनैरेव वाह्यं काष्ठमुवाह यः॥ 126॥"

"पूर्वकालमें जो महात्मा श्रीदाम थे, वे ही अब अभिराम हुए हैं। ये बत्तीस लोगोंके द्वारा वहनयोग्य लकड़ीको अकेले ही उठाकर (वंशीके जैसे) धारण कर लेते थे।" चैःचः आदिलीला, 10/116-118 संख्या द्रष्टव्य है।

भक्तिरत्नाकरकी चौथी तरङ्गमें श्रील अभिराम ठाकुरकी कथाका वर्णन है। अभिराम ठाकुर पाषडियोंका दलन करनेवाले श्रीनित्यानन्दके आदेशसे आचार्य और भक्तिधर्म-प्रचारक बने।

"अभिराम गोस्वामीर प्रताप प्रचण्ड।
याँरे देखि' काँपे सदा दुर्जय पाषण्ड॥
नित्यानन्द-आवेशे उन्मत्त निरन्तर।
जगते विदित याँर कृपा मनोहर॥"

"अभिराम ठाकुरका ऐसा प्रचण्ड प्रताप था जिसके कारण इन्हें देखते ही दुर्जय पाषण्डी भी थर-थर काँपते थे। ये श्रीनित्यानन्दके आवेशमें सदा उन्मत्त रहते थे। इनकी मनोहर कृपा समस्त जगत्में विदित है।" इनके प्रणाम करने मात्रसे विष्णुशिला अथवा विष्णु-विग्रहके अतिरिक्त अन्य सभी शिलाएँ अथवा मूर्तियाँ टुकड़े-टुकड़े होकर चूर्ण-विचूर्ण हो जाती थीं, ऐसी मान्यता अभी भी प्रचलित है।

खाना अथवा द्वारकेश्वर नदीके तटपर स्थित कृष्णनगर जिसे 'खानाकुल कृष्णनगर' कहते हैं, वहाँ अभिराम ठाकुरका श्रीपाट है। मन्दिरके बाहरी द्वारके निकट एक बकुलका वृक्ष है, इसलिये इस स्थानको 'सिद्धबकुलकुञ्ज' कहते हैं। ऐसा सुना जाता है कि अभिराम ठाकुर यहाँ आकर इस स्थानपर सबसे पहले बैठे थे।

श्रीमन्दिरमें अर्चाविग्रहके रूपमें श्रीबलदेव, श्रीमदनमोहन (अकेले श्रीकृष्ण) और एक सवा हाथ ऊँचा और एक हाथ चौड़ा कसौटी पत्थर है, जिसपर वस्त्रहरणलीला, कदम्ब वृक्ष, यमुना और बछड़ोंके साथ श्रीगोपीनाथका विग्रह खुदा हुआ है। इसके अतिरिक्त नृत्यवेशमें अभिराम ठाकुरकी एक मूर्ति और श्रीव्रजवल्लभ (युगल)-मूर्ति सिंहासनपर विराजमान है। इसके अतिरिक्त श्रीशालग्राम और श्रीगोपालमूर्ति भी है। यह किवदन्ती प्रचलित है कि इस मन्दिरके सामने स्थित कुण्डको खोदते समय इन श्रीगोपीनाथका विग्रह मिला था। तबसे उस कुण्डका नाम 'अभिरामकुण्ड' है। मन्दिरमें जहाँ श्रीविग्रह विराजमान हैं, उसके ठीक दक्षिणमें एक पुरातन नवरत्न-मन्दिर है। मन्दिरके उच्च स्थानमें एक पत्थरके पटलपर खुदा हुआ है कि इस मन्दिरका निर्माण 1181 सालमें हुआ था। इसमें मन्दिर निर्माताके नामका कोई उल्लेख नहीं है। सुना जाता है कि निकटके गाँवके परलोकगत 'नछिरामसिंह गइला' नामक एक व्यक्तिने इस मन्दिरका निर्माण कराया था। मन्दिर निर्माणसे पूर्व श्रीविग्रह विराजमान थे और उनकी सेवा-पूजा इस स्थानपर फूसके बने घरमें होती थी। श्रीगोपीनाथजीके मन्दिरके उत्तरमें स्थानीय कायस्थ चौधुरी लोगोंके द्वारा प्रतिष्ठित श्रीराधावल्लभजीका प्राचीन मन्दिर है।

वर्तमान मन्दिरके पत्थर-पटलपर खुदा है—"श्रीश्रीगोपीनाथजीका सन 1219 वर्ष माघ मासमें मन्दिर तैयार। सन 1308 वर्ष वैशाख मासमें मरम्मत।" सुना जाता है, हुगली जिलाके आरामबाग थानाके माधवपुरवासी परलोकगत पुण्डरीकाक्ष राय-नामक एक व्यक्तिने वह निर्माण करया था। पुराने मन्दिरके सामने एक विशाल पक्का नाट्य मन्दिर है। मेदिनीपुर जिलाके धीरव लोगोंने 1263 सालमें इस नाट्य मन्दिरका निर्माण करवाया, समयसे उसके टूटनेपर 1320 सालमें पुनः उसका संस्कार करवाया।

सेवाइतोंसे प्राप्त जानकारीके अनुसार श्रील अभिराम ठाकुरके समयसे ही यहाँ पके चावलोंका भोग लगाया जाता है, यहाँ तक कि मूड़ीका भी भोग लगाया जाता है। और एक नयी प्रथा यह है कि ठाकुरको शयन देते समय मन्दिरके पट खुले रहते हैं और सबके सामने शयन दिया जाता है। आजकल प्रातःकालमें ठाकुरकी मङ्गल-आरती करनेकी यहाँ प्रथा नहीं है।

यह भी कहा जाता है कि मन्दिरके भीतर एक लोहेके सन्दूकमें श्रील अभिराम ठाकुरका प्रसिद्ध 'श्रीजयमङ्गल' चाबुक है। सभी सेवाइतोंने उस सन्दूकमें अपना ताला लगा रखा है। वह चाबुक दो हाथ लम्बा और जरीसे जड़ा हुआ है। सभी सेवाइतोंकी सहमतिसे ही महोत्सवोंपर चाबुक बाहर निकाला जाता है। 'श्रीजयमङ्गल' चाबुकके विषयमें भक्तिरत्नाकर ग्रन्थकी चौथी तरङ्गमें लिखा है कि अभिराम ठाकुर इस चाबुकसे जिसे भी मारते थे, उसमें श्रीकृष्णप्रेम उदित हो जाता था। एक बार श्रीनिवासाचार्य जब अभिराम-भवनमें आये, तब अभिराम ठाकुरने उनके शरीरसे तीन बार चाबुकका स्पर्श करवाया। उस समय अभिराम ठाकुरकी पत्नी मालिनी देवीने हँसते हुए उनका हाथ पकड़कर कहा—"ठाकुर! धैर्य रखो। श्रीनिवास अभी बालक है, आपके चाबुकके स्पर्शसे यह अधीर हो जायेगा।"

हुगली जिलाके अन्तर्गत कृष्णनगर, आमता और बाँकुड़ा जिलाके अन्तर्गत विष्णुपुर, कोतलपुर आदि ग्रामोंमें इनके वंशज (शौक्र या शिष्य-शाखागत?) विद्यमान हैं।

रत्नेश्वरके शिष्य 'अभिरामदास' नामक किसी एक व्यक्तिने 'शाखा-निर्णय' ग्रन्थमें 'ठाकुर अभिराम' के शिष्योंके नामों और स्थानोंका विवरण इस प्रकार दिया है—(1) खानाकुलमें कृष्णदास ठाकुरका निवास; (वंश लुप्त है)। (2) कैयड़ नामक ग्राममें (वर्धमानसे 10 मील दक्षिण-पश्चिमकी ओर) वेदगर्भ नामक भक्तका वास; इनके वंशधर अभी विग्रह सेवा कर रहे हैं। (3) बूड़न ग्राममें हरिदासका वास; (अन्य कोई विशेष जानकारी नहीं है)। (4) हेलाल (?) ग्राममें (खानाकुलसे लगभग दो मील उत्तर दिशाकी ओर, खानानदीके तटपर) पाखिया-गोपालदासका वास; अब वहाँ उनके समाजके नामसे एक छोटा टूटा हुआ मन्दिर है, परन्तु कोई विग्रह नहीं हैं। (5) मेदिनीपुर जिलाके रामजीवनपुरके निकट पाइकमालिटा (?) ग्राममें 'गुम्फ-नारायण' का वास; इनके वंशधर अभी विद्यमान हैं। (6) सीतानगरमें दाड़िया मोहनका वास; (स्थान और पात्र, दोनोंके विषयमें कोई जानकारी नहीं है)। (7) मयनामुड़िमें (बाँकुड़ामें) सत्यराघवका वास; (इनके वंशधरोंकी भी कोई जानकारी नहीं है)। (8) सालिखाय (हावड़ाके निकट?) रजनी पण्डितका वास; (इनके वंशधरोंकी भी कोई जानकारी नहीं है)। (9) भाङ्गामोड़ामें (तारकेश्वरसे लगभग चार मील उत्तर-पश्चिममें) सुन्दरानन्दका वास; इनके वंशधर अभी भी हैं। (10) द्वीपग्राममें कृष्णानन्द अवधूतका वास; इनका कोई वंश था अथवा नहीं, इसमें सन्देह है। (11) सोनातला (ली) ग्राममें (हुगली अथवा हावड़ा जिलामें?) रङ्गण-कृष्णदासका वास (वंश लुप्त है)। (12) मालदहमें मुरारि-दासका निवास; (इनके वंशधरोंका निवास अज्ञात है)। (13) पाणिहाटीमें मोहन ठाकुरका वास; (इनकी वंशावली अज्ञात है)। (14) राधानगरमें (खानाकुल-कृष्णनगरके दक्षिणमें) यदु हालदारका वास; इनका वंश लुप्त हो जानेके कारण इनके द्वारा प्रतिष्ठित श्रीबलरामकी सेवा अब श्रीगोपीनाथजीके

साथ हो रही है। (15) अनन्तनगरमें (खानाकुलके निकट) हरिमाधवका वास; वंश लुप्त है। (16) माहेशमें (श्रीरामपुरके निकट?) गोपालदासका वास; (वंश अज्ञात है)। (17) कोटरामें (खानाकुलके निकट) अच्युत पण्डितका वास; (इनके वंशधर वर्तमान हैं)। (18) पाटला ग्राममें लक्ष्मी-नारायणका वास; (वंश लुप्त है)। (19) पुरीमें गोपीनाथदासका वास (और कोई समाचार नहीं है)। (20) चूणाखालि परगणामें (माहेशके निकट) नन्दकिशोरका वास; (वंश अज्ञात है)। (21) पाता ग्राममें (वर्धमान जिलाके पाटुल?) विदुर ब्रह्मचारीका वास; वंश वर्तमान है। (22) बिनुपाड़ामें रामकृष्णका वास (स्थान और पात्र, दोनों अज्ञात हैं)। (23) गौराङ्गपुरमें (श्रीपाटसे लगभग चार मील उत्तर दिशामें) कमलाकरका वास, सामने निकट ही उनका समाज है और इनके वंशधर श्रीनिताइ-गौर विग्रहके सेवक हैं। (24) विश्वग्राममें बलराम ठाकुरका वास (स्थान और पात्र, दोनों अज्ञात हैं)। (24 1/2) श्रीनिवास आचार्यप्रभु (अभिराम ठाकुरके अति प्रिय और स्नेह कृपापात्र थे, तो भी उनको आधा शिष्य कहा गया है, इससे यह बोध होता है कि वे उनके दीक्षित शिष्य नहीं थे)। चैत्र-कृष्ण सप्तमी तिथिमें महोत्सवके उपलक्ष्यमें उस स्थानपर बहुत लोग एकत्रित होते हैं॥13॥

श्रीनिताइके साथ दोनोंका गौड़देशमें प्रचार :—

नित्यानन्दे आज्ञा दिल यबे गौड़े याइते।
महाप्रभु एइ दुइ दिला ताँर साथे॥14॥

अनुवाद—महाप्रभुने जब श्रीनित्यानन्द प्रभुको गौड़देश जानेकी आज्ञा दी, तब इन दोनोंको उनके साथ भेजा था॥14॥

(4) माधव और (5) वासुघोष ठाकुर :—

अतएव दुइगणे दुँहार गणन।
माधव, वासुदेव घोषेर एइ विवरण॥15॥

अनुवाद—इसलिये इन दोनोंकी गणना महाप्रभु और श्रीनित्यानन्द प्रभुके गणोंमें होती है। माधव और वासुदेव घोषके सम्बन्धमें भी यही कहा जाता है॥15॥

अमृतप्रवाह भाष्य—ये दोनों (रामदास और श्रीगदाधरदास) श्रीनित्यानन्द प्रभुके पार्षद स्वरूप हैं। जिस समय महाप्रभुने श्रीनित्यानन्द प्रभुको गौड़देश जानेकी आज्ञा दी थी, तब रामदास और श्रीगदाधर दासको भी साथ जानेके लिये कहा था। इसलिये इन दोनोंकी गणना एक बार महाप्रभुके गणोंमें हुई और फिर श्रीनित्यानन्द प्रभुके गणोंमें भी हुई। इसी प्रकार माधव और वासुघोषकी गणना भी दोनोंके गणोंमें होती है॥14-15॥

अनुभाष्य—'गोविन्दघोष'—गोविन्दघोष-ठाकुरके अति प्रियतम विग्रह श्रीगोपीनाथ अभी भी वर्धमान जिलाके अन्तर्गत दाँइहाट और पाटुलीके निकट अग्रद्वीपमें विराजमान हैं। पितृश्राद्धमें पुत्रके समान भक्तकी अप्रकट तिथिपर पिण्ड प्रदान करते हैं। नदिया कृष्णनगरके राजवंशके तत्त्वाधानमें श्रीगोपीनाथजीकी सेवा हो रही है। प्रतिवर्ष कृष्णनगरमें वैशाखके महीनेमें 'बारदोल' के समय अन्य ग्यारह श्रीविग्रहोंके साथ श्रीगोपीनाथको भी राजधानीमें लाया जाता है और दोलके बाद पुनः अग्रद्वीपमें ले जाया जाता है।

'वासुघोष'—वासुघोषकी पदावलीमें प्राकृत-सहजियोंके इन्द्रिय-तृप्तिकर बहुतसे गौरनागरीपद प्रक्षिप्त हुए हैं (बादमें जोड़े गये हैं)। वास्तवमें ये पद विप्रलम्भरसिक गौरभक्त वासुघोषके पद नहीं हैं और हो भी नहीं सकते। साधकोंको अपने कल्याणके लिये इन (प्रक्षिप्त) पदोंका सावधानीपूर्वक वर्जन करना चाहिये। (चैःचः आदिलीला 10/115 संख्या द्रष्टव्य है)॥15॥

अभिरामकी लीला :—

रामदास-मुख्यशाखा, सख्य-प्रेमराशि।
षोलसाङ्गेर काष्ठ ये तुलि' कैल वाँशी॥16॥

अनुवाद—रामदास मुख्य शाखा थे और वे सख्यप्रेमकी निधि थे। वे बत्तीस लोगोंके द्वारा उठाये जानेवाले बाँसको वंशीकी भाँति उठाकर चलते थे॥16॥

दास-गदाधरकी अलौकिक चेष्टाएँ :—

गदाधर दास गोपीभावे पूर्णानन्द।
याँर घरे दानकेलि कैल नित्यानन्द॥17॥

अनुवाद—श्रीगदाधर दास गोपीभावमें पूर्ण आनन्दमें डूबे रहते थे। इनके घरमें श्रीनित्यानन्द प्रभुने दानकेलि लीलामें अभिनयके द्वारा नृत्य किया था॥17॥

माधवघोषका कीर्तन :—

श्रीमाधव घोष—मुख्य कीर्त्तनीयागणे।
नित्यानन्दप्रभु नृत्य करे याँर गाने॥18॥

अनुवाद—श्रीमाधवघोष कीर्तनीयोंमें प्रमुख थे। इनके गानपर श्रीनित्यानन्द प्रभु नृत्य करते थे॥18॥

वासुघोषका कीर्तन :—

वासुदेव-गीते करे प्रभुर वर्णने।
काष्ठ-पाषाण द्रवे याहार श्रवणे॥19॥

अनुवाद—वासुदेव घोष अपने गीतोंमें महाप्रभुकी महिमाका गान करते थे, जिसे सुनकर काष्ठ-पत्थर भी पिघल जाते थे॥19॥

(6) मुरारि-चैतन्यदास :—

मुरारि-चैतन्यदासेर अलौकिक-लीला।
व्याघ्र-गाले चड़ मारे, सर्प-सने खेला॥20॥

अनुवाद—मुरारि-चैतन्यदासकी लीलाएँ अलौकिक थीं, वे कभी बाघके गालपर थप्पड़ मारते थे और कभी साँपके साथ खेलते थे॥20॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'मुरारि-चैतन्यदास'—इनका जन्म वर्धमान जिलेमें सर-वृन्दावनपुर ग्राममें हुआ था। नवद्वीप-धामके अन्तर्गत मोदद्रुम या माउगाछि-ग्राममें आकर इनका नाम 'शार्ङ्ग' (सारङ्ग) मुरारिचैतन्यदास हुआ था। इनकी वंशावली अभी भी 'सर' के पाटपर निवास करती है॥20॥

अनुभाष्य—'मुरारिचैतन्यदास'—(चै:भा: अन्त्यखण्ड, पाँचवाँ अध्याय)—

"बाह्य नाहि श्रीचैतन्यदासेर शरीरे।
व्याघ्र ताड़ाइया यान वनेर भितरे॥426॥
कखन चड़ेन सेइ व्याघ्रेर उपरे।
कृष्णेर प्रसादे व्याघ्र लङ्घिते ना पारे॥427॥
महा-अजगर सर्प लइ' निजकोले।
निर्भये चैतन्यदास थाके कुतुहले॥428॥
व्याघ्रेर सहित खेला खेलेन निर्भय।
हेन कृपा करे अवधूत महाशय॥429॥
चैतन्यदासेर आत्मविस्मृति सर्वथा।
निरन्तर कहेन आनन्दे मनःकथा॥431॥
दुइ तिन दिन मज्जि' जलेर भितरे।
थाकेन, कोथाओ दुःख ना हय शरीरे॥432॥
जड़प्राय अलक्षित वेश-व्यवहार।
परम उद्दाम सिंह-विक्रम अपार॥433॥
चैतन्यदासेर यत भक्तिर विकार।
कत वा कहिते पारि,—सकलि अपार॥434॥
योग्य श्रीचैतन्यदास मुरारि पण्डित।
याँर बातासेओ कृष्ण पाइये निश्चित॥435॥

"श्रीचैतन्यदासको शरीरकी बाह्य सुध-बुध नहीं रहती थी। वे कभी वनमें जाकर बाघका पीछा करते थे और कभी उसके ऊपर चढ़ जाते थे। श्रीकृष्णकी कृपासे वे बाघ कभी भी उनका कुछ भी अनिष्ट नहीं कर पाते थे। कभी वे निर्भीक होकर महा-विषधर सर्पको अपनी गोदमें ले लेते थे। वे निर्भीक होकर बाघोंके साथ खेलते थे। इस प्रकार अवधूत महाशय (श्रीनित्यानन्द प्रभु) उनपर कृपा करते थे। उन्हें अपनी स्मृति भी नहीं रहती थी और सदा आनन्दसे अपने मनकी कथा कहते थे। कभी वे दो-तीन दिन तक जलके भीतर डूबकर रहते थे, तो भी उनके शरीरमें कोई भी कष्ट नहीं होता था। वे जड़की भाँति अलक्षित रूपसे ये सब व्यवहार करते थे, उनपर किसीका नियन्त्रण नहीं था और सिंहके समान उनका

अपार विक्रम था। चैतन्यदासमें जो भक्तिके जो विकार उदित होते थे, वे अपार हैं, कितनोंका वर्णन करूँ? श्रीचैतन्यदास मुरारि पण्डित ऐसे योग्य थे कि उनको स्पर्शकर आ रही वायुके स्पर्शसे ही जीवोंको श्रीकृष्णप्रेमकी निश्चित ही प्राप्ति हो जाती थी॥"20॥

शुद्धभक्त व्रजसखा ही श्रीनिताइके गण :—

नित्यानन्देर गण यत,—सब व्रजसखा।
शृङ्ग-वेत्र-गोपवेश, शिरे शिखिपाखा॥21॥

अनुवाद—श्रीनित्यानन्द प्रभुके सभी भक्त व्रजलीलाके सखा हैं। वे हाथमें शृङ्ग, वेत्र (छड़ी) और सिरपर मोरपंख धारणकर गोपवेशमें रहते थे॥21॥

अनुभाष्य—श्रीनित्यानन्द प्रभुके आश्रित जो भी भक्त थे, वे सभी व्रजके सख्यरसके आश्रित हैं। उन सबका ही गोपाल-वेश था। श्रीनित्यानन्द प्रभुकी पत्नी श्रीमती जाह्नवा-माता व्रजकी अनङ्गमञ्जरी हैं और वे श्रीमती राधिकाकी छोटी बहन हैं। (श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 66वाँ श्लोक)—

"केचित् श्रीवसुधादेवीं कलावपि विवृण्वते।
अनङ्गमञ्जरीं केचिज्जाह्नवीञ्च प्रचक्षते।
उभयन्तु समीचीनं पूर्वन्यायात् सतां मतम्॥66॥"

"कलियुगमें कोई-कोई व्यक्ति श्रीवसुधादेवीको और कोई-कोई श्रीजाह्नवादेवीको अनङ्गमञ्जरी कहते हैं। महात्माओंके मतसे पूर्वकथित न्याय अर्थात् प्रकाश भेदके अनुसार दोनों विचार ही उचित हैं।" जाह्नवा-माताके आश्रित भक्तोंकी गणना श्रीनित्यानन्दके गणोंमें ही होती है॥21॥

(7) रघुनाथ वैद्य :—

रघुनाथ वैद्य उपाध्याय महाशय।
याँहार दर्शने कृष्णप्रेमभक्ति हय॥22॥

अनुवाद—रघुनाथ वैद्य एक महान भक्त थे, जिनके दर्शनसे ही श्रीकृष्णमें प्रेमाभक्ति जाग्रत होती थी॥22॥

(8) सुन्दरानन्द (गोपाल-2) :—

सुन्दरानन्द—नित्यानन्देर शाखा, भृत्य मर्म।
याँर सङ्गे नित्यानन्द करे व्रजनर्म॥23॥

अनुवाद—सुन्दरानन्द श्रीनित्यानन्द प्रभुके अन्तरङ्ग सेवक थे, जिनके साथ श्रीनित्यानन्द प्रभु व्रजभावमें हास-परिहास करते थे॥23॥

अनुभाष्य—(चै:भा: अन्त्यखण्ड, पाँचवाँ अध्याय)—

"प्रेमरससमुद्र सुन्दरानन्द नाम।
नित्यानन्दस्वरूपेर पार्षद-प्रधान॥728॥"

"सुन्दरानन्द प्रेमरसके समुद्र हैं और श्रीनित्यानन्द प्रभुके प्रधान पार्षद हैं।" (श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 127वाँ श्लोक)—

"पुरा सुदामनामासीदद्य ठक्कुरसुन्दरः॥127(क)॥"

"पूर्वकालके 'सुदाम' नामक गोपाल अब सुन्दर ठाकुर हैं।"

ये बारह गोपालोंमें अन्यतम 'सुदाम' हैं। इनका श्रीपाट यशोहर जिलाके महेशपुर ग्राममें है। इस स्थानपर प्राचीन स्मृतिचिह्न-स्वरूप केवल सुन्दरानन्दकी जन्मस्थलीके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। श्रीमन्दिर और श्रीविग्रहादि लगभग सौ वर्ष पूर्व ही प्रतिष्ठित हुए हैं। यहाँ श्रीश्रीराधावल्लभ और श्रीश्रीराधारमणजीकी सेवा होती है। सुन्दरानन्द ठाकुर आजीवन अविवाहित रहे, इसलिये उनका कोई वंशज नहीं है। उनके जातिभ्राता और सेवायतके शिष्यवंश अभी वर्तमान हैं। वीरभूम जिलामें मङ्गलडिहि-ग्राममें सुन्दरानन्दके जाति-वंशज हैं। वहाँ श्रीश्रीबलरामजीकी सेवा होती है। सुन्दरानन्द ठाकुरके द्वारा प्रतिष्ठित श्रीश्रीराधावल्लभ-विग्रहको बहरमपुरके सैदाबाद गोस्वामी लोग ले गये थे, बादमें वर्तमान विग्रहकी प्रतिष्ठा हुई थी। अब महेशपुरके जमीन्दार महाशय लोग इनके सेवायत हैं। माघी-पूर्णिमाके दिन सुन्दरानन्द ठाकुरका तिरोभाव उत्सव मनाया जाता है॥23॥

(9) कमलाकर पिप्पलाइ (गोपाल-3) :—

कमलाकर पिप्पलाइ—अलौकिक रीत।
अलौकिक प्रेम ताँर भुवने विदित॥ 24॥

अनुवाद—कमलाकर पिप्पलाइके प्रेमकी रीत अलौकिक थी। उनका अलौकिक प्रेम सम्पूर्ण जगत्में प्रसिद्ध है॥ 24॥

अमृतप्रवाह भाष्य—कमलाकर पिप्पलाइके वंशज माहेशके श्रीजगन्नाथदेवके सेवक हैं॥ 24॥

अनुभाष्य—'कमलाकर पिप्पलाइ'—(श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 128वाँ श्लोक)—

"कमलाकरः पिप्पलाइनाम्नासीद्यो महाबलः॥ 128॥"

"महाबल नामक सखा अब कमलाकर पिप्पलाइ हैं।" इन्होंने माहेशमें श्रीजगन्नाथके विग्रहको प्रतिष्ठित किया था। इनके पुत्रका नाम चतुर्भुज था और उनके नारायण और जगन्नाथ दो पुत्र थे। नारायणके पुत्र जगदानन्द और उनके पुत्र राजीवलोचन थे। उस समय जगन्नाथदेवकी सेवाके लिये धनकी कमी रहती थी। 1060 बङ्गाब्दमें ढाकाके नवाब ओयालिश सा (सुजा?) ने श्रीजगन्नाथदेवको 1185 बीघा जमीन प्रदान की। माहेशके डेढ़ कोस पश्चिममें जगन्नाथपुर ग्राममें यह जमीन है और श्रीजगन्नाथदेवके नामपर ही उस जमीनका नाम 'जगन्नाथपुर' हुआ है।

ऐसी मान्यता है कि कमलाकरके छोटे भाई निधिपति पिप्पलाइ अपने बड़े भाईको खोजते हुए माहेश आये और उन्होंने कमलाकरको वहाँ देखा। वे किसी भी प्रकारसे उन्हें वापिस अपने घर लौटा ले जानेमें जब सफल नहीं हुए, तो वे अपने और अपने भाईके परिवारके साथ आकर माहेशमें ही रहने लगे।

एक किवदन्ती है—"ध्रुवानन्द नामक एक उदासीन वैष्णवने पुरुषोत्तम-क्षेत्रमें श्रीजगन्नाथदेवको अपने हाथोंसे भोजन बनाकर भोग लगानेकी प्रबल इच्छा की। रात्रिमें उन्होंने स्वप्नमें देखा कि श्रीजगन्नाथदेवने उनके सामने आविर्भूत होकर उनको गङ्गाके तटपर माहेश-ग्राममें जाकर अपने विग्रहकी प्रतिष्ठा करके प्रतिदिन अपने हाथोंसे भोग लगानेकी सेवा करके मनोकामना पूर्ण करनेके लिये कहा। ध्रुवानन्द जब माहेश आये, तो उन्होंने श्रीजगन्नाथ, श्रीबलराम और सुभद्रादेवीको जलमें डूबते हुए देखा। उन्होंने तुरन्त ही उन तीनों विग्रहोंको जलसे निकालकर एक कुटीका निर्माणकर वहाँ रहकर उनकी सेवा करने लगे। कुछ समय बाद उनके मनमें एक चिन्ता होने लगी कि उनके अप्रकट होनेके बाद श्रीजगन्नाथजीका उपयुक्त सेवक कौन होगा? रात्रिमें श्रीजगन्नाथदेवने उनको स्वप्नमें आदेश दिया कि सुन्दरवनके निकट 'खालिजुलि'-ग्रामनिवासी 'कमलाकर पिप्पलाइ' नामक एक मेरे परम भक्तके अगले दिन प्रातःकालमें माहेशमें आनेपर उसे ही मेरा सेवाभार सौंप देना। अगले दिन ध्रुवानन्द जब कमलाकरसे मिले, तो उन्होंने उन्हें श्रीजगन्नाथजीकी सेवाका भार सौंप दिया। श्रीजगन्नाथदेवकी सेवाका अधिकार प्राप्त करनेसे कमलाकरकी 'अधिकारी' उपाधि हो गयी। राढ़ीयश्रेणीके शौक्रब्राह्मणोंमें पचपन ग्रामिणोंमें 'पिप्पलाइ' अन्यतम हैं॥ 24॥

(10) सूर्यदास और (11) कृष्णदास सरखेल :—

सूर्यदास सरखेल, ताँर भाइ कृष्णदास।
नित्यानन्दे दृढ़ विश्वास, प्रेमेर निवास॥ 25॥

अनुवाद—सूर्यदास सरखेल और उनके भाई कृष्णदास प्रेमके भण्डार स्वरूप थे और उनका श्रीनित्यानन्द प्रभुमें दृढ़ विश्वास था॥ 25॥

अनुभाष्य—'सूर्यदास सरखेल'—भक्तिरत्नाकरकी बारहवीं तरङ्गमें कहा गया है—

"नवद्वीप हइते अल्पदूर 'शालिग्राम'।
तथा बैसे पण्डित सूर्यदास नाम॥
गौड़े राजा यवनेर कार्ये सुसमर्थ।
'सरखेल ख्याति, उपार्जिल बहु अर्थ॥
सूर्यदास—चारिभ्राता अति शुद्धाचार।
वसुधा-जाह्नवा-नामे ताँर कन्याद्वय॥"

"नवद्वीपसे थोड़ी दूरीपर 'शालिग्राम' है। वहाँ पण्डित सूर्यदास रहते थे। वे गौड़देशके यवन राजाके यहाँ कार्य करते थे और उसमें अति दक्ष थे। वे 'सरखेल' नामसे विख्यात थे और उन्होंने बहुत धन अर्जित किया। सूर्यदास चार भाई थे और चारोंका आचरण परम शुद्ध था। वसुधा और जाह्नवा नामकी इनकी दो पुत्रियाँ थीं।" (श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 65वाँ श्लोक)—

"श्रीवारुणी-रेवत-वंशसम्भवे,
तस्य प्रिये द्वे वसुधा च जाह्नवी।
श्रीसूर्यदासस्य महात्मनः सुते,
ककुद्मिरूपस्य च सूर्यतेजसः॥ 65॥"

"श्रीबलदेवकी पत्नियाँ श्रीवारुणीदेवी और रेवतवंशमें उत्पन्न रेवतीदेवी अब श्रीनित्यानन्द प्रभुकी पत्नियाँ श्रीवसुधा और श्रीजाह्नवा हैं। ये दोनों सूर्यके समान तेजस्वी महात्मा श्रीसूर्यदास (सरखेल) की कन्याएँ हैं। ये सूर्यदास पहले रेवतीके पिता कुकुद्मी थे।"

बड़गाछि—धर्मदह-ग्रामके उस पार 'गुड़गुड़े' नहरके तटपर। इसके पास ही शालिग्राम और रुकुणपुर है।

'कृष्णदास सरखेल'—ये गौरीदास पण्डित और सूर्यदास सरखेलके छोटे भाई हैं। ये श्रीनित्यानन्दके विवाहके पूर्व दिन बड़गाछिसे शालिग्राम आये थे। 'भक्तिरत्नाकर' बारहवीं तरङ्गमें कहा है—

"नाना द्रव्य लैया विप्रगणेर सहिते।
कृष्णदास पण्डित आइला वाटी हइते॥"

"ब्राह्मणोंके साथ नाना प्रकारकी वस्तुओंको लेकर कृष्णदास पण्डित घरसे आये॥"25॥

(12) गौरीदास पण्डित (गोपाल-4)

श्रीगौरीदास पण्डिते प्रेमोद्दण्ड-भक्ति।
कृष्णप्रेमा दिते, निते, धरे महाशक्ति॥ 26॥

अनुवाद—श्रीगौरीदास पण्डितमें उन्नत प्रेमाभक्ति थी। उनमें श्रीकृष्णप्रेम ग्रहण करनेकी और इस कारण देनेकी महाशक्ति थी॥ 26॥

अनुभाष्य—'श्रीगौरीदास पण्डित'—हरिहोड़के पुत्र राजा कृष्णदासकी इनपर विशेष कृपा थी। ये व्रजके बारह गोपालोंमें अन्यतम 'सुबलसखा' हैं। (श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 128वाँ श्लोक)—

"सुबलो यः प्रियश्रेष्ठः स गौरीदासपण्डितः॥ 128(क)॥"

"श्रीकृष्णचन्द्रके अति प्रिय सखा सुबल अब श्रीगौरीदास पण्डित हैं।" (चैःभाः अन्त्यखण्ड, पाँचवाँ अध्याय)—

"गौरीदास पण्डित परम भाग्यवान्।
कायमनोवाक्ये नित्यानन्द याँर प्राण॥ 730॥"
"सरखेल सूर्यदास पण्डित उदार।
ताँर भ्राता गौरीदास पण्डित प्रचार॥
शालिग्राम हैते ज्येष्ठ भ्रातारे कहिया।
गङ्गातीरे कैला वास 'अम्बिका' आसिया॥"

"गौरीदास पण्डित महाभाग्यवान् हैं, क्योंकि श्रीनित्यानन्द प्रभु इनके प्राण हैं और इन्होंने अपना तन, मन और वाणीको उन्हें समर्पित कर दिया है।" "सूर्यदास पण्डित सरखेल बहुत उदार हैं और गौरीदास पण्डित उनके भाईके रूपमें प्रसिद्ध हैं। गौरीदास पण्डित पहले शालिग्राममें रहते थे और बादमें अपने ज्येष्ठ भाई श्रीसूर्यदासके कहनेसे ये गङ्गाके किनारे अम्बिका-कालनामें आ गये।"

गौरीदास पण्डितकी साढ़े बाइस शाखाएँ हैं। (1) श्रीनृसिंहचैतन्य, (2) कृष्णदास, (3) विष्णुदास, (4) बड़े बलरामदास, (5) गोविन्द, (6) रघुनाथ, (7) बड़ू गङ्गादास, (8) आउलिया गङ्गाराम, (9) यादवाचार्य, (10) हृदयचैतन्य, (11) चाँद हालदार, (12) महेश पण्डित, (13) मुकुट राय, (14) भातुया गङ्गाराम (15) आउलिया चैतन्य, (16) कालिया कृष्णदास, (17) पातुया गोपाल, (18) बड़े जगन्नाथ, (19) नित्यानन्द (20) भावि, (21) जगदीश, (22) राइया कृष्णदास और ($22^{1/2}$) अन्नपूर्णा। गौरीदास पण्डितके ज्येष्ठ पुत्र (बड़े) बलराम और कनिष्ठ पुत्र रघुनाथ हैं और अन्नपूर्णा उनकी पुत्री हैं।

शालिग्रामवासी श्रीकंसारि मिश्रके छह पुत्र थे—

(1) दामोदर, (2) जगन्नाथ, (3) सूर्यदास सरखेल (वसुधा-जाह्नवाके पिता), (4) गौरीदास, (5) कृष्णदास सरखेल और (6) नृसिंह चैतन्य।

गौरीदास पण्डित या हृदयचैतन्यका वंश नहीं है। कोई कोई कहते हैं कि जो स्वयंको उनका वंशज कहते हैं, वे सब गौरीदास पण्डित अथवा हृदयचैतन्यके शिष्य-शाखाके वंशज हैं। भक्तिरत्नाकरकी ग्यारहवीं तरङ्गमें कहा है—

"गौरीदास पण्डितेर समाधि देखिते।
बहे वारिधारा नेत्रे, नारे निवारिते॥"

"जाह्नवादेवीने वृन्दावनमें जब गौरीदास पण्डितकी समाधिका दर्शन किया, तो उनके नेत्रोंसे अविरल अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी, जिसे वे रोक नहीं पायीं।"

गौरीदासके शिष्य हृदयचैतन्य थे और हृदयचैतन्यके शिष्य अन्नपूर्णादेवीके पुत्र गोपीरमण थे। इनकी वंशावली ही अब कालनामें महाप्रभुके अधिकारी व्यक्ति हैं।

शान्तिपुरके दूसरे पार गङ्गा तटपर वर्धमान जिलामें श्रीपाट अम्बिका-कालना है। यह जिलाका उपखण्ड और एक छोटासा शहर है।

गौरीदासके देवालयके प्रवेश-मार्गमें एक अपूर्व इमलीका वृक्ष है। ऐसा कहा जाता है कि इसी इमलीके वृक्षके नीचे महाप्रभु और गौरीदास पण्डितका मिलन हुआ था। देवालयमें सफेद पत्थर लगा है और गृहके भीतर तीन प्रकोष्ठोंमें श्रीविग्रह इस प्रकार हैं,—(1) श्रीगौरीदास, (2) श्रीराधाकृष्ण, (3) श्रीगौर-नित्यानन्द, (4) श्रीजगन्नाथ, (5) श्रीबलराम और (6) श्रीसीताराम। पण्डित गौरीदासके भवनकी पश्चिम दिशाकी ओर श्रीसूर्यदास पण्डितका देवालय और कुछ ही दूरीपर सिद्ध श्रीभगवानदास बाबाजीका आश्रम है।

जिस स्थानपर वर्तमान देवालय है, उसे 'अम्बिका' कहते हैं और उसकी उत्तर दिशामें 'कालना' है। इसलिये इन दोनोंका मिलित नाम 'अम्बिका-कालना' है। ऐसा सुना जाता है कि इस मन्दिरमें अभी भी श्रीमहाप्रभुके श्रीहस्तसे चलाया गया चप्पू और उनकी श्रीहस्तलिखित श्रीगीता वर्तमान है (भक्तिरत्नाकर 7वीं तरङ्ग द्रष्टव्य है)॥ 26॥

गौरीदास पण्डितके प्राण श्रीगौर-निताइ :—

नित्यानन्दे समर्पिल जाति-कुल-पाँति।
श्रीचैतन्य-नित्यानन्दे करि' प्राणपति॥ 27॥

अनुवाद—इन्होंने श्रीचैतन्य-श्रीनित्यानन्द प्रभुको प्राणोंसे प्रिय स्वामी मानकर अपनी जाति, कुल और पाँति, सब कुछ श्रीनित्यानन्द प्रभुके चरणोंमें समर्पित कर दिया॥ 27॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'पाँति'—पंक्ति-भोजन॥ 27॥

इति अमृतप्रवाहभाष्ये एकादश परिच्छेद।
ग्यारहवें अध्यायका अमृतप्रवाह भाष्य समाप्त।

(13) पुरन्दर पण्डित :—

नित्यानन्द प्रभुर प्रिय—पण्डित पुरन्दर।
प्रेमार्णव-मध्ये फिरे यैछन मन्दर॥ 28॥

अनुवाद—पुरन्दर पण्डित श्रीनित्यानन्द प्रभुके अत्यन्त प्रिय थे। वे प्रेम समुद्रमें मन्दराचल पर्वतके समान घूमते रहते थे॥ 28॥

अनुभाष्य—'पुरन्दर पण्डित'—(चै:भा: अन्त्यखण्ड, पाँचवाँ अध्याय)—

"पुरन्दर पण्डित परम शान्त दान्त।
नित्यानन्दस्वरूपेर वल्लभ एकान्त॥ 731॥"

"पुरन्दर पण्डित परम शान्त और संयमी हैं और श्रीनित्यानन्द प्रभुके ऐकान्तिक प्रिय हैं।" (चै:भा: अन्त्यखण्ड, पाँचवाँ अध्याय)—

"तबे आइलेन प्रभु खड़दह-ग्रामे।
पुरन्दर पण्डितेर देवालय स्थाने॥ 423॥
खड़दह-ग्रामे प्रभु नित्यानन्द राय।
यत नृत्य करिलेन कथन ना याय॥ 424॥
पुरन्दर पण्डितेर परम उन्माद।
वृक्षेर उपरि चड़ि' करे सिंहनाद॥ 425॥
मुञि रे 'अङ्गद' बलि' लम्फ दिया पड़े॥ 241॥"

"तब श्रीनित्यानन्द प्रभु खड़दह-ग्राममें पुरन्दर पण्डितके

देवालय-स्थानपर आये। वहाँ श्रीनित्यानन्द प्रभुने जैसा अद्भुत नृत्य किया, उसका वर्णन करना सम्भव नहीं है। पुरन्दर पण्डित वृक्षके ऊपर चढ़कर उस नृत्यको देख रहे थे और उसे देखकर उन्हें उन्माद हो गया। वे सिंहके समान गरजते हुए और 'मैं अङ्गद हूँ', ऐसा कहकर वे वृक्षसे कूद पड़े॥"28॥

(14) परमेश्वरीदास (गोपाल-5)

परमेश्वरदास—नित्यानन्दैक-शरण।
कृष्णभक्ति पाय, ताँरे ये करे स्मरण॥29॥

अनुवाद—परमेश्वरदास श्रीनित्यानन्द प्रभुके ऐकान्तिक शरणागत थे। जो व्यक्ति इनका स्मरण करता है, उसे श्रीकृष्णप्रेमकी अवश्य ही प्राप्ति होती है॥29॥

अनुभाष्य—'परमेश्वर अथवा परमेश्वरी-दास'— (चै:भा: अन्त्यखण्ड पाँचवाँ अध्याय)—

"नित्यानन्द-जीवन परमेश्वरदास।
याँहार विग्रहे नित्यनन्देर विलास॥732॥"

"परमेश्वरदास श्रीनित्यानन्द प्रभुके जीवनस्वरूप थे और उनके विग्रहमें श्रीनित्यानन्द प्रभु विलास करते थे।" (चै:भा: अन्त्यखण्ड, पाँचवाँ अध्याय)—

"कृष्णदास, परमेश्वर दास,—दुइजन।
गोपभावे है है करे सर्वक्षण॥240॥
पुरन्दर पण्डित, परमेश्वरीदास।
याँहार विग्रहे गौरचन्द्रेर प्रकाश॥95॥
सत्वरे धाइया आइलेन सेइक्षणे।
प्रभु देखि' प्रेमयोगे कान्दे दुइजने॥96॥

"कृष्णदास और परमेश्वरदास, दोनोंमें जब भी गोपभाव उदित होता, वे सदा 'है है' करके हँसते रहते। पुरन्दर पण्डित और परमेश्वरीदास, इन दोनोंके शरीरमें श्रीगौरचन्द्रका प्रकाश है। महाप्रभुके आनेका समाचार सुनते ही ये दोनों दौड़ते हुए आये और महाप्रभुको देखते ही प्रेमके कारण क्रन्दन करने लगे॥" ये कुछ समय तक खड़दहमें रहे थे। (श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 132वाँ श्लोक)—

"नाम्नार्जुनः सखा प्राग् यो दासः श्रीपरमेश्वरः॥132(क)॥"

"पूर्वके अर्जुन नामक सखा अब श्रीपरमेश्वर दास हैं।" ये बारह गोपालोंमें अन्यतम 'अर्जुन' सखा हैं। भक्तिरत्नाकरकी दसवीं तरङ्गमें कहा गया है कि श्रीजाह्नवा-देवीके खेतुरि-महोत्सव जानेके समय ये उनके साथ थे। भक्तिरत्नाकरकी तेरहवीं तरङ्गके अनुसार इन्होंने आटपुरमें जाह्नवा-माताके आदेशसे 'श्रीराधा-गोपीनाथ'के विग्रहोंकी प्रतिष्ठा की थी।

श्रीवैष्णव-वन्दनामें—

"परमेश्वर-दास ठाकुर वन्दिब सावधाने।
शृगाले लओयान नाम सङ्कीर्त्तन-स्थाने॥"

भक्तिरत्नाकरकी तेरहवीं तरङ्गमें परमेश्वरी-ठाकुरका वर्णन है।

परमेश्वरी ठाकुरका श्रीपाट आटपुरमें है, इसका पूर्व नाम 'विशखाला' था। मन्दिरके बाहर बड़े छायादार साथ-साथ दो बकुल वृक्ष और पृथक् एक कदम्बका वृक्ष है तथा उनके बीचमें परमेश्वरी ठाकुरकी समाधि है और उसके ऊपर तुलसीमञ्च सुशोभित है। जो दो बकुल वृक्ष श्रील परमेश्वरी ठाकुरके समयमें थे, उनकी शाखासे वर्तमान दो वृक्ष उत्पन्न हुए हैं, ऐसा कहा जाता है। कदम्ब वृक्षपर प्रति वर्ष एक ही फूल लगता है और उसके द्वारा श्रीविग्रहके श्रीचरणोंकी पूजा होती है।

परमेश्वरी ठाकुरका जन्म वैद्यकुलमें हुआ था। उनके भाईके वंशज अब श्रीपाटके वर्तमान सेवायत हैं। हुगली जिलाके चण्डीतला-डाकघरके अन्तर्गत गरलगाछा-ग्राममें भी इनमेंसे कुछ वर्तमान हैं। कुछ समय पूर्वतक इनके अनेक शौक्रब्राह्मण-शिष्य थे, परन्तु कालके प्रभावसे सांसारिक लोगोंके समान इनके द्वारा वैद्यके व्यवसायको अपनानेपर उन ब्राह्मण-वंशियोंने धीरे-धीरे इनके शिष्यत्वका त्याग कर दिया। इनकी उपाधि 'अधिकारी' थी।

ये स्वयंको साधारण 'वैद्य' मानकर देवल ब्राह्मणके द्वारा श्रीविग्रहोंकी सेवा करवाते थे। पहले मन्दिरकी व्यवस्थाके लिये प्रचुर भूमि थी, किन्तु अब वह भूमि

इनके अधिकारसे चली गयी है। अब कुछ शेष सम्पत्तिसे बड़े कष्टसे श्रीविग्रहकी सेवा चल रही है।

देखा जाता है कि मन्दिरमें एक ही सिंहासनपर श्रीबलदेव और श्रीराधागोपीनाथ श्रीविग्रह विराजमान हैं। सम्भवतः सिंहासनपर श्रीबलदेव-विग्रह बादमें प्रतिष्ठित किया गये होंगे, क्योंकि एक ही सिंहासनपर श्रीबलदेव और श्रीमतीके साथ श्रीकृष्णके विग्रहका अवस्थान—तत्त्वविरोधपूर्ण बात है अर्थात् यह रसाभास दोष है। वैशाखी-पूर्णिमाके दिन परमेश्वरी-ठाकुरका तिरोभाव उत्सव होता है॥29॥

(15) जगदीश पण्डित :—

श्रीजगदीश पण्डित हय जगतपावन।
कृष्णप्रेमामृत वर्षे, ये वर्षा घन॥30॥

अनुवाद—श्रीजगदीश पण्डित जगत्को पवित्र करनेवाले थे। ये जलधर मेघोंके समान श्रीकृष्णप्रेमरूपी अमृतकी घनघोर वर्षा करते थे॥30॥

अनुभाष्य—श्रीजगदीश पण्डितका श्रीपाट यशड़ा-ग्राममें है। चैःभाः आदिखण्ड छठा अध्याय और चैःचः आदिलीला 14/39 संख्या द्रष्टव्य है। इनके श्रीपाटके विवरणसे यह जाना जाता है कि इनका जन्म गोहाटी-अञ्चलमें हुआ था। इनके पिता कमलाक्ष—गयघर बन्द्यघटीय भट्टनारायणके पुत्र थे। जगदीशके माता-पिता दोनों ही परम विष्णुभक्तिपरायण गृहस्थ थे। माता-पिताके अप्रकट होनेपर अपनी जन्मभूमि त्यागकर ये अपनी पत्नी 'दुःखिनी' और भाई महेशको लेकर गङ्गाके तटपर चले आये और वैष्णवसङ्गकी अभिलाषासे श्रीमायापुरमें श्रीजगन्नाथ मिश्रके घरके निकट आकर वास करने लगे। श्रीगौरसुन्दरने जगदीशको नाम प्रचारके लिये नीलाचल जानेका आदेश किया। जगदीश पण्डित महाप्रभुके आदेशानुसार नीलाचलमें नाम प्रचारके लिये आये और उनको श्रीजगन्नाथजीसे प्रार्थना करनेपर एक श्रीजगन्नाथजीकी मूर्ति प्राप्त हुई, जिसे इन्होंने चाकदह-थानाके अन्तर्गत गङ्गाके तटपर स्थित यशड़ा-ग्राममें प्रतिष्ठित किया। ऐसा कहा जाता है कि जगदीश पण्डित पुरुषोत्तम क्षेत्रसे इस श्रीजगन्नाथ-मूर्तिको एक छड़ीमें बाँधकर यशड़ा-ग्राममें लाये थे। अभी भी एक छड़ीको जगदीश पण्डितकी 'जगन्नाथविग्रह लानेवाली छड़ी' कहकर मन्दिरके सेवायत उसके दर्शन करवाते हैं। ऐसा कहा जाता है कि श्रीगौर-नित्यानन्दप्रभु पार्षदों सहित दो बार यशड़ा-ग्राममें आये थे और उन्होंने वहाँ सङ्कीर्तनविहार, हरिकथा-कीर्तन और महामहोत्सव मनाया था।

जगदीश पण्डितने गृहस्थकी लीलाका अभिनय किया था। उनके एकमात्र पुत्रका नाम 'रामभद्र गोस्वामी' था।

पहले श्रीजगन्नाथजीकी मूर्ति गङ्गाके तटपर एक वटवृक्षके नीचे प्रतिष्ठित थी, बादमें गोयाड़ी-कृष्णनगरके राजा कृष्णचन्द्रने मन्दिरका निर्माण करवाया। उस मन्दिरके जीर्ण होनेपर स्थानीय उमेशचन्द्र मजूमदारकी सहधर्मिणी मोक्षदा दासीने 1324 वर्षमें वर्तमान मन्दिरका संस्कार किया था, ऐसा वहाँ एक पत्थरके पटलपर अंकित है। मन्दिर एक साधारण घरके आकारका है और मन्दिरपर कोई चूड़ा नहीं है। मन्दिरमें श्रीजगन्नाथदेव, श्रीराधावल्लभजी और जगदीशकी पत्नी दुःखिनी-माताके द्वारा स्थापित श्रीगौरगोपालकी मूर्ति विराजमान है।

महाप्रभु जब यशड़ामें जगदीशके घरको पवित्र करके नीलाचल जानेके लिये तत्पर हुए, तब दुःखिनी श्रीगौरसुन्दरके विरहमें अत्यन्त कातर हो गयीं। यह देखकर महाप्रभुने गौरगोपाल-विग्रहरूपमें यशड़ा-ग्राममें उनकी सेवा स्वीकार की। तबसे श्रीगौरगोपाल-विग्रह (पीतवर्णकी लकड़ीकी गोपाल-मूर्ति) वहाँ सेवित हो रहे हैं।

कालनाके सिद्ध भगवान् दास बाबाजी महाराजने कुछ समय यशड़ा-ग्राममें भजन किया था। बादमें वे कालना चले गये, परन्तु वे कालनासे बीच-बीचमें यशड़ा आया करते थे। तब विजयचन्द्र गोस्वामी श्रीजगन्नाथदेवके सेवायत थे। श्रीगदाधर नामक एक वैष्णव कविके द्वारा रचित जगदीश पण्डित गोस्वामीका

सूचक-गान अभी भी यशड़ा ग्राममें गाया जाता है। इस गीतमें अल्प अक्षरोंमें जगदीश पण्डितका जीवन-वृत्तान्त कहा गया है। खञ्ज-भगवानके पुत्र रघुनाथाचार्य जगदीश पण्डित गोस्वामीके शिष्य थे।

पौषी शुक्ला तृतीयाको श्रीजगदीश पण्डितका तिरोभाव दिवस है। प्रति वर्ष पौषी शुक्ला द्वादशीको इनका जन्मोत्सव होता है और स्नानयात्राके उपलक्ष्यमें अनेक लोग यहाँ एकत्रित होते हैं॥30॥

(16) धनञ्जय पण्डित (गोपाल-6) :—

नित्यानन्द-प्रियभृत्य पण्डित धनञ्जय।
अत्यन्त विरक्त, सदा कृष्णप्रेममय॥31॥

अनुवाद—धनञ्जय पण्डित श्रीनित्यानन्द प्रभुके प्रिय सेवक थे। वे परम विरक्त और सदा श्रीकृष्णप्रेममें डूबे रहते थे॥31॥

अनुभाष्य—'पण्डित धनञ्जय'—इनका निवास कटोआके निकट शीतल ग्राममें था। ये बारह गोपालोंमें 'वसुदाम' सखा हैं। (श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 127वाँ श्लोक)—

"वसुदामसखायश्च पण्डितः श्रीधनञ्जयः॥127(ख)॥"

"पूर्वकालके वसुदाम नामक सखा अब श्रीधनञ्जय पण्डित हैं।" (चैःभाः अन्त्यखण्ड, पाँचवाँ अध्याय)—

"धनञ्जय पण्डित महान्त विलक्षण।
याँहार हृदये नित्यानन्द अनुक्षण॥733॥"

"धनञ्जय पण्डित विलक्षण महात्मा हैं, श्रीनित्यानन्द प्रभु उनके हृदयमें प्रतिक्षण विराजते हैं।"

शीतलग्राम वर्द्धमान जिलाके अन्तर्गत है। देवालय चारों ओर मिट्टीकी दीवारके ऊपर फूसकी छतसे बना हुआ है। बहुत वर्ष पहले 'बाजारवन कावाशी' गाँवके मल्लिक महोदयने श्रीविग्रहके लिये एक पक्के घरका निर्माण किया था। परन्तु वह मन्दिर अब टूट गया है। प्राचीन मन्दिरकी नींव अभी भी वर्तमान है। प्रवेशपथके बायीं ओर एक तुलसीकी बेदी है,—वही धनञ्जय पण्डितकी समाधि-बेदी है। घरका द्वार पश्चिमकी ओर है और घरमें श्रीधनञ्जयके द्वारा सेवित श्रीगोपीनाथ, श्रीश्रीनिताइ-गौर और श्रीदामोदर-विग्रह विराजमान हैं। देवालयसे थोड़ी दूर एक बगीचेमें श्रीविग्रहको ले जाकर प्रत्येक वर्ष माघ मासके मध्यमें तिरोभाव-उत्सव होता है। किसी-किसी का कहना है कि धनञ्जय पण्डितकी वास्तविक जन्मभूमि चट्टग्राम जिला (वर्तमान बङ्गलादेश) के 'जाड़' ग्राममें है। वहाँसे आकर इन्होंने शीतलग्राम और साँचड़ा-पाँचड़ा ग्राममें श्रीविग्रह-सेवाको प्रकाशित किया था।

कहा जाता है कि ये कुछ दिन नवद्वीपमें महाप्रभुके साथ सङ्कीर्तन करके शीतलग्राम लौट आये थे और वहाँसे श्रीवृन्दावन-धामके दर्शनको चले गये। वृन्दावन जानेसे पहले साँचड़ा-पाँचड़ा ग्राममें कुछ समय रहकर वहाँ अपने सहयात्री शिष्यको श्रीसेवा प्रकाश करनेकी अनुमति देकर वृन्दावनके लिये प्रस्थान किया। इसलिये साँचड़ा-पाँचड़ा ग्रामको भी लोग "धनञ्जयका पाट' कहते हैं। आजकल इस गाँवमें धनञ्जय पण्डितके वहाँ पूर्वकालमें रहनेका कोई भी प्रमाण नहीं है, परन्तु शीतलग्राममें ही उनका प्रधान श्रीपाट है। वृन्दावनसे लौटकर इन्होंने जलन्दि-ग्राममें देवसेवाकी और वहाँसे पुनः शीतलग्राम आकर श्रीगौराङ्गदेवकी सेवाको प्रकट किया।

सुना जाता है कि धनञ्जय पण्डितका कोई वंश नहीं था। सञ्जय नामके उनके एक भाई थे, जिनके पुत्रका नाम रामकानाइ ठाकुर था। सञ्जयका श्रीपाट वर्द्धमान जिलाके 4-5 कोस पूर्व जलन्दि-ग्राममें है। सञ्जयके वंशधरोंमें कुछ लोग जलन्दि-ग्राममें वास करते हैं। इस स्थानपर श्रीराधागोविन्दकी सेवा है। वर्तमान बोलपुरके अति निकट मुलुक-ग्राममें उक्त रामकानाइका श्रीपाट है। किसी-किसीका कहना है कि सञ्जय धनञ्जयके शिष्य थे। शीतलग्राममें अब जो सेवायत हैं, वे सब धनञ्जय पण्डितके शिष्यके वंशधर हैं। धनञ्जयके शिष्य जीवनकृष्णके द्वारा स्थापित प्राचीन विग्रह श्रीश्यामसुन्दरजी अब गोपाल राय-चौधुरीके भवनमें विराजमान हैं॥31॥

(17) महेश पण्डित (गोपाल-7) :—

महेश पण्डित—व्रजेर उदार गोपाल।
ढक्कावाद्ये नृत्य करे प्रेमे मातोयाल॥ 32॥

अनुवाद—महेश पण्डित व्रजके बारह गोपालोंमेंसे एक हैं, जो बहुत उदार थे। वे ढोल-नगाड़े आदि वाद्योंके साथ प्रेममें मत्त होकर नृत्य करने लगते थे॥ 32॥

अनुभाष्य—'महेश पण्डित'—इनका श्रीपाट बङ्गाब्द 1334 वर्षके प्रथम कुछेक महीनोंतक पालपाड़ामें स्थित था। बादमें चाकदहके निकट काठालपुलि-ग्राममें स्थानान्तरित हो गया था (गौड़ीय पत्रिका, षष्ठ वर्ष (खण्ड), 13 संख्यामें 'प्राप्तपत्र' द्रष्टव्य है)। ये द्वाद्वश-गोपालमें अन्यतम 'महाबाहु' सखा हैं। (गौरगणोद्देशदीपिका 129 श्लोकमें)—

"महेशपण्डितः श्रीमन्महाबाहुर्व्रजे सखा॥ 129(ख)॥"

"व्रजके महाबाहु सखा अब महेश पण्डित हैं।" चैःभाः अन्त्यखण्ड छठा अः—

"महेश पण्डित अति परम महान्त॥"

"महेश पण्डित परम महात्मा हैं।"

'पालपाड़ा'—नदिया जिलामें चाकदह स्टेशन से एक मील दक्षिणमें जङ्गलमें स्थित है। गङ्गा यहाँसे दूर है। महेश पण्डित पहले जिराट्के पूर्वीतट पर मसिपुर या यशीपुर(?) नामक स्थानमें रहते थे। परन्तु मसीपुर गङ्गाके गर्भमें समाहित हो जानेके कारण उस स्थानसे सुखसागरके निकटवर्ती बेलेडाङ्गामें महेश पण्डितके द्वारा प्रतिष्ठित श्रीविग्रह कुछ समयके लिये थे, बादमें गङ्गाके कटावके कारण वेलेडाङ्गा भी ध्वंस हो जानेसे पालपाड़ाके जमीन्दार नवकुमार चट्टोपाध्याय उन श्रीविग्रहको उस समयके सेवायेत बाबाजी रामकृष्णदाससे पूछकर पालपाड़ा ले आये और वहाँ एक मन्दिरका निर्माण करवाया। नवकुमार बाबूके पुत्र रजनीबाबूने 1883 ईसवीमें मन्दिरकी जमीन हरेकृष्णदास बाबाजीके हाथों रजिस्ट्र दी। तबसे उसका नाम 'पालपाड़ा-पाट' चला आ रहा है। पालपाड़ा पाँचनगर-परगणाके अन्तर्गत है। बेलेडाङ्गा, बेरिग्राम, सुखसागर, चान्दुड़े, मनसापोता, पालपाड़ा आदि चौदह मौजा पाँचनगरमें रहनेके कारण कोई-कोई उसे 'नागरदेश' कहते हैं। किसी-किसीके मतानुसार, महेश पण्डित यशड़ा-श्रीपाटके जगदीश पण्डितके छोटे भाई हैं। उनके अनुसार जगदीश, हिरण्य और महेश पण्डित—तीन भाई थे। जगदीश-बड़े, हिरण्य-मँझले और महेश-छोटे हैं। ये महेश पण्डित ही जगदीशके भाई हैं अथवा नहीं, इस विषयमें प्रामाणिक ग्रन्थोंमें उल्लेख न रहनेके कारण इसकी सत्यता सन्देहकी सीमामें है।

श्रीमहेश पण्डित श्रीनित्यानन्द प्रभुके साथ पाणिहाटीके महोत्सवमें उपस्थित थे और उत्सवके उपरान्त श्रीनित्यानन्द प्रभुके साथ सप्तग्राम गये थे। भक्तिरत्नाकरकी आठवीं तरङ्गमें लिखा है कि श्रीनरोत्तम ठाकुर जब खड़दहमें आये थे, तब महेश पण्डित भी वहाँ उपस्थित थे।

श्रीपाटका मन्दिर सामान्य घर जैसा है। जीर्ण मन्दिरमें श्रीगौरनित्यानन्द-श्रीमूर्ति, श्रीगोपीनाथ, श्रीमदनमोहन, श्रीराधागोविन्द और शालग्राम विराजित हैं। मन्दिरके सामने महेश पण्डितकी फूलसमाज-बेदी है। अब भिक्षाके द्वारा ही सेवाका निर्वाह होता है। श्रीमहेश पण्डितकी कोई वंशावली वर्तमान नहीं है॥ 32॥

(18) पुरुषोत्तम पण्डित (गोपाल-8) :—

नवद्वीपे पुरुषोत्तम पण्डित महाशय।
नित्यानन्द-नामे याँर महोन्माद हय॥ 33॥

अनुवाद—नवद्वीपके वासी पुरुषोत्तम पण्डित महाशयको श्रीनित्यानन्द प्रभुका नाम सुनते ही महा-उन्माद हो जाता था॥ 33॥

अनुभाष्य—'पुरुषोत्तम पण्डित'—(चैःभाः अन्त्यखण्ड पाँचवाँ अध्याय)—

"पण्डित पुरुषोत्तम नवद्वीपे जन्म।
नित्यानन्दस्वरूपेर महाभृत्य मर्म॥ 737॥"

"नवद्वीपमें जन्में पुरुषोत्तम पण्डित श्रीनित्यानन्दस्वरूपके

महान् सेवकोंमें अन्यतम थे।" (गौरगणोद्देशदीपिका श्लोक 130)—

"स्तोककृष्णं सखा प्राग् यो दासः श्रीपुरुषोत्तमः॥130॥"

"स्तोककृष्ण नामक श्रीकृष्णके सखा अब श्रीपुरुषोत्तम दास हैं।" किसी-किसीका कहना है कि इनका श्रीपाट सुखसागरमें है॥33॥

(19) बलरामदास :—

बलराम दास—कृष्णप्रेमरसास्वादी।
नित्यानन्द-नामे हय परम उन्मादी॥34॥

अनुवाद—बलराम दास श्रीकृष्णप्रेमका रसास्वादन करनेवाले थे। श्रीनित्यानन्द प्रभुके नामसे ही वे परम उन्मादी हो जाते थे॥34॥

अनुभाष्य—'बलरामदास'—(चैःभाः पाँचवाँ अध्याय)—

"प्रेमरसे महामत्त बलरामदास।
याँहार वातासे सब पाप याय नाश॥734॥"

"बलरामदास प्रेमरसमें महामत्त रहते थे। उनके अङ्गके स्पर्श करके आ रही वायुके स्पर्शसे सभी पापोंका नाश हो जाता है॥"34॥

(20) यदुनाथ कविचन्द्र :—

महाभागवत यदुनाथ कविचन्द्र।
याँहार हृदये नृत्य करे नित्यानन्द॥35॥

अनुवाद—यदुनाथ कविचन्द्र महाभागवत थे, जिनके हृदयमें सदा श्रीनित्यानन्द प्रभु नृत्य करते रहते थे॥35॥

अनुभाष्य—'यदुनाथ कविचन्द्र'—(चैःभाः अन्त्यखण्ड पाँचवाँ अध्याय)—

"यदुनाथ कविचन्द्र—प्रेमरसमय।
निरवधि नित्यानन्द याँहार हृदय॥735॥"

"यदुनाथ कविचन्द्र प्रेमरसमय हैं। उनके हृदयमें श्रीनित्यानन्द प्रभु सदा वास करते हैं।" (चैःभाः मध्यखण्ड प्रथम अध्याय)—

"रत्नगर्भ आचार्य विख्यात याँर नाम।
नित्यानन्द-प्रभुर बापेर सङ्गी, जन्म—एकग्राम॥296॥
तिन पुत्र—ताँर कृष्णपद-मकरन्द।
कृष्णानन्द, जीव, यदुनाथ कविचन्द्र॥297॥"

"एक महाभाग्यवान् ब्राह्मण थे, जिनका नाम रत्न-आचार्य था। वे श्रीनित्यानन्द प्रभुके पिताजीके सङ्गी थे और उन दोनोंका जन्म एकचक्र ग्राममें ही हुआ था। रत्न-आचार्यके तीन पुत्र थे,—कृष्णानन्द, जीव और यदुनाथ कविचन्द्र। तीनों ही सदा श्रीकृष्णके चरणकमलोंके मकरन्दका पान करते रहते थे॥"35॥

(21) द्विज कृष्णदास :—

राढ़े याँर जन्म कृष्णदास द्विजवर।
श्रीनित्यानन्देर तेँहो परम किङ्कर॥36॥

अनुवाद—कृष्णदासका जन्म राढ़देशमें हुआ था। वे श्रेष्ठ ब्राह्मण और श्रीनित्यानन्द प्रभुके परम सेवक थे॥36॥

अनुभाष्य—'कृष्णदास'—चैःभाः अन्त्यखण्ड पाँचवाँ अध्याय—

"राढ़े जन्म महाशय विप्र कृष्णदास।
नित्यानन्द-परिषदे याँहार विलास॥739॥"

"ब्राह्मण कृष्णदासका जन्म राढ़देशमें हुआ था और श्रीनित्यानन्द प्रभुके परिकरोंमें वे अन्यतम थे॥"36॥

(22) कालाकृष्णदास (गोपाल-9)

काला-कृष्णदास बड़ वैष्णवप्रधान।
नित्यानन्द-चन्द्र बिना नाहि जाने आन॥37॥

अनुवाद—कालाकृष्णदास श्रेष्ठ वैष्णवोंमें प्रधान थे। वे श्रीनित्यानन्द प्रभुके अतिरिक्त किसी औरको नहीं जानते थे॥37॥

अनुभाष्य—'कालाकृष्णदास'—चैःभाः अन्त्यखण्ड पाँचवाँ अध्याय—

"प्रसिद्ध कालिया कृष्णदास त्रिभुवने।
गौरचन्द्र लभ्य हय याँहार स्मरणे॥740॥"

"कालाकृष्णदासकी ख्याति तीनों लोकोंमें है। उनके स्मरणमात्रसे ही श्रीगौरचन्द्रकी प्राप्ति हो जाती है।"

गौरगणोद्देशदीपिका 132 श्लोक—

"कालः श्रीकृष्णदासः स यो लवङ्गः सखा व्रजे॥132(ख)॥"

"व्रजके लवङ्ग नामक सखा कालाकृष्णदास है।" ये द्वादश गोपालोंमें अन्यतम 'लवङ्ग' सखा हैं। इनका श्रीपाट वर्द्धमान जिलाके 'आकइहाट' ग्राममें है। आकइहाट-गाँव बहुत ही छोटा है, इसलिये वहाँ बहुत कम लोग रहते हैं। श्रीपाट आजकल श्रीहीन है। कालाकृष्णदास ठाकुरके समाधि-मन्दिरकी छतकी लकड़ियाँ टूट गयी हैं और उन्होंने समाधिको ढक दिया है। रास्तेमें आमके बगीचेके भीतर होकर जानेसे सामने एक टूटी हुई कोठरी दिखलायी देती है। कोठरीमें श्रीविग्रहशून्य बेदी और कोठरीके पूर्व-दक्षिण कोणकी ओर फूसकी छतवाला घर है, इसमें सेवायतगणोंका समाज है। दक्षिण दिशाकी ओर एक कुण्ड है, जिसे 'नूपुरकुण्ड' कहते हैं। सुना जाता है कि इस कुण्डमें श्रीखण्डनिवासी मुकुन्दके पुत्र रघुनन्दन ठाकुरका और किसी-किसीके मतानुसार श्रीनित्यानन्द प्रभुका नूपुर गिरा था। सुननेमें आता है कि वह नूपुर और आकाइहाट श्रीपाटके श्रीराधावल्लभ एवं श्रीगोपालजी, आकाइहाटसे तीन कोसकी दूरीपर कडुइ-गाँवमें महान्तके घर आज भी विराजमान है। 1200 (बङ्गाब्द) वर्षकी हाथोंसे लिखी एक श्रीचैतन्यभागवत और 1191 वर्षकी हाथोंसे लिखी एक श्रीचरितामृत भी वहाँ है। चैत्रमासकी कृष्णद्वादशी—वारुणीके दिन यहाँ श्रीकालाकृष्णदास ठाकुरका तिरोभाव-उत्सव सम्पन्न होता है।

पावना जिलाके सोनातला गाँवके निवासी 'गोस्वामी' महोदयके अनुसार कालाकृष्णदास वरेन्द्र श्रेणीके ब्राह्मणकुलमें जन्में थे और वे भरद्वाज-गोत्र एवं भादड़-गाँवके निवासी हैं। आकाइ-हाटसे हरिनाम प्रचार करनेके लिये कालाकृष्णदास ठाकुर पावनामें आये। जिस स्थानपर उन्होंने आश्रम बनाया, उस स्थानपर अभी भी गृहादिके टूटे चिह्न विद्यमान हैं। बादमें उनके परिवारवाले भी इस स्थानमें आये। आकाइहाटमें वारेन्द्र ब्राह्मण न रहनेके कारण उन्होंने इस देशमें ही विवाह किया और कुछ दिनोंके पश्चात् वे पुनः आकाइहाट और फिर श्रीवृन्दावन चले गये।

सोनातला-गाँवमें वास करते समय उनका 'श्रीमोहनदास' नामक एक पुत्र हुआ; जिसे सोनातला या भादुटी-मथुरापुर ग्राममें मामाके घरमें छोड़कर अपनी सारी सम्पति देकर वे धर्मपत्नी-सहित श्रीवृन्दावन चले गये। श्रीवृन्दावनमें भी उनका 'गौराङ्गदास' नामक एक और पुत्र हुआ। श्रीवृन्दावनमें जन्म होनेके कारण 'गौराङ्गदास' का दूसरा नाम वृन्दावनदास भी था। कुछ समय पश्चात् उन्होंने अपने छोटे पुत्र वृन्दावनदासको बड़े पुत्र मोहनदासके पास भेज दिया और सम्पतिका (एक रुपये अर्थात् सोलह आनामें) छह आना अंश स्वीकार करनेकी आज्ञा प्रदान की। गौराङ्गदासने श्रीवृन्दावनके श्रीगोविन्दजीके अनुरूप श्रीकालाचाँद विग्रहको प्रकाशित किया और अपने बड़े भाईके साथ श्रीविग्रहकी सेवा करने लगे।

कालाकृष्णदास ठाकुरके वशंधरगण पावना-जिलाके सोनातला आदि स्थानोंपर आज भी वर्तमान हैं। सोनातला-ग्राममें स्थित आश्रम-भवनकी नींव, मन्दिरकी ईंटें और कुण्डका घाट आज भी दिखायी देता है। यहाँके श्रीविग्रह—श्रीकालाचाँदजी बारी-बारीसे काला-कृष्णदासके वशंधरोंके द्वारा सेवित होते है। यहाँ अग्रहायण-मासके कृष्णद्वादशीके दिन कालाकृष्णदास ठाकुरका तिरोभाव-उत्सव सम्पन्न होता है॥37॥

(23) सदाशिव कविराज,
(24) पुरुषोत्तम (गोपाल-10) :—

श्रीसदाशिव कविराज—बड़ महाशय।
श्रीपुरुषोत्तमदास—ताँहार तनय॥38॥

'नागर' पुरुषोत्तम :—

आजन्म निमग्न नित्यानन्देर चरणे।
निरन्तर बाल्यलीला करे कृष्ण-सने॥39॥

अनुवाद—श्रीसदाशिव कविराज महाशयके पुत्र श्रीपुरुषोत्तमदास हैं। जन्मसे ही श्रीपुरुषोत्तमदासका मन

श्रीनित्यानन्द प्रभुके चरणोंमें निमग्न रहता था और वे निरन्तर श्रीकृष्णके साथ बाल्यलीला करते थे॥ 38-39॥

अनुभाष्य—'सदाशिव कविराज और नागर पुरुषोत्तम'—चैःभाः अन्त्यखण्ड पाँचवाँ अध्याय—

"सदाशिव कविराज महाभाग्यवान्।
याँर पुत्र श्रीपुरुषोत्तम दास नाम॥ 741॥
बाह्य नाहि पुरुषोत्तम दासेर शरीरे।
नित्यानन्दचन्द्र याँर हृदये विहरे॥ 742॥"

"महाभाग्यवान् सदाशिव कविराजके पुत्र श्रीपुरुषोत्तम दास थे। श्रीपुरुषोत्तम दासको अपने बाह्य शरीरका ज्ञान नहीं रहता था, क्योंकि उनके हृदयमें सदा श्रीनित्यानन्द प्रभु विहार करते थे।" गौरगणोद्देशदीपिका 156 श्लोकमें—

"पुरा चन्द्रावली यासीद्व्रजे कृष्णप्रिया परा।
अधुना गौड़देशे सा कविराजः सदाशिवः॥ 156॥"

"व्रजमें जो पहले श्रीकृष्णकी परमप्रिया चन्द्रावली थीं, वे अब गौड़देशमें सदाशिव कविराज हैं।" गौरगणोद्देशदीपिका 131 श्लोकमें—

"सदाशिवसुतो नाम्ना नागरः पुरुषोत्तमः।
वैद्यवंशोद्भवो नाम्ना दामा योबल्लवो व्रजे॥ 131॥"

"व्रजमें 'दाम' नामक गोप सखा अब वैद्यवंशमें उत्पन्न सदाशिवके पुत्र नागर-पुरुषोत्तम हैं।"

सदाशिव कविराजके पिता कंसारि सेन श्रीकृष्णलीलामें व्रजकी 'रत्नावली' सखी हैं। कोई-कोई कहते हैं कि कंसारि सेनका निवास गुप्तिपाड़ामें हैं, परन्तु अब इसका कोई चिह्न वहाँ नहीं दिखायी देता। जो भी हो, इन सबकी भाँति चार पुरुष-परम्परा (श्रीकंसारिसेन, उनके पुत्र श्रीसदाशिव कविराज, उनके पुत्र श्रीपुरुषोत्तम दास और उनके पुत्र श्रीकानु ठाकुर) से सिद्ध गौरभक्त अन्यत्र विरले ही हैं।

श्रीपुरुषोतम ठाकुरका श्रीपाट पहले चाकदाह और सुखसागरमें था। पहले बेलेडाङ्गा गाँवके ध्वंस हो जानेसे श्रीपुरुषोतम ठाकुरके सभी श्रीविग्रह सुखसागरमें लाये गये। परन्तु बादमें सुखसागरके भी गङ्गाके गर्भमें समा जानेसे, उस स्थानपर श्रीजाह्नवा-माताकी जो गद्दी थी, उस गद्दीके श्रीविग्रहोंके साथ पुरुषोतम ठाकुरके भी श्रीविग्रह साहेबडाङ्गा बेड़ीग्राममें आये। बेड़ीग्राम ध्वंस होनेपर जाह्नवा-माताके गद्दीके श्रीविग्रहोंके साथ पुरुषोत्तम ठाकुरके श्रीविग्रह प्राय पचास वर्ष तक नदीया जिलाके अन्तर्गत चान्दुड़े-गाँवमें विराजमान थे। प्राचीन सुखसागर नदीगर्भमें समा जानेके कारण नवीन सुखसागर इस चादुंड़े-गाँवसे 3-4 मीलकी दूरीपर कालीगञ्जके दक्षिणमें अवस्थित है।

श्रीनित्यानन्द प्रभुके दामाद (श्रीमती गङ्गादेवीके पतिदेव) जिराट्-निवासी श्रीमाधवाचार्य (माधव चट्टोपाध्याय) किसी-किसीके मतानुसार श्रीनित्यानन्द प्रभुके और किसी-किसीके मतानुसार श्रीजाह्नवादेवीके तथा किसी-किसीके मतानुसार इन श्रीपुरुषोतम ठाकुरके शिष्य थे। 'वैष्णव-वन्दना' के लेखक श्रीदेवकीनन्दन दास इन्हींके ही शिष्य थे, इस बातका वैष्णव वन्दनामें स्पष्ट उल्लेख है।

वर्तमान मन्दिर मिट्टीकी दीवारोंपर फूसकी छतसे बना घर है। मन्दिरगृहमें श्रीजगन्नाथ, श्रीबलराम, सुभद्रा, निताइ-गौर—दो-दो विग्रह, गोपीनाथ, जाह्नवा-माता, बालगोपाल, राधागोविन्द—पाँचयुगल; रेवती और श्रीबलराम, एवं शालग्राम विराजित हैं। किसी-किसीका ऐसा कहना है कि इनमेंसे कुछ श्रीमूर्तियाँ पुरुषोत्तम ठाकुरके द्वारा प्रतिष्ठित हैं एवं शेष श्रीमूर्तियाँ जाह्नवा-देवीकी गद्दीकी हैं। यह श्रीपाट 'वसु-जाह्नवाका श्रीपाट' के नामसे भी विख्यात है। निम्नलिखित सेवायेत महान्तगणोंके नाम चादुंड़े-श्रीपाटमें मिलते है,—(1) गोपालदास महान्त, (2) रामकृष्ण, (3) बिहारीदास, (4) रामदास, (5) गोपालदास और (6) सीतानाथ दास॥ 38-39॥

(25) कानु ठाकुर :—

ताँर पुत्र—महाशय श्रीकानु ठाकुर।
याँर देहे रहे कृष्ण-प्रेमामृतपूर॥ 40॥

अनुवाद—श्रीपुरुषोत्तमदासके पुत्र श्रीकानु ठाकुर हैं,

जिनके देहमें श्रीकृष्णप्रेमका अमृत सदा परिपूर्ण रहता है॥ 40॥

अनुभाष्य—'कानु ठाकुर'—कोई-कोई इन्हें द्वादशगोपालोंमें अन्यतम कहते हैं। इनका निवास बोधखाना है।

ठाकुर कानाइके पूर्वजोंमें चतुर्थ पुरुष (चार पीढ़ी पूर्व—पितामहके पितामह) श्रीकंसारि सेनका नाम 'सम्बरारि' है। देवकीनन्दनने वैष्णव-वन्दनामें ठाकुर कानाइके पूर्वज चार पुरुषोंका नाम उल्लेख किया है,—

"श्रीकंसारि सेन वन्दौँ सेन श्रीवल्लभ।
सदाशिव कविराज वन्दौँ एक मने।
निरन्तर प्रेमोन्माद, बाह्य नाहि जाने।
इष्टदेव वन्दौँ श्रीपुरुषोत्तम नाम।
के कहिते पारे ताँर गुण अनुपाम॥"

"सदाशिवके पुत्र पुरुषोत्तम ठाकुर हैं और पुरुषोत्तम ठाकुरके पुत्र ही कानुठाकुर हैं। कानुठाकुरके वंशज पुरुषोत्तम ठाकुरको 'नागर पुरुषोत्तम' से पृथक् मानते हैं। उनका कहना है कि 'दास पुरुषोत्तम' के रूपमें जिनका नाम गौरगणोद्देशमें उल्लिखित है, एवं व्रजलीलामें जो स्तोक-कृष्ण हैं, वही कानु ठाकुरके पिता हैं, परन्तु गौरगणोद्देशमें वैद्यवंशमें आविर्भूत सदाशिवके पुत्र पुरुषोत्तम ही 'नागर पुरुषोत्तम' के रूपमें उल्लिखित हैं। वे 'नागर पुरुषोत्तम' व्रजलीलामें 'दाम' नामक सखा हैं। कानुठाकुरके वंशजोंमें एक किंवदन्ती प्रचलित है कि पुरुषोत्तम ठाकुर गङ्गाके पूर्वीतटपर 'सुखसागर' नामक गाँवमें रहते थे। पुरुषोत्तमकी पत्नीका नाम 'जाह्नवा' था। ठाकुर कानाइके जन्मके बाद ही जाह्नवा अप्रकट हो गयीं। श्रीनित्यानन्द प्रभुने जब पुरुषोत्तम ठाकुरकी धर्मपत्नीके वियोगकी बात सुनी, तब वे उनके घर आये और बारह दिनके शिशु (कानु ठाकुर) को अपने भवन खड़दह ले गये।

कानुठाकुरके वंशजोंके मतानुसार 1457 शकाब्दमें (बङ्गाब्द 942 वर्ष) आषाढ़-मासकी शुक्ला-द्वितीय बृहस्पतिवारको रथयात्राके दिन कानाइ ठाकुर आविर्भूत हुये थे। बचपनसे ही ठाकुरमें कृष्णभक्ति-परायणताको देखकर श्रीनित्यानन्द प्रभुने उनका नाम 'शिशुकृष्णदास' रखा था।

शिशुकृष्णदास जब पाँच वर्षके थे, तब ईश्वरी जाह्नवा-माताके साथ श्रीवृन्दावन-धाम गये थे। श्रीजीव गोस्वामी आदि प्रमुख व्रजवासियोंने शिशुकृष्णदासके भावादिको देखकर उन्हें 'ठाकुर कानाइ' नाम प्रदान किया। जनश्रुति है कि ठाकुर कानाइ जब वृन्दावनमें कीर्तनके आनन्दमें विह्वल होकर नृत्य कर रहे थे, तब उनके दक्षिण पैरका एक नूपुर अन्तर्हित हो गया, तब ठाकुर कानाईने कहा कि 'जिस स्थानपर यह नूपुर गिरा है, मैं उसी स्थानपर निवास करूँगा।' सुननेमें आता है कि यशोहर जिलाके 'बोधखाना' नामक गाँवमें यह नूपुर गिरा था, तबसे ठाकुर कानाइ 'बोधखाना' में आकर रहने लगे।

इनकी वंश-परम्परामें एक और जनश्रुति प्रचलित है कि श्रीमन्महाप्रभुके आविर्भावके कुछ सौ वर्ष पूर्वसे सदाशिवके किसी पूर्वजके द्वारा प्रतिष्ठित 'प्राणवल्लभ' विग्रहकी सेवा चली आ रही थी। ये 'प्राणवल्लभ' अभी भी बोधखानामें सेवित हो रहे हैं।

'साम्प्रदायिक दङ्गों' के समय ठाकुर कानाइके ज्येष्ठ पुत्रकी सन्तानोंको छोड़कर वंशीवदन आदि अन्यान्य पुत्र बोधखाना छोड़कर भाग गये एवं नदीया जिलाके अन्तर्गत 'भाजनघाट' नामक गाँवमें जाकर रहने लगे। ठाकुर कानाइके छोटे पुत्रोंमेंसे 'हरिकृष्ण गोस्वामी' 'साम्प्रदायिक दङ्गों' के मिट जानेके पश्चात् बोधखानामें आये। इन्होंने 'प्राणवल्लभ' नामसे और एक नये विग्रहकी प्रतिष्ठा की। अभी भी बोधखाना गाँवमें ठाकुर कानाइके ज्येष्ठ पुत्रोंके वंशजोंके द्वारा प्राचीन 'श्रीप्राणवल्लभ' की और कनिष्ठ पुत्रके वंशजोंके द्वारा नये प्रतिष्ठित 'प्राणवल्लभ' की सेवा हो रही है। भाजनघाटमें 'श्रीराधावल्लभ' विग्रह सेवित हो रहे हैं। प्रेमविलास-ग्रन्थमें लिखा है कि कानु ठाकुर खेतरिके उत्सवके समय श्रीजाह्नवा-देवी और श्रीवीरभद्रप्रभुके साथ वहाँ उपस्थित थे।

पुरुषोत्तम ठाकुर और कानु ठाकुरके अनेक ब्राह्मण शिष्य थे। पुरुषोत्तम ठाकुरके ब्राह्मण शिष्योंमेंसे प्रधान चारके नाम इस प्रकारसे वर्णित हैं—

"तस्य प्रियतमाः शिष्याश्चत्वारो ब्राह्मणोत्तमाः।
श्रीमुखो माधवाचार्यो यादवाचार्यो-पण्डित॥
देवकीनन्दन-दासः प्रख्यातो गौड़मण्डले।
येनैव रचिता पुस्ती श्रीमद्वैष्णव-वन्दना॥"

"श्रीमुख, श्रीमाधवाचार्य, श्रीयादवाचार्य और श्रीदेवकीनन्दन दास उनके प्रिय चार उत्तम ब्राह्मण शिष्य थे। गौड़मण्डलमें विख्यात श्रीदेवकीनन्दन दासने श्रीमद्वैष्णव-वन्दना ग्रन्थकी रचना की थी।"

ये माधवाचार्य श्रीनित्यानन्द प्रभुकी कन्या गङ्गादेवीके पति हैं। सुखसागर गाँव ध्वंस हो जानेके पश्चात् पुरुषोत्तमके द्वारा प्रतिष्ठित श्रीविग्रह चादुड़ियामें लाये गये। आजकल जिराट्के गङ्गा-वंशजोंकी देखरेखमें उनके अन्यान्य विग्रहके साथ सेवित हो रहे हैं। पुरुषोत्तम ठाकुरका श्रीपाट "वसु-जाह्नवाका' श्रीपाट नामसे भी कहा जाता है।

कानु ठाकुरके शिष्योंने मेदिनीपुर-जिलाके शिलावती नदीके पास गड़वेता नामक गाँवमें वास किया। सामवेदीय कौथुमी-शाखाके राढ़ीश्रेणीय "श्रीराम' नामक एक ब्राह्मण कानाइ ठाकुरके प्रसिद्ध शिष्य थे॥40॥

(26) उद्धारण ठाकुर (गोपाल-11) :—

महाभागवत-श्रेष्ठ दत्त उद्धारण।
सर्वभावे सेवे नित्यानन्देर चरण॥41॥

अनुवाद—उद्धारण दत्त श्रेष्ठ महाभागवत थे। वे श्रीनित्यानन्द प्रभुके चरणोंकी सभी प्रकारसे सेवा करते थे॥41॥

अनुभाष्य—'उद्धारणदत्त'—(श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 129वाँ श्लोक)—

"सुबाहुर्यो व्रजे गोपो दत्त उद्धारणाख्यकः॥129(क)॥"

"ब्रजके 'सुबाहु' नामक गोप अब उद्धारण दत्त कहलाते हैं।" इनका निवास स्थान हुगली जिलाके अन्तर्गत सप्तग्राममें हैं। पहले 'सप्तग्राम' कहनेसे वासुदेवपुर, वाँशवेड़िया, कृष्णपुर, नित्यानन्दपुर, शिवपुर, शङ्खनगर और सप्तग्रामको समझा जाता था। चैःभाः अन्त्यखण्ड पाँचवाँ अध्याय—

"उद्धारण दत्त महावैष्णव उदार।
नित्यानन्द-सेवाय याँहार अधिकार॥743॥"

"उद्धारण दत्त महावैष्णव और परम उदार थे। श्रीनित्यानन्द प्रभुकी सेवामें उनका अधिकार था।" चैःभाः अन्त्यखण्ड पाँचवाँ अध्याय—

"कतदिन थाकि' नित्यानन्द खड़दहे।
सप्तग्राम आइलेन सर्वगण सहे॥443॥
उद्धारण दत्त भाग्यवन्तरे मन्दिरे।
रहिलेन प्रभुवर त्रिवेणीर तीरे॥449॥
कायमनोवाक्ये नित्यानन्देर चरण।
भजिलेन अकैतवे दत्त उद्धारण॥450॥
यतेक वणिककुल उद्धारण हैते।
पवित्र हइल, द्विधा नाहिक इहाते॥453॥"

"खड़दहमें कुछ दिन रहकर श्रीनित्यानन्द प्रभु सभी परिकरोंके साथ सप्तग्राममें पधारे। त्रिवेणीके तटपर स्थित सप्तग्राममें उद्धारण दत्तके घरमें प्रभु ठहरे। उद्धारण दत्तने निष्कपट भावसे काय-मन-वाक्यके द्वारा श्रीनित्यानन्दके चरणोंकी सेवा की। वहाँ जितने भी वणिक कुल थे, सभी उद्धारण दत्तके कारण पवित्र हो गये, इसमें कोई भी सन्देह नहीं है।" उद्धारण दत्त शौक्रसुवर्णवणिक (सोनेके व्यापारी) कुलमें आविर्भूत हुये थे।

सप्तग्राममें श्रीउद्धारण ठाकुरके द्वारा प्रतिष्ठित और उनके हाथोंसे सेवित महाप्रभुकी षड्भुज मूर्ति है। उनके दायीं ओर श्रीनित्यानन्द प्रभु और बायीं ओर श्रीगदाधर विराजमान हैं। श्रीराधागोविन्द मूर्ति, श्रीशालग्राम और सिंहासन-बेदीके नीचे श्रीउद्धारण ठाकुर महाशयका चित्रपट अर्चित होता है। वर्तमान श्रीमन्दिरके सामने एक बड़ा नाट्य-मन्दिर है। नाट्य-मन्दिरके प्रत्येक

स्तम्भपर स्मृतिरक्षक पत्थरके पटलोंपर मन्दिरके निर्माता और श्रीपाटके संस्कार करवानेवालोंके नाम खुदे हुए हैं। नाट्यमन्दिरके सामने ही एक सुशीतल छायापूर्ण माधवी-मण्डप है। माधवी-मण्डपके दोनों ओर दो स्तम्भ हैं, एकमें उद्धारण ठाकुर महाशयका चित्रपट और दूसरेमें पत्थरके पटलपर चतुर्युगके चार तारक-ब्रह्मनाम खुदे हुए हैं।

1283 (बङ्गाब्द) वर्षमें निताइदास बाबाजी नामक एक भिक्षुने श्रीपाटके लिये बारह बीघा भूमि संग्रह की थी। तत्पश्चात् किसी-किसीकी विशेष चेष्टासे श्रीपाटकी सेवा कुछ दिनोंतक चलनेपर भी धीरे-धीरे सेवामें कमी होती गयी। तदुपरान्त 1306 (बङ्गाब्द) वर्षमें हुगलीके भूतपूर्व सब-जज बलराम मल्लिक और कोलकाता-निवासी अनेक धनी सुवर्ण-व्यापारियोंकी एकजुट चेष्टासे पुनः श्रीपाटकी सेवामें कुछ परिपाटी दिखाई देने लगी।

1875 ईसवीके लगभग पहले एक टूटी-फूटी कुटियामें हुगली-वालि-निवासी परलोकगत जगमोहन दत्तके द्वारा प्रतिष्ठित श्रील उद्धारण ठाकुरकी एक दारुमयी (लकड़ीकी) श्रीमूर्ति विराजित थी। वह श्रीमूर्ति अब सप्तग्राम-श्रीपाटमें नहीं है। उनका चित्रपट ही अब पूजित हो रहा है। लगभग सौ वर्ष पूर्व अनुसन्धानसे सुना गया था कि उद्धारण ठाकुरकी वह श्रीमूर्त्ति तब हुगली-वालि-निवासी श्रीमदन दत्त महोदयके घरमें और ठाकुरके द्वारा सेवित श्रीशालग्राम उसी गाँवमें श्रीनाथ दत्तके घरमें विराजमान थे।

ठाकुर उद्धारण काटोयासे डेढ़ मील उत्तरी दिशाकी ओर 'नैहाटी'-गाँवमें राजाके दीवान थे। दाँइहाट स्टेशनके निकट अभी भी राजवंशके लोगोंके महलोंके भग्नावशेष दिखायी देते हैं। ठाकुर राजकार्यके उपलक्ष्यमें जिस स्थानपर वास करते थे, उस स्थानका नाम 'उद्धारण-पुर' है। कहा जाता है कि ठाकुरके द्वारा प्रतिष्ठित यहाँके श्रीनिताइगौर-विग्रह वनओयारीबादकी राजधानीसे लाये गये थे। इस स्थानपर स्थित मन्दिरके पश्चिम ओर (और किसी-किसीके मतानुसार, वृन्दावनमें) ठाकुरकी समाधि वर्तमान है। किसीके मतानुसार, ठाकुरके पिताका नाम श्रीकर, माताका नाम भद्रावती और पुत्रका नाम श्रीनिवास है॥41॥

(27) वैष्णवानन्द आचार्य :—

आचार्य वैष्णवानन्द भक्ति-अधिकारी।
पूर्वे नाम छिल याँर 'रघुनाथ पुरी'॥42॥

अनुवाद—आचार्य वैष्णवानन्द परम भक्त थे और उनका पहले नाम रघुनाथपुरी था॥42॥

अनुभाष्य—'वैष्णवानन्द आचार्य'—चै:भा: अन्त्यखण्ड पाँचवाँ अध्याय—

"आचार्य वैष्णवानन्द परम उदार।
पूर्वे 'रघुनाथपुरी'-नाम ख्याति याँर॥746॥"

"आचार्य वैष्णवानन्द परम उदार थे। पहले ये रघुनाथपुरीके नामसे विख्यात थे।" (श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 96-97वाँ श्लोक)—

"वृन्दावने याः प्रागासन्नणिमाद्यष्टसिद्धयः।
ता एवाष्टौ भक्तरूपा भूता गौड़े च ते यथा॥96॥
अनन्तश्च सुखानन्दो गोविन्दो रघुनाथकः।
कृष्णानन्दः केशवश्च श्रीदामोदर-राघवौ।
पुर्युपाधिक्रमाज्ज्ञेया अणिमाद्यष्टसिद्धयः॥97॥"

"पूर्वकालमें श्रीवृन्दावनमें जो अणिमा आदि अष्टसिद्धियाँ थीं, उन्होंने गौड़देशमें आठ भक्तोंके रूपमें जन्म ग्रहण किया है। क्रमसे उन आठोंके नाम इस प्रकार हैं, यथा—अनन्त, सुखानन्द, गोविन्द, रघुनाथ, कृष्णानन्द, केशव, दामोदर और राघव। ये आठों 'पुरी' उपाधिसे युक्त थे॥"42॥

(28) विष्णुदास, नन्दन, गङ्गादास—तीन भाई :—

विष्णुदास, नन्दन, गङ्गादास,—तिन भाइ।
पूर्वे याँर घरे छिला ठाकुर निताइ॥43॥

अनुवाद—विष्णुदास, नन्दन और गङ्गादास—ये तीन भाई थे। श्रीनित्यानन्द प्रभु नवद्वीप आनेपर पहले इनके घरमें आकर रहे थे॥43॥

अनुभाष्य—'विष्णुदास, नन्दन और गङ्गादास'—ये तीनों भाई नवद्वीपवासी भट्टाचार्य हैं। विष्णुदास और गङ्गादास कुछ दिनोंके लिये नीलाचलमें महाप्रभुके पास रहे थे (चैःचः आदिलीला, 10/151 संख्या)। नन्दनाचार्यके घरमें महाप्रभु और श्रीअद्वैताचार्य छिपे थे। श्रीनित्यानन्द प्रभुने भी नवद्वीपमें आकर कुछ दिन इनके घरमें वास किया था। चैःभाः अन्त्यखण्ड पाँचवाँ अध्याय—

"चतुर्भुज पण्डित-नन्दन गङ्गादास।
पूर्वे याँर घरे नित्यानन्देर विलास॥ 745॥"

"चतुर्भुज पण्डितके पुत्र गङ्गादासके घर किसी एक समय श्रीनित्यानन्द प्रभुने विहार किया था॥"43॥

(29) परमानन्द उपाध्याय, (30) जीव पण्डित :—

नित्यानन्दभृत्य—परमानन्द उपाध्याय।
श्रीजीव पण्डित नित्यानन्द-गुण गाय॥ 44॥

अनुवाद—परमानन्द उपाध्याय श्रीनित्यानन्द प्रभुके सेवक थे और श्रीजीव पण्डित श्रीनित्यानन्द प्रभुका गुणगान करते थे॥ 44॥

अनुभाष्य—'परमानन्द उपाध्याय'—चैःभाः अन्त्यखण्ड पाँचवाँ अध्याय—

"परमानन्द उपाध्याय—वैष्णव एकान्त॥ 744॥"

"परमानन्द उपाध्याय ऐकान्तिक वैष्णव थे।"

'श्रीजीव पण्डित'—ये श्रीनित्यानन्द प्रभुके पिता श्रीहाड़ाइ ओझाके बाल्यकालके मित्र रत्नगर्भ आचार्यके मंझले पुत्र हैं। चैःभाः अन्त्यखण्ड पाँचवाँ अध्याय—

"महाभाग्यवन्त जीवपण्डित उदार।
याँर घरे नित्यानन्दचन्द्रेर विहार॥ 751॥"

"जीव पण्डित उदार और महाभाग्यवान् हैं, क्योंकि उनके घरमें श्रीनित्यानन्द प्रभुने विहार किया था।" (श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 169वाँ श्लोक)—

"इन्दिरा जीवपण्डितः॥ 169(ख)॥"

"श्रीजीव पण्डित व्रजकी इन्दिरा हैं॥"44॥

(31) परमानन्द गुप्त :—

परमानन्द गुप्त—कृष्णभक्त महामति।
पूर्वे याँर घरे नित्यानन्देर वसति॥ 45॥

अनुवाद—परमानन्द गुप्त बहुत बुद्धिमान और श्रीकृष्ण भक्त थे। श्रीनित्यानन्द प्रभु इनके घरमें भी रहे थे॥ 45॥

अनुभाष्य—'परमानन्द गुप्त'—चैःभाः अन्त्यखण्ड पाँचवाँ अध्याय—

"प्रसिद्ध परमानन्द गुप्त महाशय।
पूर्वे याँर घरे नित्यानन्देर आलय॥ 747॥"

"प्रसिद्ध परमानन्द गुप्त महाशयके घरमें श्रीनित्यानन्द प्रभुका अवस्थान था।" (श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 194 एवं 199वाँ श्लोक)—

"मालती चन्द्रलतिका 'मञ्जुमेधा' वराङ्गदा॥ 194(क)॥
'परमानन्दगुप्तो' यत्कृता कृष्णस्तवावली॥ 199(ख)॥"

"व्रजकी मञ्जुमेधा वही परमानन्द गुप्त हैं, जिन्होंने श्रीकृष्ण 'स्तवावली' की रचना की है॥"45॥

(32) नारायण, (33) कृष्णदास,
(34) मनोहर, (35) देवानन्द :—

नारायण, कृष्णदास, आर मनोहर।
देवानन्द—चारि भाइ निताइ-किङ्कर॥ 46॥

अनुवाद—नारायण, कृष्णदास, मनोहर और देवानन्द—ये चारों भाई श्रीनित्यानन्द प्रभुके दास थे॥ 46॥

अनुभाष्य—'नारायण, कृष्णदास, मनोहर और देवानन्द'—चैःभाः अन्त्यखण्ड पाँचवाँ अध्याय—

"कृष्णदास, देवानन्द—दुइ शुद्धमति॥ 749(क)॥
नित्यानन्दप्रिय 'मनोहर', नारायण'।
'कृष्णदास', 'देवानन्द'—एइ चारिजन॥ 752॥"

"कृष्णदास और देवानन्द, ये दोनों शुद्धमति थे। मनोहर, नारायण, कृष्णदास और देवानन्द—ये चारों श्रीनित्यानन्द प्रभुके अति प्रिय थे॥"46॥

(36) होड़ कृष्णदास :—

होड़ कृष्णदास—नित्यानन्दप्रभु-प्राण।
श्रीनित्यानन्द-पद बिना नाहि जाने आन॥ 47॥

अनुवाद—होड़ कृष्णदास श्रीनित्यानन्द प्रभुके प्राण थे। वे श्रीनित्यानन्द प्रभुके चरणोंके अतिरिक्त कुछ नहीं जानते थे॥ 47॥

अनुभाष्य—'होड़ कृष्णदास'—चैःभाः अन्त्यखण्ड पाँचवाँ अध्याय—

"बड़गाछि-निवासी सुकृति कृष्णदास।
याँहार मन्दिरे नित्यानन्देर विलास॥ 748॥"

"बड़गाछिमें निवास करनेवाले कृष्णदास बड़े सुकृतिवान् थे, क्योंकि श्रीनित्यानन्द प्रभुने उनके घरमें विलास किया था।" बड़गाछिके माहात्म्यके लिये चैःभाः अन्त्यखण्ड पाँचवाँ अध्याय और (नवनी होड़) पयार संख्या 50 का अनुभाष्य द्रष्टव्य है॥ 47॥

(37) नकड़ि, (38) मुकुन्द, (39) सूर्य,
(40) माधव, (41) श्रीधर (गोपाल-12),
(42) रामानन्द, (43) जगन्नाथ, (44) महीधर :—

नकड़ि, मुकुन्द, सूर्य, माधव, श्रीधर।
रामानन्द वसु, जगन्नाथ, महीधर॥ 48॥

(45) श्रीमन्त, (46) गोकुलदास, (47) हरिहरानन्द,
(48) शिवाइ, (49) नन्दाइ, (50) परमानन्द :—

श्रीमन्त, गोकुलदास, हरिहरानन्द।
शिवाइ, नन्दाइ, अवधूत परमानन्द॥ 49॥

(51) वसन्त, (52) नवनी, (53) गोपाल, (54) सनातन,
(55) विष्णाइ, (56) कृष्णानन्द, (57) सुलोचन :—

वसन्त, नवनी होड़, गोपाल, सनातन।
विष्णाइ हाजरा, कृष्णानन्द, सुलोचन॥ 50॥

अनुवाद—नकड़ि, मुकुन्द, सूर्य, माधव, श्रीधर, रामानन्द वसु, जगन्नाथ, महीधर, श्रीमन्त, गोकुलदास, हरिहरानन्द, शिवाइ, नन्दाइ, अवधूत परमानन्द, वसन्त, नवनी होड़, गोपाल, सनातन, विष्णाइ हाजरा, कृष्णानन्द और सुलोचन—ये सभी श्रीनित्यानन्द प्रभुके दास थे॥ 48-50॥

अनुभाष्य—'नवनी होड़'—बड़गाछि-निवासी हरि होड़के पुत्र राजा कृष्णदास होड़ थे। बड़गाछि (बहिरगाछि) के निकट शालिग्राममें राजा कृष्णदासके प्रयाससे श्रीनित्यानन्द प्रभुका विवाह हुआ (भक्तिरत्नाकर 12 तरङ्ग)। नवनी होड़ राजा कृष्णदासके पुत्र थे। इनकी वंशावली अब 'रुकुणपुर' में है। रुकुणपुर बहिरगाछिसे कुछ दूरीपर है। ये सब जन्मसे शौक्रदक्षिण राढ़ीय कायस्थ थे, परन्तु उनमें ब्राह्मण-संस्कार होनेके कारण सभी वर्णोंको दीक्षा प्रदान करते थे। पहले बड़गाछिमें गङ्गा प्रवाहित होती थी, अब वह 'काल्शिकी नहर' नामसे प्रसिद्ध है।

'कृष्णानन्द'—35 संख्या द्रष्टव्य है॥ 48-50॥

(58) कंसारि, (59) रामसेन, (60) रामचन्द्र,
(61) गोविन्द, (62) श्रीरङ्ग, (63) मुकुन्द :—

कंसारि सेन, रामसेन, रामचन्द्र कविराज।
गोविन्द, श्रीरङ्ग, मुकुन्द, तिन कविराज॥ 51॥

अनुवाद—कंसारि सेन, रामसेन और रामचन्द्र कविराज श्रीनित्यानन्द प्रभुके दास थे। तीन कविराज—गोविन्द, श्रीरङ्ग और मुकुन्द भी श्रीनित्यानन्द प्रभुके किङ्कर थे॥ 51॥

अनुभाष्य—'कंसारि सेन'—गौरगणोद्देशदीपिका 194 और 200 श्लोक—

'रत्नावली' च कमला गुणचूडा सुकेशिनी॥ 194(ख)॥
'कंसारिसेनः' सेनः श्रीजगन्नाथो महाशयः॥ 200(ख)॥

"ये व्रजकी 'रत्नावली' हैं।"

'सदाशिव कविराज'—(चैःचः आदिलीला, 11/38) का अनुभाष्य द्रष्टव्य है।

'रामचन्द्र कविराज'—खण्डवासी चिरञ्जीव और सुनन्दाके पुत्र एवं श्रीनिवासाचार्यके शिष्य तथा ठाकुर नरोत्तमके प्रियबन्धु हैं। नरोत्तम ठाकुरने प्रत्येक जन्ममें इनके सङ्गकी प्रार्थना की है। गोविन्द कविराज इनके छोटे भाई हैं। इनकी कृष्णभक्तिको देखकर श्रीजीवगोस्वामी प्रभुने वृन्दावनमें इन्हें 'कविराज' नाम प्रदान किया था। ये जन्मसे ही संसारसे विरक्त थे। ये श्रीनरोत्तम ठाकुर

और श्रीनिवासाचार्य प्रभुके प्रचार और भजनके प्रधान एवं प्रियतम सङ्गी थे। इन्होंने पहले श्रीखण्डमें और बादमें भागीरथीके तटपर 'कुमारनगर' में आकर वास किया (भक्तिरत्नाकर द्रष्टव्य है)।

'गोविन्द कविराज'—खण्डवासी चिरञ्जीवके कनिष्ठ पुत्र एवं रामचन्द्र कविराजके भाई है। ये पहले शाक्त थे और बादमें श्रीनिवासाचार्य प्रभुके दीक्षित शिष्य हुए। इन्होंने पहले श्रीखण्ड में, बादमें कुमारनगर में, तत्पश्चात् पद्मानदीके दक्षिण तटपर 'तेलिया बुधरि' गाँवमें आकर वास किया। इनकी काव्य-प्रतिभाको देखकर श्रीजीव गोस्वामी प्रभुने इन्हें भी 'कविराज' नाम प्रदान किया था। ये "सङ्गीत-माधव' नाटक और 'गीतामृत' आदि ग्रन्थोंके रचयिता हैं (भक्तिरत्नाकर नवम तरङ्ग द्रष्टव्य है)॥ 51 ॥

(64) पीताम्बर, (65) माधवाचार्य, (66) दामोदर, (67) शङ्कर, (68) मुकुन्द, (69) ज्ञानदास, (70) मनोहर :—

पीताम्बर, माधवाचार्य, दास दामोदर।
शङ्कर, मुकुन्द, ज्ञानदास, मनोहर॥ 52 ॥

(71) गोपाल, (72) रामभद्र, (73) गौराङ्गदास, (74) नृसिंह-चैतन्य, (75) मीनकेतन :—

नर्त्तक गोपाल, रामभद्र, गौराङ्गदास।
नृसिंहचैतन्य, मीनकेतन रामदास॥ 53 ॥

अनुवाद—पीताम्बर, माधवाचार्य, दामोदरदास, शङ्कर, मुकुन्द, ज्ञानदास, मनोहर, नर्त्तक गोपाल, रामभद्र, गौराङ्गदास, नृसिंह-चैतन्य और मीनकेतन रामदास, ये भी श्रीनित्यानन्द प्रभुके अन्य दास थे॥ 52-53 ॥

अनुभाष्य—'मीनकेतन रामदास'—(श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 68वाँ श्लोक)—

"मीनकेतन-रामादिव्यूहः सङ्कर्षणोऽपरः॥ 68(ख)॥"

"मीनकेतन रामदास (श्रीकृष्णके) आदिव्यूह-श्रीबलदेवके अन्य रूप सङ्कर्षण (अर्थात् श्रीनित्यानन्द प्रभुसे अभिन्न विग्रह) हैं॥"53॥

(76) श्रीठाकुर वृन्दावनदास :—

वृन्दावनदास—नारायणीर नन्दन।
'चैतन्य-मङ्गल' येँहो करिल रचन॥ 54 ॥

अनुवाद—श्रीनित्यानन्द प्रभुके एक अन्य प्रमुख दास नारायणीदेवीके पुत्र श्रीवृन्दावनदास थे, जिन्होंने चैतन्य-मङ्गलकी रचना की थी॥ 54 ॥

अनुभाष्य—'वृन्दावनदास'—(श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 109वाँ श्लोक)—

"वेदव्यासो य एवासीद्दासो वृन्दावनोऽधुना।
सखा यः कुसुमापीडः कार्यतस्तं समाविशत्॥ 109॥"

"श्रीवेदव्यास ही अब श्रीवृन्दावनदास ठाकुर हैं। व्रजके कुसुमापीड़ नामक सखा भी कार्यवशतः इनमें प्रविष्ट हुए हैं।" ये श्रीवास पण्डितकी भतीजी नारायणीदेवीके पुत्र और चैतन्यभागवतके लेखक हैं। भाष्यकार-कृत चैतन्यभागवतकी भूमिकामें 'ठाकुरकी जीवनी' शीर्षक प्रबन्ध द्रष्टव्य है॥ 54 ॥

इति अनुभाष्ये एकादश परिच्छेद।
ग्यारहवें अध्यायका अनुभाष्य समाप्त।

व्यासदेवके द्वारा श्रीमद्भागवतमें श्रीकृष्णलीला और श्रीचैतन्यभागवतमें श्रीगौरलीलाका वर्णन :—

भागवते कृष्णलीला वर्णिला वेदव्यास।
चैतन्य-लीलाते व्यास—वृन्दावनदास॥ 55 ॥

अनुवाद—जिस प्रकार वेदव्यासजीने भागवतमें श्रीकृष्णकी लीलाका वर्णन किया है, उसी प्रकार श्रीचैतन्य महाप्रभुकी लीलाके व्यास वृन्दावनदास हैं॥ 55 ॥

वीरभद्रगोसाईं-शाखा—सर्वश्रेष्ठ :—

सर्वशाखा-श्रेष्ठ वीरभद्र गोसाञि।
ताँर उपशाखा यत, तार अन्त नाइ॥ 56 ॥

अनुवाद—वीरभद्र गोसाईं श्रीनित्यानन्द प्रभुकी सर्वश्रेष्ठ शाखा हैं और उनकी अनन्त उपशाखाएँ हैं॥ 56 ॥

असंख्य श्रीनित्यानन्दगण :—

अनन्त नित्यानन्दगण—के करु गणन।
आत्मपवित्रता-हेतु लिखिलाङ कत जन॥ 57॥

अनुवाद—श्रीनित्यानन्द प्रभुके असंख्य भक्त हैं, जिनकी गणना कौन कर सकता है? मैंने तो केवल स्वयंको पवित्र करनेके उद्देश्यसे कुछ भक्तोंका यहाँ उल्लेख किया है॥ 57॥

इन सबके श्रीकृष्णप्रेमदानसे जगत्का उद्धार :—

एइ सर्वशाखा पूर्ण—पक्व प्रेमफले।
यारे देखे, तारे दिया भासाइल सकले॥ 58॥

अनुवाद—श्रीनित्यानन्द प्रभुके सभी परिकर पके हुए प्रेमफलसे पूर्ण थे। श्रीनित्यानन्दके भक्त जिसपर भी दृष्टिपात करते थे, उसे प्रेममें डुबो देते थे॥ 58॥

इन सबकी निरन्तर श्रीकृष्णप्रीति-चेष्टा :—

अनर्गल प्रेम सबार, चेष्टा अनर्गल।
प्रेम दिते, कृष्ण दिते सबे धरे महाबल॥ 59॥

अनुवाद—श्रीनित्यानन्द प्रभुके भक्तोंमें प्रचुर प्रेम था और उसे वितरण करनेमें उन्हें कोई भी बाधा नहीं आती थी। उनमें इतना बल था कि वे किसीको भी श्रीकृष्णप्रेम और स्वयं श्रीकृष्णको भी प्रदान करनेमें सक्षम थे॥ 59॥

संक्षेपे कहिलाङ एइ नित्यानन्दगण।
याँहार अवधि ना पाय 'सहस्रवदन'॥ 60॥

अनुवाद—मैंने संक्षेपमें इन श्रीनित्यानन्द प्रभुके भक्तोंका वर्णन किया है, अनन्त-शेष भी अपने हजारों मुखोंसे वर्णन करके भी जिनका अन्त नहीं पाते हैं॥ 60॥

श्रीरूप-रघुनाथ-पदे यार आश।
चैतन्यचरितामृत कहे कृष्णदास॥ 61॥

इति श्रीचैतन्यचरितामृते आदिखण्डे
नित्यानन्द-स्कन्ध-शाखावर्णनं नाम एकादश-परिच्छेदः।

अनुवाद—श्रीरूप-रघुनाथ गोस्वामीके चरणकमलोंकी कृपाभिलाषा करते हुए कृष्णदास इस श्रीचैतन्यचरितामृतका वर्णन कर रहा है॥ 61॥

श्रीश्रीचैतन्यचरितामृतके आदिखण्डका श्रीनित्यानन्द-स्कन्धकी शाखाओंका वर्णन नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।

बारहवाँ अध्याय

चित्र 5

बारहवाँ अध्याय

बारहवें अध्यायका कथासार—इस अध्यायमें श्रीअद्वैतप्रभुकी सभी शाखाओंका वर्णन करके उनमेंसे श्रीअच्युतानन्दके मतानुयायी वैष्णवोंको 'सारग्राही' और अन्य सभीको 'असार' कहकर निर्देश किया गया है। अन्तमें श्रीगदाधर पण्डित-गोस्वामीकी शाखाका वर्णन करके इस अध्यायको समाप्त किया है। इस अध्यायके मध्यमें श्रीअद्वैताचार्यके पुत्र गोपाल मिश्र और श्रीअद्वैताचार्यके सेवक कमलाकान्त विश्वासके दो उपाख्यानोंका वर्णन हुआ है। छोटी आयुमें श्रीगोपालका गुण्डिचा-मन्दिर मार्जनके समय प्रेम-मूर्च्छाको प्राप्त होना और श्रीमहाप्रभुकी कृपासे उनकी मूर्च्छा भङ्ग होनेका प्रसङ्ग वर्णित है। आचार्यके सेवक कमलाकान्त विश्वासने राजा प्रतापरुद्रसे श्रीअद्वैतप्रभुके तीन सौ मुद्राओंके ऋणशोधनकी भिक्षाके लिये पत्र लिखा और महाप्रभुको यह पता लगनेपर उस पागल विश्वासको दण्ड प्रदान किया और श्रीअद्वैताचार्यके अनुरोधपर उसका शोधन किया। (अमृतप्रवाह भाष्य)

सारग्राही और असारग्राही-भेदसे
दो प्रकारके श्रीअद्वैतदास :—

अद्वैताङ्घ्र्यब्जभृङ्गांस्तान् सारासारभृतोऽखिलान्।
हित्वाऽसारान् सारभृतो नौमि चैतन्यजीवनान्॥1॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है॥1॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीअद्वैतप्रभुके अनुगतजन दो प्रकारके हैं—'सारग्राही' और 'असारग्राही'। इन दोनोंमेंसे असारवाहियोंका परित्यागकर समस्त सारग्राही चैतन्यदासोंको मैं प्रणाम करता हूँ॥1॥

अनुभाष्य—सारासारभृतः (सारः अद्वैतानुगो गौरहरिजनः, असारः तदनुगाभिमानी गौरहरि-विमुखजनः, तौ विभ्रतीति तान्) अखिलान् (सर्वान्) अद्वैताङ्घ्र्यब्जभृङ्गान् (अद्वैतस्य अङ्घ्री एव अब्जे तयोः भृङ्गान् भ्रमवान् अद्वैतसेवकान्) [मत्वा] असारवान् (तदनुगप्रायान् शुद्धभक्तिरहितान् मायावादिनः) हित्वा (त्यक्त्वा) चैतन्यजीवानान् (चैतन्य एव जीवनं येषां तान् गौरप्राणान्) सारभृतः (सारग्राहिणः भागवतान्) नौमि (नमस्करोमि)।

श्लोक भावानुवाद—श्रीअद्वैताचार्य प्रभुके दो प्रकारके अनुगतजन हैं—श्रीअद्वैतानुग जो श्रीगौरहरिको समर्पित हैं, वे सारग्राही हैं और जो अपनेमें केवल श्रीअद्वैतानुग होनेका अभिमान करते हैं, परन्तु श्रीगौरहरिके विमुख हैं, वे असारग्राही है। श्रीअद्वैताचार्य प्रभुके चरणकमलोंके समस्त भ्रमरोंमेंसे असारग्राहियोंको छोड़कर शेष जिनका जीवन ही चैतन्य महाप्रभु हैं, ऐसे गौरगतप्राण सारग्राही भक्तोंको मैं प्रणाम करता हूँ॥1॥

जय जय महाप्रभु श्रीकृष्णचैतन्य।
जय जय नित्यानन्द जयाद्वैत धन्य॥2॥

अनुवाद—श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुकी जय हो, जय हो। श्रीनित्यानन्द प्रभुकी जय हो, जय हो; धन्य श्रीअद्वैत प्रभुकी जय हो॥2॥

गौरभक्त सारग्राही श्रीअद्वैतदासोंकी वन्दना :—

श्रीचैतन्यामरतरोर्द्वितीयस्कन्धरूपिणः।
श्रीमदद्वैतचन्द्रस्य शाखारूपान् गणान्नुमः॥3॥

अनुवाद—अनुभाष्य भावानुवाद द्रष्टव्य है॥3॥

अनुभाष्य—श्रीचैतन्यामरतरोः (गौरामरवृक्षस्य) द्वितीय स्कन्धरूपिणः श्रीमदद्वैतचन्द्रस्य शाखारूपान् (वृक्षशाखातुल्यान्) गणान् (आश्रितजनान्) [वयं] नुमः (नमस्कुर्मः)।

श्लोक भावानुवाद—श्रीचैतन्य कल्पवृक्षके दूसरे स्कन्धरूप श्रीमद्-अद्वैतचन्द्रकी शाखारूप उनके आश्रितजनोंको मैं प्रणाम करता हूँ॥3॥

वृक्षेर द्वितीय स्कन्ध—आचार्य गोसाञि।
ताँर यत शाखा हइल, तार लेखा नाञि॥4॥

श्रीगौर-कृपासे सारग्राही श्रीअद्वैतदासोंका ही विस्तार :—

चैतन्य-मालीर कृपाजलेर सेचने।
सेइ जले पुष्ट स्कन्ध बाड़े दिने दिने॥5॥

सेइ स्कन्धे यत प्रेमफल उपजिल।
सेइ कृष्णप्रेमफले जगत् भरिल॥6॥

सेइ जले स्कन्धे करे शाखाते सञ्चार।
फले-फुले बाड़े,—शाखा हइल विस्तार॥7॥

अनुवाद—वृक्षके दूसरे स्कन्ध श्रीअद्वैताचार्य हैं। उनकी जितनी शाखाएँ हुई हैं, उनकी कोई गणना नहीं हो सकती। श्रीचैतन्य-महाप्रभु मालीके कृपारूपी जलके सिञ्चनसे पुष्ट होकर यह स्कन्ध दिन-प्रतिदिन बढ़ता गया। उस स्कन्धपर जितने प्रेमफल उत्पन्न हुए, सारा जगत् उन श्रीकृष्णप्रेमरूपी फलोंसे परिपूर्ण हो गया। स्कन्ध (श्रीअद्वैताचार्य) ने उस महाप्रभुके कृपारूपी जलका अपनी शाखाओंमें सञ्चार किया, जिससे उनपर फूल और फलोंके बढ़नेसे शाखाओंका बहुत विस्तार हुआ॥4-7॥

श्रीअद्वैतदासोंके दो पृथक् मत :—

प्रथमे त' आचार्येर एकमत गण।
पाछे दुइमत हैल दैवेर कारण॥8॥

सारग्राहियोंकी श्रीअद्वैतके आनुगत्यमें गौरभक्ति,
असारगणोंके द्वारा स्वतन्त्रभावमें गौरविरोध :—

केह त' आचार्येर आज्ञाय, केह त' स्वतन्त्र।
स्वमत कल्पना करे दैव-परतन्त्र॥9॥

आचार्यका अनुगत्य ही सार, अन्यथा असार :—

आचार्येर मत येइ, सेइ मत सार।
ताँर आज्ञा लङ्घि' चले, सेइ त' असार॥10॥

श्रीअद्वैत-दासाभिमानी अभक्तोंके
उल्लेखका कारण और दृष्टान्त :—

असारेर नामे इँहा नाहि प्रयोजन।
भेद जानिवारे करि एकत्र गणन॥11॥

धान्यराशि मापे यैछे पात्ना सहिते।
पश्चाते पात्ना उड़ाञा संस्कार करिते॥12॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है॥8-12॥

अमृतप्रवाह भाष्य—पहले श्रीअद्वैतप्रभुके समस्त अनुगतजन एकमत थे, बादमें कुछ लोग दैववशतः पृथक् मतके हो गये। आचार्यके निजमतसे जो चले, वे शुद्ध-वैष्णव हैं और जिन्होंने दैववशतः आचार्यके बतलाये मतसे स्वतन्त्र किसी प्रकार अपने मतकी कल्पना की, वे असार हैं। जिस प्रकार धानको छिलके सहित ही तोला जाता है और साफ करते समय छिलकेको उड़ाकर केवल सार चावलको ही ग्रहण किया जाता है; उसी प्रकार असार व्यक्तियोंके नामोंसे हमारा कोई प्रयोजन नहीं है, तो भी सारग्राही वैष्णवोंसे असारवाहियोंको पृथक् रखनेके अभिप्रायसे उनकी एक साथ गणना की है।

चावलसे रहित असार धानको 'पात्ना' कहते हैं॥8-12॥

(1) अच्युतानन्द-शाखा :—

अच्युतानन्द—बड़ शाखा, आचार्य-नन्दन।
आजन्म सेविला तेँहो चैतन्य-चरण॥13॥

अच्युतके गुणोंका वर्णन :—

"चैतन्य गोसाञि गुरु—केशव भारती।"
एइ पितार वाक्य शुनि' दुःख पाइल अति॥14॥

"जगद्गुरुते तुमि कर ऐछे उपदेश।
तोमार एइ उपदेशे नष्ट हइल देश॥15॥

चौद्द भुवनेर गुरु—चैतन्य-गोसाञि।
ताँर गुरु—अन्य, एइ कोन शास्त्रे नाइ॥"16॥

पञ्चम वर्षेर बालक कहे सिद्धान्तेर सार।
शुनिया पाइला आचार्य सन्तोष अपार॥17॥

अनुवाद—श्रीअद्वैताचार्यके पुत्र अच्युतानन्द एक बड़ी शाखा हैं, जिन्होंने सारा जीवन श्रीचैतन्य महाप्रभुके

चरणोंकी सेवा की है। अपने पिताके मुखसे यह वाक्य सुनकर कि केशव भारती श्रीचैतन्य महाप्रभुके गुरु हैं, उन्हें अपार दुःख हुआ। उन्होंने अपने पिताजीसे कहा कि जगद्गुरु (श्रीचैतन्य महाप्रभु) के विषयमें आप ऐसा उपदेश कर रहे हैं, (लोग उन्हें भगवान् नहीं मानकर साधारण जीव मान लेंगे) जिसके कारण सारे देशका विनाश हो जायेगा। चैतन्य महाप्रभु तो चौदह भुवनोंके गुरु हैं और किसी भी शास्त्रमें ऐसा वर्णन नहीं है कि कोई अन्य उनका गुरु है। अच्युतानन्द उस समय केवलमात्र पाँच वर्षके बालक थे। उनके मुखसे यह सिद्धान्त-सार सुनकर श्रीअद्वैताचार्यको परम आनन्द हुआ॥ 13-17॥

अनुभाष्य—'अच्युतानन्द'—श्रीचैतन्यभागवतके अन्त्यखण्डके आठवें अध्यायमें लिखा है—

"अद्वैतेर ज्येष्ठपुत्र श्रीअच्युतानन्द॥ 60(क)॥"

"अच्युतानन्द श्रीअद्वैतप्रभुके ज्येष्ठ पुत्र हैं।"

संस्कृत भाषाके ग्रन्थ 'अद्वैतचरित' में लिखा है—

"अच्युतः कृष्णमिश्रश्च गोपालदास एव च।
रत्नत्रयमिदं प्रोक्तं सीतागर्भाब्धिसम्भवम्।
आचार्यतनयेष्वेते त्रयो गौरगणाः स्मृताः॥
चतुर्थो बलरामश्च स्वरूपः पञ्चमः स्मृतः।
षष्ठस्तु जगदीशाख्य आचार्यतनया हि षट्॥"

"अच्युत, कृष्णमिश्र और गोपाल—ये सीतादेवीके गर्भसमुद्रसे उत्पन्न तीन रत्न कहलाते हैं। श्रीअद्वैताचार्यके पुत्रोंमेंसे ये तीन गौरजन कहलाते हैं। चौथे पुत्र श्रीबलराम, पाँचवें पुत्र स्वरूप और छठे पुत्र जगदीश हैं—इस प्रकार श्रीअद्वैताचार्यके छह पुत्र हैं।"

श्रीअद्वैतप्रभुके गौरभक्त तीनों पुत्रोंमें श्रीअच्युतानन्द ही ज्येष्ठ हैं। श्रीअद्वैतप्रभुका विवाह पन्द्रहवीं शक-शताब्दीके प्रारम्भमें ही हुआ था। श्रीमहाप्रभुने जिस वर्ष नीलाचलसे रामकेलि होते हुए वृन्दावन जानेका मन बनाया था, उसी वर्ष 1433-34 शकाब्दमें अच्युतानन्द केवल पाँच वर्षके थे। चैःभाः अन्त्यखण्डके चतुर्थ अध्यायमें "पञ्चवर्ष वयस मधुर दिगम्बर" के रूपमें उनका वर्णन है। इसलिये अच्युतानन्दका जन्म 1428 शकाब्दमें हुआ था। अच्युतानन्दके जन्मसे पहले महाप्रभुके जन्मके समय श्रीअद्वैतपत्नी सीतादेवी महाप्रभुके जन्मके उपरान्त (1407 शकाब्दमें) उन्हें देखनेके लिये आयी थीं, इसलिये इन 21 वर्षोंमें उनके और भी तीन पुत्र होनेकी असम्भावना नहीं है। 'श्रीनित्यानन्द-दायिनी' पत्रिकामें 1792 शकाब्दमें छपी प्राकृत सहजिया सखीभेखी-दलके लोकनाथदास नामक एक व्यक्तिने 'सीताद्वैतचरित' नामक एक बङ्गला कविता-ग्रन्थमें अच्युतानन्दको महाप्रभुके सहपाठीके रूपमें वर्णित किया है; यह बात चैतन्यभागवतके विरुद्ध है। महाप्रभु जिस वर्ष संन्यास ग्रहणकर शान्तिपुरमें श्रीअद्वैतके भवनमें आये, तब 1431 शकाब्द था, उस समय अच्युतानन्द तीन वर्षके बालक थे—(चैःभाः अन्त्यखण्ड प्रथम अध्याय)—

"दिगम्बर शिशुरूप अद्वैत-तनय॥ 213(क)॥
आसिया पड़िल गौरचन्द्र-पदतले।
धूलार सहित प्रभु लइलेन कोले॥ 216॥
प्रभु बोले,—अच्युत, आचार्य मोर पिता।
से-सम्बन्धे तोमाय आमाय (हइ) दुइ भ्राता॥ 217॥"

"श्रीअद्वैताचार्यके पुत्र शिशुरूपमें दिगम्बर (वस्त्रहीन) वेशमें थे। वे आकर महाप्रभुके चरणोंमें गिर पड़े। महाप्रभुने धूल-धूसरित उन शिशुको उठाकर अपनी गोदमें ले लिया और कहने लगे,—अच्युत! (श्रीअद्वैत) आचार्य मेरे पिता हैं, इस सम्बन्धसे तुम और मैं—दोनों भाई हैं।" श्रीमन्महाप्रभुने श्रीनवद्वीपमें अपने महाप्रकाशसे पहले श्रीअद्वैताचार्यको लानेके लिये श्रीराम पण्डितको शान्तिपुर भेजा था। उस समय अच्युतानन्द भी पिता-माताके साथ आनन्द-क्रन्दनमें डूब गये थे। चैःभाः मध्यखण्ड छठा अध्याय—

"अद्वैतेर तनय 'अच्युतानन्द'-नाम।
परमबालक, सेहो कान्दे अविराम॥ 41॥"

और जब श्रीअद्वैताचार्य भक्तिके विरुद्ध ज्ञानकी व्याख्या कर रहे थे और महाप्रभुने उनपर प्रहार किया था, तब भी अच्युतानन्द वहाँ उपस्थित थे। ये सारी

घटनाएँ महाप्रभुके संन्यासके दो-तीन वर्ष पहले हुईं—ऐसा स्वीकार करना पड़ेगा। चैःभाः मध्यखण्ड उन्नीसवाँ अध्याय—

"अच्युत प्रणाम करे अद्वैत-तनय॥ 128(ख)॥"

श्रीअच्युत बाल्यकालसे ही श्रीमन्महाप्रभुके भक्त थे। इन्होंने पत्नी ग्रहणकर कभी संसार धर्मका पालन किया, ऐसी कोई भी बात नहीं सुनी जाती है। श्रीअद्वैत-शाखाके वर्णनमें इनका नाम शिष्योंमें अग्रणी है। श्रीयदुनन्दनदासके द्वारा रचित श्रीगदाधर पण्डित गोस्वामीकी "शाखा-निर्णयामृत' ग्रन्थके अनुसार अच्युतानन्द श्रीगदाधर पण्डितके शिष्य और शाखा हैं—

"महारसामृतानन्दमच्युतानन्द-नामकम्।
गदाधर-प्रियतमं श्रीमदद्वैतनन्दनम्॥"

"जिनका नाम अच्युतानन्द है, वे महारसामृतानन्द हैं। श्रीअद्वैताचार्यके पुत्र श्रीगदाधर पण्डितके अति प्रिय शिष्य हैं।" (चैःचः आदिलीला, 10/150)—

"अच्युतानन्द—अद्वैत आचार्य-तनय।
नीलाचले रहे प्रभुर चरण-आश्रय॥"

अच्युतानन्दने नीलाचलमें महाप्रभुका चरणाश्रय करके भजन किया था। श्रीगदाधर पण्डित गोस्वामीने अपना शेष जीवन महाप्रभुके निकट नीलाचलमें व्यतीत किया था, इसी कारणसे यह देखनेमें आता है कि अच्युतानन्दादि श्रीअद्वैतप्रभुके वास्तविक सेवक-मण्डलियोंमेंसे अनेकोंने ही श्रीगदाधरका चरणाश्रय किया था। अच्युतानन्दकी श्रीमन्महाप्रभुके प्रति अति बाल्यकालसे ही प्रबल भक्तिका प्रमाण देखा जाता है। (चैःचः मध्यलीला, 13/45)—

"शान्तिपुर-आचार्येर एक सम्प्रदाय।
अच्युतानन्द नाचे ताँहा, आर सब गाय॥"

प्रत्येक वर्ष जगन्नाथ रथके सामने (महाप्रभुके) नृत्य-कीर्तनके समय भी हम महाप्रभुके प्रिय अच्युतानन्दका वर्णन सर्वत्र देखते हैं। उस समय बालककी आयु केवल 6 वर्षकी थी। श्रीकविकर्णपूर-प्रणीत गौरगणोद्देश-दीपिकामें अच्युतानन्दको 'श्रीगदाधरके शिष्य एवं श्रीकृष्णचैतन्यके प्रिय' के रूपमें कहा गया है—

"तस्य पुत्रोऽच्युतानन्दः कृष्णचैतन्यवल्लभः।
श्रीमत्पण्डित-गोस्वामि-शिष्यः प्रिय इति श्रुतम्॥ 87॥
यः कार्त्तिकेयः प्रागासीदिति जल्पन्ति केचन।
केचिदाहू रसविदोऽच्युतानाम्नी तु गोपिका।
उभयन्तु समीचीनं द्वयोरेकत्र सङ्गतात्॥ 88॥"

"श्रीअच्युतानन्द श्रीकृष्णचैतन्यके अतिशय प्रिय, श्रीगदाधर पण्डित गोस्वामीके शिष्य तथा श्रीअद्वैताचार्यके प्रिय पुत्रके रूपमें प्रसिद्ध हैं। किसी-किसीका कहना है कि कार्त्तिकेय ही अच्युतानन्द हैं, परन्तु अन्यान्य किन्हीं रसविदोंका कहना है कि व्रजकी अच्युता नामक गोपी ही अब अच्युतानन्द हैं। ये दोनों ही विचार ठीक हैं, क्योंकि कार्त्तिकेय और अच्युता नामक गोपी मिलकर ही श्रीअच्युतानन्द हुए हैं।"

श्रीनरहरिदासके द्वारा रचित 'नरोत्तमविलास' ग्रन्थमें खेतरि-महोत्सवके समय अच्युतानन्दके आगमन एवं योगदानकी कथा सविस्तार वर्णित है। जननी श्रीसीता और श्रीजाह्नवाके अनुरोधसे नितान्त असमर्थ होनेपर भी उन्होंने महोत्सवके समय योगदान दिया था। इन्हीं नरहरिदासके मतानुसार जीवनके अन्तिम समय उन्होंने शान्तिपुरके भवनमें वास किया था; परन्तु ऐसा जाना जाता है कि श्रीमहाप्रभुके प्रकटकालमें उन्होंने महाप्रभुके साथ और बादमें श्रीगदाधरके निकट पुरीमें वास किया था। विवाह न करनेके कारण उनकी कोई सन्तानादि नहीं थी॥ 13-17॥

(2) कृष्णमिश्र :—

कृष्णमिश्र-नाम आर आचार्य-तनय।
चैतन्य-गोसाञि बैसे याँहार हृदय॥ 18॥

अनुवाद—कृष्णमिश्र नामक श्रीअद्वैताचार्यके एक और पुत्र थे, जिनके हृदयमें सदा श्रीचैतन्य महाप्रभु निवास करते थे॥ 18॥

अनुभाष्य—'कृष्णमिश्र'—संस्कृतभाषाके ग्रन्थ 'अद्वैतचरित' में—

"अच्युतः कृष्णमिश्रश्च गोपालदास एव च।
रत्नत्रयमिदं प्रोक्तं सीतागर्भाब्धिसम्भवम्।"

"श्रीअद्वैताचार्यके छह पुत्रोंमेंसे 'अच्युत, कृष्णमिश्र और गोपाल'—ये तीनों भाई श्रीगौराङ्ग महाप्रभुके दास्यके रूपमें नियुक्त थे।" गौरगणोद्देशदीपिका श्लोक 88—

"कार्त्तिकेयः कृष्णमिश्रस्तत् साम्यादिति केचन॥88॥"

"कार्त्तिकेय और श्रीकृष्णमिश्रमें समानताके कारण कोई-कोई श्रीकृष्णमिश्रको भी कार्त्तिकेय कहते हैं।"

कृष्णमिश्रके दो पुत्र थे-(1) रघुनाथ चक्रवर्त्ती, (2) दोलगोविन्द। इनमेंसे रघुनाथके वंशज शान्तिपुरके मदनगोपालके मोहल्ला, गणकर, मृजापुर और कुमारखालिमें वर्तमान है। दोलगोविन्दके तीन पुत्र थे-(1) चाँद, (2) कन्दर्प, (3) गोपीनाथ। कन्दर्पके वंशज मालदह, जिकावाड़ीमें हैं। गोपीनाथके तीन पुत्र— (1) श्रीवल्लभ, (2) प्राणवल्लभ और (3) केशव थे। श्रीवल्लभके वंशज मशियाडारा (महिषडेरा?), दामुकदिया और चण्डीपुर आदि स्थानोंपर हैं। श्रीवल्लभके ज्येष्ठपुत्र गङ्गानारायणसे मशियाडाराकी वंश-धारा एवं कनिष्ठ पुत्र रामगोपालसे दामुकदिया, चण्डीपुर, शोलमारि आदि गाँवोंकी वंश-धारा है। प्राणवल्लभ और केशवके वंशज उथलीमें वास करते हैं। प्राणवल्लभके पुत्र रत्नेश्वर, उनके पुत्र कृष्णराम, उनके छोटे पुत्र लक्ष्मीनारायण, उनके पुत्र नवकिशोर, उनके द्वितीय पुत्र राममोहनके बड़े पुत्र 'जगबन्धु' और तृतीय पुत्र 'वीरचन्द्र' ने भिक्षुकाश्रम स्वीकार करके काटोयामें श्रीमन्महाप्रभुके विग्रहकी स्थापना की। लोग इन्हें 'बड़ेप्रभु' और 'छोटेप्रभु' कहते थे। इन्होंने ही नवद्वीपधाम-परिक्रमाका प्रवर्त्तन किया था। कृष्णमिश्रकी पूर्ण वंशतालिकाके बारेमें वैष्णवमञ्जुषाके चतुर्थ संख्यामें "अद्वैत-वंश' द्रष्टव्य है॥18॥

(3) गोपालका बाल-चरित्र :—

श्रीगोपाल-नामे आर आचार्येर सुत।
ताँहार चरित्र, शुन, अत्यन्त अद्भुत॥19॥

गुण्डिचा-मन्दिरे महाप्रभुर सन्मुखे।
कीर्त्तने नर्त्तन करे बड़ प्रेमसुखे॥20॥

नाना-भावोद्गम देहे अद्भुत नर्त्तन।
दुइ गोसाञि 'हरि' बले आनन्दित मन॥21॥

नाचिते नाचिते गोपाल हइल मूर्च्छित।
भूमेते पड़िल, देहे नाहिक सम्वित॥22॥

दुःखित हइला आचार्य पुत्र कोले लञा।
रक्षा करे नृसिंहेर मन्त्र पड़िया॥23॥

नाना मन्त्र पड़ेन आचार्य, ना हय चेतन।
आचार्येर दुःखे वैष्णव करेन क्रन्दन॥24॥

तबे महाप्रभु ताँर हृदे हस्त धरि'।
"उठह, गोपाल—बल, बल 'हरि' 'हरि'॥"25॥

उठिल गोपाल प्रभुर स्पर्श-ध्वनि शुनि'।
आनन्दित हञा सबे करे हरिध्वनि॥26॥

अनुवाद—श्रीगोपाल नामक एक और श्रीअद्वैताचार्यके पुत्र थे। उनके अद्भुत चरित्रके विषयमें सुनो। वे एक बार महाप्रभुके सामने गुण्डिचा मन्दिरमें प्रेममें डूबकर बड़े आनन्दसे नृत्य कर रहे थे। उनके शरीरमें नाना प्रकारके भावोंका उद्गम हो रहा था और वे अद्भुत नृत्य कर रहे थे। श्रीचैतन्य महाप्रभु और श्रीनित्यानन्द प्रभु दोनों आनन्दित मनसे 'हरि' 'हरि' बोल रहे थे। नाचते-नाचते गोपाल मूर्च्छित हो गये और उनकी देहमें कोई चेतना नहीं रही। श्रीअद्वैताचार्य बहुत दुःखी हो गये और अपने पुत्रको उन्होंने अपनी गोदमें ले लिया। उसकी रक्षाके लिये उन्होंने नृसिंह-मन्त्र पढ़ा। उसके बाद उन्होंने अनेक मन्त्र पढ़े, परन्तु फिर भी गोपालकी चेतना लौटकर नहीं आयी। श्रीअद्वैताचार्यके दुःखको देखकर सभी वैष्णव क्रन्दन करने लगे। तब महाप्रभुने अपना हाथ गोपालके हृदयपर रखा और कहा—"गोपाल! उठो और 'हरि' 'हरि' बोलो।" महाप्रभुके स्पर्श और ध्वनिको सुनकर गोपाल उठकर बैठ गये। इसे देखकर

सभीका मन आनन्दित हो गया और सभी 'हरि' 'हरि' ध्वनि करने लगे॥19-26॥

अनुभाष्य—'गोपाल'—श्रीअद्वैताचार्यके तीन वैष्णव पुत्रोंमें अन्यतम हैं। चैःचः मध्यलीला, 12/143-149 संख्या द्रष्टव्य है। **सम्वित** अर्थात् सम्विद् अथवा ज्ञान॥19-26॥

आचार्येर आर पुत्र—श्रीबलराम।
आर पुत्र—'स्वरूप'-शाखा, 'जगदीश' नाम॥27॥

अनुवाद—श्रीअद्वैताचार्यके अन्य पुत्र श्रीबलराम, स्वरूप और जगदीश हैं॥27॥

अनुभाष्य—'बलराम, स्वरूप और जगदीश'—संस्कृतके ग्रन्थ 'अद्वैतचरित' में कहा गया है—

"चतुर्थो बलरामश्च स्वरूपः पञ्चमः स्मृतः।
षष्ठस्तु जगदीशाख्य आचार्यतनया हि षट्॥"

"श्रीअद्वैताचार्यके छह पुत्र हैं, जिनमें बलराम चौथे, स्वरूप पाँचवें और जगदीश छठे पुत्र हैं।" ये तीनों गौर विमुख स्मार्त्त अथवा मायावादी हैं, अतः अवैष्णव हैं। बलरामकी तीन पत्नियोंके गर्भसे नौ पुत्रोंका जन्म हुआ। प्रथम पत्नीकी कनिष्ठ सन्तान मधुसूदनने 'गोसाईं भट्टाचार्य' नामसे विख्यात होकर स्मार्त्तधर्मको स्वीकार किया। इनके पुत्र राधारमणने 'गोस्वामी भट्टाचार्य' नाम ग्रहण करके गृहत्यागीके योग्य पदवी 'गोस्वामी' शब्दका अपमान किया। और इन्होंने स्मार्त्त रघुनन्दनके आनुगत्यमें श्रीअद्वैताचार्यकी 'कुश-पुत्तलिका' का दहन करके प्रेत या राक्षस श्राद्ध-कार्य करके श्रीहरिभक्तिविलासादिमें वर्णित विष्णु-भक्तिपरक श्राद्धकी विधिके विरुद्ध आचरण करके मूर्खता एवं महापराधका प्रदर्शन किया। उन्होंने शुद्धभक्त ना होते हुए भी कुछ नये ग्रन्थों और कुछ प्राचीन ग्रन्थोंकी टीकाओंकी रचना की—ये सब शुद्धभक्तोंके लिये आदरणीय नहीं है। बलरामकी वंशतालिका वैष्णवमञ्जुषा (चतुर्थ सख्या में) द्रष्टव्य है॥27॥

(4) कमलाकान्त :—

'कमलाकान्त विश्वास'—नाम आचार्य-किङ्कर।
आचार्य-व्यवहार सब—ताँहार गोचर॥28॥

अनुवाद—कमलाकान्त विश्वास नामक एक श्रीअद्वैताचार्यके दास थे, जो उनके सभी सांसारिक कार्यकलापोंको देखते थे॥28॥

अनुभाष्य—'कमलाकान्त विश्वास'—चैःचः आदिलीला, 10/119 संख्यामें वर्णित भक्तोंमें 'कमलाकान्त' ही कमलाकान्त विश्वास हैं। चैःचः आदिलीला, 10/149 संख्यामें वर्णित 'कमलानन्द' और मध्यलीला, 10/94 संख्यामें लिखित 'द्विज कमलाकान्त' सम्भवतः एक ही व्यक्ति हैं। कमलाकान्त-ब्राह्मण महाप्रभुके निजगण हैं और कमलाकान्त विश्वास श्रीअद्वैतप्रभुके सेवक हैं। चैःचः मध्यलीला, 10/94—

"प्रभुर एक भक्त—'द्विज कमलाकान्त' नाम।
ताँरे लञा नीलाचले करिला प्रयाण॥"

"श्रीपरमानन्दपुरी नवद्वीपसे नीलाचल आते समय नवद्वीपवासी महाप्रभुके भक्त 'ब्राह्मण-कमलाकान्त' को अथवा कमलानन्दको साथ लेकर नीलाचल आये॥"28॥

कमलाकान्तका चरित्र :—

नीलाचले तेँहो एक पत्रिका लिखिया।
प्रतापरुद्रेर स्थाने दिल पाठाइया॥29॥
सेइ पत्रीर कथा आचार्य नाहि जाने।
कोन पाके सेइ पत्री आइल प्रभुस्थाने॥30॥

अनुवाद—उन्होंने नीलाचलमें एक पत्र लिखकर किसीके हाथों राजा प्रतापरुद्रके पास भिजवाया। उस पत्रके विषयमें श्रीअद्वैताचार्यको कुछ पता नहीं था। किसी कारणसे वह पत्र महाप्रभुके पास पहुँच गया॥29-30॥

कमलाकान्तके पत्रमें पागल-मत :—

से पत्रीते लेखा आछे—एइ त' लिखन।
ईश्वरत्वे आचार्येरे करियाछे स्थापन॥31॥

किन्तु ताँर दैवे किछु हइयाछे ऋण।
ऋण शोधिबारे चाहि मुद्रा शत–तिन॥ 32॥

पत्र पड़िया प्रभुर मने हैल दुःख।
बाहिरे हासिया किछु बले चाँदमुख॥ 33॥

"आचार्येरे स्थापियाछे करिया ईश्वर।
इथे दोष नाहि, आचार्य—दैवत ईश्वर॥ 34॥

षड़ैश्वर्यशाली नारायणको जीव समझकर दरिद्रबुद्धि करना ही मायावाद अथवा पागल-मत :—

ईश्वरेर दैन्य करि' करियाछे भिक्षा।
अतएव दण्ड करि' कराइब शिक्षा॥"35॥

अनुवाद—उस पत्रमें उन्होंने यह लिखा कि श्रीअद्वैताचार्य स्वयं ईश्वर हैं, परन्तु दैववशतः उनपर कुछ ऋण हो गया है। ऋणके शोधनके लिये उन्हें तीन सौ मुद्राओंकी आवश्यकता है। पत्र पढ़कर महाप्रभुके मनमें दुःख हुआ, परन्तु बाहरसे हँसते हुए चन्द्रवदन महाप्रभुने कहा—"इसने आचार्यको ईश्वर कहा है, इसमें कोई भी दोष नहीं है, क्योंकि वे वास्तवमें ईश्वर हैं। परन्तु ईश्वरको दीन बनाकर इसने जो भिक्षा माँगी है, उसके लिये इसे मैं दण्ड देकर शिक्षा दूँगा॥"31–35॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'दैवत ईश्वर'—वास्तवमें ईश्वर॥ 34॥

अनुभाष्य—'ईश्वरेर दैन्य करि'—ईश्वरको दीन बनाकर॥ 35॥

पागलको दण्ड :—

गोविन्देरे आज्ञा दिल,—"ईंहा आजि हैते।
बाउलिया 'विश्वासे' एथा ना दिबे आसिते॥"36॥

दण्ड शुनि' 'विश्वास' हइल परम दुःखित।
शुनिया प्रभुर दण्ड आचार्य हर्षित॥ 37॥

अनुवाद—महाप्रभुने गोविन्दको आज्ञा दी—"आजसे इस पागल 'विश्वास' को यहाँपर आने मत देना।" दण्डको सुनकर 'विश्वास' बड़े दुःखी हो गये, परन्तु श्रीअद्वैताचार्य सुनकर बहुत प्रसन्न हुए॥ 36–37॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'बाउलिया विश्वास'—कमलाकान्त विश्वासके सिद्धान्तको बाउलके (पागलके) जैसा कहकर उसको 'बाउलिया विश्वास' कहा है॥ 36॥

अनुभाष्य—'विश्वासे'—अर्थात् कमलाकान्त विश्वासको॥ 36॥

श्रीअद्वैतप्रभुके द्वारा उसको सान्त्वना-दान :—

विश्वासेरे कहे,—"तुमि बड़ भाग्यवान्।
तोमारे करिल दण्ड प्रभु भगवान्॥ 38॥

पूर्वे महाप्रभु मोरे करेन सम्मान।
दुःख पाइ' मने आमि कैलुँ अनुमान॥ 39॥

मुक्ति—श्रेष्ठ करि' कैनु वशिष्ठ व्याख्यान।
क्रु

दण्ड पाञा हैल मोर परम आनन्द।
ये दण्ड पाइल भाग्यवान् मुकुन्द॥ 41॥

ये दण्ड पाइल श्रीशची भाग्यवती।
से दण्डप्रसाद आर लोके पाबे कति॥"42॥

एत कहि आचार्य ताँरे करिया आश्वास।
आनन्दित हइया आइल महाप्रभु-पाश॥ 43॥

अनुवाद—कमलकान्त विश्वासको दुःखी देखकर श्रीअद्वैताचार्यने कहा—"तुम बड़े भाग्यशाली हो कि तुम्हें महाप्रभुने दण्ड प्रदान किया है, अर्थात् अपना माना है। पहले महाप्रभु मेरा सम्मान करते थे, जिससे मुझे बहुत दुःख होता था। तब मैंने मनमें विचार करके योग-वाशिष्ठकी व्याख्या करते हुए मुक्तिको भक्तिसे श्रेष्ठ बतलाना आरम्भ किया। इसे सुनकर महाप्रभुने क्रोधित होकर मुझपर शासन किया। उस दण्डको पाकर मुझे परम आनन्द हुआ। ऐसा ही दण्ड महाप्रभुने मुकुन्दको दिया था। शची माताको भी ऐसा दण्ड मिला

था, जिस दण्ड (कृपा) को पानेवाला उनसे अधिक भाग्यशाली जगत्में और कौन है?" यह कहकर श्रीअद्वैताचार्यने उसे आश्वासन दिया और वे आनन्दित होकर महाप्रभुके पास आये॥ 38-43॥

अमृतप्रवाह भाष्य—योगवाशिष्ठकी व्याख्या करते करते किसी छलसे श्रीअद्वैतप्रभुने भक्तिकी अपेक्षा मुक्तिको श्रेष्ठ बतलाया॥ 40॥

अनुभाष्य—'वशिष्ठ' अर्थात् योगवाशिष्ठ रामायण। यह ग्रन्थ विष्णुभक्ति विरोधी मायावादका प्रतिपादक है, इसलिये शुद्धभक्तोंको इसे नहीं पढ़ना चाहिये। अद्वैतदण्डके लिये (चै:भा: मध्यखण्ड, उन्नीसवाँ अध्याय), मुकुन्ददण्डके लिये (चै:भा: मध्यखण्ड, दसवाँ अध्याय) और शचीमाताके दण्डके लिये (चै:भा: मध्यखण्ड, बाइसवाँ अध्याय) द्रष्टव्य है॥ 40-42॥

अमृतानुकणिका—'श्रीअद्वैत-दण्ड'—नवद्वीपमें महाप्रभु विश्वम्भरने जो क्रीड़ा की, उसे सभी लोग नहीं देख पाते थे। वे श्रीनित्यानन्द और श्रीगदाधरको साथ लेकर अपने भक्तोंके घर-घरमें विहार करने लगे। महाप्रभुको आनन्दमें मग्न देखकर भागवतगण भी परिपूर्ण आनन्दमें डूब गये। सभीने देखा कि सम्पूर्ण भुवन श्रीकृष्णसे परिपूर्ण हैं। निरन्तर भावावेशमें रहनेके कारण किसीको भी बाहरी दुनियाकी सुधबुध न रही। एक सङ्कीर्तनके अतिरिक्त उनके लिये और कोई कार्य नहीं रह गया था। सबसे अधिक मत्त थे—आचार्य गोसाईं। ऐसा कोई नहीं था जो उनके अगाध चरित्रको समझ सके। श्रीचैतन्यकी कृपासे केवल कोई-कोई ही उन्हें जान पाये थे कि अद्वैताचार्य श्रीचैतन्य महाप्रभुके महाभक्त हैं। बाह्य जगत्का बोध होनेपर विश्वम्भर सभी वैष्णवोंके प्रति, विशेष करके श्रीअद्वैतके प्रति महाभक्ति प्रदर्शित करते थे। इससे श्रीअद्वैताचार्यको बड़ा ही दुःख होता था। वे मन-ही-मन चिन्तन करने लगे,—"निरन्तर ये चोर (गौराङ्ग महाप्रभु) मुझे विडम्बनामें डालते रहते हैं। प्रभुताको छोड़कर वे मेरे चरण पकड़ते हैं। महाबली प्रभुके साथ शक्तिसे मैं निपट नहीं सकता हूँ, मुझे पकड़कर भी वे बलात् मेरे चरणोंकी धूल ले लेते हैं। बस, एक ही उपाय है, और वह है मेरा भक्तिबल। क्योंकि, भक्तिके बिना विश्वम्भरको पहचानना सम्भव नहीं है। मायाको जब मैं पूरी तरहसे मिटा पाऊँगा, तभी लोगोंको पता चलेगा कि मैं सचमुच ही 'अद्वैत-सिंह' हूँ। भृगुको जीतकर 'चोर' का साहस बढ़ गया है, अर्थात् भृगुकी लात खाकर भी उन्होंने क्रोधके स्थानपर दैन्य प्रकाश किया था। भृगु-जैसे मेरे सैंकड़ों शिष्य हैं। प्रभुके शरीरमें ऐसा क्रोध उत्पन्न करूँगा कि प्रभु अपने ही हाथोंसे मुझे दण्ड प्रदान करेंगे। जिस भक्तिके प्रचारके लिये प्रभुका अवतार हुआ है, मैं उस भक्तिको स्वीकार नहीं करूँगा—बस, यही सार सिद्धान्त है। भक्तिको न माननेसे प्रभु क्रोधित होकर अपने आपको भूल जायेंगे और मेरे केश पकड़कर मुझे दण्ड प्रदान करेंगे।" ऐसा सोचकर अद्वैताचार्य प्रभुने हरिदासके साथ आनन्द-सहित महाप्रभुसे विदा ली।

वे अपने घर शान्तिपुर आये और आकर सभीको 'ज्ञान' की प्रधानता-प्रकाश-पूर्वक वाशिष्ठ-शास्त्रकी व्याख्या करने लगे,—"बिना 'ज्ञान' के विष्णु-भक्तिमें कोई शक्ति है क्या? इसलिये ज्ञान ही सबका प्राणस्वरूप है, ज्ञानमें ही सर्वशक्ति है। इस ज्ञानको बिना समझे कोई-कोई व्यक्ति अपने घरमें ही निज धनको खोकर वन-वनमें ढूँढता रहते हैं। विष्णु-भक्ति दर्पण-स्वरूप होती है और नेत्र होते हैं—'ज्ञान'। बिना नेत्रोंके दर्पण किस कामका? सभी शास्त्रोंका मैंने आदिसे अन्त तक अध्ययन किया है और देखा है कि केवल 'ज्ञान' ही इन सबका एकमात्र अभिप्राय है।"

उधर महाप्रभु विश्वम्भर बारम्बार हुँकार करने लगे और कहने लगे,—"'मैं वही हूँ, मैं वही हूँ'। नींदसे उठाकर मुझे नाड़ा यहाँ ले आया है, और अब यहाँ भक्तिको छिपाकर वह 'ज्ञान' की व्याख्या कर रहा है। देख लेना, इसी कारण आज मैं उसे प्रत्यक्षरूपसे दण्ड

प्रदान करूँगा। मैं देखना चाहता हूँ कि आज कैसे वह ज्ञानयोगको बचाये रखता है?"

श्रीअद्वैताचार्यने जब यह जाना कि 'क्रोधित होकर महाप्रभु आ रहे हैं', तब वे और अधिक मत्त होकर ज्ञानयोगकी व्याख्या करने लगे। चैतन्य-भक्तकी लीला कौन समझ सकता है? क्रु

साथ जाकर देखा कि श्रीअद्वैताचार्य ज्ञानचर्चाके आनन्दमें झूम रहे हैं। महाप्रभुको देखकर हरिदासने दण्डवत् प्रणाम किया, श्रीअद्वैताचार्यके पुत्र अच्युतने भी प्रणाम किया। श्रीअद्वैताचार्यकी पत्नीने मन-ही-मन उन्हें नमस्कार किया और महाप्रभुको क्रोधित देखकर वे हृदयमें चिन्तित हो गयीं। कोटि-सूर्यकी भाँति महाप्रभुका तेज प्रकाशित हो रहा था। यह देखकर सभीके चित्तमें भय छा गया। महाप्रभु क्रोधित होकर बोले,—"अरे! अरे नाड़ा! बताओ ज्ञान और भक्तिमें कौन श्रेष्ठ है?" उत्तरमें श्रीअद्वैताचार्यने कहा,—"ज्ञान सब समय श्रेष्ठ है। जिनको ज्ञान नहीं है, उन्हें भक्तिसे क्या प्रयोजन?" 'ज्ञान श्रेष्ठ है',—श्रीअद्वैताचार्यके ये वचन सुनकर क्रोधके कारण शचीनन्दन बाहरी सुधबुध भूल गये। श्रीअद्वैताचार्य अपने चबूतरेपर बैठे हुए थे। महाप्रभुने उन्हें वहाँसे उठाया और आँगनमें ले आये। फिर आँगनमें नीचे गिराकर वे अपने हाथोंसे उन्हें मारने लगे। जगन्माता-स्वरूपिणी श्रीअद्वैताचार्यकी पतिव्रता गृहिणी सब तत्त्व जानते हुए भी व्याकुल हो गयीं और कहने लगीं,—"यह वृद्ध ब्राह्मण है, यह वृद्ध ब्राह्मण है, इनके प्राणोंकी रक्षा कीजिये। किसके सिखानेसे आप इनका इतना अपमान कर रहे हैं? इतने बूढ़े ब्राह्मणके साथ और क्या-क्या करेंगे?" पतिव्रता पत्नीकी बात सुनकर श्रीनित्यानन्द प्रभु हँसने लगे और हरिदास ठाकुर भयके कारण श्रीकृष्णका स्मरण करने लगे। क्रोधमें महाप्रभुने पतिव्रताकी बातको नहीं सुना। दम्भ प्रकाश करते हुए महाप्रभु श्रीअद्वैताचार्यके प्रति तर्जन-गर्जन करते रहे। महाप्रभुने कहा,—"अरे नाड़ा, मैं तो क्षीरसागरमें सो रहा था। तुमने मेरी निद्रा भङ्ग कर दी। तुमने भक्तिको प्रकाशित करनेके लिये मुझे यहाँ बुला लिया। अब भक्तिको छिपाकर ज्ञानकी व्याख्या कर रहे हो। यदि तुम्हारे मनमें भक्तिको छिपाये रखनेकी इच्छा थी, तो किस प्रयोजनके लिये तुमने मुझे प्रकाशित किया? तुम्हारे सङ्कल्पको मैं कभी व्यर्थ नहीं होने देता, परन्तु तुम मुझे सदैव विडम्बनामें डालते रहते हो।" इसके बाद श्रीअद्वैताचार्यको छोड़कर महाप्रभु द्वारमें आकर बैठ गये और हुँकार करते हुये निज तत्त्वको प्रकाश करने लगे। महाप्रभुने कहा,—"अरे अरे! जिसने कंसको मारा था, मैं वही हूँ। अरे ओ नाड़ा! तुम सब जानते हो, देख लो। अज, भव, शेष, रमा—ये सब मेरी सेवा करते हैं। मेरे सुदर्शन चक्रने शृगाल-वासुदेव (पौण्ड्र को मार गिराया था। मेरे सुदर्शन चक्रने सारे वाराणसी नगरको जला डाला था। मेरे बाणोंने महाबली रावणका संहार किया था। मेरे चक्रने बाणासुरकी भुजाओंको काटा था। मेरे चक्रने नरकासुरका वध किया था। बाँये हाथपर मैंने ही (गोवर्धन) पर्वतको धारण किया था। स्वर्गसे पारिजात भी मैं ही लाया था। मैंने ही बलिको छला था, फिर उसपर कृपा भी मैंने ही की थी। मैंने हिरण्यकशिपुको मारकर प्रह्लादको बचाया था।" इस प्रकारसे महाप्रभु अपना ऐश्वर्य प्रकाशित करते रहे और उसे सुनकर श्रीअद्वैताचार्य प्रेमसागरमें बहते रहे। दण्ड प्राप्त करके श्रीअद्वैताचार्य परम आनन्दित हुये और हाथोंसे ताली बजा-बजाकर विनीतभावसे नृत्य करने लगे। श्रीअद्वैताचार्य बोले,—"अपराधके अनुरूप ही मुझे दण्ड मिला है। हे प्रभु! इससे भृत्यके हृदयमें बल मिला है।" इतना कहकर श्रीअद्वैताचार्य आनन्दसे नृत्य करने लगे। श्रीअद्वैताचार्य सारे आङ्गनमें आनन्द-सहित नृत्य कर रहे थे और भौंवें नचा-नचाकर महाप्रभुके चरणोंमें निवेदन कर रहे थे,—"मेरे प्रति आपकी वह स्तुति अब कहाँ गयी? कहाँ गये अब आपके वे सारे ढङ्ग? मैं दुर्वासा नहीं हूँ, जिसका आप तिरस्कार कर देंगे, जिनके अवशिष्ट अन्नका आप सारे शरीरमें लेपन कर लेंगे। मैं भृगुमुनि भी नहीं हूँ, जिनकी पदधूलिको

वक्षपर धारण करके आप आनन्द-सहित 'श्रीवत्स' बन जायेंगे। मेरा नाम अद्वैत है—मैं आपका शुद्ध दास हूँ। मैं जन्म-जन्मान्तरसे आपकी जूठन (प्रसादी) पानेके लिये अभिलाषी हूँ। आपकी 'जूठन' के प्रभावसे मुझे आपकी मायाकी भी परवाह नहीं है। मुझे आप सजा तो दे चुके हैं, अब कृपया चरणोंकी छाया प्रदान कीजिये।" इतना कहकर श्रीअद्वैताचार्य भक्तिपूर्वक महाप्रभुके चरणकमलोंमें माथा लगाकर पड़ गये। सम्भ्रम-सहित उठकर महाप्रभुने श्रीअद्वैताचार्यको अपनी गोदमें ले लिया और खूब रोये। श्रीअद्वैताचार्यकी भक्तिको देखकर श्रीनित्यानन्द रायने ऐसा रोदन किया, मानों नदी बह रही हो। हरिदास ठाकुर भूमिपर गिरकर रोने लगे, श्रीअद्वैताचार्यकी गृहिणी रो रही थी, जितने भी दास थे, वे सभी रो रहे थे। श्रीअद्वैताचार्यके पुत्र अच्युतानन्द भी क्रन्दन कर रहे थे। इस प्रकार श्रीअद्वैताचार्यका भवन कृष्ण-प्रेममय हो गया। श्रीअद्वैताचार्यपर प्रहार करनेके बाद महाप्रभु बड़े लज्जित हुए। उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक श्रीअद्वैताचार्यको वर प्रदान किया। महाप्रभुने कहा,—"आधे पलके लिये भी जो तुम्हारा आश्रय ग्रहण करेगा, वह चाहे पशु हो, कीट हो, पक्षी हो, पतङ्ग हो—चाहे कोई भी हो, यदि मेरे प्रति उसने सौ अपराध भी किये हों, तब भी मैं उसपर कृपा करूँगा।" महाभाग्यवान् श्रीअद्वैताचार्य ऐसा वर सुनकर क्रन्दन करने लगे और चरण पकड़कर विनयपूर्वक बोले,—"हे प्रभो! आपने जो कुछ कहा, वह कभी मिथ्या नहीं है। हे महाशय! मेरी भी एक प्रतिज्ञा है, कृपया सुन लीजिये। यदि कोई आपको आदर न देकर मेरे प्रति भक्ति करेगा, तो उसकी वह भक्ति उसका संहार करने वाली होगी। जो आपके चरणकमलोंका भजन नहीं करता है, जो आपको नहीं मानता है, वह कभी मेरा भक्त नहीं हो सकता। हे प्रभु! जो आपका भजन करता है, वह मेरा जीवन है। आपका उल्लङ्घन किया जाना मैं सहन नहीं कर सकता। भले ही मेरा पुत्र हो, अथवा मेरा किङ्कर हो, यदि वह वैष्णवोंके चरणोंमें अपराधी हो जाय, तो मैं उसका मुख भी देखना नहीं चाहता।"

'शचीमाताका दण्ड'—एक दिन महाप्रभु श्रीगौराङ्गसुन्दर विष्णुके सिंहासनपर बैठ गये। अपनी शिलामयी मूर्तियोंको अपनी गोदमें लेते हुए गौरचन्द्र आनन्दके साथ अपने स्वरूपको प्रकाशित करने लगे। महाप्रभु कहने लगे—"कलियुगमें मैं कृष्ण हूँ, मैं नारायण हूँ, मैंने रामके रूपमें सागरको बाँधा था। मैं क्षीरसागरमें सो रहा था। नाड़ाकी हुँकारने मेरी निद्रा भङ्ग कर दी। प्रेमभक्तिका वितरण करनेके लिये मेरा प्राकट्य हुआ है। अरे नाड़ा, 'माँग लो'! 'माँग लो'! श्रीनिवास, तुम भी माँग लो।" महान् प्रकाशको देखकर श्रीनित्यानन्दरायने उसी क्षण महाप्रभुके मस्तकपर छत्र धारण कर लिया। बायीं ओरसे श्रीगदाधरने ताम्बूल प्रदान किया और चारों ओर भक्तजन चामर-व्यजन करने लगे। महेश्वर गौराङ्ग महाप्रभु भक्तियोगका वितरण कर रहे थे। सभी लोग अपना-अपना मनचाहा वर महाप्रभुसे माँग रहे थे। किसीने कहा,—"मेरे पिता बहुत ही दुष्टमतिके हैं, यदि उनका चित्त अच्छा हो जाय, तो मेरी रक्षा हो जाय।" इसी प्रकार किसीने गुरुके लिये, किसीने शिष्यके लिये, किसीने पुत्रके लिये और किसीने पत्नीके लिये अपनी-अपनी रतिके अनुसार वर माँगा। महाप्रभु विश्वम्भर भक्तोंके वचनोंको सत्य करने वाले हैं। उन्होंने हँसकर सभीको प्रेम-भक्तिका वर प्रदान किया। श्रीनिवास महाशयने कहा-"प्रभो! हम सब चाहते हैं कि आइ (शचीमाता) को भी प्रेमभक्तिका वर मिल जाये।" महाप्रभु बोले,—"ऐसा मत कहना श्रीनिवास। उन्हें मैं प्रेमभक्तिका विलास प्रदान नहीं करूँगा। उन्होंने वैष्णवके चरणोंमें अपराध किया है; अतएव, उन्हें प्रेमभक्ति मिलनेमें बाधा है।" श्रीनिवासने और एक बार कहा,—"हे प्रभो! आपकी इस बातसे हमारा देह त्याग होगा। जिनके गर्भसे आप जैसे पुत्रका अवतार हुआ हो, क्या

उन्हें प्रेमयोगका अधिकार नहीं मिलेगा? जगत्की माता आइ सबकी जीवन-स्वरूप हैं। हे प्रभु! कृपया अपनी मायाको हटाइये और उन्हें भक्ति प्रदान कीजिये। हे प्रभु! आप जिनके पुत्र हैं, वे सबकी जननी हैं। पुत्रके प्रति माताका अपराध कैसा? यदि वैष्णवके प्रति कोई अपराध हुआ है, तो उसे खण्डित करके उनपर कृपा कीजिये।" महाप्रभुने कहा,—"मैं उपदेश कर सकता हूँ, परन्तु वैष्णवापराधका खण्डन नहीं कर सकता। जिस वैष्णवके प्रति जिसका अपराध होता है, केवल उसके द्वारा क्षमा किये जानेपर ही उसे अपराधसे मुक्ति मिलती है। अन्य कोई उपाय नहीं है। दुर्वासाने अम्बरीषके प्रति अपराध किया था। तुम जानते हो, उसका खण्डन (निवारण) कैसे हुआ? उनका अद्वैताचार्यके प्रति एक अपराध है। यदि अद्वैताचार्य उन्हें क्षमा कर देते हैं, तो उन्हें प्रेमभक्ति मिल जायेगी। यदि अद्वैताचार्यके चरणोंकी धूलि वे अपने सिरपर धारण कर लेती हैं, तो मेरी आज्ञासे उन्हें प्रेम भक्ति उपलब्ध हो जायेगी।"

तब सब मिलकर एकसाथ श्रीअद्वैताचार्यके पास गये और उन्हें सब कुछ बताया। सुनकर श्रीअद्वैताचार्यने विष्णुका स्मरण किया और कहने लगे,—"तुम सब मेरा जीवन लेना चाहते हो। जिनके गर्भसे मेरे प्रभुका अवतार हुआ है, वे मेरी जननी हैं और मैं उनका पुत्र हूँ। मैं जिन आइकी चरण-धूलिका पात्र हूँ, उन आइका प्रभाव मैं तिल-मात्र भी नहीं जानता हूँ। जगन्माता आइ विष्णु-भक्तिस्वरूपिणी हैं। तुम लोग ऐसी बातें क्यों कर रहे हो? प्राकृत-शब्दके रूपमें भी जो 'आइ' बोलेगा, 'आइ' शब्दके प्रभावसे उसका दुःख नहीं रहेगा। गङ्गामें और आइमें कोई भेद नहीं है। देवकी-यशोदा और आइ एक ही तत्त्व है।" आइके तत्त्वके बारेमें कहते-कहते श्रीअद्वैताचार्य आविष्ट हो गये और बाह्य ज्ञान रहित होकर भूमिपर गिर पड़े। समय और सुयोग पाकर आइ बाहर आईं एवं श्रीअद्वैताचार्यकी चरण-धूलि अपने सिरपर धारण कर ली। आइ परम वैष्णवी हैं, मूर्तिमती भक्ति हैं। विश्वम्भरको गर्भमें धारण करनेमें जिनकी सेवा-शक्ति है। उन्होंने जब आचार्यकी चरण-धूलि ग्रहण की, तब वे विह्वल होकर गिर पड़ीं और उनका बाह्य ज्ञान लुप्त हो गया।

वैष्णवमण्डली 'हरि-हरि' की ध्वनि करने लगी। सिंहासनके ऊपर विराजमान महाप्रभु हँसने लगे और प्रसन्न होकर जननीसे बोले,—"इस क्षणसे आपको विष्णुभक्ति मिल गयी, अद्वैताचार्यके प्रति अब आपका और कोई अपराध नहीं है।" महाप्रभुके श्रीमुखसे अनुग्रह-रूप वचनोंको सुनकर सभी 'जय-जय-हरि' की ध्वनि करने लगे। शिक्षागुरु भगवान्ने जननीको उपलक्ष्य करके सबको वैष्णवापराधके विषयमें सावधान रहनेके लिये कहा है।

यदि शूलपाणि (महादेव) के समान (शक्ति सम्पन्न) भी कोई व्यक्ति वैष्णवकी निन्दा करता है, तो वह विनाशको प्राप्त होता है, यही शास्त्रोंका तात्पर्य है। इसे न मानते हुए जो व्यक्ति सज्जनकी निन्दा करता है, वह पापिष्ठ जन्म-जन्ममें दैवदोषके कारण मरता है। गौरसुन्दरकी जननीको भी जब वैष्णवोंके प्रति अपराधिनी माना गया है, तब दूसरोंका क्या कहना?॥38-43॥

कमलाकान्तका दण्ड देखकर महाप्रभुके प्रति
श्रीअद्वैतके वचन :—

प्रभुरे कहेन,—"तोमार ना बुझि ए लीला।
आमा हैते प्रसादपात्र करिला कमला॥44॥

आमारेह कभु येइ ना हय प्रसाद।
तोमार चरणे आमि कि कैनु अपराध॥"45॥

अनुवाद—श्रीअद्वैताचार्यने महाप्रभुसे कहा—"मैं आपकी लीलाको समझ नहीं पा रहा हूँ। आपने मुझसे अधिक कृपा कमलाकान्तपर की है। आपने कभी मुझपर ऐसी कृपा नहीं की है। मैंने आपके चरणकमलोंमें ऐसा क्या अपराध किया है?॥"44-45॥

महाप्रभुकी हँसी और कृपा :—

एत शुनि' महाप्रभु हासिते लागिला।
बोलाइला कमलाकान्ते प्रसन्न हइला॥ 46॥

अनुवाद—यह सुनकर महाप्रभु हँसने लगे और प्रसन्न होकर कमलाकान्तको बुलाया॥ 46॥

श्रीअद्वैतकी उक्ति :—

आचार्य कहे,—"इहाके केने दिले दरशन।
दुइ प्रकारेते करे मोरे विड़म्बन॥"47॥

अनुवाद—यह देखकर श्रीअद्वैताचार्यने कहा—"आपने इसे बुलाकर दर्शन क्यों दिये हैं? इसने मुझे दो प्रकारसे छला है॥"47॥

अनुभाष्य—(दो प्रकारकी छलना)—(1) यह मुखसे तो मुझे अप्राकृत नारायण भी कहता है और (2) कार्यकलापसे मुझे प्राकृत धनकी भिक्षा करनेवाला दरिद्र मानता है॥ 47॥

शुनिया प्रभुर मन प्रसन्न हइल।
दुँहार अन्तर-कथा दुँहे से जानिल॥ 48॥

अनुवाद—यह सुनकर महाप्रभुका मन प्रसन्न हो गया। वे दोनों ही एक दूसरेके मनके भावोंको समझते हैं॥ 48॥

पागलके प्रति महाप्रभुकी उक्ति :—

प्रभु कहे,—"बाउलिया, ऐछे केने कर।
आचार्येर लज्जा-धर्म-हानि से आचर॥ 49॥

महाप्रभुके द्वारा वैष्णव-आचार्यका कर्त्तव्य निर्णय :—

प्रतिग्रह कभु ना करिबे राजधन।
विषयीर अन्न खाइले दुष्ट हय मन॥ 50॥

मन दुष्ट हइले नहे कृष्णेर स्मरण।
कृष्णस्मृति बिना हय निष्फल जीवन॥ 51॥

लोकलज्जा हय, धर्म-कीर्त्ति हय हानि।
ऐछे कर्म ना करिह कभु इहा जानि'॥"52॥

एइ शिक्षा सबाकारे, सबे मने कैल।
आचार्य-गोसाञि मने आनन्द पाइल॥ 53॥

अनुवाद—महाप्रभुने कमलाकान्तसे कहा—"हे पागल! तुम ऐसा क्यों करते हो? तुम्हारे ऐसे आचरणसे आचार्यकी लज्जा-धर्मकी हानि हुई है। कभी भी राजासे धनकी भिक्षा मत करना, क्योंकि विषयीके अन्नको खानेसे मन दूषित हो जाता है। मनके दूषित होनेसे श्रीकृष्णका स्मरण नहीं होता है और श्रीकृष्णके स्मरणके बिना जीवन निष्फल है। इससे न केवल लोक-समाजमें निन्दा होती है, अपितु धर्म और कीर्त्तिकी भी हानि होती है। इसलिये यह सब जानकर कभी भी ऐसा कर्म नहीं करना।" महाप्रभुकी यह शिक्षा सभीके लिये है और इस शिक्षाको सभीने अपने मनमें धारण कर लिया। यह देखकर श्रीअद्वैताचार्यके मनमें आनन्द हुआ॥ 49-53॥

अमृतप्रवाह भाष्य—कमलाकान्तने श्रीअद्वैताचार्यको 'ईश्वर' कहकर स्थापित करके राजासे धनके लिये याचना की थी। उसके इस प्रकारके कार्यसे महाप्रभु अत्यन्त असन्तुष्ट हुए। श्रीअद्वैताचार्य 'ईश्वर' होनेपर भी उनकी जगत्के शिक्षक रूपमें मानवलीला प्रसिद्ध है। ऋणग्रस्त होकर राजासे धनकी याचना करना आचार्यके लिये बड़ा लज्जाजनक व्यवहार है। धनकी लालसा तो सब प्रकारसे परित्यज्य है और उसपर विदेशी राजासे ऋणके परिशोधनके लिये धनकी लालसाको प्रकट करनेसे धर्मकी हानि होती है। राजा तो स्वभावतः ही विषयी होते हैं। विषयीका अन्न खानेसे चित्त दूषित होता है; चित्तके दूषित होनेसे श्रीकृष्णकी स्मृतिके अभावमें जीवन निष्फल हो जाता है। सभी लोगोंके लिये ऐसा करना निषिद्ध है और विशेषतः धर्माचार्योंके लिये यह विशेष रूपसे निषिद्ध है। आचार्यका कर्त्तव्य केवल नामोपदेश करना है। किन्तु धन लेकर जो नामका उपदेश करते हैं, वे 'नामोपदेशक' पदके योग्य नहीं हैं, अपितु वे नामापराधी हैं। ऐसा कार्य

करनेसे लोक-लज्जा और उनके धर्म एवं कीर्त्तिकी हानि होती है॥49-53॥

अमृतानुकणिका—मनुसंहिता 4/91—

"न राज्ञः प्रतिगृह्णन्ति प्रेत्य श्रेयोऽभिकाङ्क्षिणः।"

"जो परलोककी मङ्गल कामना करते हैं, उन्हें राजधन स्वीकार नहीं करना चाहिये।" हरिभक्तिविलास (11/746) में भी ऐसी उक्ति देखी जाती है—

"न राज्ञः प्रतिगृह्णीयान्न शूद्रात् पतितादपि।
नान्यस्माद् याचकत्वञ्च निन्दिताद्वर्जयेद्बुधः॥"

"राजा, शूद्र या पतित व्यक्तिसे कोई वस्तु स्वीकार नहीं करनी चाहिये एवं अन्य निन्दित व्यक्तिसे भी किसी वस्तुकी याचना नहीं करना चाहिये॥"49-53॥

महाप्रभु और श्रीअद्वैतप्रभु—एक दूसरेके मर्मज्ञ :—

आचार्येर अभिप्राय प्रभु मात्र बुझे।
प्रभुर गम्भीर वाक्य आचार्य समुझे॥54॥

एइ त' प्रस्तावे आछे बहुल विचार।
ग्रन्थ-बाहुल्येर भये नारि लिखिवार॥55॥

अनुवाद—श्रीअद्वैताचार्यके अभिप्रायको केवल महाप्रभु बूझ पाते हैं और महाप्रभुके वाक्यके गम्भीर अर्थको श्रीअद्वैताचार्य ही समझ सकते हैं। इस सम्बन्धमें अनेक विचार हैं, परन्तु ग्रन्थके विशाल होनेके भयसे मैं उन्हें यहाँ नहीं लिख रहा हूँ॥54-55॥

(5) यदुनन्दनाचार्य-शाखा :—

श्रीयदुनन्दनाचार्य—अद्वैतेर शाखा।
ताँर शाखा-उपशाखा-गणेर नाहि लेखा॥56॥

वासुदेव दत्तेर तेँहो कृपार भाजन।
सर्वभावे आश्रियाछे चैतन्य-चरण॥57॥

अनुवाद—श्रीयदुनन्दनाचार्य श्रीअद्वैताचार्यकी शाखा हैं और उनकी शाखाओं और उपशाखाओंकी गणना इतनी है कि उन्हें लिखना सम्भव नहीं है। उन्होंने वासुदेव दत्तकी कृपा प्राप्त की और सब प्रकारसे श्रीचैतन्य महाप्रभुके चरणकमलोंका आश्रय ग्रहण किया॥56-57॥

अनुभाष्य—'श्रीयदुनन्दनाचार्य'—ये श्रीरघुनाथदास गोस्वामीके पाञ्चरात्रिकी-दीक्षागुरु हैं। चैःचः अन्त्यलीला, 6/160-169 संख्या द्रष्टव्य है।

'वासुदेव दत्त'—गौरगणोद्देशदीपिका श्लोक 140—

"व्रजे स्थितौ गायकौ यौ मधुकण्ठ-मधुव्रतौ।
मुकुन्द-वासुदेवौ तौ दत्तौ गौराङ्ग-गायकौ॥140॥"

"व्रजके मधुकण्ठ और मधुव्रत नामक गायक अब श्रीमुकुन्द दत्त और श्रीवासुदेव दत्त नामक श्रीगौराङ्गदेवके गायक हैं।" चैःचः आदिलीला, 10/41 द्रष्टव्य है॥57॥

(6) भागवताचार्य, (7) विष्णुदास,
(8) चक्रपाणि, (9) अनन्त आचार्य :—

भागवताचार्य, आर विष्णुदासाचार्य।
चक्रपाणि आचार्य, आर अनन्त आचार्य॥58॥

अनुवाद—भागवाताचार्य, विष्णुदासाचार्य, चक्रपाणि आचार्य और अनन्त आचार्य, ये श्रीअद्वैताचार्यकी शाखाएँ हैं॥58॥

अनुभाष्य—'भागवताचार्य'—ये पहले श्रीअद्वैतप्रभुके गणोंमें और बादमें श्रीगदाधरके गणोंमें प्रविष्ट हुए। यदुनन्दनदासके द्वारा लिखित 'शाखा-निर्णयामृत' ग्रन्थके छठे श्लोकमें—

"वन्दे भागवताचार्यं गौराङ्ग-प्रियपात्रकम्।
येनाकारि महाग्रन्थो नाम्ना 'प्रेमतरङ्गिणी'॥"

"मैं श्रीगौराङ्ग महाप्रभुके प्रियपात्र श्रीभागवताचार्यको प्रणाम करता हूँ, जिन्होंने 'प्रेमतरङ्गिणी' नामक महाग्रन्थकी रचना की है।" श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 195 और 203वाँ श्लोक—

*"कर्पूरमञ्जरी श्याममञ्जरी **'श्वेतमञ्जरी'**।*
विलासमञ्जरी कामलेखा च मौनमञ्जरी॥195॥
निर्मिता पुस्तिका येन कृष्णप्रेमतरङ्गिणी।
***'श्रीमद्भागवताचार्यो'** गौराङ्गात्यन्तवल्लभः॥203॥"*

"श्वेतमञ्जरी श्रीगौराङ्गके अत्यन्त प्रिय वही श्रीमद्भागवताचार्य हैं, जिन्होंने 'कृष्णप्रेमतरङ्गिणी' नामक ग्रन्थकी रचना की है।" चैःचः आदिलीला, 10/113 संख्या द्रष्टव्य है।

'विष्णुदासाचार्य'—ये खेतरि-महोत्सवके समय अच्युतानन्द प्रभुके साथ गये थे (भक्तिरत्नाकर की दशम तरङ्ग द्रष्टव्य है)।

'अनन्त आचार्य'—श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 165वाँ श्लोक—

"अनन्ताचार्यगोस्वामी या सुदेवी पुरा व्रजे॥ 165॥"

"व्रजकी सुदेवी अब श्रीअनन्ताचार्य गोस्वामी हैं।" ये श्रीअद्वैतप्रभुके गणोंमें रहनेपर भी, बादमें श्रीगदाधर-शाखामें प्रविष्ट हुए। चैःचः आदिलीला 8वाँ अध्याय संख्या 59-60 द्रष्टव्य है। शाखा-निर्णयामृत 11 श्लोक—

"वन्देऽनन्ताद्भुतरसमनन्ताचार्यसंज्ञकम्।
लीलानन्ताद्भुतमयं गौरप्रेम्णो हि भाजनम्॥"

इनके शिष्य हरिदास पण्डित गोस्वामी वृन्दावनमें श्रीगोविन्ददेवजीकी सेवाके अध्यक्ष थे। उनके शिष्य श्रीराधाकृष्ण गोस्वामी 'साधन-दीपिका' ग्रन्थके रचयिता हैं (भक्तिरत्नाकर द्वितीय तरङ्ग)॥ 58॥

(10) नन्दिनी, (11) कामदेव, (12) चैतन्यदास,
(13) दुर्लभविश्वास, (14) वनमालिदास :—

नन्दिनी, आर कामदेव, चैतन्यदास।
दुर्लभविश्वास, आर वनमालिदास॥ 59॥

अनुवाद—नन्दिनी, कामदेव, चैतन्यदास, दुर्लभ विश्वास और वनमाली दास श्रीअद्वैताचार्यकी अन्य शाखाएँ हैं॥ 59॥

अनुभाष्य—'नन्दिनी'—श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 89वाँ श्लोक—

"नन्दिनी जङ्गली ज्ञेया जया च विजया क्रमात्॥ 89॥"

"श्रीसीतादेवीकी परिचारिका और शिष्या जया अब नन्दिनी हुई हैं।" ये सम्भवतः श्रीसीतादेवीकी गर्भजात श्रीअद्वैताचार्यकी कन्या हैं (?)॥ 59॥

(15) जगन्नाथ, (16) भवनाथ कर,
(17) हृदयानन्द, (18) भोलानाथ :—

जगन्नाथ कर, आर कर भवनाथ।
हृदयानन्द सेन, आर दास भोलानाथ॥ 60॥

(19) यादव, (20) विजय, (21) जनार्द्दन,
(22) अनन्तदास, (23) कानुपण्डित, (24) नारायण :—

यादवदास, विजयदास, जनार्द्दन।
अनन्तदास, कानुपण्डित, दास नारायण॥ 61॥

(25) श्रीवत्स, (26) हरिदास ब्रह्मचारी, (27) पुरुषोत्तम
और (28) कृष्णदास ब्रह्मचारी :—

श्रीवत्स पण्डित, ब्रह्मचारी हरिदास।
पुरुषोत्तम ब्रह्मचारी, आर कृष्णदास॥ 62॥

(29) पुरुषोत्तम पण्डित, (30) रघुनाथ,
(31) वनमाली, (32) वैद्यनाथ :—

पुरुषोत्तम पण्डित, आर रघुनाथ।
वनमाली कविचन्द्र, आर वैद्यनाथ॥ 63॥

(33) लोकनाथ, (34) मुरारि पण्डित,
(35) हरिचरण, (36) माधव पण्डित :—

लोकनाथ पण्डित, आर मुरारि पण्डित।
श्रीहरिचरण, आर माधव पण्डित॥ 64॥

अनुवाद—जगन्नाथ कर, भवनाथ कर, हृदयानन्द सेन और भोलानाथ दास, यादवदास, विजयदास, जनार्द्दन, अनन्तदास, कानुपण्डित, नारायण दास, श्रीवत्स पण्डित, हरिदास ब्रह्मचारी, पुरुषोत्तम ब्रह्मचारी, कृष्णदास, पुरुषोत्तम पण्डित, रघुनाथ, वनमाली कविचन्द्र, वैद्यनाथ, लोकनाथ पण्डित, मुरारि पण्डित, श्रीहरिचरण और माधव पण्डित श्रीअद्वैताचार्यकी अन्य शाखाएँ हैं॥ 60-64॥

अनुभाष्य—'हरिदास ब्रह्मचारी' की गणना श्रीअद्वैताचार्य और श्रीगदाधर पण्डित, दोनोंके गणोंमें होती है। शाखानिर्णयामृतके नौवें श्लोकमें—

"श्रीयुतं हरिदासाख्यं ब्रह्मचारिमहाशयम्।
परमानन्द-सन्दोहं वन्दे भक्त्या मुदाकरम्॥"

"श्रीहरिदास ब्रह्मचारी नामक महाशय परमानन्दके

भण्डार, जो भक्तोंको आनन्द प्रदान करनेवाले हैं, मैं उनकी वन्दना करता हूँ॥"62॥

(37) विजय, (38) श्रीराम पण्डित :—

विजय पण्डित, आर पण्डित श्रीराम।
असंख्य अद्वैत-शाखा कत लइब नाम॥65॥

अनुवाद—विजय पण्डित और श्रीराम पण्डित भी श्रीअद्वैताचार्यकी शाखा हैं। श्रीअद्वैताचार्यकी असंख्य शाखाएँ हैं, मैं कितनोंका नाम उल्लेख करूँ?॥65॥

अनुभाष्य—'श्रीराम पण्डित'—ये श्रीवास पण्डितके छोटे भाई हैं। श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 90वाँ श्लोक—

"पर्वताख्यो मुनिवरो य आसीन्नारदप्रियः।
स रामपण्डितः श्रीमांस्तत् कनिष्ठसहोदरः॥90॥"

"श्रीनारदके अत्यन्त प्रिय श्रीपर्वत नामक श्रेष्ठ मुनि ही अब श्रीवास पण्डितके कनिष्ठ भ्राता श्रीमान् राम पण्डित हैं।" चैःचः मध्यलीला, 13/39 संख्या द्रष्टव्य है॥65॥

श्रीगौरकृपाके बलपर सारग्राही-अद्वैतदासोंकी वृद्धि :—

मालि-दत्त जल अद्वैत-स्कन्ध योगाय।
सेइ जले जीये शाखा,—फुल, फल हय॥66॥

अनुवाद—मूल माली श्रीचैतन्य महाप्रभुके द्वारा दिया गया जल श्रीअद्वैत स्कन्धके माध्यमसे उसकी शाखाओं तक पहुँचा, जिसके कारण वे फूल और फलोंसे लद गयीं॥66॥

दुर्भाग्यसे असार अद्वैतदासाभिमानियोंके द्वारा
ही श्रीगौर-विरोध और श्रीगौरकृपाके
अभावसे उनका ध्वंस :—

इहार मध्ये मालि-पाछे कोन शाखागण।
ना माने चैतन्य-माली दुर्दैव कारण॥67॥
सृजाइल, जीयाइल, ताँरे ना मानिला।
कृतघ्न हइला, ताँरे स्कन्ध क्रु
क्रु
जलाभावे कृश शाखा शुकाइया मरे॥69॥

अनुवाद—पहले श्रीअद्वैताचार्यके सभी शिष्य महाप्रभुको मानते थे, परन्तु महाप्रभुके अप्रकट होनेके बाद श्रीअद्वैताचार्यके कोई-कोई शिष्य अपने दुर्भाग्यके कारण उनके मार्गसे भटक गये। महाप्रभुरूपी जिस स्कन्धने उनको जन्म दिया और उनका पालन-पोषण किया, श्रीअद्वैताचार्यकी कुछ शाखाएँ (शिष्य) उसको न मानकर कृतघ्न हो गयीं, इस कारण स्कन्ध (श्रीअद्वैताचार्य) उनपर क्रोधित हो गये। क्रोधित होकर स्कन्धने उनमें जलका सञ्चार बन्द कर दिया। जलके अभावसे क्षीण वे शाखाएँ सूखकर मर गयीं॥67-69॥

श्रीगौरकृष्णभक्त—यमके गुरु,
श्रीगौरकृष्णविमुख—यमके द्वारा दण्डयोग्य :—

चैतन्य-रहित देह—शुष्ककाष्ठ-सम।
जीवितेइ मृत सेइ, मैले दण्डे यम॥70॥
केवल ए गण-प्रति नहे एइ दण्ड।
चैतन्य-विमुख येइ सेइ त' पाषण्ड॥71॥
कि पण्डित, कि तपस्वी, किवा गृही, यति।
चैतन्य-विमुख येइ, तार एइ गति॥72॥

अनुवाद—चेतनारहित देह जैसे सूखी लकड़ीके समान है, वैसे ही श्रीकृष्णभक्तिरहित मनुष्य जीवित होते हुए भी मृतके समान है और मरनेके बाद उसे यमराजका दण्ड भोगना पड़ता है। ऐसा दण्ड केवल भटके हुए श्रीअद्वैताचार्यके गणोंके लिये ही नहीं है, अपितु यह श्रीचैतन्य महाप्रभुसे विमुख सभी जीवोंके लिये है, क्योंकि वे सभी पाखण्डी हैं। क्या पण्डित, क्या तपस्वी, क्या गृहस्थ और क्या संन्यासी, जो भी श्रीचैतन्य महाप्रभुसे विमुख हैं, उनकी यही गति है॥70-72॥

अनुभाष्य—(भाः 6/3/29) में जैसा यमराजजीने अपने दूतोंसे कहा—

"जिह्वा न वक्ति भगवद्गुणनामधेयं,
चेतश्च न स्मरति तच्चरणारविन्दम्।
कृष्णाय न नमति यच्छिर एकदापि,
तानानयध्वमसतोऽकृतविष्णुकृत्यान्॥"

"हे दूतों! जिनकी जिह्वा एकबार भी श्रीकृष्णनाम-गुणादिका कीर्तन नहीं करती, जिनका चित्त एकबार भी श्रीकृष्णके पादपद्मका स्मरण नहीं करता, जिनका मस्तक एक बार भी श्रीकृष्णको नमन नहीं करता, ऐसे असत् लोगोंको ही मेरे पास लाना, क्योंकि वे कुछ भी विष्णुभक्तिका कार्य नहीं करते हैं॥"70॥

केवल अच्युतके अनुगतजन ही सारग्राही श्रीगौरभक्त और श्रीअद्वैत-कृपाप्राप्त :—

ये ये लैल श्रीअच्युतानन्देर मत।
सेइ आचार्येर गण—महाभागवत॥ 73॥
सेइ सेइ आचार्येर कृपार भाजन।
अनायासे पाइल सेइ चैतन्य-चरण॥ 74॥

अनुवाद—जिन्होंने श्रीअच्युतानन्दके मतको ग्रहण किया, वे ही श्रीअद्वैताचार्यके गण महाभागवत हैं। वे ही श्रीअद्वैताचार्यकी कृपाके पात्र हैं और उन्होंने अनायास ही श्रीचैतन्य महाप्रभुके चरणकमलोंको प्राप्त किया है॥ 73-74॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीअद्वैतप्रभु भक्ति-कल्पवृक्षके एक स्कन्ध हैं। श्रीचैतन्य महाप्रभुने मालीके रूपमें जल सिञ्चन करके उस स्कन्ध और उसकी शाखाओंको पुष्ट किया, तथापि दुर्भाग्यवश किसी-किसी शाखाने मालीके अप्रकट होनेके बाद मालीको न मानकर केवल स्कन्धको ही कल्पवृक्षका कारण कहकर निर्देश किया। इसलिये स्कन्धरूप श्रीअद्वैतप्रभुने वृक्षके सृष्टिकर्त्ता और पालक श्रीचैतन्य महाप्रभुको कृतघ्नताके कारण ना माननेपर उन सब पापी-शाखाओंको जल देना बन्द कर दिया। इस कारण जलके अभावसे क्षीण हुई शाखाएँ सूखकर मरने लगीं। केवलमात्र इन्हीं शाखाओंके लिये ही यह दण्ड है, ऐसा नहीं है। सामान्यतः क्या पण्डित, क्या तपस्वी, क्या गृहस्थ और क्या संन्यासी, (प्रत्येक ही) श्रीचैतन्य महाप्रभुसे विमुख होनेसे ही पाखण्डी हो जाते हैं। जिन सब महात्माओंने श्रीअच्युतानन्दके मतको ग्रहण किया था, वे ही श्रीअद्वैताचार्यप्रभुके गणोंमें 'महाभागवत' हैं॥ 67-73॥

इति अमृतप्रवाह भाष्ये द्वादश परिच्छेद।
बारहवें अध्यायका अमृतप्रवाह भाष्य सम्पूर्ण हुआ।

उन सब शुद्धभक्तोंकी वन्दना :—

सेइ आचार्यगणे मोर कोटी नमस्कार।
अच्युतानन्द-प्राय, चैतन्य—जीवन याँहार॥ 75॥

अनुवाद—श्रीअच्युतानन्दके समान जिनके श्रीचैतन्य महाप्रभु जीवन-स्वरूप हैं, उन आचार्योंको मेरा कोटि-कोटि प्रणाम है॥ 75॥

एइ त' कहिलाङ आचार्य-गोसाञिर गण।
तिन स्कन्धेर कैल शाखार संक्षेप गणन॥ 76॥
शाखार उपशाखा, तार नाहिक गणन।
किछुमात्र करि' कहि' दिग्दरशन॥ 77॥

अनुवाद—यह मैंने श्रीअद्वैताचार्य गोस्वामीके गणोंका वर्णन किया है। अभी तक मैंने संक्षेपमें तीन स्कन्धोंकी शाखाओंका वर्णन किया। इन शाखाओंकी उपशाखाओंकी तो गिनती ही नहीं है, मैंने केवल कुछ वर्णन करके उनका दिग्दर्शनमात्र करवाया है॥ 76-77॥

श्रीगदाधरके शिष्य अथवा उपशाखासमूह :—

श्रीगदाधर पण्डित-उपशाखा महोत्तम।
ताँर शाखागण किछु करि ये गणन॥ 78॥

अनुवाद—श्रीचैतन्य महाप्रभुकी शाखाओंमें श्रीगदाधर पण्डित सर्वोत्तम हैं। उनकी कुछ शाखाओंका मैं वर्णन करूँगा॥ 78॥

(1) ध्रुवानन्द, (2) श्रीधर, (3) हरिदास ब्रह्मचारी और (4) रघुनाथ भागवताचार्य :—

शाखा-श्रेष्ठ ध्रुवानन्द, श्रीधर ब्रह्मचारी।
भागवताचार्य, हरिदास ब्रह्मचारी॥ 79॥

अनुवाद—ध्रुवानन्द, श्रीधर ब्रह्मचारी, भागवताचार्य और हरिदास ब्रह्मचारी, ये श्रीगदाधर पण्डितकी चार श्रेष्ठ शाखाएँ हैं॥ 79॥

अनुभाष्य—'ध्रुवानन्द ब्रह्मचारी'—श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 152वाँ श्लोक—

"ध्रुवानन्दब्रह्मचारी ललितेत्यपरे जगुः।
स्वप्रकाशविभेदेन समीचीनं मतन्तु तत्॥ 152॥"

"कोई-कोई कहते हैं कि ध्रुवानन्द ब्रह्मचारी ललिता हैं। यह विचार भी स्वप्रकाश अर्थात् श्रीललितादेवीके प्रकाशके विशेष भेदके कारण सुसङ्गत है।" शाखानिर्णयामृत 4—

"ध्रुवानन्दमहं वन्दे सदोज्ज्वलविलासिनम्।
स्व-स्वभावं ददौ यस्मै कृपया श्रीगदाधरः॥"

'श्रीधर ब्रह्मचारी'—(श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 194 एवं 199वाँ श्लोक)—

*"मालती **'चन्द्रलतिका'** मञ्जुमेधा वराङ्गदा।*
रत्नावली च कमला गुणचूडा सुकेशिनी॥ 194॥
*शुभानन्दो द्विजो **'ब्रह्मचारी श्रीधरनामकः'**।*
परमानन्दगुप्तो यत्कृता कृष्णस्तवावली॥ 199॥"

"पूर्वमें व्रजकी चन्द्रलतिका अब श्रीधर ब्रह्मचारी हैं।" शाखानिर्णयामृत 5—

"श्रीश्रीधरं सुदामाख्यं ब्रह्मचारिणमद्भुतम्।
प्रेमामृतमयं सर्वं गौरलीलाविलासकम्॥"॥ 79॥

(5) अनन्ताचार्य, (6) कविदत्त, (7) नयनमिश्र, (8) गङ्गामन्त्री, (9) मामुठाकुर, (10) कण्ठाभरण :—

अनन्त आचार्य, कविदत्त, मिश्र नयन।
गङ्गामन्त्री, मामु ठाकुर, कण्ठाभरण॥ 80॥

अनुवाद—अनन्त आचार्य, कविदत्त, नयन मिश्र, गङ्गामन्त्री, मामु ठाकुर और कण्ठाभरण, श्रीगदाधर पण्डितकी अन्य शाखाएँ हैं॥ 80॥

अनुभाष्य—'कविदत्त'—शाखानिर्णयामृत 14—

"महाभाव-चमत्काररूप-नित्यं स्वभावजम्।
राधाकृष्णौ यस्य हृदि वन्दे तं कविदत्तकम्॥"

(श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 197वाँ और 207वाँ श्लोक)—

*"**कलकण्ठी** कुरङ्गाक्षी चन्द्रिका चन्द्रशेखरा।*
या याः स्वयोग्यसेवायां नियुक्ताः सन्ति राधया॥ 197॥
हर्याचार्यो गौरसङ्गी मिश्रः श्रीनयनस्तथा।
***कविदत्तो** रामदासश्चिरञ्जीव-सुलोचनौ॥ 207॥"*

"ये व्रजकी कलकण्ठी हैं।"

'नयनमिश्र'—श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 196वाँ और 207वाँ श्लोक—

"गन्धोन्मादा रसोन्मादा चन्द्रिका कलभाषिणी।
*गोपाली हरिणी काली कालाक्षी **नित्यमञ्जरी**॥ 196॥*

"ये व्रजकी नित्यमञ्जरी हैं।" शाखानिर्णयामृत 1ला श्लोक—

"वन्दे श्रीनयनानन्दं मिश्रं प्रेम-सुधार्णवम्।
गदाधरस्य गौरस्य प्रेमरत्नैकभाजनम्॥"

"श्रीनयनानन्द मिश्रकी मैं वन्दना करता हूँ जो प्रेमामृतके समुद्र हैं। वे श्रीगदाधर और गौरचन्द्रके प्रेमरत्नके ऐकान्तिक पात्र हैं।"

'गङ्गामन्त्री'—(श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 196वाँ और 205 श्लोक)—

"ईशानाचार्य-कमलौ लक्ष्मीनाथाख्य-पण्डितः।
***गङ्गामन्त्री** जगन्नाथो मामूपाधिर्द्विजोत्तमः॥ 205॥"*

"ये व्रजकी चन्द्रिका हैं।" शाखानिर्णयामृत 16 श्लोक—

"गङ्गामन्त्रिणमीड़ेऽहं सेवासौख्यविलासिनम्।
नामप्रेमप्रकाशार्थं स्वर्धुन्या यः सुमन्त्रितः॥"

'मामु ठाकुर'—श्रीमहाप्रभु इन्हें 'मामा' कहकर पुकारते थे। इसलिये लोग इन्हें 'मामुठाकुर' कहते थे। पूर्वी बङ्गाल और उत्कल-देशमें मामाको 'मामु' कहते हैं।

इनका वास्तविक नाम जगन्नाथ चक्रवर्ती है, ये नीलाम्बर चक्रवर्तीके भतीजे हैं। इनका निवास फरिदपुर जिलाके मगडोबा गाँवमें है। श्रीगदाधरके अप्रकट होनेके पश्चात् मामुठाकुर पुरीके 'श्रीटोटा-गोपीनाथ' के सेवाधिकारी बने थे। श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 196वाँ और 205वाँ श्लोकके अनुसार ये व्रजकी 'कलभाषिणी' हैं। शाखानिर्णयामृत 17श्लोक—

"यः प्रेमणा गौरचन्द्रेण परिवारगणैः सह।
उत्कले भाषितो मामुस्तं वन्दे मामुठाकुरम्॥"

टोटा-गोपीनाथके सेवकगणोंकी गुरु-प्रणाली (1) श्रीगदाधर पण्डित गोस्वामी (श्रीमती राधिका, अन्य मतमें सौभाग्य-मञ्जरी), (2) उनके अनुगत श्रीजगन्नाथ चक्रवर्ती 'मामु' गोस्वामी (श्रीरूप-मञ्जरी?), (3) उनके अनुगत रघुनाथ गोस्वामी, (4) रामचन्द्र, (5) राधावल्लभ, (6) कृष्णजीवन, (7) श्यामसुन्दर, (8) शान्तामणि, (9) हरिनाथ, (10) नवीनचन्द्र, (11) मतिलाल, (12) दयामयी, (13) कुञ्जबिहारी।

'कण्ठाभरण'—इनका नाम श्रीअनन्त चट्टराज है। श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 196वाँ और 206ठा श्लोक—

"श्रीकण्ठाभरणोपाधिरनन्तश्चट्टवंशजः।
हस्तिगोपालनामा च रङ्गवासी च वल्लभः॥206॥"

"व्रजकी गोपाली अब चट्टवंशमें जन्म लेनेवाले कण्ठाभरण उपाधिसे विभूषित श्रीअनन्त हैं।" शाखानिर्णयामृत 18 श्लोक—

"लीलाकलापसंयुक्तं राधाकृष्णरसात्मकम्।
श्रीकण्ठाभरणं वन्दे तयोः कण्ठावतारकम्॥"॥80॥

(11) भूगर्भ गोस्वामी, (12) भागवतदास :—

भूगर्भ गोसाञि, आर भागवत दास।
येइ दुइ आसि' कैल वृन्दावने वास॥81॥

अनुवाद—अन्य प्रमुख शाखाएँ भूगर्भ गोस्वामी और भागवत दास हैं, जिन्होंने आकर वृन्दावनमें वास किया॥81॥

अनुभाष्य—'भूगर्भ गोस्वामी'—श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 187वाँ श्लोक—

"भूगर्भठक्कुरस्यासीत् पूर्वाख्या प्रेममञ्जरी॥187(क)॥"

"ये व्रजकी 'प्रेममञ्जरी' हैं।" ये श्रीलोकनाथ गोस्वामीके अभिन्न हृदय सुहृद हैं। शाखानिर्णयामृत 24 श्लोक—

"गोस्वामिनश्च भूगर्भं भूगर्भोत्थं सुविश्रुतम्।
सदा महाशयं वन्दे कृष्णप्रेमप्रदं प्रभुम्॥
श्रील-गोविन्द-देवस्य सेवा सुखविलासिनम्।
दयालुं प्रेमदं स्वच्छं नित्यमानन्दविग्रहम्॥"

'भागवत दास'—शाखानिर्णयामृत 31 श्लोक—

"भूगर्भसङ्गिनं वन्दे श्रीभागवतदासकम्।
सदा राधाकृष्ण-लीला-गानमण्डितमानसम्।"

"भूगर्भ गोस्वामीके सङ्गी श्रीभागवतदासकी मैं वन्दना करता हूँ, जिनका हृदय सदा श्रीराधाकृष्णकी लीलाओंके गानसे मण्डित रहता है।"॥81॥

(13) वाणीनाथ ब्रह्मचारी, (14) वल्लभचैतन्य :—

वाणीनाथ ब्रह्मचारी—बड़ महाशय।
वल्लभचैतन्यदास—कृष्णप्रेममय॥82॥

अनुवाद—वाणीनाथ ब्रह्मचारी बड़े महात्मा हैं और वल्लभचैतन्यदास सदा कृष्णप्रेममें डूबे रहते हैं॥82॥

अनुभाष्य—'वाणीनाथ ब्रह्मचारी'—शाखानिर्णयामृत 32 श्लोक—

"भक्त-सङ्घट्टभक्ताख्यं भक्तवृन्देन राजितम्।
ब्रह्मचारिणमीड़े तं वाणीनाथ-महाशयम्॥"

चैःचः आदिलीला 10/114 संख्या द्रष्टव्य है।

'वल्लभचैतन्य'—शाखानिर्णयामृत 33 श्लोक—

"कृष्णप्रेममयं स्वच्छं परमानन्ददायिनम्।
वन्दे वल्लभचैतन्यं लीलागानयुतान्तरम्॥"॥82॥

(15) श्रीनाथ, (16) उद्धव,
(17) जितामित्र, (18) जगन्नाथ :—

श्रीनाथ चक्रवर्ती, आर श्रीउद्धवदास।
जितामित्र, काष्ठकाटा-जगन्नाथदास॥83॥

(19) हरि आचार्य, (20) पुरिया गोपाल,
(21) कृष्णदास ब्रह्मचारी, (22) पुष्पगोपाल :—

श्रीहरि आचार्य, दास-पुरियागोपाल।
कृष्णदास ब्रह्मचारी, पुष्पगोपाल॥ 84॥

(23) श्रीहर्ष, (24) रघुमिश्र, (25) लक्ष्मीनाथ,
(26) चैतन्यदास, (27) रघुनाथ :—

श्रीहर्ष, रघुमिश्र, पण्डित लक्ष्मीनाथ।
बङ्गवाटी-चैतन्यदास, श्रीरघुनाथ॥ 85॥

अनुवाद—श्रीनाथ चक्रवर्ती, श्रीउद्धव दास, जितामित्र, काष्ठकाटाके जगन्नाथदास, श्रीहरि आचार्य, सादीपुरवासी गोपाल दास, कृष्णदास ब्रह्मचारी, पुष्पगोपाल, श्रीहर्ष, रघुमिश्र, लक्ष्मीनाथ पण्डित, बङ्गवाटी-चैतन्यदास और श्रीरघुनाथ, श्रीगदाधर पण्डितकी अन्य शाखाएँ हैं॥ 83-85॥

अनुभाष्य—'श्रीनाथ चक्रवर्ती'—शाखानिर्णयामृत 13 श्लोक—

"वन्दे श्रीनाथनामानं पण्डितं सद्गुणाश्रयम्।
कृष्णसेवापरिपाटी यत्नैर्येन सुसेविता॥"

'उद्धवदास'—शाखानिर्णयामृत 35 श्लोक—

"अतिदीनजने पूर्ण-प्रेमवित्तप्रदायकम्।
श्रीमदुद्धवदासाख्यं वन्देऽहं गुणशालिनम्॥"

'जितामित्र'—श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 202रा श्लोक—

"रिपवः षट् काममुख्या जिता येन वशीकृताः।
यथार्थनामा गौरेण जितामित्रः स निर्मितः॥ 202॥"

"श्याममञ्जरी वही जितामित्र हैं, जिन्होंने काम आदि प्रमुख छह शत्रुओंको जीतकर वशीभूत कर लिया था और जिन्हें श्रीमन्महाप्रभुने उनके गुणोंके अनुरूप यथार्थ नाम प्रदान किया था।" शाखानिर्णयामृत 36 श्लोक—

"यस्य श्रीपुस्तकं कृष्ण-माधुर्य-प्रेमपोषकम्।
जितामित्रमहं वन्दे सर्वाभीष्टप्रदायकम्॥"

'जगन्नाथदास'—इनका निवास ढाका-विक्रमपुरके अन्तर्गत काष्ठाकाटा (काठादिया) नामक ग्राममें है। इनके वंशधर अब आड़ियल-ग्राममें, कामारपाड़ा और पाइकपाड़ा-ग्राममें वास करते हैं। इनके द्वारा प्रतिष्ठित 'यशोमाधव' विग्रहकी सेवा आड़ियलके 'गोस्वामी' गण करते हैं। ये श्रीरूप गोस्वामी पादके द्वारा रचित 'कृष्णगणोद्देश' में वर्णित समसमाजमें स्थित चौंसठ सखियोंमेंसे छब्बीसवीं सखी, चित्रादेवीकी उपसखी 'तिलकिनी' हैं। 142वाँ श्लोक—

"रसालिका तिलकनी सौरसेनी सुगन्धिका॥"

इनकी वंशधारा इस प्रकार है—(2) रामनृसिंह, (3) रामगोपाल, (4) रामचन्द्र, (5) सनातन, (6) मुक्ताराम, (7) गोपीनाथ, (8) गोलोक, (9) हरिमोहन शिरोमणि, (10) राखालराज।

उपरोक्त (7) गोपीनाथके कनिष्ठ पुत्र—(8) माधव, (9) लक्ष्मीकान्त।

सूर्यदास सरखेलके द्वारा रचित 'भोगनिर्णय-पद्धति' में—

"ततः सुचित्रायूथाश्च ये महान्तो भवन्ति तान्।
जगन्नाथाख्यदासश्च ठक्कुरो जगदीशकः॥"

शाखानिर्णयामृत 48 श्लोक—

"वन्दे जगन्नाथदासं काष्ठकाटेति विश्रुतम्।
दत्तं येन त्रैपुरे च श्रीहरिनाममङ्गलम्॥"

'श्रीहरि आचार्य'—श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 196 एवं 207वाँ श्लोकके अनुसार पहले व्रजकी 'कालाक्षी' अब श्रीहरि आचार्य हैं। शाखानिर्णयामृत 37 श्लोक—

"हरिदासाचार्यं बङ्गदेशनिवासिनम्।
वन्दे तं परया भक्त्या सोज्ज्वलेनोज्ज्वलीकृतम्॥"

'पुरिया गोपालदास'—शाखानिर्णयामृत 38 श्लोक—

"वन्दे गोपालदासाख्यं सादिपुर-निवासिनम्।
राधाकृष्णप्रेमरसैः प्लावितं विक्रमं पुरम्॥"

"मैं सादीपुर निवासी गोपालदासकी वन्दना करता हूँ, जिन्होंने विक्रमपुरको श्रीराधाकृष्णके प्रेमरससे आप्लावित कर दिया।" अर्थात् ये विक्रमपुरमें हरिनाम प्रचारक थे।

'कृष्णदास ब्रह्मचारी'—श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 164वाँ श्लोक—

"इन्दुलेखा व्रजे यासीच्छ्र
कृष्णदासब्रह्मचारी कृतवृन्दावनस्थितिः॥164॥"

"पहले व्रजमें जो श्रीराधाकी सखी इन्दुलेखा थीं, वे अब श्रीकृष्णदास ब्रह्मचारी हैं। इन्होंने श्रीवृन्दावनको अपना वासस्थान बनाया है।" शाखानिर्णयामृत 41 श्लोक—

"कृष्णदास-ब्रह्मचारी-कृष्णप्रेम-प्रकाशकम्।
वन्दे तमुज्ज्वलधियं वृन्दावननिवासिनम्॥"

'पुष्पगोपाल'—शाखानिर्णयामृत 39 श्लोक—

"पुष्पगोपालनामानं वन्दे प्रेमविलासिनम्।
स्वरसैः पुष्पितः स्वर्णग्रामको नामधेयतः॥"

'श्रीहर्ष'—(श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 194 एवं 201वाँ श्लोक)—

"मालती चन्द्रलतिका मञ्जुमेधा वराङ्गदा।
*रत्नावली च कमला गुणचूडा **सुकेशिनी**॥194 ॥*
*सुबुद्धिमिश्रः **श्रीहर्षो** रघुमिश्रो द्विजोत्तमः॥201॥"*

"पहले व्रजमें जो 'सुकेशिनी' थीं, वे ही अब श्रीहर्ष हैं।" शाखानिर्णयामृत 40 श्लोक—

"वन्दे श्रीहर्षमिश्राख्यं कृष्णप्रेमविनोदिनम्।
गौरप्रेम्णा मत्तचित्तं महानन्दरसाङ्कुरम्॥"

'रघुमिश्र'—श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 195वें एवं 201वें श्लोकके अनुसार पहले व्रजमें जो 'कर्पूरमञ्जरी' थीं, वे ही अब श्रीरघुमिश्र हैं।

'लक्ष्मीनाथ पण्डित'—श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 196वें एवं 205वें श्लोकके अनुसार पहले व्रजमें जो 'रसोन्मादा' थीं, वे ही अब श्रीलक्ष्मीनाथ पण्डित हैं। शाखानिर्णयामृत 42 श्लोक—

"व्रजलक्ष्मीनाथदासं करुणालयविग्रहम्।
महाभावान्वितं वन्दे व्रजसौभाग्यदायकम्॥"

'बङ्गवाटी-चैतन्यदास'—श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 196वें एवं 206वें श्लोकके अनुसार पहले व्रजमें जो 'काली' थीं, वे ही अब रङ्गवासी वल्लभ (श्रीबङ्गवाटी-चैतन्यदास) हैं। शाखानिर्णयामृत 43 श्लोक—

"बङ्गवाट्याः श्रीचैतन्यदासं वन्दे महाशयम्।
सदा प्रेमाश्रुरोमाञ्च-पुलकाञ्चितविग्रहम्॥"

इनकी शाखा-परम्परा—(2) मथुराप्रसाद, (3) रुक्मिणी-कान्त, (4) जीवनकृष्ण, (5) युगलकिशोर, (6) रतनकृष्ण, (7) राधामाधव, (8) ऊषामणि, (9) वैकुण्ठनाथ, (10) लालमोहन साहा शंखनिधि (ढाकावासी)।

'श्रीरघुनाथ'—शाखानिर्णयामृत 44 श्लोक—

"वन्दे श्रीरघुनाथाख्यं प्रेमकन्दमहाशयम्।
यन्नामश्रवणेनैव वृन्दावनरसं लभेत्॥"

श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 194वाँ एवं 200वाँ श्लोक—

"रघुनाथो द्विजः कश्चिद्गौराङ्गानन्यसेवकः।
कंसारिसेनः सेनः श्रीजगन्नाथो महाशयः॥200॥"

"पहले व्रजमें जो 'वराङ्गदा' थीं, वे ही अब श्रीरघुनाथ हैं॥"83-85॥

(28) अमोघ, (29) हस्तिगोपाल, (30) चैतन्यवल्लभ, (31) यदु, (32) मङ्गलवैष्णव :—

अमोघ पण्डित, हस्तिगोपाल, चैतन्यवल्लभ।
यदु गाङ्गुलि आर मङ्गल वैष्णव॥86॥

अनुवाद—अमोघ पण्डित, हस्तिगोपाल, चैतन्यवल्लभ, यदु गाङ्गुलि और मङ्गल वैष्णव भी श्रीगदाधर पण्डितकी अन्य शाखाएँ हैं॥86॥

अनुभाष्य—'अमोघ पण्डित'—शाखानिर्णयामृत 59 श्लोक—

"अमोघपण्डितं वन्दे श्रीगौरेणात्मसात्कृतम्।
प्रेमगद्गद्सान्द्राङ्गं पुलकाकुलविग्रहम्॥"

'हस्तिगोपाल'—श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 196वें एवं 206वें श्लोकके अनुसार ये व्रजकी हरिणी हैं। शाखानिर्णयामृत 61 श्लोक—

"हस्तिगोपालदासाख्यं प्रेममत्तकलेवरम्।
नमामि परया भक्त्या गौरप्रेममयं परम्॥"

'चैतन्यवल्लभ'—शाखानिर्णयामृत 60 श्लोक—

"चैतन्यवल्लभं नाम वन्दे प्रेमरसालयम्।
गदाधरस्य गौरस्य गुणगानाभिलाषिणम्॥"

'यदु गाङ्गुलि'—शाखानिर्णयामृत 34 श्लोक—

"यदुनाथ-चक्रवर्त्ती-लीलाभागवताभिधम्।
प्रेमकन्दं महाभिज्ञं वन्दे भक्त्या महाशयम्॥"

वर्धमान जिलामें शालिग्राम-चानक निवासी श्रीनलिनाक्ष ठाकुर इस शाखाके वंशधर हैं।

'मङ्गल वैष्णव'—शाखानिर्णयामृत 47 श्लोक—

"मङ्गलं वैष्णवं वन्दे शुद्धचित्तकलेवरम्।
वृन्दावनेशयोर्लीलामृतस्निग्धकलेवरम्॥"

इनका निवास मुर्शिदाबादके अन्तर्गत टिटकणा-ग्राममें था। इनके पितृकुल मुर्शिदाबादकी देवी किरीटेश्वरीके सेवायेत थे। कहा जाता है कि इन्होंने पहले वृहद्व्रत स्वीकार करके घरको त्याग दिया और बादमें मयनाडालमें अपने शिष्य प्राणनाथ अधिकारीकी कन्यासे विवाह किया। इनके वंशधर काँदड़ाके ठाकुरके रूपमें प्रसिद्ध हैं। काँदड़ा वर्द्धमान जिलाके काटोयाके पास गाँवका नाम है।

मङ्गल ठाकुर महाशयके प्रसिद्ध शिष्योंमें मयनाडालके प्राणनाथ अधिकारी, काँकड़ा-निवासी पुरुषोत्तम चक्रवर्ती और मयनाडालके नृसिंहप्रसाद मित्र ठाकुरका नाम उल्लेख-योग्य है। मयनाडालके अधिकारी-वंशका लोप हो चुका है, परन्तु इनकी कन्याका वंश विद्यमान है। पुरुषोत्तम चक्रवर्तीके वंशज अब वीरभूमके अन्तर्गत साकुलेश्वरके अधीन आङ्गड़ा-ग्राममें वास करते हैं। ये श्रीचैतन्यमङ्गलका गान करते हैं। नृसिंहप्रसाद मित्रठाकुरके वंशज मृदङ्गविद्याके आचार्य हैं।

मङ्गलठाकुर महाशयने गौड़देशके राजाके लिये गौड़देशसे क्षेत्र (नीलाचल) तक मार्ग-प्रस्तुतिकरण और बृहत् सरोवरके खननकार्यके समय 'श्रीराधावल्लभ' युगलविग्रहको प्राप्त किया था। तब वे काँदड़ाके पश्चिममें राणीपुर-नामक गाँवमें वास करते थे। मङ्गल ठाकुर महाशयके द्वारा पूजित श्रीनृसिंहशिला आज भी काँदड़ामें विराजमान है। विग्रहकी सेवाके लिये गौड़-राजाके द्वारा प्रदत्त सम्पदाके नष्ट हो जानेसे मङ्गलठाकुर भिक्षा करके सेवा करते थे।

मङ्गलठाकुरके तीन पुत्र थे—(1) राधिकाप्रसाद, (2) गोपीरमण और (3) श्यामकिशोर। इन तीनों भाइयोंका वंश विद्यमान है। बादमें काँदड़ामें श्रीवृन्दावनचन्द्रकी सेवा स्थापित हुई॥86॥

(33) शिवानन्द चक्रवर्ती :—

चक्रवर्ती शिवानन्द सदा व्रजवासी।
महाशाखा-मध्ये तेँहो सुदृढ़ विश्वासी॥87॥
एइ त' संक्षेपे कहिलाङ पण्डितेर गण।
ऐछे आर शाखा-उपशाखार गणन॥88॥

अनुवाद—शिवानन्द चक्रवर्ती श्रीगदाधरकी शाखाओंमें एक प्रमुख शाखा हैं, जिन्होंने सुदृढ़ विश्वाससे श्रीवृन्दावनको अपना निवास स्थान बनाया था। यहाँ तक मैंने श्रीगदाधर पण्डितके गणोंका संक्षेपमें वर्णन किया। इस प्रकार उनकी और भी अनेक शाखाएँ-उपशाखाएँ हैं, जिनका मैंने यहाँ वर्णन नहीं किया है॥87-88॥

अनुभाष्य—'शिवानन्द चक्रवर्ती'—श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 183वाँ श्लोक—

"श्रीमल्लवङ्गमञ्जर्याः प्रकाशत्वेन विश्रुतः।
शिवानन्दश्चक्रवर्ती कृतवृन्दावनस्थितिः॥183॥"

"वे श्रीशिवानन्द चक्रवर्ती, जिन्होंने श्रीवृन्दावनको अपना निवास स्थान बनाया है, लवङ्गमञ्जरीके प्रकाश रूपमें प्रसिद्ध हैं।" शाखानिर्णयामृत 10—

"शिवानन्दमहं वन्दे कुमुदानन्द-नामकम्।
रसोज्ज्वलयुतं स्वच्छं वृन्दाकाननवासिनम्॥"

चैःचः आदिलीला 8/70 संख्या द्रष्टव्य है।

इसके अतिरिक्त श्रीयदुनन्दनदासने 'शाखा-निर्णयामृत' में कुछ और भी श्रीगदाधर-शाखाके सम्बन्धमें उल्लेख किया है। जैसे, (1) माधवाचार्य, (2) गोपालदास, (3) हृदयानन्द, (4) वल्लभभट्ट, (इनके नामानुसारसे

'वल्लभ' या 'पुष्टिमार्गीय' सम्प्रदाय प्रसिद्ध है), (5) मधुपण्डित (खड़दहसे दो मील पूर्वकी ओर 'साँइवोना' ग्राममें इनका श्रीपाट है। ये ही वृन्दावनके प्रसिद्ध श्रीगोपीनाथदेवके प्रतिष्ठाता और सेवक हैं।) (6) अच्युतानन्द, (7) चन्द्रशेखर, (8) वक्रेश्वर पण्डित (?) (9) दामोदर, (10) भगवान् आचार्य (अन्य), (11) अनन्ताचार्यवर्य (अन्य), (12) कृष्णदास, (13) परमानन्द भट्टाचार्य, (14) भवानन्द गोस्वामी, (15) चैतन्यदास, (16) लोकनाथ भट्ट (श्रीनरोत्तम ठाकुरके गुरु, यशोहर जिलाके तालखड़ि-निवासी, वृन्दावनके 'श्रीराधाविनोद' के प्रतिष्ठाता एवं भूगर्भ ठाकुरके प्रगाढ़ बन्धु) (?) (17) गोविन्दाचार्य, (18) अक्रूर ठाकुर, (19) सङ्केताचार्य, (20) प्रतापादित्य, (21) कमलाकान्त आचार्य (22) यादवाचार्य, (23) नारायण पड़िहारी (क्षेत्रवासी)॥ 87॥

इति अनुभाष्य द्वादश परिच्छेद।
बारहवें अध्यायका अनुभाष्य पूर्ण हुआ।

गदाधर-गणोंकी ऐकान्तिकी गौरभक्ति :—

पण्डितेर गण सब,—भागवत धन्य।
प्राणवल्लभ—सबार श्रीकृष्णचैतन्य॥ 89॥

अनुवाद—श्रीगदाधर पण्डितके गण सब परम भागवत हैं और श्रीकृष्णचैतन्य इन सभीके प्राणवल्लभ हैं॥ 89॥

श्रीनिताइ-अद्वैत-गदाधरके गणोंका स्मरण-माहात्म्य :—

एइ तिन स्कन्धेर कैलुँ शाखार गणन।
याँ-सबा-स्मरणे भवबन्ध-विमोचन॥ 90॥

याँ-सबा-स्मरणे पाइ चैतन्य-चरण।
याँ-सबा-स्मरणे हय वाञ्छित पूरण॥ 91॥

अतएव ताँ-सबार वन्दिये चरण।
चैतन्यमालीर कहि लीला-अनुक्रम॥ 92॥

अनुवाद—इन तीन (श्रीनित्यानन्द, श्रीअद्वैताचार्य और श्रीगदाधर पण्डित) स्कन्धोंकी शाखाओंकी मैंने गणना की। इन समस्त भक्तोंका स्मरण करनेसे भवबन्धन-विमोचन अर्थात् श्रीचैतन्य महाप्रभुके चरणकमलोंकी प्राप्ति होती है और सभी अभीष्ट पूर्ण होते हैं। इसलिये उन सबके चरणोंमें वन्दन करके अब मैं श्रीचैतन्य महाप्रभु मालीकी लीला क्रमानुसार कहूँगा॥ 90-92॥

ग्रन्थकारकी दैन्योक्ति :—

गौरलीलामृत-सिन्धु—अपार अगाध।
के करिते पारे ताँहा अवगाह-साध॥ 93॥

ताहार माधुरी-गन्धे लुब्ध हय मन।
अतएव तटे रहि' चाकि एक कण॥ 94॥

अनुवाद—श्रीगौरसुन्दरके लीलामृतका समुद्र अगाध-अपार है। इस असाध्य समुद्रके पार जानेके लिये कौन साहस कर सकता है? उसकी माधुरीकी सुगन्धसे मेरा मनमें लोभ उत्पन्न हुआ है, इसलिये मैं उसके तटपर रहकर उसके एक कणके आस्वादनमें प्रवृत्त हुआ हूँ॥ 93-94॥

श्रीरूप-रघुनाथ पदे याँर आश।
चैतन्यचरितामृत कहे कृष्णदास॥ 95॥

इति श्रीचैतन्यचरितामृते आदिखण्डे अद्वैतस्कन्ध-शाखावर्णनं नाम द्वादश-परिच्छेदः।

अनुवाद—श्रीरूप-रघुनाथ गोस्वामीके चरणकमलोंकी कृपाभिलाषा करते हुए कृष्णदास इस श्रीचैतन्यचरितामृतका वर्णन कर रहा है॥ 95॥

श्रीश्रीचैतन्यचरितामृतके आदिखण्डका श्रीअद्वैत-स्कन्धकी शाखाओंका वर्णन नामक बारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।

तेरहवाँ अध्याय

चित्र 6

तेरहवाँ अध्याय

तेरहवें अध्यायका कथासार—इस तेरहवें अध्यायमें महाप्रभुकी जन्मलीलाका वर्णन हुआ है। उनकी गृहस्थलीलाको आदिलीला और उनकी संन्यासलीलाको अन्त्यलीला कहा गया है। उनकी (अन्त्यलीला) के प्रथम छह वर्षकी लीलाका नाम 'मध्यलीला' है, जिसमें महाप्रभुने दक्षिणदेश, वृन्दावनादि तीर्थोंमें गमनागमन और नामका प्रचार किया। श्रीहट्टनिवासी उपेन्द्रमिश्रके पुत्र जगन्नाथ मिश्र हैं। वे नवद्वीपमें वास करने लगे और उन्होंने नीलाम्बर चक्रवर्त्तीकी पुत्री शचीदेवीसे विवाह किया। उनकी पहले आठ कन्याएँ हुईं। वे कन्याएँ जन्म लेनेके बाद ही परलोक सिधार गयीं और नवें गर्भसे विश्वरूपका जन्म हुआ। 1407 शकमें फाल्गुनी-पूर्णिमामें सन्ध्याकालमें सिंह-लग्न, सिंह-राशिमें चन्द्र-ग्रहणके समय श्रीकृष्णनाम-कीर्तनके साथ श्रीगौरचन्द्र अवतीर्ण हुए। शिशुका जन्म सुनकर सम्भ्रान्त महिलायें अनेक उपहारोंके साथ शिशुके दर्शनके लिये आयीं। नीलाम्बर चक्रवर्त्तीने उनकी जन्मपत्री और हस्तरेखायें देखकर उनमें महापुरुषोंके चिह्न देखे। (अमृतप्रवाह भाष्य)

श्रीगौरकृपासे अधम व्यक्तिकी भी उनकी
लीलावर्णनमें योग्यता :—

स प्रसीदतु चैतन्यदेवो यस्य प्रसादतः।
तल्लीलावर्णने योग्यः सद्यः स्यादधमोऽप्ययम्॥1॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है॥1॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जिनके प्रसन्न होनेपर मेरे जैसा अधम व्यक्ति भी उनकी लीला-वर्णनमें तुरन्त योग्यता लाभ करता है, वे श्रीचैतन्यदेव मेरे प्रति प्रसन्न हों॥1॥

अनुभाष्य—यस्य (श्रीकृष्णचैतन्यदेवस्य) प्रसादतः (अनुकम्पया) अयं (मादृशः) अधमः अपि तल्लीलावर्णने सद्यः योग्यः स्यात्, स चैतन्यदेवः प्रसीदतु।

श्लोक भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है॥1॥

जय जय श्रीकृष्णचैतन्य गौरचन्द्र।
जयाद्वैतचन्द्र जय जय नित्यानन्द॥2॥

जय जय गदाधर जय श्रीनिवास।
जय मुकुन्द वासुदेव जय हरिदास॥3॥

जय दामोदर-स्वरूप जय मुरारि गुप्त।
एइ सब चन्द्रोदये तमः कैल लुप्त॥4॥

भक्त-चन्द्रकी हरिभजन-किरणोंसे
जीवोंका अज्ञान-तमो-विनाश :—

जय श्रीचैतन्येर भक्त पूर्णचन्द्रगण।
सबार प्रेम-ज्योत्स्नाय उज्ज्वल त्रिभुवन॥5॥

अनुवाद—श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुकी जय हो, जय हो। श्रीअद्वैतचन्द्र और श्रीनित्यानन्द प्रभुकी जय हो। श्रीगदाधर पण्डितकी जय हो, जय हो, श्रीनिवास पण्डितकी जय हो। श्रीमुकुन्द और श्रीवासुदेवकी जय हो, श्रीहरिदास ठाकुरकी जय हो। श्रीस्वरूप दामोदरकी जय हो, श्रीमुरारि गुप्तकी जय हो। श्रीचैतन्य महाप्रभुके पूर्णचन्द्ररूपी भक्तोंकी जय हो। इन सब चन्द्रमाओंने उदित होकर (अज्ञानरूप) अन्धकारको दूर किया है। इन सबके प्रेमकी ज्योत्सनासे तीनों लोक प्रकाशित हो गये हैं॥2-5॥

श्रीगौरलीलाका वर्णन आरम्भ :—

एइ त' कहिल ग्रन्थारम्भे मुखबन्ध।
एबे कहि चैतन्य-लीलाक्रम-अनुबन्ध॥6॥

पहले सूत्ररूपमें और बादमें सविस्तार वर्णन-प्रतिज्ञा :—

प्रथमे त' सूत्ररूपे करिये गणन।
पाछे विस्तार करिब तार विवरण॥7॥

अनुवाद—अभी तक मैंने ग्रन्थकी भूमिका कही है।

अब मैं चैतन्यलीलाको क्रमानुसार कहूँगा। मैं पहले इन लीलाओंको सूत्ररूपमें कहूँगा और बादमें उनका विस्तृत विवरण दूँगा॥ 6-7॥

महाप्रभुकी अड़तालीस वर्षकी प्रकटलीला :—

श्रीकृष्णचैतन्य नवद्वीपे अवतरि।
आटचल्लिश वत्सर प्रकट विहरि॥ 8॥

चौद्दशत सात शके जन्मेर प्रमाण।
चौद्दशत पञ्चान्ने हइल अन्तर्धान॥ 9॥

अनुवाद—श्रीकृष्णचैतन्य नवद्वीपमें अवतरित हुए और उन्होंने अड़तालीस वर्ष तक इस जगत्में प्रकट विहार किया। चौदह सौ सात शकाब्दमें उनके जन्म लेनेका प्रमाण है और चौदह सौ पचपन शकाब्दमें वे अन्तर्धान हुए॥ 8-9॥

प्रथम चौबीस वर्ष नवद्वीपमें गृहस्थ लीला, शेष चौबीस वर्ष नीलाचलमें संन्यास-लीला-अभिनय :—

चब्बिश वत्सर प्रभु कैल गृहवास।
निरन्तर कैल ताहे कीर्त्तन-विलास॥ 10॥

चब्बिश वत्सर शेषे करिया संन्यास।
आर चब्बिश वत्सर कैल नीलाचले वास॥ 11॥

अनुवाद—चौबीस वर्ष महाप्रभुने गृहवास करते हुए निरन्तर श्रीकृष्ण-कीर्तनका प्रचार किया। चौबीस वर्ष पूर्ण होनेपर उन्होंने संन्यास लिया और शेष चौबीस वर्ष वे नीलाचलमें रहे॥ 10-11॥

शेष चौबीस वर्षोंमें छह वर्ष उत्तर और दक्षिण भारतमें श्रीकृष्णका अन्वेषण और प्रचार :—

तार मध्ये छय वत्सर—गमनागमन।
कभु दक्षिण, कभु गौड़, कभु वृन्दावन॥ 12॥

अष्टादश वत्सर रहिला नीलाचले।
कृष्णप्रेम-लीलामृते भासा'ल सकले॥ 13॥

अनुवाद—शेष चौबीस वर्षोंमें प्रथम छह वर्ष वे कभी दक्षिण भारत, कभी गौड़देश और कभी वृन्दावन आते-जाते रहे। शेष अठारह वर्ष सभीको श्रीकृष्णप्रेममें निमग्न करते हुए नीलाचलमें ही रहे॥ 11-13॥

गृहस्थ-लीला ही आदिलीला और संन्यास-लीला ही मध्य एवं अन्त्यलीला :—

गार्हस्थ्ये प्रभुर लीला—'आदि'-लीलाख्यान।
'मध्य'-'अन्त्य'-नामे—शेषलीलार दुइ नाम॥ 14॥

अनुवाद—गृहवास करते हुए महाप्रभुने जो लीलाएँ कीं, उन्हें 'आदिलीला' कहा जाता है और शेषलीलाके दो नाम हैं—(प्रथम छह वर्षकी लीलाओंका नाम) 'मध्यलीला' और (शेष अठारह वर्षकी लीलाओंका नाम) 'अन्त्यलीला' है॥ 14॥

'चैतन्यचरित्रमें' मुरारिगुप्तके द्वारा आदिलीलाका तथा 'कड़चामें' स्वरूप दामोदरके द्वारा शेष-लीलाका ग्रन्थन :—

आदिलीला-मध्ये प्रभुर यतेक चरित।
सूत्ररूपे मुरारिगुप्त करिल ग्रथित॥ 15॥

प्रभुर मध्य-शेष-लीला स्वरूप-दामोदर।
सूत्र करि' ग्रन्थिलेन ग्रन्थेर भितर॥ 16॥

अनुवाद—आदिलीलामें महाप्रभुके जो भी चरित हैं, उनका मुरारि गुप्तने सूत्ररूपमें गुन्थन किया है। महाप्रभुकी मध्यलीला और शेषलीलाको स्वरूप दामोदरने सूत्ररूपमें अपने ग्रन्थ (कड़चा) में सङ्कलित किया है॥ 15-16॥

इन दोनोंके सूत्र ही महाप्रभुकी लीला-वर्णनके मूल :—

एइ दुइजनेर सूत्र देखिया शुनिया।
वर्णना करेन वैष्णव क्रम ये करिया॥ 17॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है॥ 17॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीमुरारिगुप्तके आदिलीलाके सूत्र अभी तक विद्यमान हैं, उसे देखकर और श्रीस्वरूप गोस्वामीके कड़चा-सूत्र श्रीरघुनाथदास गोस्वामीके मुखसे सुनकर सभी वैष्णव वर्णन करते हैं॥ 17॥

आदिलीलाके चार भाग :—

बाल्य, पौगण्ड, कैशोर, यौवन,—चारिभेद।
अतएव आदिखण्डे लीला चारि भेद॥ 18॥

अनुवाद—अवस्थाके अनुसार बाल्य, पौगण्ड, कैशोर और यौवन—ये चार भेद हैं। इसलिये आदिखण्डमें लीलाके चार भेद हैं॥ 18॥

शुभ फाल्गुनी-पूर्णिमाकी वन्दना :—

सर्वसद्गुणपूर्णां तां वन्दे फाल्गुनपूर्णिमाम्।
यस्यां श्रीकृष्णचैतन्योऽवतीर्णः कृष्णनामभिः॥ 19॥

अनुवाद—अनुभाष्य द्रष्टव्य है॥ 19॥

अमृतप्रवाह भाष्य—

"वैवस्वतमनोरष्टाविंशतियुगसम्भवे।
चतुर्दश-शताब्दे वै सप्तवर्षसमन्विते॥
भागीरथीतटे रम्ये शचीगर्भमहार्णवे।
राहुग्रस्ते पूर्णिमायां गौराङ्गः प्रकटोऽभवत्॥"

"अर्थात् वैवस्वत मन्वन्तरके अठाइसवें चतुर्युगमें कलियुगमें चौदह सौ सात (शक) वर्षमें भागीरथीके तटपर शचीमाताके गर्भरूप महासिन्धुसे राहुग्रस्त पूर्णिमा (चन्द्रग्रहणके समय) में श्रीगौराङ्गदेव प्रकट हुए।"

उस सर्वसद्गुणोंसे पूर्ण फाल्गुन-पूर्णिमाकी मैं वन्दना करता हूँ, जिस पूर्णिमामें श्रीकृष्णनामके साथ श्रीकृष्णचैतन्य अवतीर्ण हुए थे॥ 19॥

अनुभाष्य—यस्यां (फाल्गुन-पौर्णमास्यां) कृष्णनामभिः [सह] श्रीकृष्णचैतन्यः (राधाकृष्णाभिन्नविग्रहः मूलावतारी गोलोकनाथः) [निजलोकतः गौरप्रकोष्ठात् प्रपञ्चे भौमनवद्वीपे] अवतीर्णः, तां सर्वसद्गुणपूर्णां फाल्गुन-पूर्णिमां (प्रापञ्चिक-कालावतीर्णाम् अप्राकृतां सेवापरां तिथिरूपां देवीम्) (अहं) वन्दे।

श्लोक भावानुवाद—जिस फाल्गुनकी पूर्णिमामें श्रीकृष्णनामके साथ श्रीराधाकृष्णाभिन्न-विग्रह मूलावतारी गोलोकनाथ श्रीकृष्णचैतन्य अपने लोकके गौरप्रकोष्ठसे इस प्रपञ्चमें भौम नवद्वीपमें अवतरित हुए, उस सर्व-सद्गुणशाली (इस प्रपञ्चमें कालके रूपमें अवतीर्ण, अप्राकृत जगत्में सेवा-परायण तिथिरूपा देवी) फाल्गुन-पूर्णिमाकी मैं वन्दना करता हूँ॥ 19॥

चन्द्रग्रहण-छलसे जीवोंको हरिनाममें प्रेरित करना :—

फाल्गुनपूर्णिमा-सन्ध्याय प्रभुर जन्मोदय।
सेइ काले दैवयोगे चन्द्रेर ग्रहण हय॥ 20॥
'हरि' 'हरि' बले लोक हरषित हञा।
जन्मिला चैतन्यप्रभु 'नाम' जन्माइया॥ 21॥

अनुवाद—फाल्गुन पूर्णिमाकी सन्ध्यामें महाप्रभुका जन्म हुआ और दैववश उस समय चन्द्रग्रहण लगा हुआ था। सभी लोग हर्षसे 'हरि' 'हरि' बोल रहे थे। इस प्रकार हरिनामको जन्म देते हुए श्रीचैतन्य महाप्रभुने जन्म लिया॥ 20-21॥

आदिलीलामें सर्वत्र हरिनाम-प्रवर्तन :—

जन्म-बाल्य-पौगण्ड-कैशोर-युवाकाले।
हरिनाम लओयाइला प्रभु नाना छले॥ 22॥

अनुवाद—उन्होंने जन्मके समय, बाल्य, पौगण्ड, कैशोर और युवाकालमें अनेक प्रकार युक्तियोंसे लोगोंसे हरिनाम करवाया॥ 21-22॥

नाम उच्चारण करानेके छलसे क्रन्दन
और नाम लेनेपर ही शान्त होना :—

बाल्यभाव-छले प्रभु करेन क्रन्दन।
'कृष्ण' 'हरि' नाम शुनि' रहये रोदन॥ 23॥

दर्शनके लिये आने वाले सभी
व्यक्तियोंके द्वारा नाम-उच्चारण :—

अतएव 'हरि' 'हरि' बले नारीगण।
देखिते आइसे येवा सर्व बन्धुजन॥ 24॥

'गौरहरि' नामकी आदि सूचना :—

'गौरहरि' बलि' तारे हासे सर्वनारी।
अतएव हैल ताँर नाम 'गौरहरि'॥ 25॥

अनुवाद—महाप्रभु बाल्यभावके छलसे रोते थे और जब तक 'कृष्ण' या 'हरि' नाम नहीं सुनते थे, तब तक

रोते रहते। इसलिये जब महाप्रभु रोने लगते, तब उनको देखने आनेवाली महिलाएँ और सभी बन्धु-बान्धव 'हरि' 'हरि' बोलते। महिलाएँ आनन्दसे 'गौरहरि' बोलकर उन्हें हँसाती, इसलिये महाप्रभुका एक नाम 'गौरहरि' हो गया॥ 23-25॥

आयु वृद्धिके साथ सब समय
जीवोंको नाममें प्रवर्तन :—

बाल्य वयस—यावत् हाते खड़ि दिल।
पौगण्ड वयस—यावत् विवाह ना कैल॥ 26॥
विवाह करिले हैल नवीन यौवन।
सर्वत्र लओयाइल प्रभु नाम-सङ्कीर्त्तन॥ 27॥

अनुवाद—जन्मसे विद्या आरम्भ करने तक उनकी बाल्यावस्था है, इसके बाद उनके विवाह तक पौगण्ड अवस्था है। विवाह करनेके समयसे उनका नवयौवन आरम्भ होता है। इस अवस्थामें महाप्रभुने सर्वत्र नाम-सङ्कीर्तनका प्रचार किया॥ 26-27॥

पौगण्डमें अध्ययन-अध्यापना करते समय प्रत्येक विषयमें
श्रीकृष्णनाम-व्याख्या और प्रेरणा :—

पौगण्ड-वयसे पड़ेन, पड़ान शिष्यगणे।
सर्वत्र करेन कृष्णनामेर व्याख्याने॥ 28॥
सूत्र-वृत्ति-टीकाय कृष्णनामेर तात्पर्य।
शिष्येर प्रतीत हय,—सबार आश्चर्य॥ 29॥

अनुवाद—पौगण्ड अवस्थामें उन्होंने स्वयं विद्याध्ययन किया और बादमें शिष्योंको पढ़ानेका कार्य आरम्भ किया तथा वे सर्वत्र ही श्रीकृष्णनामकी व्याख्या करते। वे सूत्रों, वृत्तियों और टीकाओंकी ऐसी व्याख्या करते कि सबका तात्पर्य श्रीकृष्णनाम ही है तथा उसे श्रवणकर उनके शिष्योंको उसकी अनुभूति भी होती—ऐसा देखकर सभीको आश्चर्य होता॥ 28-29॥

अमृतप्रवाह भाष्य—व्याकरण-सूत्र, उसकी वृत्ति और टीका शिष्योंको पढ़ाते समय महाप्रभु श्रीकृष्णनाम तात्पर्यके द्वारा शिष्योंको शिक्षा देते। उस शिक्षाका अवलम्बन करके श्रीजीव गोस्वामीने बादमें 'लघु' और 'बृहत्', इन दो 'हरिनामामृत-व्याकरण' की रचना की। इन दोनों व्याकरणोंका पाठ करनेसे जीवोंमें शब्द-ज्ञान और श्रीकृष्णभक्तिका उदय होता है॥ 29॥

अनुभाष्य—(चैःभाः मध्यखण्ड, पहला अध्याय)—

"आविष्ट हइया प्रभु करये व्याख्यान।
सूत्रवृत्ति-टीकाय सकले हरिनाम॥ 147॥
प्रभु बले,—सर्वकाल सत्य कृष्णनाम।
सर्वशास्त्रे कृष्ण बइ ना बलये आन॥ 148॥
कृष्णेर चरण छाड़ि' ये आर बाखाने।
व्यर्थ जन्म याय तार अकथ्य कथने॥ 150॥
कृष्णेर भजन छाड़ि' ये शास्त्र बाखाने।
से अधम कभु शास्त्रमर्म नाहि जाने॥ 157॥
शास्त्रेर ना जाने मर्म, अध्यापना करे।
गर्द्दभेर प्राय मात्र शास्त्र बहि' मरे॥ 158॥"

"महाप्रभु आविष्ट होकर सूत्र, वृत्ति और टीका सभीकी हरिनामसे व्याख्या करते थे। महाप्रभुने कहा,—'श्रीकृष्णनाम सब कालमें सत्य है। सभी शास्त्र श्रीकृष्णके विषयमें ही कहते हैं और उन्हें छोड़कर अन्य कुछ नहीं कहते। श्रीकृष्णके चरणोंको छोड़कर जो शास्त्रोंकी व्याख्या करता है, वह अकथ्य है अर्थात् जो कहने योग्य नहीं है, ऐसा व्याख्यान करनेसे उसका जीवन व्यर्थ हो जाता है। जो श्रीकृष्णके भजनके अतिरिक्त अन्य-अन्य रूपोंमें शास्त्रका व्याख्यान करता है, वह अधम व्यक्ति शास्त्रके वास्तविक अर्थको नहीं जानता। जो शास्त्रके मर्मको नहीं जानता और उसका अध्यापन करता है, उसका बोलना गधेके रेंकनेके समान ही व्यर्थ है और वह शास्त्रको जाने बिना ही मर जाता है।'॥"28-29॥

सभीको श्रीकृष्णनाम-कीर्तनमें प्रवर्तन :—

यारे देखे, तारे कहे,—कह कृष्णनाम।
कृष्णनामे भासाइल नवद्वीप-ग्राम॥ 30॥

कैशोरमें स्वयं कीर्तन करके सभीको नाममें प्रवर्तन :—

किशोर-वयसे आरम्भिला सङ्कीर्त्तन।
रात्र-दिने प्रेमे नृत्य, सङ्गे भक्तगण॥ 31॥
नगरे नगरे भ्रमे कीर्त्तन करिया।
भासाइल त्रिभुवन प्रेमभक्ति दिया॥ 32॥

अनुवाद—महाप्रभु जिसे भी देखते, उसे ही श्रीकृष्णनाम उच्चारण करनेके लिये कहते। इस प्रकार महाप्रभुने नवद्वीपको श्रीकृष्णनाममें निमग्न करवाया। कैशोर अवस्थामें महाप्रभुने सङ्कीर्तन आरम्भ किया और वे रात-दिन भक्तोंके साथ प्रेममें विभोर होकर नृत्य करते। वे नगर-नगरमें भ्रमणकर कीर्तन करते। इस प्रकार उन्होंने तीनों लोकोंको प्रेमभक्ति प्रदानकर उसमें निमग्न कर दिया॥ 30-32॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'श्रीनवद्वीपधाम'—जाह्नवी (गङ्गा) नदीसे वेष्टित (घिरे हुए) सौलह कोसकी परिधिके भीतर श्रीनवद्वीपधाम है। उसमें नवधा भक्तिके पीठस्वरूप 'अन्तः', 'सीमन्त', 'गोद्रुम', 'मध्य', 'कोल', 'ऋतु', 'जह्नु', 'मोद्रुम' और 'रुद्र'—ये नौ द्वीप विराजमान हैं। उनमेंसे अन्तर्द्वीपके मध्यभागमें श्रीमायापुर-ग्राममें श्रीजगन्नाथ मिश्रका निवास-स्थान है। इन सब नगर-नगरमें कीर्तन करके महाप्रभुने प्रेमभक्तिके द्वारा तीनों लोकोंको आप्लावित किया॥ 32॥

नवद्वीपमें पूर्ण चौबीस वर्ष ही जीवोंको नाममें प्रवर्तनः—

चब्बिश वत्सर ऐछे नवद्वीप-ग्रामे।
लओयाइल सर्वलोके कृष्णप्रेम-नामे॥ 33॥

अनुवाद—चौबीस वर्षकी अवस्था तक महाप्रभुने नवद्वीप-ग्राममें सबसे श्रीकृष्णनाम बुलवाकर श्रीकृष्णप्रेम प्रदान किया॥ 33॥

नीलाचलमें शेष चौबीस वर्षोंमेंसे छह वर्ष समुद्रसे हिमाचलतक नाम प्रेम-प्रचार :—

चब्बिश वत्सर छिला करिया संन्यास।
भक्तगण लञा कैला नीलाचले वास॥ 34॥
तार मध्ये नीलाचले छय वत्सर।
नृत्य, गीत, प्रेमभक्ति-दान निरन्तर॥ 35॥
सेतुबन्ध, आर गौड़-व्यापि वृन्दावन।
प्रेम-नाम प्रचारिया करिल भ्रमण॥ 36॥

ये छह वर्ष ही—मध्यलीला और केवल नामप्रचारमय :—

एइ 'मध्यलीला'—नाम लीला-मुख्यधाम।
शेष अष्टादश वर्ष—'अन्त्यलीला' नाम॥ 37॥

अनुवाद—चौबीस वर्षकी आयुमें उन्होंने संन्यास ग्रहण किया और भक्तोंके साथ नीलाचलमें वास करने लगे। प्रथम छह वर्षोंमें नीलाचलमें नृत्य और गान करते हुए उन्होंने निरन्तर प्रेमभक्तिका दान किया। इसी समय कन्याकुमारीसे लेकर सम्पूर्ण गौड़देश और वृन्दावन तक सम्पूर्ण भारतका भ्रमण करके उन्होंने नाम-कीर्तन करते हुए सर्वत्र प्रेमका दान किया। यही छह वर्षोंकी 'मध्यलीला' की मुख्य लीलाएँ हैं। शेष अठारह वर्षोंकी लीलाका नाम 'अन्त्यलीला' है॥ 34-37॥

अवशिष्ट अठारह वर्षोंमें छह वर्ष केवल कीर्तन-नृत्य द्वारा प्रेम-प्रचार :—

तार मध्ये छय वत्सर भक्तगण-सङ्गे।
प्रेमभक्ति लओयाइल नृत्य-गीत-रङ्गे॥ 38॥

शेष बारह वर्ष केवल स्वयं श्रीकृष्णविरहमें अनुक्षण श्रीकृष्णप्रेमका आस्वादन और प्रेमावस्था-प्रदर्शन :—

द्वादश वत्सर शेष रहिला नीलाचले।
प्रेमावस्था शिखाइला आस्वादन-छले॥ 39॥

अनुवाद—उन अठारह वर्षोंमेंसे प्रथम छह वर्ष भक्तोंके सङ्गमें आनन्दके साथ नृत्य-गीत करते हुए सबको प्रेमभक्ति प्रदान की। शेष बारह वर्ष वे नीलाचलमें ही रहे। स्वयं प्रेमास्वादन करते हुए उन्होंने प्रेमकी विभिन्न अवस्थाओंको जगत्को भी सिखलाया॥ 38-39॥

अनुभाष्य—जातप्रेम-व्यक्ति सम्भोगके पुष्टिकारक

अप्राकृत विप्रलम्भरसमें अवस्थित होते हैं। श्रीगौरसुन्दरने उसी प्रेमावस्थाको स्वयं आस्वादन करनेकी इच्छाके द्वारा जगत्के जीवोंको सिखलाया कि विप्रलम्भके बिना सम्भोगकी पुष्टि नहीं होती॥ 39॥

रात्रि-दिवसे कृष्णविरह-स्फुरण।
उन्मादेर चेष्टा करे प्रलाप-वचन॥ 40॥

उद्धवके द्वारा दृष्ट श्रीराधाके समान
महाप्रभुका महाभाव :—

श्रीराधार प्रलाप यैछे उद्धव-दर्शने।
सेइमत उन्माद-प्रलाप करे रात्रिदिने॥ 41॥

अनुवाद—रात-दिन उन्हें श्रीकृष्णके विरहकी अनुभूति होती थी, इसके फलस्वरूप वे उन्माद-ग्रस्त जैसा आचरण करते और प्रलाप करने लगते। श्रीमती राधिकाके जैसे प्रलापका उद्धवजीने दर्शन किया था, वैसे ही महाप्रभु रात-दिन उन्माद अवस्थामें प्रलाप करते थे॥ 41॥

अनुभाष्य—उद्धवजीने वृषभानुनन्दिनी श्रीमती राधिकाका जिस 'चित्रजल्प' भावमय अवस्थाका दर्शन किया था, वैसे ही भावमय श्रीगौरसुन्दर सुदीर्घ विप्रलम्भरसके मूर्तिमान आदर्श हैं। असूया, ईर्ष्या और मदयुक्त अवज्ञामुद्राके द्वारा श्रीमती राधिकाने भ्रमरको उपलक्ष्य करके श्रीकृष्णकी अपटुता प्रकाश करते हुए जो प्रजल्प किया था, उन सब भावोंमें श्रीगौरसुन्दर निमग्न रहते थे। चैःचः आदिलीला, 4/107-108 संख्या द्रष्टव्य है॥ 41॥

स्वरूप और रायके साथ चण्डीदास, विद्यापति
और गीतगोविन्दकी आलोचना :—

विद्यापति, जयदेव, चण्डीदासेर गीत।
आस्वादेन रामानन्द-स्वरूप-सहित॥ 42॥

अनुवाद—महाप्रभु श्रीराय रामानन्द और श्रीस्वरूप दामोदरके साथ विद्यापति, जयदेव और चण्डीदासके गीतोंका आस्वादन करते थे॥ 42॥

अनुभाष्य—'विद्यापति'—ये ब्राह्मण कुलमें उत्पन्न मिथिलामें रहनेवाले एक वैष्णव कवि थे। राजा शिवसिंह और रानी लछिमादेवीके राज्यकालमें श्रीमन्महाप्रभुके प्रकटकालसे प्रायः एक सौ वर्ष पूर्व इनका जन्म हुआ था। चौदह सौ शक शताब्दीके प्रथम भागमें इन्होंने गीतोंकी रचना की। इनके द्वारा रचित श्रीकृष्ण गीतोंमें प्रचुर अप्राकृत विप्रलम्भ-रसका आदर्श प्राप्त होता है। इनके ऐसे भाव श्रीमन्महाप्रभुके आस्वादनीय थे।

'जयदेव'—बङ्गालके राजा 'लक्ष्मणसेन' के राज्यकालमें ये भोजदेवके द्वारा वामादेवीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। किसी-किसीके मतसे इनका जन्मकाल ग्यारहवीं अथवा बारहवीं शक शताब्दी है। बङ्गालकी राजधानी नवद्वीप-नगरमें इन्होंने बहुत समय तक वास किया। किसीके मतके अनुसार वीरभूम जिलाके 'केन्दुबिल्व' ग्राममें अथवा अन्य किसीके मतानुसार उत्कलदेशमें अथवा अन्य किसीके मतमें दक्षिणदेशमें इनका जन्म हुआ। इन्होंने नवद्वीपमें बहुत समय रहनेके बाद जीवनका शेष समय श्रीजगन्नाथक्षेत्रमें व्यतीत किया। इनके कविता-ग्रन्थका नाम 'गीत-गोविन्द' अथवा 'अष्टपदी' है। इस ग्रन्थमें प्रचुर अप्राकृत विप्रलम्भ-रसका समावेश देखा जाता है। श्रीभागवतमें वर्णित रासस्थलीसे व्रजराजकुमारके गोपियोंको छोड़कर जानेसे सम्भोगरसके पुष्टिकारक विप्रलम्भ-रसकी अवतारणा इस ग्रन्थमें वर्णित है। अष्टपदीकी टीका और टीकाकारोंके नाम 'वैष्णव-मञ्जुषा' (प्रथम संख्या) में द्रष्टव्य हैं।

'चण्डीदास'—इन्होंने वीरभूम जिलाके अन्तर्गत 'नान्नुर' ग्राममें ब्राह्मण कुलमें चौदह सौ शक शताब्दीके प्रथम भागके अन्त होनेके बाद जन्म ग्रहण किया। सम्भवतः विद्यापति ठाकुरके साथ इनका बन्धुत्व था। इनकी लेखनीमें अप्राकृत विप्रलम्भरसकी प्रचुरता है।

चण्डीदासादि भक्तोंकी प्रस्फुटित भावावली श्रीमहाप्रभुकी परमप्रिय आस्वादनीय वस्तु थी। श्रीराधाभावमें ही विभावित होकर, श्रीदामोदरस्वरूप और श्रीरामानन्दराय—इन दो

अन्तरङ्ग भक्तोंके साथ विप्रलम्भ-रसास्वादनके द्वारा श्रीकृष्णचन्द्रने श्रीगौरसुन्दररूपमें अपनी वाञ्छा पूर्ण की थी।

परमहंसकुल-शिरोमणि श्रीदामोदरस्वरूप और श्रीराय रामानन्द जैसे अद्वितीय चिन्मय श्रीकृष्णरस-तत्त्ववेत्ताओंके साथ स्वयं भगवान् श्रीगौरसुन्दरने इन तीन भक्तों (विद्यापति, चण्डीदास और जयदेव) के द्वारा रचित जिन अप्राकृत गीतोंका आस्वादन किया, वही अद्वितीय भोक्ता सच्चिदानन्दविग्रह श्रीनन्दनन्दनके प्रति 'कृष्णमयी' श्रीराधिकाके महाभाव-वैचित्र्यसमूहका विकास है। यह इस नश्वर स्थूल-सूक्ष्म जगत्के भोग और त्याग—इन दोनोंसे उदासीन, परममुक्त और निष्किञ्चन, राधादास्यके नित्य अभिलाषी, महासौभाग्यवान् व्यक्तियोंके ही नित्य अनुसरणका विषय है। प्राकृत काव्यरसके आमोदी, निरीश्वर साहित्य-प्रिय, इन्द्रिय विषय-भोगी व्यक्तियोंके द्वारा इन अप्राकृत गीतोंकी गवेषणाके कारण तथा प्राकृत सहजिया सम्प्रदायके लोगोंने अपनी जड़ेन्द्रियोंके भोगके लिये स्वयंमें 'रागानुग' होनेका अभिमान करके चण्डीदास, विद्यापति और जयदेवके गीतोंकी जो आलोचना करनेकी धृष्टता दिखलायी है, उसके फलस्वरूप वह जगत्में नास्तिकता और व्यभिचारकी वृद्धि कराकर उनको नरकगामी बना रही है। उनकी इस आलोचना और व्याख्याको स्वीकारकर देहात्मबुद्धिवाले असत्-तृष्णामय, अनर्थयुक्त अनधिकारी लोग परममुक्त भक्तोंके आराध्य श्रीराधाकृष्णकी अलौकिक लीलाविलासको प्राकृत नायक-नायिकाके वैरस्यमय घृणित काम-क्रीड़ा-विलास अथवा उसके समान मानकर स्वयंकी इन्द्रियोंकी तृप्तिमें लग जाते हैं। वे श्रीराधाकृष्णकी अप्राकृत लीलाके वर्णनके अधिकारी नहीं हैं॥42॥

श्रीराधाकी कृष्णविरह-चेष्टासे उत्पन्न कृष्णप्रेमास्वादनके द्वारा अपनी तीन वाञ्छाओंकी पूर्ति :—

कृष्णेर वियोगे यत प्रेम-चेष्टित।
आस्वादिया पूर्ण कैल आपन वाञ्छित॥43॥

अनन्त चैतनलीला क्षुद्र जीव हञा।
के वर्णिते पारे, ताहा विस्तार करिया॥44॥

स्वयं अनन्तदेव भी गौरलीलाका अन्त पानेमें असमर्थ :—

सूत्र करि' गणे यदि आपने अनन्त।
सहस्र-वदने तेँहो नाहि पाय अन्त॥45॥

अनुवाद—श्रीकृष्णके वियोगमें श्रीमती राधिकाकी जो प्रेम-चेष्टाएँ थीं, उस प्रेम-वैचित्रीका आस्वादनकर महाप्रभुने अपनी इच्छाओंकी पूर्ति की। श्रीचैतन्य महाप्रभुकी अनन्त लीलाएँ हैं, मैं एक क्षुद्र जीव होकर उनका विस्तारसे कैसे वर्णन कर सकता हूँ? यदि स्वयं अनन्त शेष भी सूत्र रूपसे उनका वर्णन करना चाहें, तो भी वे अपने हजारों मुखोंसे उनका वर्णन नहीं कर सकते॥43-45॥

मुरारिगुप्त और श्रीस्वरूप दामोदरके द्वारा रचित सूत्रमें आदि और शेषलीलाका लेखन :—

दामोदर-स्वरूप, आर गुप्त मुरारि।
मुख्यमुख्यलीला सूत्रे लिखियाछे विचारि'॥46॥

उन्हीं सूत्रोंके अनुसार वृन्दावनदासके द्वारा गौरलीला-वर्णन :—

सेइ अनुसारे लिखि लीला-सूत्रगण।
विस्तारि' वर्णियाछेन ताहा दास-वृन्दावन॥47॥

श्रीवृन्दावनदासकी रचना-माधुर्य-वर्णन :—

चैतन्य-लीलार व्यास,—दास वृन्दावन।
मधुर करिया लीला करिला रचन॥48॥

ग्रन्थकारके द्वारा उनके द्वारा छोड़े गये अंशोंके वर्णनकी प्रतिज्ञा :—

ग्रन्थ-विस्तार-भये छाड़िला ये ये स्थाने।
सेइ सेइ स्थाने किछु करिब व्याख्याने॥49॥

श्रीवृन्दावनदास ठाकुरको ग्रन्थकारके द्वारा मर्यादा-प्रदान :—

प्रभुर लीलामृत तेँहो करिल स्वादन।
ताँर भुक्त-शेष किछु करिये चर्वण॥50॥

अनुवाद—श्रीस्वरूप दामोदर और श्रीमुरारिगुप्तने भी केवल मुख्य-मुख्य लीलाएँ ही सूत्ररूपमें विचारपूर्वक लिखी हैं। उन्हींके अनुसार मैं उन लीलाओंको सूत्ररूपमें लिख रहा हूँ, जिनका श्रीवृन्दावनदासने विस्तारसे वर्णन किया है। श्रीचैतन्यलीलाके व्यास श्रीवृन्दावनदास हैं। उन्होंने लीलाओंका इस प्रकारसे वर्णन किया है कि वे और भी सरस और मधुर हो गयी हैं। ग्रन्थके विस्तारके भयसे उन्होंने जिस-जिस स्थानपर कुछ लीलाओंको छोड़ा है, मैं उन-उन स्थानोंपर उन लीलाओंका कुछ विस्तारसे वर्णन करनेका प्रयास करूँगा। महाप्रभुके लीलामृतका उन्होंने आस्वादन किया है, मैं तो केवल उनके उच्छिष्टका कुछ चर्वण करूँगा॥ 46-50॥

आदिलीला-सूत्रारम्भ :—

आदिलीला-सूत्र लिखि, शुन, भक्तगण।
संक्षेपे लिखिये सम्यक् ना याय लिखन॥ 51॥

अनुवाद—हे भक्तगण! सुनिये, मैं आदिलीलाको सूत्ररूपमें लिख रहा हूँ। मैं लीलाओंको संक्षेपमें लिख रहा हूँ, क्योंकि समस्त लीलाओंको लिखना सम्भव नहीं है॥ 51॥

तीन इच्छाओंकी पूर्तिके लिये
श्रीकृष्णका गौररूपमें अवतार :—

कोन वाञ्छा पूरण लागि' व्रजेन्द्रकुमार।
अवतीर्ण हैते मने करिला विचार॥ 52॥

अनुवाद—किसी इच्छाकी पूर्तिके लिये मनमें विचार करके व्रजेन्द्रकुमार श्रीकृष्णने अवतीर्ण होनेका निश्चय किया॥ 52॥

श्रीकृष्णके गुरुजनोंका अवतार :—

आगे अवतारिल ये गुरु-परिवार।
संक्षेपे कहिये, कहा ना याय विस्तार॥ 53॥

अनुवाद—पहले उन्होंने अपने जिन गुरुवर्ग और परिवारको अवतीर्ण करवाया, उनका मैं संक्षेपमें वर्णन करूँगा, क्योंकि विस्तारसे वर्णन करना सम्भव नहीं है॥ 53॥

गुरुवर्गके नाम :—

श्रीशची-जगन्नाथ, श्रीमाधवपुरी।
केशव भारती, आर श्रीईश्वरपुरी॥ 54॥
अद्वैत आचार्य, आर पण्डित श्रीवास।
आचार्यरत्न, विद्यानिधि, ठाकुर हरिदास॥ 55॥

अनुवाद—श्रीकृष्णने श्रीशचीदेवी, श्रीजगन्नाथ मिश्र, श्रीमाधवेन्द्रपुरी, श्रीकेशव भारती, श्रीईश्वरपुरी, श्रीअद्वैताचार्य, श्रीवास पण्डित, आचार्यरत्न, विद्यानिधि और श्रीहरिदास ठाकुरको पहले अवतीर्ण करवाया॥ 54-55॥

श्रीहट्ट-निवासी श्रीउपेन्द्रमिश्र-नाम।
वैष्णव, पण्डित, धनी, सद्गुण-प्रधान॥ 56॥

अनुवाद—श्रीहट्टके निवासी श्रीउपेन्द्रमिश्र भी पहले अवतरित हुए। वे परम वैष्णव, विद्वान, धनी और सद्गुण सम्पन्न थे॥ 56॥

अनुभाष्य— 'श्रीउपेन्द्रमिश्र'—(श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 35वाँ श्लोक)—

"पर्जन्यो नाम गोपाल आसीत् कृष्णपितामहः।
उपेन्द्रमिश्रः सञ्जातः श्रीहट्ट सप्त पुत्रवान्॥ 35॥"

"व्रजमें जो पर्जन्य नामक गोप श्रीकृष्णके पितामह (दादा) थे, उन्होंने ही श्रीहट्टमें श्रीउपेन्द्र मिश्रके रूपमें जन्म ग्रहण किया है।" श्रीहट्ट जिलाके अन्तर्गत 'ढाका-दक्षिण' ग्राम इनका वासस्थान था॥ 56॥

उपेन्द्र मिश्रके सात पुत्र :—

सप्त मिश्र ताँर पुत्र—सप्त ऋषीश्वर।
कंसारि, परमानन्द, पद्मनाभ, सर्वेश्वर॥ 57॥
जगन्नाथ, जनार्द्दन, त्रैलोक्यनाथ।
नदीयाते गङ्गावास कैल जगन्नाथ॥ 58॥

अनुवाद—श्रीउपेन्द्र मिश्रके सात पुत्र थे—कंसारि, परमानन्द, पद्मनाभ, सर्वेश्वर, जगन्नाथ, जनार्द्दन और त्रैलोक्यनाथ—ये सातों ऋषियोंके समान बड़े प्रभावशाली थे। इनमेंसे श्रीजगन्नाथ मिश्रने गङ्गाके तटपर वास करनेके उद्देश्यसे नदियामें अपना निवास स्थान बनाया॥ 57-58॥

श्रीकृष्णावतारमें जगन्नाथका परिचय :—

जगन्नाथ मिश्रवर—पदवी 'पुरन्दर'।
नन्द-वसुदेव पूर्वे सद्गुण-सागर॥ 59॥

अनुवाद—जगन्नाथ मिश्रजीकी 'पुरन्दर' पदवी (उपाधि) थी। वे पूर्वमें नन्द महाराज और श्रीवसुदेव थे और सद्गुणोंके सागर थे॥ 59॥

शची और नीलाम्बर चक्रवर्ती :—

ताँर पत्नी 'शची'-नाम, पतिव्रता सती।
याँर पिता 'नीलाम्बर' नाम चक्रवर्त्ती॥ 60॥

अनुवाद—जगन्नाथ मिश्रकी पत्नीका नाम शचीदेवी था और वे पतिव्रता सती नारी थीं; शचीदेवीके पिता नीलाम्बर चक्रवर्त्ती थे॥ 60॥

अनुभाष्य—'नीलाम्बर चक्रवर्त्ती'—(श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका श्लोक 104-105)—

"नीलाम्बरश्चक्रवर्त्ती गौरस्य भावि जन्म यत्।
सभायां कथयामास तेनासौ गर्ग उच्यते॥ 104॥
श्रीशच्या जनकत्वेन सुमुखो वल्लवो मतः॥ 105(क)॥"

"सभामें श्रीगौरहरिके भावी जन्मका अर्थात् श्रीगौरहरिके जन्म होनेके उपरान्त उनके भविष्यका वर्णन करनेवाले श्रीनीलाम्बर चक्रवर्तीको गर्गाचार्य कहा जाता है। श्रीशचीदेवीके पिता होनेके कारण श्रीनीलाम्बर चक्रवर्तीको (श्रीयशोदाके पिता) सुमुख गोप माना जाता है।"

इनके वंशधर फरिदपुर जिलामें मग्डोबा ग्राममें हैं। इनके भतीजे जगन्नाथ चक्रवर्ती अथवा 'मामुठाकुर' श्रीगदाधर पण्डितके शिष्यरूपमें श्रीक्षेत्रमें टोटा-गोपीनाथके सेवक थे। 'प्रेम-विलास' ग्रन्थके अनुसार नीलाम्बर चक्रवर्तीका नवद्वीपमें वासस्थान 'बेलपुकुरिया' में था। और काजीपाड़ामें इनका वासस्थान होनेसे ग्राम-सम्बन्धसे काजीने स्वयंको महाप्रभुका मामा कहा था (चैःचः आदिलीला, 17/148-149 संख्या द्रष्टव्य है)। काजीके घर और समाधिके तितर-बितर (पृथक्-पृथक्) होनेकी सम्भावना नहीं होनेके कारण पूर्वकथित 'बेलपुकुरिया' मुहल्ला ही वर्तमानमें 'वामनपुकुर'-नामक मुहल्ला है—ऐसा जाना जाता है, क्योंकि काजीकी समाधि अभी भी 'वामनपुकुर'में है॥ 60॥

श्रीनित्यानन्द, गङ्गादास, मुरारि, मुकुन्द :—

राढ़देशे जन्मिला ठाकुर नित्यानन्द।
गङ्गादास पण्डित, गुप्त मुरारि, मुकुन्द॥ 61॥

सबके बादमें स्वयं अवतीर्ण :—

असंख्य भक्तेर कराइला अवतार।
शेषे अवतीर्ण हैला व्रजेन्द्रकुमार॥ 62॥

अनुवाद—श्रीनित्यानन्द प्रभु राढ़देशमें अवतीर्ण हुए। गङ्गादास पण्डित, मुरारि गुप्त और मुकुन्दादि असंख्य भक्तोंको अवतीर्ण करवाकर तब स्वयं श्रीकृष्ण अवतरित हुए॥ 61-62॥

अनुभाष्य—'राढ़देशमें'—वीरभूम जिलाके अन्तर्गत एकचक्रा-ग्राममें। एकचक्रा ग्राम उत्तर-दक्षिण दिशामें चार कोस लम्बा है। 'वीरचन्द्रपुर' अथवा 'वीरभद्रपुर' एकचक्रा-ग्रामकी सीमामें ही स्थित है। वीरभद्र प्रभुके नामपर ही इस स्थानका नाम वीरचन्द्रपुर अथवा वीरभद्रपुर हुआ है।

1331 बङ्गाब्दके आषाढ़ मासमें बिजली गिरनेसे मन्दिरका चूड़ा टूट गया था और मन्दिरको भी बहुत क्षति पहुँची थी। इसके पूर्व कभी भी श्रीमन्दिरके ऊपर इस प्रकारका दैविक प्रकोप नहीं हुआ था।

मन्दिरमें श्रीनित्यानन्द प्रभुके द्वारा प्रतिष्ठित श्रीकृष्ण-विग्रह हैं,—जिनका नाम श्रीबङ्किमराय अथवा 'बाँका-राय' है। श्रीबङ्किमरायके दाहिने ओर श्रीजाह्नवा और बायीं ओर श्रीमती राधिका हैं। सेवायेत लोगोंका

कहना है कि श्रीबङ्किमरायमें श्रीनित्यानन्द प्रभु प्रवेश कर गये थे और उस समयके बाद श्रीबङ्किमरायके दायेंमें जाह्नवा-माताका विग्रह स्थापित हुआ था। बादमें और भी अन्यान्य श्रीविग्रह स्थापित हुए। श्रीमन्दिरमें एक और सिंहासनपर 'मुरलीधर' और 'राधामाधव' श्रीविग्रह विराजमान हैं। एक अन्य पृथक् सिंहासनपर मुर्शिदाबाद जिलाकी विप्रघाटी-गद्दीके श्रीमनोमोहन, श्रीवृन्दावनचन्द्र और श्रीनिताइ-गौरविग्रह लाये गये हैं। एकमात्र श्रीबङ्किमराय ही प्राचीन और श्रीनित्यानन्द प्रभुके प्रतिष्ठित विग्रह हैं। लोकमान्यता है कि श्रीमन्दिरकी पूर्व दिशामें कदम्बखण्डीके घाटपर यमुनाजलमें श्रीबङ्किमराय-विग्रह तैर रहे थे; श्रीनित्यानन्द प्रभुने उस विग्रहको जलसे उठाकर सेवाके लिये प्रतिष्ठित किया। और वीरचन्द्रपुरसे आधा मील पश्चिममें 'भड्डापुर' नामक स्थानमें नीमके वृक्षके नीचे श्रीमती राधिका प्रकाशित हुई थीं। इसलिये बहुत पहले श्रीबङ्किमरायकी श्रीमतीको 'भड्डापुरकी ठाकुराणी' के नामसे बुलाते थे। श्रीमन्दिरमें अन्य एक सिंहासनपर श्रीबाँकारायके दाहिनी ओर 'योगमाया' विराजमान हैं। श्रीमन्दिर और जगमोहन ऊँचे पक्के चबूतरेके ऊपर स्थित हैं। सामने ही छोटा नाट्य मन्दिर है। सुना जाता है कि श्रीबाँकारायके मन्दिरकी उत्तरी दिशाकी ओर 'भाण्डीश्वर' शिव अधिष्ठित थे और हाड़ाइ पण्डित उन वैष्णवराज शिवकी आराधना करते थे। अभी वह शिवलिङ्ग अन्तर्धान हो चुका है और उस स्थानपर श्रीजगन्नाथ विग्रह प्रतिष्ठित हैं।

श्रीनित्याननन्द प्रभुने किसी मन्दिरादिका निर्माण नहीं किया था। वीरभद्र प्रभुके समयका मन्दिर 1298 (बङ्गाब्द) में टूट जानेपर 'शिवानन्द स्वामी' नामक एक ब्रह्मचारीने उस मन्दिरका संस्कार किया। यहाँपर सेवायेत 'गोस्वामी' लोग श्रीनित्यानन्दकी शाखा श्रीगोपीजन-वल्लभानन्दकी शाखाके वंशज हैं।

मन्दिरसे कुछ दूर 'विश्रामतला' नामक स्थान है। कहा जाता है कि इसी स्थानपर श्रीनित्यानन्द प्रभु बाल्यकालमें सखाओंके साथ नाना प्रकारकी व्रजलीला और रासलीलाका अभिनय किया करते थे।

'आमलीतला' नामक स्थानपर एक बड़ा इमलीका वृक्ष विराजित है। नेड़ादि सम्प्रदायके लोगोंने इस स्थानके सम्बन्धमें अनेक प्रकारकी मन-घड़न्त कहानियाँ बनायी हैं। वे कहते हैं कि 'श्वेतगङ्गा' नामक एक सरोवरकी खुदायी वीरभद्र प्रभुके अनुगत 1200 नेड़ाओंने की थी। कुछ ही दूर गोस्वामियोंका समाधि-स्तम्भ है; मौड़ेश्वरसे द्वारकेश्वर नद तक उत्तरकी ओर बहनेवाली यमुनाको पार करके आधे मीलके भीतर श्रीनित्यानन्द प्रभुका सूतिका-मन्दिर (जन्मस्थान) है। सूतिका-मन्दिरके सामने एक प्राचीन नाट-मन्दिर था, अब वह टूटकर एक बड़े वटवृक्षके द्वारा आच्छादित हो चुका है। बादमें उस प्राङ्गणमें एक भव्य मन्दिरका निर्माण हुआ था—इसमें श्रीगौरनित्यानन्द-विग्रह विराजमान हैं। जगमोहनके पत्थरके पटलपर स्वर्गीय प्रसन्नकुमार कारफरमाकी स्मृतिकी रक्षाके लिये 1323 वर्ष, वैशाख मासमें इस मन्दिरके संस्कारका उल्लेख है।

जिस स्थानपर सूतिका-मन्दिर अवस्थित है, उस स्थानको 'गर्भवास' नामसे कहा जाता है। गर्भवासके निकट हाड़ाई पण्डितकी संस्कृत व्याकरणकी पाठशाला थी। उस स्थानके सेवायेतोंके नाम—(1) श्रीराघव-चन्द्र गोस्वामी (गौरगणोद्देश-दीपिका 162 श्लोक—व्रजमें जो श्रीराधाकी प्राणस्वरूपा श्रीचम्पकलता सखी थीं, वे ही अब श्रीराघव गोस्वामी हैं। ये वही राघव गोस्वामी हैं, जिन्होंने श्रीगोवर्धनको अपना निवास स्थान बनाया तथा 'भक्तिरत्न-प्रकाश' नामक ग्रन्थकी रचना की (?) तिरोभाव-तिथि—ज्येष्ठ शुक्ला त्रयोदशी), (2) जगदानन्ददास (तिरोभाव-तिथि—श्रीराधाष्टमी), (3) कृष्णदास (चिड़िया-कुञ्जके, तिरोभाव-तिथि—श्रीकृष्णजन्माष्टमी, (4) नित्यानन्ददास, (5) रामदास, (6) ब्रजमोहनदास, (7) कानाइ दास, (8) गौरदास, (9) शिवानन्द दास, (10) हरिदास।

गर्भवास अथवा सूतिका-मन्दिरसे कुछ ही दूरीपर बकुलतला है। इस स्थानपर श्रीनित्यानन्द प्रभु सखाओंके

साथ 'झाल-झपेटा' खेल खेलते थे। यह बकुलवृक्ष अति आश्चर्यजनक है, इस वृक्षकी शाखाएँ-प्रशाखाएँ ठीक सर्पकी भाँति मुख-फणादियुक्त हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि अनन्तदेव श्रीनित्यानन्द प्रभुकी इच्छासे ही इस रूपमें प्रकाशित हैं। वृक्ष भी बहुत प्राचीन है। सुना जाता है कि इस वृक्षके दो डाल पहले अलग-अलग थे, खेलते समय सखाओंको एक डालसे दूसरे डालपर आने-जानेमें कष्ट होता देखकर श्रीनित्यानन्द प्रभुने दोनों शाखाओंको एक साथ मिला दिया।

'हाँटुगाड़ा'—लोकमान्यता है कि श्रीनित्यानन्द प्रभुने समस्त तीर्थोंको इस स्थानपर लाकर उनका समावेश किया था। आज भी इस धामके वासी गङ्गादि तीर्थोंमें न जाकर इस तीर्थमें ही स्नान करते हैं। श्रीनित्यानन्द प्रभुने इस स्थानपर दधि-चिड़ा-महोत्सव किया था। ऐसा माना जाता है कि उन्होंने इस स्थानपर घुटनोंपर बैठकर दधि-चिड़ाका भोजन किया था और उनके इस प्रकार बैठनेके कारण यहाँ एक गढ्ढा बन गया था। इसलिये इस स्थानका नाम 'हाँटुगाड़ा' हो गया। वर्षमें बारह महीनों इस कुण्डमें जल रहता है।

कार्तिक-मासमें गोष्ठके समय इस स्थानपर बड़ा मेला होता है। माघी शुक्ला त्रयोदशीमें श्रीनित्यानन्द प्रभुके जन्मोत्सवके समय भी वीरचन्द्रपुरमें विराट मेलेका आयोजन होता है। गौरगणोद्देशदीपिका 11 श्लोक—

"भक्तस्वरूपो नित्यानन्दो व्रजे यः श्रीहलायुधः॥11(क)॥
बलदेवो विश्वरूपो व्यूहः सङ्कर्षणो मतः॥58(ख)॥
नित्यानन्दावधूतश्च प्रकाशेन स उच्यते॥59(क)॥"

"जो व्रजमें श्रीहलधर (श्रीबलदेव) प्रभु हैं, वे ही भक्तस्वरूपमें श्रीनित्यानन्द प्रभु हैं। श्रीबलदेवके सङ्कर्षण व्यूहको विश्वरूप (श्रीचैतन्य महाप्रभुके बड़े भाई) माना जाता है। वे सङ्कर्षण ही प्रकाशभेदसे अवधूत श्रीनित्यानन्द कहे जाते हैं।" यही व्रजके श्रीबलराम हैं। चैःचः आदिलीला, 3/93 संख्या द्रष्टव्य है॥61-62॥

महाप्रभुके पहले श्रीअद्वैताचार्य ही
सभीके पूज्य और प्रधान :—

प्रभुर आविर्भाव-पूर्वे यत वैष्णवगण।
अद्वैत-आचार्येर स्थाने करेन गमन॥63॥

श्रीअद्वैतप्रभुकी भक्ति-व्याख्या :—

गीता-भागवत कहे आचार्य-गोसाञि।
ज्ञान-कर्म निन्दि' करे भक्तिर बड़ाइ॥64॥

एकमात्र श्रीकृष्णभक्तिकी ही
अभिधेयके रूपमें व्याख्या :—

सर्वशास्त्रे कहे कृष्णभक्तिर व्याख्यान।
ज्ञान, योग, तपो-धर्म नाहि माने आन॥65॥

उनको प्रधान-मानकर सभी
वैष्णवोंके द्वारा श्रीकृष्णभजन :—

ताँर सङ्गे ताते करे वैष्णवेर गण।
कृष्णकथा, कृष्णपूजा, नामसङ्कीर्त्तन॥66॥

अनुवाद—महाप्रभुके अवतीर्ण होनेसे पहले सभी वैष्णव श्रीअद्वैताचार्यके घर एकत्रित हुआ करते थे। श्रीअद्वैताचार्य गीता और भागवतादिकी व्याख्या करते हुए कर्म-ज्ञान मार्गको तुच्छ बतलाकर भक्तिकी श्रेष्ठता स्थापित करते थे। वे शास्त्रोंकी आलोचना करके यही बतलाते थे कि सभी शास्त्र मुख्यरूपसे श्रीकृष्णभक्तिकी महिमाका ही गान करते हैं। ज्ञान, योग और तप मुख्य धर्म नहीं हैं। उनके साथ वैष्णव लोग श्रीकृष्णकथा, श्रीकृष्णपूजा और कृष्णनामका सङ्कीर्तन करते हुए आनन्दित होते थे॥63-66॥

प्रकट होकर आचार्यको जीवोंकी इन्द्रियसुखमें
तत्परताको देखकर दुःखकी प्राप्ति :—

किन्तु सर्वलोक देखि' कृष्णबहिर्मुख।
विषये निमग्न लोक, देखि' पाइल दुःख॥67॥

लोगोंके उद्धारके लिये आचार्यकी गम्भीर चिन्ता :—

लोकेर निस्तार-हेतु करेन चिन्तन।
केमने ए सर्वलोकेर हइबे तारण॥68॥

स्वयं श्रीकृष्णके अवतार द्वारा ही
लोगोंका उद्धार सम्भवपर :—

कृष्ण अवतरि' करेन भक्तिर विस्तार।
तबे त' सकल लोकेर हइबे निस्तार॥69॥

अनुवाद—किन्तु सभी लोगोंको कृष्णबहिर्मुख और केवल विषयोंमें ही निमग्न देखकर श्रीअद्वैताचार्यके मनमें बहुत दुःख होता। वे लोगोंके कल्याणके लिये विचार करने लगे। वे चिन्तन करने लगे कि इन सब लोगोंका उद्धार कैसे होगा? तब उन्होंने सोचा कि यदि स्वयं श्रीकृष्ण अवतरित होकर अपनी भक्तिका प्रचार करेंगे, तभी सब लोगोंका उद्धार होगा॥67-69॥

स्वयं श्रीकृष्णको अवतरित
करानेके लिये श्रीकृष्णपूजा :—

कृष्ण अवतारिते आचार्य प्रतिज्ञा करिया।
कृष्णपूजा करे तुलसी-गङ्गाजल दिया॥70॥

श्रीकृष्णका आह्वान और श्रीकृष्णका आकर्षण :—

कृष्णेर आह्वान करे सघन हुङ्कार।
हुङ्कारे आकृष्ट हैला व्रजेन्द्रकुमार॥71॥

अनुवाद—इसलिये उन्होंने श्रीकृष्णको अवतीर्ण करानेकी प्रतिज्ञा की और तुलसीदल और गङ्गाजलसे श्रीकृष्णकी पूजा करने लगे। वे सघन हुङ्कार करके श्रीकृष्णका आह्वान करने लगे, जिसे सुनकर श्रीव्रजेन्द्रकुमार उनकी ओर आकृष्ट हुए॥70-71॥

अनुभाष्य—चैःचः आदिलीला, 3/95-109 संख्या और चैःभाः आदिखण्ड, द्वितीय अध्याय द्रष्टव्य हैं॥67-71॥

गौरावतारसे पहले मिश्र और शचीकी
आठ कन्याओंकी मृत्यु :—

जगन्नाथमिश्र-पत्नी शचीर उदरे।
अष्ट कन्या क्रमे हैल, जन्मि' जन्मि' मरे॥72॥

मिश्रका दुःख और पुत्र प्राप्तिके
लिये विष्णुकी आराधना :—

अपत्य-विरहे मिश्रेर दुःखी हैल मन।
पुत्र लागि' आराधिल विष्णुर चरण॥73॥

उनकी नवम सन्तान—विश्वरूप :—

तबे पुत्र जनमिल 'विश्वरूप' नाम।
महा-गुणवान् तेँह—'बलदेव'-धाम॥74॥

अनुवाद—श्रीजगन्नाथ मिश्रकी पत्नी शचीदेवीके गर्भसे एक-एक करके आठ कन्याएँ उत्पन्न हुईं, परन्तु वे जन्मके बाद ही मर गयीं। सन्तानके विरहमें श्रीजगन्नाथमिश्र और शचीदेवीका मन बड़ा दुःखी हो गया और वे पुत्र-प्राप्तिकी कामनासे भगवान् विष्णुकी आराधना करने लगे। तब उनके घर एक पुत्रका जन्म हुआ, जिसका नाम उन्होंने 'विश्वरूप' रखा। विश्वरूपमें महान् गुण थे, क्योंकि वे श्रीबलदेव प्रभुके अवतार थे॥72-74॥

अनुभाष्य—'विश्वरूप'—श्रीगौरहरिके बड़े भाई थे। विवाहसे पहले ही इन्होंने गृह त्यागकर संन्यास ग्रहण किया और इनका नाम 'शङ्करारण्य' हुआ। विश्वरूप 1431 शकाब्दमें महाराष्ट्र
'पाण्डेरपुर' में अप्रकट हुए। वे विश्वके 'उपादान' और 'निमित्त'—दोनों कारणस्वरूप हैं। गौरगणोद्देशदीपिका 58-62 श्लोक—

"अंश-अंशिनोरभेदेन व्यूह आद्यः शचीसुतः।
बलदेवो विश्वरूपो व्यूहः सङ्कर्षणो मतः॥58॥
नित्यानन्दावधूतश्च प्रकाशेन स उच्यते।
गौरचन्द्रोदये धर्मं प्रति वाक्यं कलेर्यथा—॥59॥
'अस्याग्रजस्त्वकृतदारपरिग्रहः सन् सङ्कर्षणः
स भगवान् भुवि विश्वरूपः।
स्वीयं महः किल पुरीश्वरमापयित्वा
पूर्वं परिव्रजित एव तिरोबभूव॥' इति॥60॥
'नित्यानन्दावधूतो मह इति महितम्
हन्त सङ्कर्षणं यः।' इति च॥61॥
यदा विश्वरूपोऽयं तिरोभूतः सनातनः।
नित्यानन्दावधूतेन मिलित्वापि तदा स्थितः॥62॥"

"अंश और अंशीमें अभेद होनेके कारण आद्यव्यूह

श्रीवासुदेवको श्रीशचीनन्दन माना जाता है। श्रीबलदेवके सङ्कर्षण व्यूहको ही विश्वरूप (श्रीचैतन्य महाप्रभुके बड़े भाई) माना जाता है। वे सङ्कर्षण ही प्रकाशभेदसे अवधूत श्रीनित्यानन्द कहे जाते हैं। श्रीचैतन्यचन्द्रोदय नाटकके प्रथम अङ्कके अड़तीसवें तथा इक्कतीसवें श्लोकमें धर्मके प्रति कलिने इस प्रकार कहा है—'जगत्में श्रीविश्वरूपके नामसे विख्यात श्रीगौरहरिके अग्रज (बड़े भाई) साक्षात् सङ्कर्षण हैं। इन्होंने विवाहसे पूर्व ही संन्यास ग्रहण किया था तथा तीर्थ भ्रमण करते समय अपने तेजको श्रीपरमानन्द पुरीमें (धरोहरकी भाँति) स्थापित करके अन्तर्द्धान हो गये।' और "ब्रह्मादिके द्वारा पूजित महातेजोमय श्रीसङ्कर्षण ही अवधूत श्रीनित्यानन्द प्रभु हैं।' इसलिये अपने अन्तर्धानके समय सनातन श्रीविश्वरूप श्रीनित्यानन्द अवधूतसे मिलकर उनके शरीरमें विराजमान हो गये॥"74॥

विश्वरूप ही वैकुण्ठके महासङ्कर्षण :—

बलदेव-प्रकाश—परव्योमे 'सङ्कर्षण'।
तेँह—विश्वेर उपादान-निमित्त-कारण॥ 75॥

अनुवाद—महासङ्कर्षण वैकुण्ठमें श्रीबलदेव प्रभुके प्रकाश हैं और वे जगत्की सृष्टिके उपादान और निमित्त कारण हैं॥ 75॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'विश्वरूप'—परव्योममें स्थित महासङ्कर्षणके अवतार हैं॥ 75॥

ताँहा बइ विश्वे किछु नाहि देखि आर।
अतएव 'विश्वरूप' नाम ये ताँहार॥ 76॥

अनुवाद—यह समस्त विश्व उनका ही रूप है और उनके अतिरिक्त जगत्में कुछ भी नहीं दिखायी देता है, इसलिये उनका नाम 'विश्वरूप' है॥ 76॥

श्रीमद्भागवत (10/15/35)—

नैतच्चित्रं भगवति ह्यनन्ते जगदीश्वरे।
ओतं प्रोतमिदं यस्मिन् तन्तुष्वङ्ग यथा पटः॥ 77॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है॥ 77॥

अमृतप्रवाह भाष्य—अनन्त भगवान् जगदीश्वरमें यह कुछ भी आश्चर्यका विषय नहीं है, क्योंकि उनमें यह विश्व वस्त्रके सूतकी भाँति ओत-प्रोतरूपमें प्रतीत होता है॥ 77॥

अनुभाष्य—श्रीबलदेवके द्वारा धेनुकासुर-वध-लीलाको लक्षित करके शुकदेव गोस्वामीने राजा परीक्षितसे कहा—

हे अङ्ग (राजन्), यस्मिन् इदं विश्वं तन्तुषु पटः (वसनं) यथा ओतं प्रोतं (मिथः सम्मिलितं) [तथा] अनन्ते (अपरिविच्छिन्ने) जगदीश्वरे [तस्मिन्] भगवति (विष्णौ) एतत् (असुर-निधनादिकं) चित्रम् (आश्चर्यं) न हि भवति।

श्लोक भावानुवाद—हे राजन्! जिनके द्वारा यह जगत् वस्त्रमें धागेके समान ओत-प्रोत है, उन अनन्त जगदीश्वर भगवान् विष्णुके द्वारा इस असुरका मारा जाना कोई आश्चर्यजनक बात नहीं है॥ 77॥

महाप्रभुका विश्वरूपको 'बड़ा भाई' कहना :—

अतएव प्रभु ताँरे बले, 'बड़ भाइ'।
कृष्ण-बलराम दुइ—चैतन्य-निताइ॥ 78॥

अनुवाद—(श्रीबलरामजी ही विश्वरूप हुए हैं) इसलिये महाप्रभु उन्हें अपना बड़ा भाई कहते हैं, क्योंकि श्रीकृष्ण और श्रीबलरामजी अब श्रीचैतन्य महाप्रभु और श्रीनित्यानन्द प्रभु हुए हैं॥ 78॥

अमृतप्रवाह भाष्य—क्योंकि महासङ्कर्षण 'उपादान' और 'निमित्त' कारणरूपमें विश्वमें ओत-प्रोत होकर विराजमान हैं, इसलिये उनको महाप्रभुके 'बड़े भाई' कहकर कहा जाता है। परन्तु श्रीकृष्णलोकमें जो श्रीकृष्ण और श्रीबलराम हैं, वे ही श्रीचैतन्य-निताइ हैं। इसलिये श्रीनित्यानन्द प्रभु—मूल सङ्कर्षण अर्थात् श्रीबलदेव प्रभु हैं॥ 78॥

पुत्र-प्राप्तिसे मिश्र-शचीको आनन्द :—

पुत्र पाञा दम्पति हैला आनन्दित मन।
विशेषे सेवन करे गोविन्दचरण॥ 79॥

अनुवाद—पुत्रको प्राप्त करके दोनों पति-पत्नीका मन आनन्दित हो गया और वे श्रीगोविन्दके चरणोंकी विशेषभावसे सेवा करने लगे॥79॥

प्रकट होनेसे तेरह मास पूर्व श्रीकृष्णका
शचीदेवीके गर्भमें प्रवेश :—

चौद्दशत छय शके शेष माघ मासे।
जगन्नाथ-शचीर देहे कृष्णेर प्रवेशे॥80॥

अनुवाद—शकाब्द चौदह सौ छहके माघ मासके अन्तमें श्रीकृष्णने जगन्नाथ मिश्र और शचीदेवीके शरीरमें प्रवेश किया॥80॥

शचीकी आलौकिक अवस्थाको देखकर
मिश्रका विस्मित होना :—

मिश्र कहे शचीस्थाने,—"देखि अन्य रीत।
ज्योतिर्मय देह, गेह लक्ष्मी-अधिष्ठित॥81॥
याँहा ताँहा सर्वलोक करये सम्मान।
घरे पाठाइया देय धन, वस्त्र, धान॥"82॥

अनुवाद—जगन्नाथ मिश्रने शचीदेवीसे कहा—"मैं आश्चर्य देख रहा हूँ। तुम्हारी देहसे ज्योति निकल रही है और ऐसा लगता है कि घरमें लक्ष्मीदेवी निवास कर रही हैं। मैं जहाँ भी जाता हूँ, लोग मेरा सम्मान करते हैं और बिना कहे ही वे हमारे घर धन, वस्त्र, धानादि भिजवा देते हैं॥"81-82॥

देवताओंको स्तुति करते हुए देखकर
शचीका विस्मित होना :—

शची कहे,—"मुञि देखोँ आकाश-उपरे।
दिव्यमूर्त्ति लोक आसि' स्तुति येन करे॥"83॥

अनुवाद—शचीमाताने कहा—"मैं भी देखती हूँ कि ऊपर आकाशमें दिव्य शरीरवाले लोग आकर मानों स्तुति कर रहे हों॥"83॥

श्रीकृष्णका पहले मिश्रके हृदयमें प्रवेश,
बादमें शचीके हृदयमें प्रवेश :—

जगन्नाथ मिश्र कहे,—"स्वप्न ये देखिल।
ज्योतिर्मय-धाम मोर हृदये पशिल॥84॥

किसी महापुरुषके आविर्भावकी सम्भावना :—

आमार हृदय हैते गेला तोमार हृदये।
हेन बुझि, जन्मिबेन कोन महाशये॥"85॥

अनुवाद—जगन्नाथ मिश्रने कहा—"मैंने स्वप्नमें देखा कि एक ज्यातिर्मय-धाम मेरे हृदयमें प्रवेश कर गया और वह मेरे हृदयसे तुम्हारे हृदयमें चला गया। मैं समझता हूँ कि तुम्हारे गर्भसे किसी महापुरुषका जन्म होगा॥"84-85॥

दोनोंके द्वारा विशेष रूपसे नारायण-सेवा :—

एत बलि' दुँहे रहे हरषित हञा।
शालग्राम सेवा करे विशेष करिया॥86॥

अनुवाद—यह कहकर वे दोनों बड़े आनन्दसे रहने लगे और शालग्रामकी सेवा विशेष मनोयोगसे करने लगे॥86॥

अनुभाष्य—सिद्धान्त यह है कि श्रीजगन्नाथ और श्रीशची नित्यसिद्ध परिकर हैं, इस कारण उनका हृदय और शरीर शुद्धसत्त्वमय है, वह साधारण प्राकृत जीवकी भाँति पञ्च-भौतिक नहीं है। विशुद्धसत्त्वका नाम 'वसुदेव' है; वसुदेवमें ही चिद्विलासी वासुदेव प्रकट होते हैं (भाः 4/3/23 श्लोकके गौड़ीय भाष्यके अन्तर्गत 'विवृति' द्रष्टव्य है)। जड़ेन्द्रियोंके भोगके लिये प्राकृत रक्त-मांसके शरीरवाले स्त्री-पुरुषकी कामक्रीड़ा एवं गर्भधारणकी भाँति श्रीजगन्नाथ और श्रीशचीदेवीका मिलन तथा गर्भ-सञ्चार नहीं हुआ; इसलिये मनमें भी इस प्रकार चिन्तन करना अपराध है। भगवत् सेवोन्मुख चित्तमें विचार करनेसे शुद्ध-सत्त्वमयी श्रीशचीदेवीकी अप्राकृत-गर्भ-महिमा हृदयङ्गम होगी। भाः 10/2/16 श्लोक—

"भगवानपि विश्वात्मा भक्तानामभयङ्करः।
आविवेशांशभागेन मन आनकदुन्दुभेः॥"

इस श्लोककी श्रीधरस्वामीकी टीका—

'मन आविवेश' मनस्याविर्बभूव—जीवानामिव न धातुसम्बन्ध इत्यर्थः।

"श्रीभगवान्‌ने श्रीवसुदेवजीके मनमें प्रवेश किया। जीवोंका जन्म ग्रहण पिता-माताके शुक्र-शोणितके सम्पर्कसे होता है, परन्तु भगवान्‌का स्वरूप सच्चिदानन्दघन है, उन्हें ऐसे पञ्चभौतिक देहकी कोई आवश्यकता नहीं होती।"

इस प्रसङ्गमें भाः 10/2/18-19 श्लोक भी द्रष्टव्य हैं। इस सम्बन्धमें श्रील रूपगोस्वामीके रचित लघुभागवतामृतमें 160-165 श्लोकका मर्मानुवाद—भाः 10/2/16 श्लोकमें वर्णित प्रकटलीला आविर्भावके प्रसङ्गमें 'आविवेशांशभागेन मन आनकदुन्दुभेः'—इस वचनके अनुसार श्रीकृष्ण पहले आनक-दुन्दुभि (वसुदेव महाराज) के हृदयमें प्रकट हुए। तत्पश्चात् आनकदुन्दुभिके हृदयसे देवकीके हृदयमें प्रकट हुये। देवकीके वात्सल्यरूप प्रेमानन्दमृतके द्वारा पालित होकर श्रीकृष्णने उन देवकीके हृदयमें चन्द्रकी भाँति उत्तरोत्तर अपनी वृद्धिका प्रदर्शन किया। तदनन्तर देवकीके हृदयसे निकलकर श्रीकृष्ण कंसके कारागारमें स्थित सूतिकाघरमें देवकीकी शय्यापर आविर्भूत हुए। योगमायाके प्रभावसे देवकीने यही अनुभव किया कि लौकिक रीतिके अनुसार ही शिशुने परमसुखसे जन्म ग्रहण किया है (भक्त और भगवान्‌की नरलीला-अनुरूप सम्बन्धके अनुसार परस्पर जो अप्राकृत भावसमूह उदित होते हैं, वे परम श्रेष्ठ हैं। ये सभी भाव प्रकाशित होकर परम चमत्कारमय चिद्-लीला विलासमें सहायक होते हैं, भक्त और भगवान् दोनों ही इसका आस्वादन करते हैं। किन्तु दूसरी ओर ये मायासे मुग्ध महाविद्वान व्यक्तियोंको भी विमोहितकर भ्रमित कर देते हैं। इन्हीं परम आस्वादनीय अप्राकृत भाव वैचित्रीके कारण परव्योम-वैकुण्ठसे भी मथुरा धामकी श्रेष्ठता प्रमाणित होती है।)। श्रीकृष्ण नित्यकाल नित्य यशोदाके नित्यपुत्रके रूपमें विराजमान होकर अनन्त अप्रकट-लीलाओंमें भी इसी प्रकार विलास कर रहे हैं। प्रियतम भक्तोंके लिये आनन्ददायक और स्वयंके लिये भी चमत्कारिक इस प्रकारकी लीलाओंके उल्लासके द्वारा लीलापुरुषोत्तम श्रीकृष्ण नित्यकाल व्रजमें विलास करते हैं। अप्राकृत नन्द-यशोदाके अप्राकृत असमोर्द्ध-वात्सल्यके वशमें भगवान् नित्य ही स्वयंको उनके नित्य पुत्रके रूपमें जानते हैं। श्रीभागवत (10/5/1) में—"पुत्रके उत्पन्न होनेपर महात्मा श्रीनन्द अत्यन्त आनन्दित हुए।" श्रीभागवत (10/6/43) में—"उदार हृदय श्रीनन्दने विदेश (मथुरा) से लौटकर निजपुत्र श्रीकृष्णको गोदमें उठाकर उसका मस्तक सूँघकर परम आनन्दको प्राप्त किया।" फिर (10/9/21) में—"ये भगवान् गोपिका-सुत (श्रीकृष्ण) भक्तोंके लिये जिस प्रकार सुलभ हैं, देहात्मवादी, तपस्वी अथवा आत्मदर्शी ज्ञानियोंके लिये कभी भी उस प्रकार सुलभ नहीं है।"

श्रीपाद बलदेव विद्याभूषण—

"तदिदमानकदुन्दुभेर्हृदयस्थेन स्वयंभगवता रूपेण कृष्णेण सहैक्यं प्राप्य देवकीहृदि प्राकट्यं गच्छेत्—'ततो जगन्मङ्गलमच्युतांशं समाहितं ('सम्यग्भूतमेवाहितं वैधदीक्ष्या अर्पितम्' इति स्वामिचरणाः)। शूरसुतेन देवी ('शुद्धसत्त्वेत्यर्थः' इति स्वामिचरणाः)। दधार सर्वात्मकमात्मभूतं काष्ठा यथानन्दकरं मनस्तः॥" (भाः 10/2/18) इति शुकोक्तः। यद्यपि देवकीहृदीत्युक्तं, तथापि तद्गर्भस्थितिर्बोध्या,—'दिष्ट्याम्ब, ते कुक्षिगतः परः पुमान्' (भाः 10/2/41) इति देवस्तोत्रात्। जन्मप्रकरणे—'देवक्यां देवरूपिण्यां विष्णुः सर्वगुह्याशयः। अविरासीद् यथा प्राच्यां दिशीन्दुरिव पुष्कलः॥' (भाः 10/3/8) इति"।

"अनन्तर पूर्व दिशा जिस प्रकार चन्द्रके उदयको व्यक्त करती है, उसी प्रकार शुद्धसत्त्वमयी देवकीने शूरसुत वसुदेवके द्वारा कृष्णदीक्षा प्राप्तकर जगत्‌के मङ्गलस्वरूप सर्वात्मा और परमात्मा श्रीअच्युतको हृदयमें धारण किया,—श्रीमद्भागवतके इस वाक्यसे जाना जाता है कि श्रीआनकदुन्दुभिके (वसुदेवके) हृदयसे स्वयं भगवान् देवकीके हृदयमें प्रकट हुए। इस स्थानपर यद्यपि 'देवकीके हृदयमें' कहा गया है, तथापि इसके

द्वारा 'देवकीके गर्भमें स्थित' ही समझना चाहिये। क्योंकि श्रीमद्भागवतमें "हे माता! आपके गर्भमें परम पुरुष अधिष्ठित हैं"—यह देवस्तुति देखी जाती है। भगवान्के जन्म-प्रकरणमें भी-"पूर्णचन्द्र जिस प्रकार पूर्वदिशामें उदित होता है, उसी प्रकार सर्वगुहाशय (सर्वान्तर्यामी) विष्णु देवकीके हृदयसे आविर्भूत हुए"—यह भागवत-वाक्य विशेषरूपसे द्रष्टव्य है।

यहाँ (79 पयार में) "विशेषे सेवन करे गोविन्द चरण" इस वाक्यसे श्रीजगन्नाथ मिश्र और शचीमाताके नित्य श्रीगोविन्दचरणसेवा-निमग्न हृदयमें ही श्रीगौरसुन्दर आविर्भूत हुए, ऐसा जानना चाहिये॥86॥

तेरह मासमें भी अवतरित होनेकी असम्भावना :—

हैते हैते हैल गर्भ त्रयोदश मास।
तथापि भूमिष्ठ नहे,—मिश्रेर हैल त्रास॥87॥

नीलाम्बर चक्रवर्तीकी गणना :—

नीलाम्बर चक्रवर्त्ती कहिल गणिया।
एइ मासे पुत्र हबे शुभक्षण पाञा॥88॥

महाप्रभुका अवतरण :—

चौद्दशत सात शके मास ये फाल्गुन।
पौर्णमासीर सन्ध्याकाले हैले शुभक्षण॥89॥

सिंह-राशि, सिंह-लग्न, उच्च ग्रहगण।
षड्वर्ग, अष्टवर्ग, सर्व सुलक्षण॥90॥

अनुवाद—इस प्रकार होते-होते तेरह मासका गर्भ हो गया, परन्तु सन्तानका जन्म नहीं हुआ, इसलिये जगन्नाथ मिश्रको बहुत भय लगने लगा। तब नीलाम्बर चक्रवर्त्तीने ज्योतिष गणना करके बतलाया कि इस मासमें शुभ क्षणमें एक पुत्रका जन्म होगा। वह शुभ क्षण शकाब्द चौदह सौ सातमें फाल्गुन मासकी पूर्णिमाकी सन्ध्याके समय आया। उस समय सिंह-राशि और सिंह-लग्न होनेके कारण षड्वर्ग और अष्टवर्गके प्रभावमें ग्रह उच्च अवस्थामें थे, इसलिये वह क्षण सभी सुलक्षणोंसे युक्त था॥87-90॥

अमृतप्रवाह भाष्य—महाप्रभुकी जन्मपत्री इस प्रकार है—

शक 1407/10/22/28/48

	दिनं	
7	11	8
15	54	38
40	37	40
13	6	23

महाप्रभुके जन्मकालमें—मेषमें शुक्र अश्विनी-नक्षत्रमें, सिंहमें केतु उत्तरफाल्गुनी-नक्षत्रमें और चन्द्र पूर्वफाल्गुनी-नक्षत्रमें, वृश्चिकमें शनि ज्येष्ठा-नक्षत्रमें, धनुमें बृहस्पति पूर्वषाढ़ा-नक्षत्रमें, मकरमें मङ्गल श्रवणा-नक्षत्रमें, कुम्भमें रवि पूर्वभाद्रपदमें और राहु पूर्वभाद्रपद-नक्षत्रमें तथा मीनमें बुध उत्तरभाद्रपद-नक्षत्रमें मेष-लग्न।

नवमाधिपति मङ्गल उच्च, शुक्र और शनि उच्चप्राय, बृहस्पति अपने गृहमें धर्मस्थानपर शुक्रपर दृष्टिपात करते हुए; दशमाधिपति गुरु-दृष्ट शुक्र नवम गृहमें॥89॥

अनुभाष्य—श्रीचैतन्यचन्द्रोदय-नाटकके अन्तमें—

"शाके चतुर्दशशत रविवाजियुक्ते गौरा हरिर्धरणीमण्डल आविरासीत्।"

अनेक घटनाओं और निर्दिष्ट कालके साथ इस शकाब्दमें श्रीमहाप्रभुके उदय-कालका सामञ्जस्य नहीं होता, ऐसा कहकर किसी-किसीके मतानुसार 1426 अथवा अन्य शकाब्द ही शुद्ध होगा, वे ऐसा मानते हैं॥89॥

षड्वर्ग—क्षेत्र, होरा, द्रेष्काण, नवांश, द्वादशांश और त्रिंशांश, इन छहको 'षड्वर्ग' कहते हैं। लग्नके स्पष्ट अंशके अनुसारसे कथित षड्वर्गके अधिपतिका विचार करके सुलक्षण स्थिर किया।

अष्टवर्ग—'बृहज्जातकादि' ग्रन्थोंमें कथित ग्रहके तात्कालिक स्थानसे निर्दिष्ट रेखापात करके अष्टवर्ग गिने जाते हैं। इससे फल-योजनाके द्वारा होराशास्त्रविद्गण

शुभाशुभ-निर्णयकी व्यवस्था करते हैं। इस गणनासे भी नीलाम्बर चक्रवर्त्तीने महाप्रभुके सुलक्षण दर्शन किये॥90॥

चन्द्रमाको तिरस्कार करते हुए ही
जैसे श्रीगौरचन्द्रका उदय :—

अ-कलङ्क गौरचन्द्र दिला दरशन।
स-कलङ्क चन्द्रे आर कोन् प्रयोजन॥91॥

चन्द्रग्रहण और उसके उपलक्ष्यमें
जीवोंका हरिनाम-ग्रहण :—

एत जानि' चन्द्रे राहु करिला ग्रहण।
'कृष्ण' 'कृष्ण' 'हरि' नामे भासे त्रिभुवन॥92॥

जय जय ध्वनि हैल सकल भुवन।
चमत्कार हैया लोक भावे मने मन॥93॥

जीवोंके हरिनाम ग्रहणकालमें महाप्रभुका अवतार :—

जगत् भरिया लोक बले—'हरि' 'हरि'।
सेइक्षणे गौरकृष्ण भूमे अवतरि॥94॥

अनुवाद—जब निष्कलङ्क श्रीगौरचन्द्र प्रकट होकर दर्शन दे रहे हैं, तब कलङ्कयुक्त चन्द्रमासे क्या प्रयोजन? यह जानकर राहुने चन्द्रमाको ग्रास कर लिया। उस समय 'कृष्ण-कृष्ण' और 'हरि-हरि' नामसे तीनों लोक परिपूर्ण हो गये। सभी लोकोंमें जय-जयकारकी ध्वनि होने लगी और लोग मन-ही-मन चमत्कारका अनुभव करने लगे। जिस समय सारे जगत्के लोग 'हरि-हरि' बोल रहे थे, उसी क्षण श्रीगौरकृष्ण पृथ्वीपर अवतरित हुए॥91-94॥

उस समय यवनोंके द्वारा भी उपहासके
छलसे हरिनाम-ग्रहण :—

प्रसन्न हइल सब जगतेर मन।
'हरि' बलि' हिन्दुके हास्य करये यवन॥95॥

स्वर्गमें देवताओंको आनन्द :—

'हरि' बलि' नारीगण देइ हुलाहुलि।
स्वर्ग वाद्य-नृत्य करे देव कुतूहली॥96॥

सर्वत्र आनन्दकी लहर :—

प्रसन्न हैल दशदिक्, प्रसन्न नदीजल।
स्थावर-जङ्गम हैल आनन्दे विह्वल॥97॥

अनुवाद—समस्त जगतवासियोंका मन तब प्रसन्न हो गया और यहाँ तक यवन लोग भी 'हरि-हरि' बोलकर हिन्दुओंसे उपहास करने लगे। 'हरि-हरि' बोलकर महिलाएँ 'हुलाहुलि' ध्वनि करने लगीं। स्वर्गके देवता भी आनन्दसे वाद्य बजाते हुए नृत्य करने लगे। दसों दिशाएँ प्रफुल्लित हो गयीं, आनन्दसे नदियोंके जलमें उत्ताल तरङ्गें उठने लगीं। सभी चल-अचल प्राणी आनन्दमें विह्वल हो गये॥95-97॥

अमृतानुकणिका—शास्त्रोंमें तन्त्री, ताल, झाँझ, नगाड़ा और तुरही—इन पाँच प्रकारके बाजोंके शब्द एवं वेदध्वनि, वन्दिध्वनि, जयध्वनि, शङ्खध्वनि और हुलूध्वनि (हुलाहुलि)—इन पाँच प्रकारकी ध्वनियोंको मङ्गलमय कहा है॥95-97॥

महाप्रभुकी जन्मलीला-सूत्ररूपमें; हरिनाम-कीर्तनके
मध्य श्रीगौरहरिका आविर्भाव :—

नदीया-उदयगिरि, पूर्णचन्द्र गौरहरि,
कृपा करि' हइल उदय।
पाप-तमो हैल नाश, त्रिजगतेर उल्लास,
जगभरि' हरिध्वनि हय॥98॥

अनुवाद—नदियाके उदयाचलपर पूर्णचन्द्र श्रीगौरहरि कृपापूर्वक उदय हुए। उनके उदय होनेसे पापरूपी अन्धकारका नाश हो गया, तीनों लोकोंमें उल्लास छा गया और सर्वत्र हरिध्वनि होने लगी॥98॥

श्रीअद्वैतप्रभुका आनन्दित होकर नृत्य करना :—

सेइकाले निजालय, उठिया अद्वैत राय,
नृत्य करे आनन्दित मने।
हरिदासे लञा सङ्गे, हुङ्कार-कीर्त्तन-रङ्गे,
केने नाचे, केह नाहि जाने॥99॥

अनुवाद—उस समय अपने घरमें श्रीअद्वैताचार्य उठकर आनन्दपूर्वक नृत्य करने लगे और वे अपने साथ हरिदास ठाकुरको लेकर आनन्दसे हुङ्कार और कीर्तन करने लगे, परन्तु कोई नहीं जानता था कि वे क्यों नृत्य कर रहे हैं॥99॥

अनुभाष्य—'निजालय'—शान्तिपुरके घरमें। महाप्रभुके जन्मवाले दिन हरिदास ठाकुर शान्तिपुरमें थे॥99॥

चन्द्रग्रहणमें लोगोंके द्वारा हरिध्वनि :—

देखि' उपराग हासि', शीघ्र गङ्गाघाटे आसि',
आनन्दे करिल गङ्गास्नान।
पात्रा उपराग-छले, आपनार मनोबले,
ब्रह्मणेरे दिल नाना दान॥100॥

अनुवाद—चन्द्रग्रहण आरम्भ होते देखकर अथवा चन्द्रग्रहण देखकर हँसकर श्रीअद्वैत आचार्यने हरिदास ठाकुरके साथ शीघ्र ही गङ्गाघाटपर आकर आनन्दसे स्नान किया। चन्द्रग्रहणके बहाने मनमें आनन्द होनेसे ब्राह्मणोंको अनेक वस्तुएँ दान कीं॥100॥

अनुभाष्य—'उपराग'—ग्रहण। **'मनोबले'**—मनके उत्साहसे अथवा मनके द्वारा ब्राह्मणोंको दान किया था। (भाः 10/3/11)—

"स विस्मयोत्फुल्लविलोचनो हरिं सुतं विलोक्यानकदुन्दुभिस्तदा।
कृष्णावतारोत्सवसम्भ्रमोऽस्पृशन् मुदा द्विजेभ्योऽयुतमाप्लुतो गवाम्॥"

"भगवान् श्रीहरिको पुत्रके रूपमें दर्शन करके वसुदेवजीने कृष्णजन्मोत्सवके कारण आनन्दित होकर कारागारमें मन-ही-मन दस हजार गैयाएँ ब्राह्मणोंको दान कीं॥"100॥

श्रीअद्वैताचार्यके द्वारा हरिदासको
महाप्रभुके शुभाविर्भावका इङ्गित :—

जगत् आनन्दमय, देखि' मने सविस्मय,
ठारे-ठोरे कहे हरिदास।
"तोमार ऐछन रङ्ग, मोर मन परसन्न,
देखि—किछु कार्ये आछे भास॥"101॥

अनुवाद—सारे जगत्को आनन्दमय देखकर हरिदास ठाकुर आश्चर्यचकित होकर श्रीअद्वैत आचार्यको इङ्गित करके कहने लगे कि आप इतने आनन्दमें हैं और मेरा मन भी अति प्रसन्न है, तो ऐसा लगता है कि कोई विशेष कार्य प्रकाशित होनेवाला है॥101॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'देखि किछु कार्ये आछे भास'—ऐसा प्रतीत होता है कि किसी विशेष कार्यका प्रकाश हुआ है॥101॥

अनुभाष्य—'ठारे-ठोरे'—इङ्गित करके॥101॥

श्रीवासका आनन्दपूर्वक हरिनाम-कीर्तन :—

आचार्यरत्न, श्रीनिवास, हैल मने सुखोल्लास,
याइ' स्नान कैल गङ्गाजले।
आनन्दे विह्वल मन, करे हरिसङ्कीर्त्तन,
नाना दान कैल मनोबले॥102॥

अनुवाद—श्रीचन्द्रशेखर आचार्य और श्रीनिवास (श्रीवास) पण्डितके मनमें भी आनन्दके कारण अपूर्व उल्लास हुआ और उन्होंने जाकर गङ्गाजलमें स्नान किया। उनका मन आनन्दसे विह्वल हो रहा था और वे हरिसङ्कीर्तन करने लगे तथा उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक अनेक प्रकारका दान दिया॥102॥

जगत्के सभी भक्तोंके हृदयमें आनन्द :—

एइ मत भक्तयति, याँर येइ देशे स्थिति,
ताहाँ ताहाँ पात्रा मनोबले।
नाचे, करे सङ्कीर्त्तन, आनन्दे विह्वल मन,
दान करे ग्रहणेर छले॥103॥

अनुवाद—इस प्रकार जिस-जिस स्थानपर जो भी भक्त थे, सभीका मन आनन्दसे विह्वल हो गया और वे भी कीर्तन करते हुए नृत्य करने लगे। मनमें आनन्द होनेके कारण चन्द्रग्रहणके छलसे अनेक दान करने लगे॥103॥

स्वर्णकान्ति शिशुके दर्शनसे नर-नारी सभीको आनन्द :—

ब्राह्मण-सज्जन-नारी, नाना द्रव्य पात्र भरि',
आइला सबे यौतुक लइया।
येन काँचा-सोना-द्युति, देखि' बालकेर मूर्त्ति,
आशीर्वाद करे सुख पाञा॥ 104॥

अनुवाद—(शची माताके पुत्र हुआ है, यह समाचार पाकर) ब्राह्मणों और भक्तोंकी स्त्रियाँ नवजात-शिशुके दर्शनके लिये अनेक पात्रोंमें नाना प्रकारके उपहार और भेंट लेकर आयीं। शिशुकी नवीन स्वर्णके समान कान्ति देखकर परम आनन्दित होकर सभीने उसको आशीर्वाद दिया॥ 104॥

ब्राह्मणी-वेशमें देवियोंके द्वारा
मर्त्यलोकमें आकर श्रीगौरदर्शन :—

सावित्री, गौरी, सरस्वती, शची, रम्भा, अरुन्धती,
आर यत देव-नारीगण।
नाना द्रव्य पात्र भरि', ब्राह्मणीर वेश धरि',
आसि' सबे करेन दरशन॥ 105॥

अनुवाद—सावित्री, गौरी, सरस्वती, शची, रम्भा, अरुन्धती और जितनी भी देवताओंकी स्त्रियाँ थी, वे सभी ब्राह्मणियोंका वेश धारण करके नाना प्रकारके माङ्गलिक द्रव्योंको पात्रोंमें भरकर नवजात शिशुके दर्शनके लिये आयीं॥ 105॥

अनुभाष्य— 'सावित्री'—ब्रह्माजीकी पत्नी; **'गौरी'**—शिवजीकी पत्नी; **'सरस्वती'**—श्रीनृसिंहकान्ता, जैसे श्रीधरस्वामीकी टीकामें कहा है—

"वागीशा यस्य वदने लक्ष्मीर्यस्य च वक्षसि।
यस्यास्ते हृदये सम्वित् तं नृसिंहमहं भजे॥"

"मैं ऐसे नृसिंह भगवान्‌की वन्दना करता हूँ, जिनके मुखके भीतर वाणीकी स्वामिनी सरस्वती निवास करती हैं, जिनके वक्षस्थलपर लक्ष्मी वास करती हैं और हृदयमें चेतनाकी दैवीशक्ति निवास करती हैं।"

'शची'—इन्द्रकी पत्नी; **'रम्भा'**—स्वर्गकी नर्तकी; **'अरुन्धती'**—वशिष्ठ ऋषिकी पत्नी॥ 105॥

आकाशमें देवतादिका आनन्द,
प्रणाम, स्तुति और नृत्य :—

अन्तरीक्षे देवगण, सिद्ध, गन्धर्व, चारण,
स्तुति-नृत्य करे वाद्य-गीत।
नर्त्तक, वादक, भाट, नवद्वीपे यार नाट,
सबे आसि' नाचे पाञा प्रीत॥ 106॥

अनुवाद—अन्तरिक्षमें देवता, सिद्ध, गन्धर्व और चारण वाद्य-गीतके द्वारा स्तुति करते हुए नृत्य करने लगे। नवद्वीपमें जितने नर्तक, वादक और भाट थे, सभी मिश्रभवनमें आकर प्रीतिपूर्वक आनन्दसे नृत्य करने लगे॥ 106॥

अनुभाष्य—'सिद्ध'—मन्त्रसिद्धिसे प्राप्त-देवयोनि।

'गन्धर्व'—स्वर्गके गायक, ब्रह्माकी कान्तिसे उत्पन्न; गुह्यलोक इनका वासस्थान है।

'चारण'—'देवानां गायनास्ते च चारणाः स्तुतिपाठकः।' ये देवयोनिमें विशेष जाति हैं, जो स्तुति-पाठ करते हैं॥ 106॥

केबा आसे केबा याय, केबा नाचे केबा गाय,
सम्भालिते नारे कार बोल।
खण्डिलेक दुःख-शोक, प्रमोदपूरित लोक,
मिश्र हैला आनन्दे विह्वल॥ 107॥

अनुवाद—कौन आ रहा है, कौन जा रहा है, कौन नाच रहा है, कौन गा रहा है, किसीको पता नहीं चल रहा था और कौन क्या बोल रहा है, किसीकी समझमें नहीं आ रहा था। सभी लोकोंके दुःख-शोकका नाश हो गया और सभी लोग प्रसन्नतासे पूरित हो गये। श्रीजगन्नाथ मिश्रके आनन्दकी कोई सीमा नहीं रही और वे आनन्दसे विह्वल हो गये॥ 107॥

अनुभाष्य—'सम्भालिते'—समझनेमें। देव, नर, सिद्धादि

भिन्न-भिन्न श्रेणियोंमें स्थित हैं, इसलिये वे एक-दूसरेकी बात समझनेमें असमर्थ हैं।॥ 107॥

महाप्रभुका जातकर्म :—

आचार्यरत्न, श्रीनिवास, जगन्नाथमिश्र-पाश,
आसि' ताँरे करे सावधान।
कराइल जातकर्म, ये आछिल विधि-धर्म,
तबे मिश्र करे नाना दान॥ 108॥

अनुवाद—श्रीचन्द्रशेखर आचार्य और श्रीनिवास पण्डितने श्रीजगन्नाथ मिश्रके पास आकर उन्हें सचेत किया और विधि-विधानके अनुसार जातकर्म संस्कार करवाये तथा तब श्रीजगन्नाथ मिश्रने अनेक वस्तुएँ दान की॥ 108॥

अनुभाष्य—'आचार्यरत्न'—चन्द्रशेखर; **'श्रीनिवास'**—श्रीवास पण्डित॥ 108॥

शुभकर्मके उपलक्ष्यमें मिश्रके द्वारा दान :—

यौतुक पाइल यत, घरे वा आछिल कत,
सब धन विप्रे दिल दान।
यत नर्त्तक, गायन, भाट, अकिञ्चन जन,
धन दिया कैल सबार मान॥ 109॥

अनुवाद—श्रीजगन्नाथ मिश्रने जो कुछ भी भेंट और उपहारमें सामान आया था और जो कुछ उनके घरमें था, वह सब उन्होंने ब्राह्मणोंको दान किया। नर्तकों, गायकों, भाट और दरिद्र लोगोंको धन दानकर उनका यथायोग्य सम्मान किया॥ 109॥

मालिनी ठाकुरानी और महाप्रभुकी
मौसीके द्वारा माङ्गलिक कार्य :—

श्रीवासेर ब्राह्मणी, नाम ताँर 'मालिनी',
आचार्यरत्नेर पत्नी-सङ्गे।
सिन्दूर, हरिद्रा, तैल, खइ, कला, नाना फल,
दिया पूजे नारीगण रङ्गे॥ 110॥

अनुवाद—श्रीवासजीकी पत्नीने जिनका नाम मालिनी था, श्रीचन्द्रशेखर आचार्यकी पत्नीके साथ मिलकर आनन्दसे सिन्दूर, हल्दी, तेल, चावल, केला और अनेक प्रकारके फलोंसे नवजात शिशुके दर्शनके लिये आनेवाली स्त्रियोंका (शचीमाताकी ओरसे) सम्मान किया॥ 110॥

सीता ठाकुरानीके कृत्य :—

अद्वैत-आचार्य-भार्या, जगत्पूजिता आर्या,
नाम ताँर 'सीताठाकुराणी'।
आचार्येर आज्ञा पाञा, गेला उपहार लञा,
देखिते बालक-शिरोमणि॥ 111॥

अनुवाद—श्रीअद्वैताचार्यकी पत्नी जगत् पूज्यनीया 'सीताठाकुराणी' उनकी आज्ञा पाकर उपहार लेकर उस बालक-शिरोमणिके दर्शनके लिये शचीमाताके घर आयीं॥ 111॥

अनुभाष्य—महाप्रभुके जन्मदिनके पश्चात् एक दिन श्रीअद्वैताचार्यकी अनुमति पाकर उनकी पत्नी सीतादेवी उपहार लेकर शान्तिपुरसे नवद्वीपमें शिशुदर्शनके लिये आयीं। यद्यपि उस समय नवद्वीपमें भी श्रीअद्वैतप्रभुका घर था, तथापि 'निजालय' का उल्लेख होनेसे उस समय वे शान्तिपुरमें ही थे, ऐसा प्रतीत होता है।॥ 111॥

शिशुरूपी महाप्रभुके अलङ्कार :—

सुवर्णेर कड़ि-बउलि, रजतमुद्रा-पाशुलि,
सुवर्णेर अङ्गद, कङ्कण।
दु-बाहुते दिव्य शङ्ख, रजतेर मलबङ्क,
स्वर्णमुद्रार नाना हारगण॥ 112॥

व्याघ्रनख हेमजड़ि, कटि-पट्टसूत्र-डोरी,
हस्त-पदेर यत आभरण।
चित्रवर्ण पट्टसाड़ी, बुनि फोतो पट्टपाड़ी,
स्वर्ण-रौप्य-मुद्रा बहुधन॥ 113॥

माङ्गलिक अनुष्ठान :—

दुर्वा, धान्य, गोरोचन, हरिद्रा, कुङ्कुम, चन्दन,
मङ्गल-द्रव्य पात्र भरिया।
वस्त्र-गुप्त दोला चड़ि', सङ्गे लञा दासी चेड़ी,
वस्त्रालङ्कार पेटारि भरिया॥ 114॥

भक्ष्य, भोज्य, उपहार, सङ्गे लइल बहु भार,
शचीगृहे हैल उपनीत।
देखिया बालक-ठाम, साक्षात् गोकुल-कान,
वर्णमात्र देखि विपरीत॥ 115॥

अनुवाद—उन्होंने अपने साथ नवजात बालक और उसकी माताके लिये सोनेकी किङ्किणी, चाँदीकी नूपुर, सोनेके अङ्गद और कङ्कन, दोनों भुजाओंके लिये दिव्य शङ्खसे बने कङ्कन, चाँदीके पाँवके कड़े और सोनेकी मुद्राओंके अनेक प्रकारके हार, सोनेमें जड़े बाघके नख, कमरमें बाँधनेवाली गोटा और किनारीसे युक्त रेशमी डोरी, हाथों और पाँवोंके लिये आभूषण, चित्रकलासे युक्त रेशमी साड़ियाँ, शिशुके पहननेके लिये रेशमी वस्त्र, सोने एवं चाँदीकी मुद्रायें तथा बहुतसा धन उपहारके रूपमें एकत्रित किये और इन्हें एक पेटीमें रखा। उन्होंने एक पात्रमें दुर्वाघास, धान्य, गोरोचन, हल्दी, कङ्कुम, चन्दनादि मङ्गल-द्रव्योंको भरा। तब वे कपड़ेसे ढकी पालकीमें बैठकर ये सब उपहार और खानेका बहुतसा सामान तथा अनेक दासियोंको साथमें लेकर शचीमाताके घर पहुँचीं। सीतादेवीने उस शिशुको देखकर विचार किया कि उसके शरीरका गठन तो साक्षात् गोकुलके कान्हाके समान है, परन्तु वर्णमात्र ही विपरीत है॥ 112-115॥

अनुभाष्य—'कड़ि-बउलि'—स्वर्णकी बनी हुई कटि-बन्ध (कमर-पेटी); **'पाशुलि'**—चाँदीके पैरोंके विशेष आभूषण; **'सुवर्णेर अङ्गद, कङ्कण'**—सोनेकी चूड़ियाँ, बालियाँ; **'दिव्य शङ्ख'**—शङ्खसे बने कङ्कन; **'मलबङ्क'**—पाँवोंके वक्र-कड़े।

'व्याघ्रनख हेमजड़ि'—बाघके नख जड़े हुए सोनेके अलङ्कार; **'कटिपट्टसूत्रडोरि'**—कटि (कमर) में बाँधनेवाला रंगीन धागा; **'चित्रवर्ण पट्टसाड़ी'**—विचित्र रेशमी वस्त्र; **'बुनि फोतो पट्टपाड़ी'**—बुना हुआ रेशमका शिशुके पहननेवाला जामा।

'गोरोचन'—गोमस्तकसे प्राप्त उज्ज्वल पीतद्रव्य; **'कुङ्कुम'**—काश्मीर देशमें उत्पन्न होनेवाला एक विशेष गन्धद्रव्य।

"काश्मीर-देशजे क्षेत्रे कुङ्कुमं यद्भवेत् हि तत्।
सूक्ष्म-केशरमारक्तं पद्मगन्धि तदुत्तमम्॥
बाह्लीकदेशसञ्जातं कुङ्कुमं पाण्डुरं भवेत्।
केतकीगन्धयुक्तं तन्मध्यमं सूक्ष्मकेशरम्॥
कुङ्कुमं पारसीकेयं मधुगन्धि तदीरितम्।
ईषत् पाण्डुवर्णं तदधमं स्थूकेशरम्॥"

"काश्मीर देशके खेतोंमें जो कुङ्कुम होता है, वह सूक्ष्म केशरवाला, लाल रङ्गका और पद्मकी गन्धवाला होता है—यह उत्तम कुङ्कुम है। बाह्लीक देशमें (भारत और पाकिस्तानमें पंजाब क्षेत्रमें) उत्पन्न होनेवाला कुङ्कुम सूक्ष्म केशरवाला, पीले रङ्गका और केतकीकी गन्धसे युक्त होता है—यह मध्यम कुङ्कुम है। पारसिक देशमें (वर्तमान ईरानमें) उत्पन्न होनेवाला कुङ्कुम स्थूल केशरवाला, शहदकी गन्धयुक्त और थोड़ा पीले रङ्गका होता है—यह कुङ्कुम अधम जातिका कहा गया है।"

'वस्त्रगुप्तदोला'—कपड़ेके द्वारा आवृत डोली; **'चेड़ी'**—दासी।

'ठाम'—गठन; **'कान'**—कानू अथवा कृष्ण; **'कृष्णेर वर्ण'**—इन्द्रनील-घनश्याम; **'विश्वम्भरेर वर्ण'**—उसके विपरीत गौरवर्ण॥ 112-115॥

शिशुकी स्वर्णकान्तियुक्त देहके दर्शनसे
स्त्रियोंमें वात्सल्यकी उत्पत्ति :—

सर्व अङ्ग—सुनिर्माण, सुवर्ण-प्रतिमा-भान,
सर्व अङ्ग—सुलक्षणमय।
बालकेर दिव्य ज्योति, देखि' पाइल बहु प्रीति,
वात्सल्यते द्रविल हृदय॥ 116॥

अनुवाद—उन्होंने देखा कि उसके सभी अङ्गोंकी रचना अति सुन्दर और सभी सुलक्षणोंसे युक्त है तथा उसका शरीर स्वर्णके समान वर्णका है। उस शिशुकी दिव्य ज्योतिको देखकर उन्हें बहुत आनन्द हुआ और वात्सल्य-भावसे उनका हृदय द्रवित हो गया॥ 116॥

अनुभाष्य—'सुनिर्माण'—सुन्दर रूपसे अङ्ग-प्रत्यङ्गका गठन; **'भान'**—भ्रम॥ 116॥

शिशुको आशीर्वाद और रक्षाकवच-बन्धन :—

दुर्वा, धान्य, दिल शीर्षे, कैल बहु आशीषे,
चिरजीवि हओ दुइ भाइ।
डाकिनी-शाँखिनी हैते, शङ्का उपजिल चिते,
डरे नाम थुइल 'निमाइ'॥ 117॥

अनुवाद—उन्होंने शिशुके शीषपर दुर्वा, धान्यादि मङ्गल पदार्थोंको रखकर अनेक आशीर्वाद देकर उन दोनों भाइयों (श्रीविश्वरूप और महाप्रभु) की दीर्घ आयुकी कामना की। तब शिशुके सुन्दर रूपको देखकर उनके मनमें डाकिनी-शाँखिनीके द्वारा शिशुके अमङ्गलकी शङ्का उनके हृदयमें हुई, इसलिये उस भयके कारण उन्होंने बालकका नाम 'निमाइ' रखा॥ 117॥

अनुभाष्य—'दुई भाई'—विश्वरूप और विश्वम्भर।

'डाकिनी-शाँखिनी'—पार्वती-महेशके सहवर्त्तिनी (अनुगामिनी) स्त्री-योनिवाली अशुभ-कारिणी विशेष प्रेतयोनि हैं। ये सब अपदेवता पवित्र नीमवृक्ष और नीमवृक्षके आस-पासके स्थानपर जानेमें असमर्थ हैं।॥ 117॥

शची-मिश्रके द्वारा पूजा :—

पुत्रमाता-स्नानदिने, दिल वस्त्र विभूषणे,
पुत्रसह मिश्रेर सम्मानि'।
शची-मिश्रेर पूजा लञा, मनेते हरिष हञा,
घरे आइला सीता ठाकुराणी॥ 118॥

अनुवाद—पुत्र निमाइ और माता शचीदेवीके स्नानके दिन श्रीसीता ठाकुराणीने निमाइ और श्रीजगन्नाथ मिश्रको वस्त्र और आभूषण देकर उनका सम्मान किया। तब वे शचीदेवी और श्रीजगन्नाथ मिश्रके द्वारा पूजित (सम्मानित) होकर मन-ही-मन हर्षित होती हुई अपने घर शान्तिपुर लौट आयीं॥ 118॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'पुत्रमाता स्नान दिने'—अर्थात् पाँचवें दिन 'पाँचट' और नवें दिन 'नत्ता' दिवसमें॥ 118॥

अनुभाष्य—'पुत्रमाता-स्नान दिने' अर्थात् बाहर आनेवाले दिनमें। प्राचीनकालमें बङ्गालमें ब्राह्मणादि वर्ण जननाशौचका समय (सन्तान उत्पन्न होनेके बाद जितने समय माताको सूतिका गृहमें ही रहना पड़ता था) चार मास स्वीकार करते थे और उसके बाद ही वह सूर्यदेवका दर्शन करती थी। बादमें चार मासके बदले विप्रादि द्विजवर्णमें इक्कीस दिन [महाप्रभुके जन्मके समय यह काल एक मासका था] जननाशौच स्वीकार करनेकी व्यवस्था है; परन्तु शूद्रादिके लिये एक मासकी व्यवस्था है। कर्त्ताभजा और सतीमा-दलमें 'हरिनुटमें' (सङ्कीर्तनमें कुछ मिठाई फेंककर) तत्काल ही शिशुकी माताकी सूतिका गृहसे बाहर निकलनेकी प्रथा देखी जाती थी।

'शची-मिश्रेर पूजा लञा'—बङ्गालमें सामाजिक-व्यवहारमें वर्तमान कालमें भी यह विदायीके समयकी रीत दिखायी देती है। निज-परिवारिकजनके घर आनेपर उनकी विदायीके समय गृहस्थ उनको वस्त्रादि देकर सम्मान किया करते हैं। श्रीजगन्नाथ मिश्र एवं श्रीशचीदेवीके द्वारा इस प्रकार सम्मान पाकर सीताठाकुराणी शान्तिपुर लौट आयीं।॥ 118॥

शची और मिश्रको पुत्र-प्राप्तिसे आनन्द :—

ऐछे शची-जगन्नाथ, पुत्र पाञा लक्ष्मीनाथ,
पूर्ण हइल सकल वाञ्छित।
धन-धान्य भरे घर, लोकमान्य कलेवर,
दिने दिने हय आनन्दित॥ 119॥

अनुवाद—इस प्रकार साक्षात् श्रीलक्ष्मीनाथ (सर्वलक्ष्मीमयी श्रीमती राधिकाके नाथ व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण) को पुत्रके रूपमें पाकर शचीदेवी और श्रीजगन्नाथकी समस्त कामनायें पूर्ण हो गयीं। उस दिनसे उनका घर सदा धन-धान्यसे भरा रहता था। पुत्र निमाइके दिव्य शरीरको देखकर उनका आनन्द दिन-प्रतिदिन बढ़ता गया॥ 119॥

अनुभाष्य—'लोकमान्य-कलेवर'—श्रीमहाप्रभुके श्रीअङ्ग लोकमान्य होनेके कारण अर्थात् उनके सौन्दर्य, ऐश्वर्य और लावण्य-दर्शनसे आकृष्ट होकर देव, नर तथा

अन्यान्य लोगोंको सम्मान देते हुए देखकर पिता-माताको आनन्द प्राप्त हुआ।॥ 119॥

मिश्र—शान्त, संयत और उदार वैष्णव :—

मिश्र—वैष्णव, शान्त, अलम्पट, शुद्ध, दान्त,
धनभोगे नाहि अभिमान।
पुत्रेर प्रभावे यत, धन आसि' मिले तत,
विष्णुप्रीते द्विजे देन दान॥ 120॥

अनुवाद—श्रीजगन्नाथ मिश्र परम वैष्णव थे। वे शान्त, सदाचारी, शुद्ध और संयमी थे। उनमें धन भोगनेकी कोई इच्छा नहीं थी। पुत्रके प्रभावसे जितना भी धन आता, उसे वे विष्णुकी प्रसन्नताके लिये ब्राह्मणोंको दान कर देते थे॥ 120॥

अनुभाष्य—जगत्के विषयी लोग जिस प्रकारसे स्त्री-पुत्रादिकी बातोंमें आकर धनादिके भोगके अभिमानमें व्यस्त रहते हैं, शुद्धभक्त श्रीजगन्नाथ मिश्र वैसे नहीं थे। पुत्रके प्रभावसे उन्हें जो कुछ भी प्राप्त हो रहा था, उसे उन्होंने अपने भोगके लिये स्वीकार नहीं किया, अपितु सब कुछ भगवान्को अर्पणकर ब्राह्मणादि योग्यपात्रोंको उसका अवशेष प्रदान किया॥ 120॥

चक्रवर्ती द्वारा महाप्रभुकी कुण्डली-गणना :—

लग्न गणि' हर्षमति, नीलाम्बर चक्रवर्त्ती,
गुप्ते किछु कहिल मिश्रेरे।
महापुरुषेर चिह्न, लग्ने अङ्गे भिन्न भिन्न,
देखि,—एइ तारिबे संसारे॥ 121॥

अनुवाद—महाप्रभुके जन्मके लग्नकी गणना करके नीलाम्बर चक्रवर्त्तीने हर्षित मनसे एकान्तमें श्रीजगन्नाथ मिश्रसे कहा कि मैंने इस बालकके जन्मके मुहूर्तमें और इसके अङ्गोंमें महापुरुषोंके भिन्न-भिन्न लक्षण देखे हैं और यह समस्त जगत्का उद्धार करेगा॥ 121॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'लग्ने अङ्गे भिन्न भिन्न'—(सामुद्रिक मतमें) **'लग्ने'** अर्थात् जातक-कुण्डलीमें (जिससे नवजात शिशुका शुभ-अशुभ फल कहा जाता है, फलित ज्योतिषके उस अङ्गमें) और **'अङ्गे'** अर्थात् शरीरमें॥ 121॥

इति अमृतप्रवाह भाष्ये त्रयोदश परिच्छेद।
तेरहवें अध्यायका अमृतप्रवाह भाष्य समाप्त।

अनुभाष्य—'गुप्ते'—अप्रकाशित॥ 121॥

जन्मवृत्तान्त-श्रवण-माहात्म्य :—

ऐछे प्रभु शची-घरे, कृपाय कैल अवतारे,
येइ इहा करेय श्रवण।
गौरप्रभु दयामय, ताँरे हयेन सदय,
सेइ पाय ताँहार चरण॥ 122॥

अनुवाद—इस प्रकार महाप्रभु कृपापूर्वक शचीमाताके घरमें अवतीर्ण हुए। महाप्रभु परम दयालु हैं और जो भी उनके जन्मकी लीलाका श्रवण करता है, उसके प्रति वे दया करके उसे अपने चरणोंका आश्रय प्रदान करते हैं॥ 122॥

श्रीगौर-विरोधी विषयी लोगोंका दुर्भाग्य :—

पाइया मानुष जन्म, ये ना शुने गौरगुण,
हेन जन्म तार व्यर्थ हैल।
पाइया अमृतधुनी, पिये विषगर्त्त-पानि,
जन्मिया से केने नाहि मैल॥ 123॥

अनुवाद—मनुष्य जन्म पाकर भी जो श्रीगौराङ्ग महाप्रभुके गुणोंका श्रवण नहीं करता है, उसका जन्म व्यर्थ ही जाता है। जो (श्रीगौरसुन्दरके गुण कीर्तनरूपी) अमृत-नदीको छोड़कर (इन्द्रिय-विषयभोगरूपी) विषसे भरे गढ्ढेका जल पीता है, वह जन्म लेते ही क्यों नहीं मर गया?॥ 123॥

अनुभाष्य—'अमृतधुनी' अर्थात् सुधा-नदी। श्रीकृष्णभक्तिरूप सुधा-स्त्रोतका जलपान त्याग करके जो व्यक्ति विषय-कूपका (आत्माके लिये विषकर) जल पीता है, वह नितान्त मूढ़ है और उसका जीवन धारण करना उचित नहीं है।

श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती-कृत चैतन्य-चन्द्रामृतमें—

"अचैतन्यमिदं विश्वं यदि चैतन्यमीश्वरम्।
न भजेत् सर्वतो मृत्युरुपास्यममरोत्तमैः॥95॥
अचैतन्यमिदं विश्वं यदि चैतन्यमीश्वरम्।
न विदुः सर्वशास्त्रज्ञा ह्यपि भ्राम्यन्ति ते जनाः॥37॥
प्रसारित-महाप्रेम-पीयुषरस-सागरे।
चैतन्यचन्द्रे प्रकटे यो दीनो दीन एव सः॥36॥
अवतीर्णे गौरचन्द्रे विस्तीर्णे प्रेमसागरे।
सुप्रकाशित-रत्नौघे यो दीनो दीन एव सः॥34॥"

"यह श्रीकृष्णभक्तिहीन बहिर्मुख जगत् (अर्थात् बहिर्मुख व्यक्ति) यदि शिव-ब्रह्मादि उत्तम देवताओंके उपास्य सर्वनियन्ता स्वयं भगवान् श्रीकृष्णचैतन्यका भजन नहीं करता, तो वह जन्म-मरणके वशीभूत होकर सुख-दुःखादि कर्मफल ही भोग करता है। जो श्रीचैतन्य महाप्रभुको 'स्वयं भगवान्' के रूपमें स्वीकार नहीं करते, वे सब शास्त्रोंके ज्ञाता होनेपर भी इस अचित्-जगत्में अर्थात् हरिविमुखताके राज्यमें ही भ्रमण करते हैं। श्रीचैतन्यचन्द्रके द्वारा उदित होकर महाभावामृत-रससागरका वर्धन करनेपर भी जो व्यक्ति 'दीन' अर्थात् प्रेमामृतपानसे वञ्चित है, वह यथार्थमें ही 'दीन' अर्थात् परम दुर्भागा है। अनन्त प्रेमसिन्धुसे श्रीगौरचन्द्रने समुदित होकर श्रवण कीर्तनादि नवविध-भक्तिरत्नराशिको सुप्रकाशित किया है; इस प्रकार सुयोग प्राप्त करके भी जो व्यक्ति दरिद्र ही रह गया अर्थात् जिसने भक्ति-रत्नोंकी उपलब्धि नहीं की, वह निश्चय ही परम दुर्भागा है, इसमें सन्देह नहीं है।"

(भाः 2/3/19,20,23)—

"श्वविड्वराहोष्ट्र
न यत्कर्णपथोपेतो जातु नाम गदाग्रजः॥19 ॥
बिले बतोरुक्रमविक्रमान् ये न शृण्वतः कर्णपुटे नरस्य।
जिह्वासती दार्दुरिकेव सूत न चोपगायत्युरुगायगाथाः॥20॥
जीवञ्छवो भागवताङ्घ्रिरेणुं न जातु मर्त्योऽभिलभेत यस्तु।
श्रीविष्णुपद्या मनुजस्तुलस्याः श्वसञ्छवो यस्तु न वेद गन्धम्॥23॥"

"जिनके कानोंमें कभी भी श्रीकृष्णके नामने प्रवेश नहीं किया, वे मानव कुत्ते, ग्रामके शूकर, ऊँट और गधेके समान पशु कहे गये हैं, अर्थात् ऐसे श्रीकृष्ण-भजनसे हीन मनुष्योंको पशुसे भी अधिक निन्दनीय माना गया है। जो व्यक्ति अपने कानोंसे प्रचुर गुणोंसे युक्त भगवान्के पराक्रमकी कथा नहीं सुनते, उनके दोनों कानोंके छिद्र बिलके समान व्यर्थ ही हैं। जिसकी जिह्वा भगवान्की लीलाओंका कीर्तन नहीं करती, अर्थात् जो जिह्वा अपने पति भगवान् हृषीकेशकी लीलाओंका गुणगान न करके तरह-तरहकी सांसारिक वार्त्ताको ही कहती रहती है, वह असती नारी अथवा वेश्याके समान है; वह मेंढककी जिह्वाके समान केवल टर्र-टर्रका शोर मचाकर कालसर्पके समान मृत्युका ही आह्वान करती है। जिस व्यक्तिने कभी भी भगवद्भक्तोंकी चरणरेणुको भलीभाँति अपने समस्त अङ्गोंमें नहीं लगाया, जीवित रहनेपर भी उस व्यक्तिके अङ्ग प्रेतके समान हैं, क्योंकि वह सदा-सर्वदा साधुओंसे भयभीत रहता है। उसके हाथोंके द्वारा की गयी पूजा-सेवाको भी भगवान् स्वीकार नहीं करते। इसी प्रकार जो मनुष्य भगवान् श्रीविष्णुके श्रीचरणोंमें अर्पित तुलसीकी सुगन्धको लेकर आनन्दित नहीं होता, वह व्यक्ति साँस लेते हुए भी मृत प्राणीके समान ही है।" (भाः 10/1/4)—

"निवृत्ततर्षैरुपगीयमानाद्-
भवौषधाच्छ्र
क उत्तमःश्लोकगुणानुवादात्
पुमान् विरज्येत विना पशुघ्नात्॥4॥"

"जिनकी सांसारिक भोगोंकी कामना सदाके लिये समाप्त हो गयी है, वे जीवन्मुक्त महापुरुष भी पूर्ण प्रेमसे अतृप्त रहकर श्रीकृष्णकी गुणावलीका कीर्तन किया करते हैं। मुक्तिकामियोंके लिये भी जो भवरोगकी अमोघ औषधि है और विषयी लोगोंके लिये भी उनके कानों और मनको परम आह्लाद देनेवाला है, भगवान् श्रीकृष्णके ऐसे मधुर गुणानुवादसे पशुघाती अथवा आत्मघाती मनुष्यके अतिरिक्त कौन ऐसा है जो उससे विमुख हो जाय, उससे प्रीति न करे।" (भा. 3/23/56)—

"×× न तीर्थपदसेवायै जीवन्नपि मृतो हि सः॥56॥

"जिसका वैराग्य तीर्थपद श्रीहरिकी सेवामें पर्यवसित नहीं होता, वह व्यक्ति जीवित होनेपर भी मृत ही है।"॥123॥

श्रीचैतन्य-नित्यानन्द, आचार्य अद्वैतचन्द्र,
स्वरूप-रूप-रघुनाथदास।
इँहा-सबार श्रीचरण, शिरे वन्दि निजधन,
जन्मलीला गाइल कृष्णदास॥ 124॥

इति श्रीचैतन्यचरितामृते आदिखण्डे जन्ममहोत्सव-वर्णनं नाम त्रयोदश परिच्छेदः।

अनुवाद—श्रीचैतन्य महाप्रभु, श्रीनित्यानन्द प्रभु, श्रीअद्वैताचार्य, श्रीस्वरूप दामोदर, श्रीरूप और श्रीरघुनाथ गोस्वामी, इन सबको अपना एकमात्र धन जानकर तथा इन सभीके श्रीचरणोंमें अपने शीशको रखकर उनकी वन्दना करते हुए कृष्णदासने महाप्रभुकी जन्मलीलाका गान किया है॥ 124॥

अनुभाष्य—श्रीमन्महाप्रभु, श्रीनित्यानन्द प्रभु, श्रीअद्वैत प्रभु, श्रीदामोदरस्वरूप, श्रीरूप और श्रीरघुनाथदासके श्रीचरणकमल ही श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी एवं उनके अनुगत शुद्धभक्त अथवा अन्तरङ्ग भक्तोंके निजधन हैं। विषयियोंका धन मायिक दाम (बन्धन-स्वरूप रस्सी) है; वास्तवमें उसे 'ऋण' कहना ही उचित है। श्रीकृष्ण-विमुख जीव, परमार्थको धन न मानकर जड़-भोगमय ऋणरूप कामको 'धन' समझते हैं। जिन सब वस्तुओंको 'धन' समझकर विषयी जीव व्यस्त हैं, हरिजनोंकी उनमें ऋण-बुद्धि है, धन-बुद्धि नहीं है। पक्षान्तरमें, निजकृपारूप धनदानसे भगवान् जिन्हें धनी बनाते हैं, उनके जागतिक धनसमूहका वे अपहरण कर लेते हैं। (भाः 10/88/8) भगवान् श्रीकृष्णने युधिष्ठिर महाराजसे कहा—

"यस्याहमनुगृह्णामि हरिष्ये तद्धनं शनैः।"

"मैं जिसके ऊपर कृपा करता हूँ, उसका सारा धन धीरे-धीरे छीन लेता हूँ।" श्रीनरोत्तम ठाकुरने भी अपने पदोंमें कहा है—

*"**धन** मोर नित्यानन्द"*
*"राधाकृष्ण-श्रीचरण, सेइ मोर **प्राणधन**"*

"श्रीनित्यानन्द ही मेरे **धन** हैं"; "राधाकृष्णके श्रीचरण, मेरे प्राणधन हैं";

*"जय पतितपावन, देह मोरे एइ **धन**,*
तुया बिना अन्य नाहि भाय"

"हे पतितपावन! आपकी जय हो, मुझे यही **धन** दो, आपके बिना मुझे संसारमें कुछ नहीं भाता है";

"श्रीरूपमञ्जरी-पद, सेइ मोर सम्पद, सेइ मोर भजन-पूजन।
*सेइ मोर **प्राणधन**"*

"श्रीरूप-मञ्जरीके चरणकमल ही मेरी सम्पत्ति हैं, वे ही मेरा भजन-पूजन हैं और वे ही मेरे **प्राणधन** हैं";

*"**प्रेमरतन-धन** हेलाय हाराइनु।*
*अधने यतन करि' **धन** तेयागिनु"*

"**प्रेमरत्न-धन**की उपेक्षा करके उसे मैंने गवाँ दिया और जो धन नहीं है, उसके लिये प्रयास करके वास्तविक **धन**का त्याग कर दिया" आदि।

स्मार्त-लोग अपनी शौक्रबुद्धि अर्थात् जन्मके आधारपर जातिका निर्णय करते हैं। इस कारण वे श्रीरघुनाथदासको ब्राह्मणकुलमें जन्म न लेनेके कारण कायस्थकुलमें उत्पन्न शूद्र मानते हैं। ऐसी मति सम्पन्न लोगोंकी भक्ति उनका धन नहीं अपितु ऋण अर्थात् नकारात्मक है। श्रीरघुनाथदास गोस्वामीके चरणकमलोंमें उनको अप्राकृत ब्राह्मण स्वीकार करना ही भक्तोंकी सम्पत्ति और सकारात्मक बुद्धि भावना है। इसका तात्पर्य यह है कि वैष्णवोंमें अप्राकृत बुद्धि रखकर भजन करनेसे ही भक्ति **'धन'** होती है अन्यथा वह ऋण ही है॥ 124॥

इति अनुभाष्य त्रयोदश परिच्छेद।
तेरहवें अध्यायका अनुभाष्य पूर्ण हुआ।

श्रीचैतन्यचरितामृत आदिखण्डमें जन्ममहोत्सव-वर्णन नाम तेरहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।

चित्र 7

चौदहवाँ अध्याय

चौदहवें अध्यायका कथासार—इस अध्यायमें महाप्रभुकी बाल्यलीला वर्णित हुई है। महाप्रभुका घुटनोंके बल चलना, रोनेके छलसे नामका प्रचार, मिट्टी खानेके छलसे माताको ज्ञान प्रदान करना, अतिथि ब्राह्मणको अपना प्रसाद देकर उसका उद्धार, चोरोंके कन्धेपर चढ़कर उनको भुलाकर वापिस अपने घर ले आना, रोगके बहाने एकादशीके दिन हिरण्य-जगदीशका नैवेद्य खाना, बाल-चपलता, माताको मूर्च्छित देखकर नारियल लाकर देना, गङ्गाके तटपर कन्याओंके साथ परिहास, लक्ष्मीदेवीकी पूजाको ग्रहण करना, जूठे मिट्टीके बर्तनोंके गढ्ढेमें बैठकर माताको ब्रह्मज्ञान प्रदान करना और माताकी आज्ञाका पालन करना तथा श्रीजगन्नाथ मिश्रका शुद्धवात्सल्य—ये सब बाल्यलीलाके प्रकरण इस अध्यायमें वर्णित हुए हैं। (अमृतप्रवाह भाष्य)

(हरिभक्तिविलास 20/1)—

कथञ्चन स्मृते यस्मिन् दुष्करं सुकरं भवेत्।
विस्मृते विपरीतं स्यात् श्रीचैतन्यममुं भजे॥1॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है॥1॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जिनको थोड़ासा भी स्मरण करनेपर कठिन विषय भी सहज हो जाता है और जिनको भूल जानेपर सहज विषय भी कठिन हो जाता है, उन श्रीचैतन्यका मैं भजन करता हूँ॥1॥

अनुभाष्य—यस्मिन् (गौरकृष्णे) कथञ्चन (येन केन प्रकारेणापि) स्मृते (स्मरणपथमारूढ़े सति) दुष्करं (दुःसाध्यं कर्म) सुकरं (सहजसाध्यमनुष्ठानं) भवेत्, यस्मिन् (गौरकृष्णे) विस्मृते [सति] विपरीतं (सहजसाध्यमनुष्ठानं दुःसाध्यं कर्म) स्यात्, तं अमुं श्रीचैतन्यं भजे।

श्लोक भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है॥1॥

जय जय श्रीचैतन्य, जय नित्यानन्द।
जयाद्वैतचन्द्र, जय गौरभक्तवृन्द॥2॥

अनुवाद—महाप्रभु श्रीचैतन्यदेवकी जय हो। श्रीनित्यानन्द प्रभुकी जय हो। श्रीअद्वैतचन्द्रकी जय हो। श्रीगौर भक्तवृन्दकी जय हो॥2॥

प्रभुर कहिल एइ जन्मलीला-सूत्र।
यशोदानन्दन यैछे हैल शचीपुत्र॥3॥
संक्षेपे कहिल जन्मलीला-अनुक्रम।
एबे कहि बाल्यलीला-सूत्रेर गणन॥4॥

अनुवाद—मैंने महाप्रभुकी जन्मलीलाको सूत्ररूपमें और यशोदानन्दन ही शचीदेवीके पुत्रके रूपमें आविर्भूत हुए हैं, इसका वर्णन किया। मैंने जन्मलीलाको क्रमानुसार संक्षेपमें ही वर्णन किया, अब बाल्यलीलाको सूत्ररूपमें कहूँगा॥4॥

मानुषी होनेपर भी श्रीगौरलीला अप्राकृत :—

वन्दे चैतन्यकृष्णस्य बाल्यलीलां मनोहराम्।
लौकिकीमपि तामीश-चेष्टया बलितान्तराम्॥5॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है॥5॥

अमृतप्रवाह भाष्य—मैं श्रीचैतन्य-कृष्णकी मनोहर बाल्यलीलाओंकी वन्दना करता हूँ, ये बाल्यलीलाएँ लौकिक लीलाकी भाँति होनेपर भी ईश्वर-चेष्टासे मिश्रित हैं॥5॥

अनुभाष्य—चैतन्यकृष्णस्य (गौरकृष्णस्य) लौकिकीं (प्रापञ्चिक-मानुष-चेष्टिताम्) अपि ईशचेष्टया (अलौकिकप्रयासेन) बलितान्तरां (बलितं युक्तम् अन्तरं यस्याः तां) मनोहरां (हृदयाकर्षिणीं) बाल्यलीलां (शैशवक्रीड़ाम्) अहं वन्दे॥

श्लोक भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है॥5॥

अपने श्रीचरणतलमें शंख-चक्र-
ध्वज-वज्र-मीन-चिह्न-प्रदर्शन :—

बाल्यलीलाय आगे प्रभुर उत्तान-शयन।
पिता-माताय देखाइल चिह्न चरण॥6॥
गृहे दुइ जन देखि' लघुपद-चिह्न।
ताहातेइ ध्वज, वज्र, शङ्ख, चक्र, मीन॥7॥
देखिया दोँहार चित्ते जन्मिल विस्मय।
कार पदचिह्न घरे, ना पाय निश्चय॥8॥

अनुवाद—महाप्रभुकी प्रथम बाल्यलीलाका वर्णन करते हुए कह रहे हैं कि महाप्रभुने पीठके बल शयन करते हुए पिता-माताको अपने चरण-चिह्न दिखलाये। (इससे पूर्व) घरमें (पिता-माता) दोनोंने छोटेसे पदचिह्नोंको देखा जिसमें ध्वज, वज्र, शङ्ख, चक्र और मीन विद्यमान थे। यह देखकर दोनोंको बहुत विस्मय हुआ, किन्तु वे यह निश्चित नहीं कर पा रहे थे कि घरमें ये चरणचिह्न किसके हैं?॥6-8॥

अनुभाष्य—'उत्तान'—ऊपर मुख करके पीठके बल शयन करना; पाठान्तरमें 'उत्थान'—इस अर्थमें पैरोंके बलपर स्वयं खड़े होनेका प्रयास करनेपर अभ्यास नहीं होनेके कारण बालकों जैसी असमर्थता दिखाकर शयन किया॥6॥

मिश्रकी उक्ति :—

मिश्र कहे,—"बालगोपाल आछे शिला-सङ्गे।
तेँहो मूर्त्ति हञा खेले, जानि घरे रङ्गे॥"9॥

अनुवाद—जगन्नाथ मिश्रने कहा,—"शालग्राम-शिलाके साथ घरमें बालगोपाल विराजमान हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि वे ही बालक बनकर आनन्दसे घरमें खेलते हैं॥"9॥

सेइ क्षणे जागि' निमाइ करये क्रन्दन।
अङ्के लञा शची ताँरे पियाइल स्तन॥10॥

अनुवाद—निमाइ उसी समय जागकर रोने लगे, तब शचीमाताने उन्हें गोदमें लेकर स्तनपान कराया॥10॥

शची और मिश्र, दोनोंके द्वारा
निमाइके चरणचिह्न-दर्शन :—

स्तन पियाइते पुत्रेर चरण देखिल।
सेइ चिह्न पाये देखि' मिश्रे बोलाइल॥11॥
देखिया मिश्रेर हइल आनन्दित मति।
गुप्ते बोलाइल नीलाम्बर चक्रवर्त्ती॥12॥

अनुवाद—स्तनपान कराते समय उन्होंने पुत्रके चरणोंको देखा। उनमें उन्हीं चिह्नोंको देखकर शचीमाताने जगन्नाथ मिश्रजीको बुलाया। यह देखकर जगन्नाथ मिश्र बहुत आनन्दित हुए और उन्होंने एकान्तमें नीलाम्बर चक्रवर्तीको बुलाया॥11-12॥

नीलाम्बर चक्रवर्तीकी उक्ति :—

चिह्न देखि' चक्रवर्त्ती बलेन हासिया।
"लग्न गणि' पूर्वे आमि राखियाछि लिखिया॥13॥
बत्रिश लक्षण—महापुरुष-भूषण।
एइ शिशु अङ्गे देखि से-सब लक्षण॥14॥

अनुवाद—उन चरणचिह्नोंको देखकर नीलाम्बर चक्रवतीने हँसकर कहा,—"मैंने तो पहलेसे ही लग्नकी गणना करके लिख रखा है। महापुरुषोंमें भूषणस्वरूप जो बत्तीस लक्षण हैं, मैं वे सब इस बालकके अङ्गोंमें देख रहा हूँ॥"13-14॥

महापुरुषके बतीस लक्षण :—
सामुद्रका तीसरा-श्लोक—

पञ्चदीर्घः पञ्चसूक्ष्मः सप्तरक्तः षडुन्नतः।
त्रिह्रस्व-पृथु-गम्भीरो द्वात्रिंशल्लक्षणो महान्॥15॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है॥15॥

अमृतप्रवाह भाष्य—नासिका, भुजाएँ, ठोडी, नेत्र और घुटना—ये पाँच दीर्घ (बड़े); त्वचा, केश, अँगुलीका अग्रभाग, दाँत और रोम—ये पाँच सूक्ष्म (पतले); नेत्रप्रान्त, चरणका तलवा, हथेली, तालु, अधर, ओष्ठ और नाखून—ये सात रक्त (लाल); वक्ष, स्कन्ध,

नाखून, नासिका, कटि और मुख—ये छह उन्नत; गर्दन, जङ्घा और मेहन (जनेन्द्रिय)—ये तीन ह्रस्व (छोटे); कटि, ललाट और वक्ष—ये तीन विस्तीर्ण (चौड़े); नाभि, स्वर, सत्त्व (बुद्धि)—ये तीन गम्भीर,—महापुरुष इन बत्तीस लक्षणोंसे युक्त होते हैं॥15॥

अनुभाष्य—पञ्चदीर्घः (पञ्च नासा-भुज-हनु-नेत्र-जानूनि दीर्घाणि यस्य सः), पञ्चसूक्ष्मः (पञ्चत्वक्-केशाङ्गुलिपर्व-दन्त-रोमाणि सूक्ष्माणि यस्य सः) सप्तरक्तः (सप्त नयनप्रान्त-पदतल-करतल-ताल्वधरौष्ठनखाः च रक्ताः रक्तवर्णाः यस्य सः) षडुन्नतः (षट् वक्षः-स्कन्ध-नख-नासिका-कटि-मुखानि उन्नतानि उच्चानि यस्य सः) त्रिह्रस्व-पृथु-गम्भीरः (त्रीणि ग्रीवा-जङ्घा-मेहनानि ह्रस्वानि लघुनि, त्रीणि कटि-ललाट-वक्षांसि पृथुनि विशालानि, त्रीणि नाभि-स्वर-सत्त्वानि गम्भीराणि यस्य सः) द्वात्रिंशल्लक्षणः (एतानि द्वात्रिंशत् लक्षणानि यस्य सः जनः)—महान् (महापुरुषः)।

श्लोक भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है॥15॥

नीलाम्बर चक्रवर्ती द्वारा शिशुका
माहात्म्य-वर्णन और भविष्यवाणी :—

नारायणेर चिह्नयुक्त श्रीहस्त-चरण।
एइ शिशु सर्वलोके करिबे तारण॥16॥

एइ त' करिबे वैष्णव-धर्मेर प्रचार।
इहा हैते हबे दुइ कुलेर निस्तार॥17॥

अनुवाद—इस शिशुके श्रीहस्त-चरणोंमें वही चिह्न हैं जो नारायणके हस्त-चरणोंमें हैं, इसलिये यह सभी लोगोंका उद्धार करेगा। यह वैष्णव धर्मका प्रचार करेगा और इससे दोनों कुलोंका उद्धार होगा॥16-17॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'दुइकुलेर'—पितृकुल और मातृकुल॥17॥

नामकरण-महोत्सव :—

महोत्सव कर, सब बोलाह ब्राह्मण।
आजि दिन भाल,—करिब नामकरण॥18॥

'विश्वम्भर' नाम :—

सर्वलोके करिबे एइ धारण, पोषण।
'विश्वम्भर' नाम इहार,—एइ त' कारण॥"19॥

अनुवाद—आजका दिन शुभ है, इसलिये मैं आज ही इसका नामकरण करूँगा, आप सभी ब्राह्मणोंको बुलाकर महोत्सव कीजिये। यह सभी लोगोंका धारण और पोषण करेगा, इसलिये इसका नाम 'विश्वम्भर' है॥"18-19॥

अनुभाष्य—चैःभाः आदिखण्ड चौथा अध्याय—

"जगत् हइल सुस्थ इहान जनमे।
पूर्वे येन पृथिवी धरिला नारायणे॥48॥
अतएव इहान 'श्रीविश्वम्भर' नाम॥49(क)॥"

"जैसे पूर्वकालमें पृथ्वी श्रीनारायणके वराहावतारके द्वारा धारण किये जानेपर स्वस्थ हुई थी, वैसे ही इन बालकके जन्मके साथ ही सम्पूर्ण जगत् स्वस्थ हो गया है अर्थात् श्रीकृष्णनाम-श्रवण-कीर्तनके प्रभावसे स्वरूपभ्रान्त-अनर्थ रोगसे ग्रस्त जीव-जगत्ने अपने स्वरूपमें स्थित होकर स्वास्थ्य (निश्चित मङ्गल) लाभ किया है, इसलिये इनका नाम 'श्रीविश्वम्भर' है।"

'विश्वम्भर'—अथर्ववेदसंहिता, दूसरा काण्ड, तीसरा अनुवाक्, तीसरा प्रपाठक, सोलहवाँ मन्त्र, पाँचवीं संख्या—

"विश्वम्भर विश्वेन मा भरसा पाहि स्वाहा।"

"हे समस्त प्राणियोंका पोषण करनेवाले विश्वम्भरदेव! आप अपनी समस्त पोषण-शक्तिसे हमारी सुरक्षा करें और हमारी आहुति ग्रहण करें॥"19॥

शुनि' शची-मिश्रेर मने आनन्द बाड़िल।
ब्राह्मण-ब्राह्मणी आनि' महोत्सव कैल॥20॥

अनुवाद—यह सुनकर श्रीशचीदेवी और श्रीजगन्नाथ मिश्र बड़े आनन्दित हुए तथा उन्होंने ब्राह्मणों और ब्राह्मणियोंको बुलाकर महोत्सव किया॥20॥

अलौकिक-चेष्टा-प्रदर्शन :—

तबे कत दिने प्रभुर जानु-चंक्रमण।
तथा नाना चमत्कार कराइल दर्शन॥21॥

अनुवाद—कुछ दिनोंके बाद महाप्रभुने घुटनोंके

बल चलना आरम्भ किया। उस समय उन्होंने अनेक प्रकारकी चमत्कारिक लीलाएँ प्रकाशित कीं।॥ 21॥

अनुभाष्य—'जानुचंक्रमण'—घुटनोंके बल चलना। चैःभाः आदिखण्ड चौथा अध्याय—

"जानुगति चले प्रभु परम सुन्दर।
कटिते किङ्कणी बाजे अति मनोहर॥ 65॥
एकदिन एकसर्प बाड़ीते बेड़ाय।
धरिलेन सर्प प्रभु बालक-लीलाय॥ 67॥
कुण्डली करिया सर्प रहिल बेड़िया।
ठाकुर थाकिला सर्प उपरे शुइया॥ 68॥
प्रभुरे एड़िया सर्प पलाय तखन॥"

"जब परम सुन्दर महाप्रभुने घुटनोंके बल चलना आरम्भ किया, तो उनकी कटिमें बँधी किङ्कणीकी बड़ी सुन्दर झङ्कार होती थी। एक दिन एक सर्प उनके आङ्गनमें घूम रहा था, महाप्रभुने बाल्यक्रीड़ावश उसको पकड़ लिया। वह सर्प कुण्डली मारकर वहाँ बैठ गया और महाप्रभु उसके ऊपर सो गये। महाप्रभुके उठनेपर वह सर्प वहाँसे चला गया॥"21॥

हरिनामसे रोना बन्द :—

क्रन्दनेर छले बलाइल हरिनाम।
नारी सब 'हरि' बले,—हासे गौरधाम॥ 22॥

अनुवाद—रोनेके छलसे महाप्रभु सबसे हरिनाम उच्चारण करवाते। (जब स्त्रियाँ महाप्रभुको रोते हुए देखतीं,) तो वे 'हरि-हरि' कहती, यह देखकर महाप्रभु हँसने लगते।॥ 22॥

अनुभाष्य—चैःभाः आदिखण्ड चौथा अध्याय—

"तावत् कान्देन प्रभु कमललोचन।
हरिनाम शुनिले रहेन ततक्षण॥ 8॥
परम सङ्केत एइ, सबे बुझिलेन।
कान्दिलेइ हरिनाम सबेइ लयेन॥ 9॥
प्रभु येइ कान्दे, सेइक्षणे नारीगण।
हाते तालि दिया करे हरि-सङ्कीर्तन॥ 60॥
निरवधि सबार वदने हरिनाम।
छले बोलायेन प्रभु, हेन इच्छा तान॥ 62॥"

"कमलनयन महाप्रभु तब तक रोते रहते, परन्तु हरिनाम सुनते ही तुरन्त रोना बन्द कर देते। उनके इस परम सङ्केतको सभीने समझ लिया और उनके रोते ही सभी हरिनाम लेने लगते। जिस क्षण महाप्रभु रोने लगते, उसी क्षण सभी नारियाँ हाथोंसे ताली बजाकर हरिनाम सङ्कीर्तन करने लगतीं। इस प्रकार छलसे महाप्रभु सभीके मुखोंसे निरन्तर हरिनाम करवाते॥"22॥

बालकोंके साथ क्रीड़ा :—

तबे कत दिने कैल पद-चंक्रमण।
शिशुगणे मिलि' कैल विविध खेलन॥ 23॥

अनुवाद—कुछ दिनोंमें महाप्रभुने अपने पैरोंपर चलना आरम्भ किया और फिर दूसरे बालकोंके साथ मिलकर अनेक प्रकारकी क्रीड़ाएँ करने लगे॥ 23॥

अनुभाष्य—चैःभाः आदिखण्ड, चौथा अध्याय—

"एइमत दिने दिने श्रीशचीनन्दन।
हाँटिया करेन प्रभु अङ्गने भ्रमण॥ 77॥"

"इस प्रकार दिन-प्रतिदिन लीला करते हुए श्रीशचीनन्दन आङ्गनमें पैरोंपर चलते हुए भ्रमण करते॥"23॥

एकदिन शची खइ-सन्देश आनिया।
बाटी भरि' दिया बले,—"खाओ त' बसिया॥"24॥

अनुवाद—एक दिन शचीमाताने खील-सन्देशको कटोरीमें डालकर महाप्रभुको दिया और कहा,—"इसे यहाँ बैठकर खाओ॥"24॥

अनुभाष्य—'बाटी'—खाद्यद्रव्य अथवा ताम्बुल रखनेका पात्र अथवा बर्तन॥ 24॥

निमाइके द्वारा मिट्टी खाना :—

एत बलि' गेला शची गृहे कर्म करिते।
लुकाञा लागिला शिशु मृत्तिका खाइते॥ 25॥

अनुवाद—यह कहकर शचीमाता गृहके कार्य करने चली गयीं और उधर महाप्रभु छिपकर मिट्टी खाने लगे॥ 25॥

अनुभाष्य—चैतन्यभागवतके आदिखण्ड चतुर्थ अध्यायमें कही गई अन्यान्य बाल्य-लीलाओंमें इस घटनाका वर्णन नहीं है, इसका यहींपर वर्णन किया गया है॥25॥

शचीके द्वारा उसका कारण पूछना :—

देखि' शची धाञा आइला करि' हाय, हाय'।
माटि काड़ि' लञा बले—'माटि केने खाय'॥26॥

अनुवाद—यह देखकर शचीमाता 'हाय, हाय' करती हुई दौड़कर आयीं और महाप्रभुके हाथसे मिट्टीको छीनकर बोलीं,—'मिट्टी क्यों खाते हो?'॥26॥

निमाइका दार्शनिक उत्तर :—

कान्दिया बलेन शिशु,—"केने करे रोष।
तुमि माटि खाइते दिले, मोर किबा दोष॥27॥

सब कुछ ही मिट्टीका विकार :—

खइ-सन्देश-अन्न, यतेक—माटिर विकार।
इह माटि, सेह माटि, कि भेद-विचार॥28॥
माटि—देह, माटि—भक्ष्य, देखह विचारि'।
अविचारे देह दोष, कि बलिते पारि॥"29॥

अनुवाद—रोते हुए निमाइने कहा,—"क्रोध क्यों करती हो? आपने ही तो मुझे मिट्टी खानेको दी है, इसमें मेरा क्या दोष है? खील, सन्देश और अन्न, सभी (मिट्टीसे उत्पन्न होनेके कारण) मिट्टीके ही तो विकार हैं। यह भी मिट्टी है और वह भी मिट्टी है, इसमें क्या भेद-विचार है? विचार करके देखो कि यह शरीर भी मिट्टीसे बना है और खानेके पदार्थ भी मिट्टीसे बने हैं। परन्तु आप बिना विचार किये ही मुझपर दोष लगा रही हैं, तो मैं क्या कह सकता हूँ?"॥27-29॥

शचीका प्रत्युतर :—

अन्तरे विस्मित शची बलिल ताहारे।
"माटि खाइते ज्ञानयोग के शिखाल तोरे॥30॥

द्रव्य और उसके विकारकी विशेषता अथवा अनुकूल और प्रतिकूलका वैशिष्ट्य :—

माटिर विकार अन्न खाइले देह-पुष्टि हय।
माटि खाइले रोग हय, देह याय क्षय॥31॥
माटिर विकार घटे पानि भरि' आनि।
माटि-पिण्डे धरि यबे, शोषि' याय पानि॥"32॥

अनुवाद—यह सुनकर शचीमाता मन-ही-मन बहुत विस्मित हुईं, परन्तु वात्सल्यके कारण बोलीं,—"मिट्टी खानेका ज्ञानयोग तुम्हें किसने सिखलाया है? मिट्टीके विकार अन्नको खानेसे शरीर पुष्ट होता है, परन्तु मिट्टी खानेसे शरीरमें रोग हो जाता है और शरीरका नाश हो जाता है। (सुनो पुत्र!) मिट्टीके विकार घड़ेमें जल भरकर लाया जा सकता है, परन्तु मिट्टीके ढेलेपर जल डालनेसे वह जलको सोख लेता है॥"30-32॥

उसको सुनकर महाप्रभुकी उक्ति :—

आत्म लुकाइते प्रभु बलिला ताहारे।
"आगे केन इहा, माता, ना शिखाले मोरे॥33॥
एबे से जानिलाङ, आर माटि ना खाइब।
क्षुधा लागे यबे, तबे तोमार स्तन पिब॥"34॥

अनुवाद—(माताके वचन सुनकर) महाप्रभुने अपने स्वरूपको छिपाते हुए कहा,—"आपने पहले मुझे इस बातकी शिक्षा क्यों नहीं दी? अब मैं जान गया हूँ, इसलिये पुनः मिट्टी नहीं खाऊँगा। मुझे जब भी भूख लगेगी, आपके स्तनका दूध ही पीऊँगा॥"33-34॥

अनुभाष्य—(अपने सुखके लिये ही) भोज्य-विषयोंको ग्रहण करना जड़ीय चेष्टा है, उसमें हरिसेवा नहीं है। निर्विशेषवादी लोग भ्रमवश ऐसे प्रतिकूल विषयों और श्रीकृष्णसेवाके अनुकूल विषयोंको (अर्थात् श्रीकृष्णको भोग अर्पण करनेको) समजातीय समझते हैं। इस प्रकारकी धारणा प्राकृत सिद्धान्तका नितान्त भ्रमयुक्त अस्फुट विकास है। उसी प्रकारकी मूढ़-निर्विशेष-चिन्ताकी अकर्मण्यताको, श्रीमन् महाप्रभुने माताके मुखसे मिट्टी और घटके सहज दृष्टान्तके द्वारा प्रदर्शित किया॥27-33॥

एत बलि' जननीर कोलेते चड़िया।
स्तनपान करे प्रभु ईषत् हासिया॥35॥

अनेक प्रकारसे ऐश्वर्यलीला-प्रकाश :—

एइमते नाना छले ऐश्वर्य देखाय।
बाल्यभाव प्रकटिया पश्चात् लुकाय॥36॥

अनुवाद—यह कहकर महाप्रभु शचीमाताकी गोदमें चढ़ गये और मन्द-मन्द मुसकाते हुए उनका स्तनपान करने लगे। इस प्रकार महाप्रभु नाना प्रकार छलसे ऐश्वर्य दिखते और बाल्यभावको प्रकटकर अपने ऐश्वर्यको छिपा लेते॥35-36॥

तैर्थिक ब्राह्मणका अन्नभोजन और उद्धार :—

अतिथि-विप्रेर अन्न खाइल तिनबार।
पाछे गुप्ते सेइ विप्रे करिल निस्तार॥37॥

अनुवाद—एक बार महाप्रभुने एक अतिथि-ब्राह्मणके भोजनको तीन बार खाया और बादमें गुप्तरूपसे उसका उद्धार किया॥37॥

अमृतप्रवाह भाष्य—एक तैर्थिक ब्राह्मण श्रीजगन्नाथ मिश्रके घरमें अतिथि बनकर आया। श्रीजगन्नाथ मिश्रने उन्हें रसोई बनानेकी सामग्री लाकर दी और उस ब्राह्मणने ठाकुरजीके लिये भोग बनाया। तैर्थिक ब्राह्मणने जब ध्यानमें गोपालको भोग निवेदन किया, तब निमाइ आकर उस भोगको खाने लगे। निमाइके द्वारा स्पर्श किये हुए अन्नको त्यागकर अतिथि ब्राह्मणने और एक बार भोग बनाया। इस बार भी ध्यानमें निवेदनके समय वही घटना हुई। उसने तीसरी बार जब भोग बनाया, तब घरमें सभी लोग सो रहे थे। ब्राह्मणने जब ध्यानमें गोपालको भोग निवेदन कर रहा था, तब निमाइ आकर वह भोग खाने लगे। ब्राह्मण अपनेको दुर्भागा मानकर हाहाकार करने लगा। तब निमाइ बोले,—'हे ब्राह्मण! जब मैं व्रजमें यशोदा-दुलाल था, तब भी तुम्हारे साथ ऐसी ही घटना घटी थी। इस बार भी तुम्हारी भक्तिसे आकृष्ट होकर मैंने कृपाकर तुम्हें इसके दर्शन करवा दिये हैं।' तब ब्राह्मणने अपने इष्टदेवका दर्शन करके महाप्रेममें मुग्ध होकर स्वयंको धन्य माना और उसने निमाइके अवशिष्ट प्रसादसेवा की अर्थात् उस प्रसादको ग्रहण किया। महाप्रभुने उसको इस गुप्तलीलाको किसीके समक्ष प्रकाश करनेके लिये निषेध किया॥37॥

अनुभाष्य—चै:भा: आदिखण्ड पाँचवाँ अध्याय द्रष्टव्य है॥37॥

चोरोंकी बुद्धिमें भ्रम उत्पन्न करना :—

चोरे लञा गेल प्रभुके बाहिरे पाइया।
तार स्कन्धे चड़ि' आइला तारे भुलाइया॥38॥

अनुवाद—एक बार महाप्रभुको घरसे बाहर खेलते हुए पाकर चोर उन्हें उठा ले गये, परन्तु अपने प्रभावसे महाप्रभु उनको मार्ग भुलाकर उन्हींके कन्धोंपर चढ़कर घर लौट आये॥38॥

अमृतप्रवाह भाष्य—महाप्रभु जब अभी छोटेसे बालक थे, तब वे स्वर्णके अलङ्कारोंसे भूषित होकर द्वारके बाहर खेलने गये। दो चोर उन्हें 'सन्देश' (बङ्गालकी एक मिठाई) खिलानेका लोभ देकर अपने कन्धेपर चढ़ाकर ले गये। चोरोंने सोचा कि वनमें ले जाकर इस बालकको मारकर हम इसके सारे अलङ्कार ले लेंगे। महाप्रभुने अपनी मायाका विस्तार करके उन दोनोंको मार्ग भुला दिया और चोरोंके कन्धोंपर चढ़कर उन्हें अपने ही घरके द्वारपर ले आये। महाप्रभुके जानेपर उनके परिवारके लोग उनको खोजनेके लिये इधर-उधर भागदौड़ कर रहे थे और वे चोर उन सबके सामने बालकको छोड़कर भाग गये। तब महाप्रभुके परिवारजन बहुत कठिनाईसे उन्हें शचीमाताके आङ्गनमें लाये॥38॥

अनुभाष्य—चै:भा: आदिखण्ड चौथा अध्याय द्रष्टव्य है॥38॥

एकादशीमें हिरण्य-जगदीशके घरमें विष्णुनैवेद्य-भोजन :—

व्याधि-छले जगदीश-हिरण्य-सदने।
विष्णु-नैवेद्य खाइल एकादशी-दिने॥39॥

अनुवाद—एक बार एकादशीके दिन महाप्रभुने रोगके छलसे हिरण्य और जगदीश पण्डितके घरमें विष्णुके लिये बने नैवेद्यको खाया॥39॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जगदीश और हिरण्य पण्डितके घरमें एकादशीके दिन (विष्णु)-नैवेद्य तैयार हो रहा था। महाप्रभुने उस नैवेद्यको खानेकी आशासे अपने पिताजीको हिरण्य-जगदीशके घरमें भेजा। हिरण्य-जगदीश बालककी प्रार्थना सुनकर आश्चर्यचकित होकर बोले,—"आज एकादशी है और हमारे घरमें विष्णु-नैवेद्य बन रहा है, इस बातका इस बालकको कैसे पता चला है? अवश्य ही उसमें कोई वैष्णवी-शक्ति है।" उन्होंने उस नैवेद्यकी वस्तुओंको बालकके खानेके लिये भेज दीं। शरीर रोगग्रस्त हुआ है और विष्णु-नैवेद्य खानेसे उस रोगसे मुक्ति मिलेगी—इस बहानेसे महाप्रभुने नैवेद्य मँगवाया था। जगन्नाथ मिश्रने लाये गये नैवेद्यको पहले बालकोंको खिलाया और फिर स्वयं भी कुछ खाया। इससे महाप्रभु रोगसे मुक्त हो गये। जगन्नाथ मिश्रके घरसे हिरण्य-जगदीशका भवन लगभग एक कोस दक्षिण-पूर्व दिशाकी ओर है, इसलिये बालकके लिये इतनी दूरकी बातको जानना असम्भव है॥39॥

अनुभाष्य—चै:भा: आदिखण्ड छठा अध्याय द्रष्टव्य है॥39॥

बालकोचित्त लीला—चोरी और कलहादि :—

शिशुगण लये पाड़ा-पड़सीर घरे।
चुरि करि' द्रव्य खाय, मारे बालकेरे॥40॥

अनुवाद—महाप्रभु बालकोंको साथ लेकर पड़ोसियोंके घर जाते और वहाँ जाकर खाद्य सामग्रीकी चोरी करके खाते तथा (उस घरके) बालकोंको मारते भी थे॥40॥

अनुभाष्य—चै:भा: आदिखण्ड चौथा अध्याय,—

"निकटे बसये यत बन्धुवर्ग घरे।
प्रतिदिन कौतुके आपने चुरि करे॥100॥
कारो घरे दुग्ध पिये, कारो भात खाय।
हाँड़ि भाङ्गे, यार घरे किछुइ ना पाय॥101॥
घरे यदि शिशु थाके, ताहारे काँदाय॥102(क)॥"

"निकटमें जितने बन्धु-बान्धवोंके घर थे, महाप्रभु उनके घरोंमें प्रतिदिन कौतुकसे चोरी करते। किसीके घरमें चोरी करके दूध पीते और किसीके घरमें भात खाते। जिस घरमें उन्हें कुछ नहीं मिलता, उनकी हाँडी फोड़ देते। जिस घरमें छोटा बच्चा होता, तो उसे रुलाते।" चै:भा: छठा अध्याय,—

"केह बोले,—पुत्र अति-बालक आमार।
कर्णे जल दिया तारे कान्दाय अपार॥65॥"

"(जगन्नाथ मिश्रको उलाहना देते हुए) कोई कहता कि मेरा बालक अभी बहुत छोटा है और आपका पुत्र उसके कानमें जल डाल देता है, जिससे वह बहुत रोता है॥"40॥

शचीसे शिकायत और शचीके द्वारा फटकार :—

शिशुसब शची-स्थाने कैल निवेदन।
शुनि' शची पुत्रे किछु दिला ओलाहन॥41॥
"केने चुरि कर, केने मारह शिशुरे।
केने पर-घरे याह, किवा नाहि घरे॥"42॥

अनुवाद—सभी बालकोंने शचीमाताके पास जाकर निमाइके क्रिया-कलाप बतलाये। जिसे सुनकर शचीमाताने निमाइको डाँटते हुए पूछा,—"तुम चोरी क्यों करते हो? बालकोंको क्यों मारते हो? दूसरोंके घर क्यों जाते हो? हमारे घरमें क्या कमी है?"॥41-42॥

अनुभाष्य—**'ओलाहन'**—तिरस्कार, भर्त्सना॥41॥

महाप्रभुका क्रोध और घरमें उपद्रव :—

शुनि' क्रु
धरे यत भाण्ड छिल, फेलिल भाङ्गिया॥43॥

अनुवाद—(शचीमाताके द्वारा इस प्रकार डाँटनेपर) निमाइ क्रोधित होकर घरके भीतर गये और घरके सभी बर्तनोंको फेंककर तोड़ दिया॥43॥

महाप्रभुको सान्त्वना और महाप्रभुका लज्जित होना :—

तबे शची कोले करि' कराइल सन्तोष।
लज्जित हइला प्रभु जानि' निज-दोष॥ 44॥

अनुवाद—तब शचीमाताने निमाइको गोदमें लेकर शान्त किया और महाप्रभु भी अपने दोषको जानकर लज्जित हुए॥ 44॥

मातापर प्रहार, माताको मूर्छित देखकर दुष्प्राप्य नारियल लाना :—

कभु मृदुहस्ते कैल माताके ताड़न।
माताके मूर्च्छिता देखि' करये क्रन्दन॥ 45॥

नारीगण कहे,—"नारिकेल देह आनि'।
तबे सुस्थ हइबेन तोमार जननी॥"46॥

बाहिरे याञा आनिलेन दुइ नारिकेल।
देखिया अपूर्व हैला विस्मित सकल॥ 47॥

अनुवाद—किसी समय महाप्रभुने अपने कोमल हाथोंसे माताको बाल्यभावसे पीटा और माता मूर्च्छित होने का अभिनय करने लगीं, जिसे देखकर महाप्रभु रोने लगे। तब अन्य स्त्रियोंने महाप्रभुसे कहा,—"माताको नारियल लाकर दो, तभी वह स्वस्थ हो सकती है।" यह सुनकर तत्क्षण महाप्रभु बाहरसे दो नारियल ले आये, जिसे देखकर सभी अत्यन्त विस्मित हो गये॥ 45-47॥

अनुभाष्य—लोचनदास ठाकुरकृत चैतन्यमङ्गलमें आदि—

"ताँहि एक दिव्य नारी कहिल हासिया।
चिबुक धरिया विश्वम्भरे बले वाणी।
नारिकेल फल दुइ माये देह आनि'॥
तबे से जीयये शची—एइ तोर माता।
xx इहा शुनि' विश्वम्भर हरिष हइला।
तखनि युगल नारिकेल आनि' दिला॥"

"तब एक दिव्य नारीने विश्वम्भरकी ठोडी पकड़कर हँसकर कहा कि तुम दो नारियलके फल लाकर दो, तभी तुम्हारी शचीमाता जीवित होगी। यह सुनकर विश्वम्भर हर्षित हो गये और वे दो नारियल लेकर आये॥"46॥

स्नानके समय कुमारी कन्याओंके साथ कौतुक :—

कभु शिशु-सङ्गे स्नान करिल गङ्गाते।
कन्यागण आइला ताँहा देवता पूजिते॥ 48॥

गङ्गास्नान करि' पूजा करिते लागिला।
कन्यागण-मध्ये प्रभु आसिया बसिला॥ 49॥

अनुवाद—एक दिन अन्य बालकोंके साथ महाप्रभु गङ्गामें स्नान कर रहे थे। उसी समय कुछ कन्याएँ देवपूजनके लिये वहाँ आयीं। गङ्गा स्नानके बाद जब वे देवपूजा करने लगीं, तब महाप्रभु कन्याओंके बीचमें झटसे जाकर बैठ गये॥ 48-49॥

कन्याओंके प्रति महाप्रभुकी उक्ति :—

कन्यारे कहे,—"आमा पूज, आमि दिब वर।
गङ्गा-दुर्गा—दासी मोर, महेश—किङ्कर॥"50॥

आपनि चन्दन परि' परेन फुलमाला।
नैवेद्य काड़िया खा'न—सन्देश, चाल, कला॥ 51॥

अनुवाद—महाप्रभुने कन्याओंसे कहा,—"तुम मेरी पूजा करो और मैं तुम्हें वरदान दूँगा। गङ्गा, दुर्गा तो मेरी दासियाँ हैं और महेश मेरे दास हैं।" यह कहकर महाप्रभुने स्वयं ही चन्दन और फूल-मालाएँ उठाकर अपने अङ्गोंपर धारण कर लिये तथा सन्देश, चावल, केला आदि नैवेद्य छीनकर खाने लगे॥ 50-51॥

कन्याओंकी प्रत्युक्ति :—

क्रोधे कन्यागण कहे,—"शुन, हे निमाञि।
ग्राम-सम्बन्धे हओ तुमि आमा सबार भाइ॥ 52॥

आमा सबार पक्षे इहा कहिते ना युयाय।
ना लह देवता-सज्ज, ना कर अन्याय॥"53॥

अनुवाद—वे कन्याएँ क्रोधित होकर कहने लगीं,—"हे निमाइ, सुनो! ग्रामके सम्बन्धसे तुम हमारे भाई लगते

हो। तुम्हारा हम सबसे ऐसा कहना उचित नहीं है। देवताओंके लिये लायी गयी पूजा-सामग्रीको मत लो, ऐसा अन्याय मत करो॥"52-53॥

छलसे महाप्रभुका वरदान :—

प्रभु कहे,—"तोमा-सबाके दिलाङ एइ वर।
तोमा सबार भर्त्ता हबे परम सुन्दर॥54॥

पण्डित, विदग्ध, युवा, धनधान्यवान्।
सात सात पुत्र हबे—चिरायु, मतिमान्॥"55॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"मैं तुम सबको यह वर देता हूँ कि तुम्हारा पति परम सुन्दर, पण्डित, कुशल, नवयुवक और धन-धान्यसे युक्त होगा तथा तुम सबके सात-सात चिरायु तथा बुद्धिमान पुत्र होंगे॥"54-55॥

वर शुनि' कन्यागणेर अन्तरे सन्तोष।
बाहिरे भर्त्सन करे करि' मिथ्या रोष॥56॥

अनुवाद—वर सुनकर सभी कन्याओंके हृदयमें सन्तोष हुआ, परन्तु बाहरसे मिथ्या रोष प्रकट करते हुए वे महाप्रभुकी भर्त्सना करने लगीं॥56॥

भागने वाली कन्याओंके प्रति शापके छलसे कृत्रिम क्रोध :—

कोन कन्या पलाइल नैवेद्य लइया।
तारे डाकि' कहे प्रभु सक्रोध हइया॥57॥

"यदि नैवेद्य ना देह हइया कृपणी।
बूढ़ा भर्त्ता हबे, आर चारि सतिनी॥"58॥

अनुवाद—कई कन्याएँ नैवेद्य लेकर भागने लगीं, तो महाप्रभुने उन्हें पुकारते हुए क्रोधित होकर कहा,—"यदि तुम कृपणता करके मुझे नैवेद्य नहीं दोगी, तो तुम्हें बूढ़ा पति और चार-चार सौतने प्राप्त होगीं॥"57-58॥

भयसे बालिकाओंके द्वारा नैवेद्य-अर्पण :—

इहा शुनि' ता-सबार मने हइल भय।
"कोन किछु जाने, किबा देवाविष्ट हय॥"59॥

आनिया नैवेद्य तारा सम्मुखे धरिल।
खाइया नैवेद्य तारे इष्टवर दिल॥60॥

अनुवाद—यह सुनकर वे सब मन-ही-मन भयभीत हो गयीं और सोचने लगीं,—"हो सकता है कि निमाइ कुछ ज्योतिष जानता है अथवा इसमें किसी देवताका आवेश है।" निमाइके वचन सत्य नहीं हो जाँय, इस भयसे वे लौट आयीं और अपने नैवेद्यको महाप्रभुके सामने रख दिया। महाप्रभुने उस नैवेद्यको खाकर उन्हें मनोभीष्ट वर प्रदान किया॥59-60॥

महाप्रभुकी मधुर चापल्य-लीलासे सभीको सुख :—

एइ मत चापल्य सब लोकेरे देखाय।
दुःख कारो मने नहे, सबे सुख पाय॥61॥

अनुवाद—इस प्रकार महाप्रभु सबसे चपलता करते, किन्तु इसके द्वारा किसीके भी मनमें दुःख नहीं होता, अपितु सभी सुखका ही अनुभव करते॥61॥

अमृतानुकणिका—'एइ मत चापल्य'—कौतुकी विश्वम्भर बालकोंके साथ जब गङ्गा स्नानके लिये जाते, तो वे एक-दूसरेपर जल फेंका करते थे। सब बालकोंको साथ लेकर महाप्रभु गङ्गामें तैरते। पलभरमें डुबकी लगाते, तो दूसरे ही पल ऊपर दिखाई देते। इस प्रकार महाप्रभु नाना क्रीड़ाएँ करते रहते। श्रीगौरसुन्दर जब जलक्रीड़ा करते, तो वे चरणोंसे जल उछालते जो अन्य सबके शरीरपर लगता था। किसीके तो शरीरपर जलका कुल्ला ही कर देते थे। इस प्रकार महाप्रभु सबको बारम्बार स्नान करवाते। सबके मना करनेपर वे किसीकी भी बात नहीं मानते थे, एक स्थानपर स्थिर न रहनेके कारण कोई उन्हें पकड़ भी नहीं पाता था।

महाप्रभुको न पकड़ पानेके कारण सब ब्राह्मण उनके पिता जगन्नाथ मिश्रके पास पहुँचे। सब मिलकर कहने लगे,—"हे परम बान्धव मिश्रवर! सुनिये, सुनिये, हम सब आपको आपके पुत्रके अन्यायपूर्ण व्यवहारकी बातें सुनाते हैं, जिसके कारण हम लोग अच्छी तरह

गङ्गा-स्नान भी नहीं कर पाते हैं।" कोई कहने लगे,—"वह जल फेंककर हमारा ध्यान भङ्ग कर देता है। फिर कहता है,—अरे! तुम किसका ध्यान करते हो? देखो, कलियुगमें मैं ही प्रत्यक्ष नारायण हूँ।" कोई कहते,—"वह मेरा शिवलिङ्ग चुरा लेता है।" कोई कहते,—"मेरा उत्तरीय लेकर भाग जाता है।" कोई कहते,—"पुष्प, दूर्वा, नैवेद्य, चन्दनादि श्रीविष्णुपूजाकी सामग्री और श्रीविष्णुका आसन रखकर मैं तो उधर स्नान करने लग जाता हूँ और इधर आपका बालक उस आसनपर आ बैठता है और वहाँ सारा नैवेद्य खाकर तथा माल्यादि पहनकर भाग जाता है। फिर ऊपरसे कहता है—तुम अपने दुःखी क्यों होते हो? जिसके लिये ये सब तुमने किया था, वही स्वयं आकर खा गया।" कोई कहने लगे,—"जब मैं गङ्गाजलमें खड़ा होकर सन्ध्या कर रहा होता हूँ, तब यह डुबकी लगाकर मेरे पाँव पकड़कर खींचता है।" कोई कहने लगे,—"मेरे पुष्पचयन पात्र और धोतीको ही उठाकर ले जाता है।" कोई कहने लगे,—"मेरी गीताकी पोथीको चुराकर ले जाता है।" किसीने कहा,—"मेरा लड़का अभी बहुत छोटा है, यह उसके कानमें जल डाल देता है, जिससे वह बहुत रोता है।" किसीने कहा,—"मेरी पीठपर पैर रखकर कन्धेपर चढ़ जाता है और 'मैं ही महेश हूँ', ऐसा कहकर गङ्गामें कूद जाता है।" कोई कहने लगे,—"मेरे पूजाके आसनपर स्वयं बैठ जाता है और नैवेद्य खाकर स्वयं ही विष्णुपूजा करने लगता है। हम स्नान करके ऊपर उठते हैं, तब हमारे शरीरपर रेत डाल देता है और जितने भी चञ्चल बालक हैं, वे सब इसके साथ रहते हैं। कभी-कभी स्त्रियों और पुरुषोंके कपड़े बदलकर रख देता है, जिनको पहनते समय सब लज्जासे विकल हो जाते हैं। हे मिश्रजी! आप हमारे परम-बान्धव हैं, एक दिनकी बात नहीं, यह प्रतिदिन ऐसा ही व्यवहार करता है, तभी तो हम कहने आये हैं। दो प्रहरतक यह जलसे बाहर ही नहीं निकलता। बताओ, फिर इसका शरीर कैसे ठीक रहेगा?"

उसी समय पड़ोसमें रहनेवाली सब बालिकाएँ शचीदेवीके पास क्रोधित होकर आ पहुँची। वे सब शचीमातासे कहने लगीं,—"हे ठकुरानी! अपने पुत्रकी करतूतें सुनिये—वह हमारे वस्त्रोंको चुरा लेता है और हमसे बहुत बुरे शब्द बोलता है। जब हम कुछ उत्तर देती हैं, तो हमारे ऊपर जल फेंकता है और झगड़ने लगता है। हम व्रत करनेके लिये जो-जो फल-फूल ले जाती हैं, जबरदस्ती हमसे छीनकर फेंक देता है। स्नान करके आनेपर वह हमारे शरीरपर रेत फेंक देता है। कभी छिपकर आता है और हठात् कानके निकट आकर उच्च स्वरसे चीत्कार करता है।" कोई कहने लगीं—"आज इसने मेरे मुखपर कुल्ला कर दिया। फिर हम सबके बालोंमें ओकड़ाका फल (शरीरपर लगनेसे जिससे शरीरमें तीव्र खुजलाहट होती है) चिपका देता है।" कोई कहने लगी,—"मुझसे तो यह विवाह करना चाहता है। यह प्रतिदिन ऐसा व्यवहार करता है, जैसे तुम्हारा निमाइ कोई राजकुमार हो? पूर्वकालमें जैसे श्रीनन्दके कुमारके विषयमें सुना जाता है, उसी प्रकार तुम्हारा निमाइ सब आचरण करता है। दुःखी होकर जिस दिन हम अपने पिता-मातासे ये सब बातें कहेंगी, उसी दिन आपके साथ उनका झगड़ा हो जायेगा। इसलिये आप अपने छोटे बालकको तुरन्त रोक दें। नदिया नगरीमें ऐसा आचरण करना कभी भी अच्छा नहीं है।"

महाप्रभुकी जननी ये सब बातें सुनकर हँस पड़ी और सबको गोदीमें लेकर प्रियवाणी कहने लगीं—"आज निमाइके घर आनेपर उसको बाँधकर लाठीसे मारूँगी, जिसे वह फिर और उपद्रव न करे।" यह सुनकर सबने शचीमाताकी चरणधूलि लेकर अपने सिरपर धारण की और सभी पुनः स्नानके लिये गङ्गा-घाटपर चली गयीं।

महाप्रभु जिनके साथ जितनी भी चञ्चलता करते, वास्तवमें उससे उन सबके मनमें बड़ा सन्तोष होता। वे कौतुकवश मिश्रजीके पास कहने आये थे। उनकी बातें सुनकर मिश्रजी क्रोधित होकर तर्जन-गर्जन करने

लगे—"निरन्तर सबके साथ ऐसा ही व्यवहार करता है, लोगोंको अच्छी तरह गङ्गा-स्नान भी नहीं करने देता। अभी शीघ्र ही उसे दण्ड देनेके लिये जाता हूँ।"

उस समय सब बालकोंके बीचमें श्रीगौरसुन्दर गङ्गाजलमें क्रीड़ा करते हुए अत्यन्त मनोहर लग रहे थे। क्रोधपूर्वक जब मिश्रजी घरसे चले, तो सर्वान्तर्यामी श्रीगौराङ्गने जान लिया। तभी कन्याओंने आकर कहा कि हे निमाइ भाग जाओ, तुम्हारे पिताजी क्रोधित होकर आ रहे हैं। महाप्रभुने सब बालकोंको सिखा दिया कि पिताजी जब आयें, तो ऐसा कहना कि आपका पुत्र तो अभी स्नान करने ही नहीं आया। वह तो आज पाठशालासे उसी मार्गसे सीधा घर चला गया था, हम भी यहाँ उसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।" इस प्रकार सबको सिखाकर महाप्रभु दूसरे रास्तेसे घर चले गये और इधर मिश्रजी गङ्गाघाटपर आ पहुँचे। गङ्गाघाटपर आकर उन्होंने चारों ओर देखा, परन्तु बालकोंके बीचमें अपने पुत्रको कहीं भी न देख पाये। मिश्रजीने बालकोंसे पूछा,—"विश्वम्भर कहाँ गया?" सभी बालकोंने वही कहा जैसा निमाइने सिखाया था। हाथमें छड़ी लिये मिश्रजीने चारों ओर देखा, परन्तु पुत्रको न देखकर तर्जन-गर्जन करने लगे। जिन ब्राह्मणोंने मिश्रजीके पास जाकर महाप्रभुका अन्याय निवेदन किया था, उन्हीं सब ब्राह्मणोंने पुनः कहा,—"मिश्रजी! विश्वम्भर आपके डरके मारे घरको भाग गया है; आप घर जाइये, उससे कुछ कहना नहीं। अब पुनः यदि वह चञ्चलता करेगा, तो हम स्वयं ही उसे पकड़कर आपके पास ले आयेंगे।" (चैःभाः आदिखण्ड छठा अध्याय)॥ 61॥

वल्लभकी पुत्री लक्ष्मीदेवीके साथ साक्षात्कार :—

एकदिन वल्लभाचार्य-कन्या 'लक्ष्मी' नाम।
देवता पूजिते आइल करि' गङ्गास्नान॥ 62॥

अनुवाद—एक दिन श्रीवल्लभाचार्यकी पुत्री 'लक्ष्मी' देवपूजनके लिये गङ्गा स्नान करने आयीं॥ 62॥

परस्परके दर्शनसे दोनोंको सुख :—

ताँरे देखि' प्रभुर हइल साभिलाष मन।
लक्ष्मी चित्ते सुख पाइल प्रभुर दर्शन॥ 63॥

अनुवाद—उन्हें देखकर महाप्रभुके मनमें एक अभिलाषा जाग्रत हुई और महाप्रभुको देखकर लक्ष्मीदेवीके मनमें भी प्रसन्नता हुई॥ 63॥

दोनोंकी नित्यसिद्ध स्वाभाविक प्रीति और हर्ष :—

साहजिक प्रीति दुँहार करिल उदय।
बाल्यभावे छन्न-तनु हइल निश्चय॥ 64॥
दुँहा देखि' दुहार चित्ते हइल उल्लास।
देवपूजा-छले कैल दुँहे परकाश॥ 65॥

अनुवाद—उन दोनोंकी स्वभाविक प्रीति जो अभी तक बाल्यभावसे ढकी हुई थी, वह आज निश्चित रूपसे प्रकटित हो गयी। एक दूसरेको देखकर दोनोंके हृदयमें उल्लास हुआ और देवपूजाके छलसे दोनोंने अपने-अपने हृदयकी बातको प्रकाशित कर दिया॥ 64-65॥

अमृतप्रवाह भाष्य—लक्ष्मीजी भगवान्‌की नित्य पत्नी हैं और भगवान् लक्ष्मीजीके नित्यपति हैं। अतः उन दोनोंमें जो नित्यप्रीति है, वह स्वभाविक है। वह प्रीति बाल्यभावसे आच्छादित थी और अब उसकी प्रतीति हुई॥ 64॥

महाप्रभुका लक्ष्मीको अपने अर्चनके लिये आदेश :—

प्रभु कहे,—"आमा' पूज, आमि महेश्वर।
आमारे पूजिले पाबे अभीप्सित वर॥"66॥

अनुवाद—महाप्रभुने लक्ष्मीदेवीसे कहा,—"तुम मेरी पूजा करो, मैं महेश्वर हूँ। मेरी पूजा करनेसे तुम्हें मनोवाञ्छित वरकी प्राप्ति होगी॥"66॥

लक्ष्मीका आदेश-पालन :—

लक्ष्मी ताँर अङ्गे दिल स-पुष्प-चन्दन।
मल्लिकार माला दिया करिल वन्दन॥ 67॥

अनुवाद—लक्ष्मीदेवीने महाप्रभुके श्रीअङ्गोंमें पुष्पके साथ चन्दन प्रदान किया और मल्लिकाके फूलोंकी माला उनके गलेमें देकर उनकी वन्दना की॥ 67॥

महाप्रभुका सन्तोष :—

प्रभु ताँर पूजा पाञा हासिते लागिला।
श्लोक पड़ि' ताँर भाव अङ्गीकार कैला॥ 68॥

अनुवाद—उनकी पूजा पाकर महाप्रभु हँसने लगे और उन्होंने एक श्लोक पढ़कर लक्ष्मीदेवीके भावोंको ग्रहण किया॥ 68॥

अनुभाष्य—'वल्लभाचार्य' नवद्वीपवासी राजपण्डित थे। (श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 44वाँ श्लोक)—

"पुरासीत् जनको राजा मिथिलाधिपतिर्महान्।
अधुना वल्लभाचार्य भीष्मकोऽपि च सम्मतः॥ 44॥"

"मिथिला अधिपति महान् राजा जनक अब श्रीवल्लभाचार्य हैं। कोई-कोई इन्हें (श्रीरुक्मिणीके पिता) भीष्मक भी कहते हैं।" श्रीगौरहरिने प्रथम विवाह इनकी कन्या 'लक्ष्मीप्रिया' देवीसे किया।

'लक्ष्मीदेवी'—(श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 45वाँ श्लोक)—

"श्रीजानकी रुक्मिणी च 'लक्ष्मी' नाम्नी च तत्सुता।"

"श्रीजानकी और श्रीरुक्मिणी एक साथ मिलकर श्रीवल्लभाचार्यकी पुत्री श्रीलक्ष्मीप्रियादेवी हुईं हैं।" श्रीचैतन्यचरितमें—

"व्यक्ता लक्ष्मीनाम्नी च सा यथा।
सा वल्लभाचार्य-सुता चलन्ती स्नातुं सखीभिः सुरदीर्घिकायाः।
लक्ष्मीरनेनैव कृतावतारा प्रभोर्ययौ लोचनवर्त्म तत्र॥"

"वल्लभाचार्यकी कन्या श्रीलक्ष्मीप्रियादेवी, जो स्वयं लक्ष्मीका अवतार हैं, जिस समय सखियोंके साथ गङ्गा-स्नानके लिये जा रही थीं, तभी अकस्मात् महाप्रभुकी दृष्टि उनपर पड़ी।"॥ 62-68॥

श्रीमद्भागवत (10/22/25)—

सङ्कल्पो विदितः साध्व्यो भवतीनां मदर्चनम्।
मयानुमोदितः सोऽसौ सत्यो भवितुमर्हति॥ 69॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है॥ 69॥

अमृतप्रवाह भाष्य—हे साध्वियों! तुम सबकी पूजाका तात्पर्य मैं जान गया हूँ, इससे मुझे विशेष आनन्दकी प्राप्ति हुई है। तुम्हारी अभिलाषाएँ निश्चित ही सिद्ध होने योग्य हैं॥ 69॥

अनुभाष्य—श्रीकृष्ण-प्राप्तिकी अभिलाषासे कात्यायनी व्रत करनेवाली गोपियोंके वस्त्रहरणके पश्चात् उन्हें फिरसे वस्त्र लौटा देनेपर उन सबकी कृष्णकामनाको देखकर श्रीकृष्णने कहा,—

हे साध्व्यः (सत्यः)! मदर्च्चनं (मत्प्राप्त्यर्थं अर्च्चनं तदेव) भवतीनां (गोपीनां) सङ्कल्पः (मनोरथः, मनोगतभावः इत्यर्थः, युष्माभिः लज्जया अकथितः अपि) मया विदितः [सन्] अनुमोदितः (स्वीकृतः); [अतः] सः असौ [सङ्कल्पः] सत्यः (यथार्थः) भवितुम् अर्हति (योग्यो भवति)।

श्लोक भावानुवाद—हे साध्वियों! तुम सबकी पूजाका मनोभाव तुम्हारे लज्जाके कारण नहीं बतानेपर भी मैं जान गया हूँ और यह मेरे द्वारा अनुमोदित है। इसलिये तुम्हारा सङ्कल्प सत्य होनेके योग्य है॥ 69॥

एइमत लीला दुँहे करि' गेला घरे।
गम्भीर चैतन्य-लीला के बुझिते पारे॥ 70॥

अनुवाद—इस प्रकारकी लीलाके बाद दोनों अपने-अपने घर चले गये। चैतन्य महाप्रभुकी लीलाएँ अत्यन्त गम्भीर है, उनके अन्तरङ्ग भक्तोंके अतिरिक्त इनको कौन समझ सकता है?॥ 70॥

महाप्रभुका लीला-चापल्य देखकर सभीका अभियोग :—

चैतन्य-चापल्य देखि' प्रेमे सर्वजन।
शची-जगन्नाथे देखि' देन ओलाहन॥ 71॥

अनुवाद—श्रीचैतन्य महाप्रभुकी चपलताको सभी लोग प्रेमसे देखते, परन्तु जब वे शचीमाता और जगन्नाथ मिश्रसे मिलते, तो उन्हें उलाहना भी देते॥ 71॥

शचीकी निमाइको पकड़नेकी चेष्टा :—

एकदिन शची-देवी पुत्रेरे भर्त्सिया।
धरिवारे गेला पुत्रे, गेला पलाइला॥ 72॥

फेंकी हुई जूठी हाँड़ियोंके ऊपर निमाइका बैठना :—

उच्छिष्ट-गर्त्ते त्यक्त-हाण्डीर उपर।
बसियाछेन सुखे प्रभु देव-विश्वम्भर॥ 73॥

अनुवाद—एक दिन शचीदेवी किसी कारणसे क्रोधित होकर निमाइको डाँटते हुए उन्हें पकड़ने गयीं, किन्तु वे भाग गये। एक गढ्ढे, जिसमें जूठी हाँड़ियाँ पड़ी थीं, उसके ऊपर प्रभु विश्वम्भर सुखपूर्वक बैठ गये॥ 72-73॥

अनुभाष्य—चै:भा: आदिखण्ड सातवाँ अध्याय,—

"विष्णुनैवेद्येर यत वर्ज्य हाँड़िगण।
बसिलेन प्रभु, हाँड़ि करिया आसन॥ 162॥
माये आसि' देखिया करेन हाय हाय।
ए स्थानेते बाप, बसिवारे ना युयाय॥ 167॥
प्रभु बले,—सर्वत्र मोर अद्वितीय ज्ञान।
एसब हाँड़िते मूले नाहिक दूषण॥ 177॥
विष्णुर रन्धन-स्थाली कभु नाहि दुष्ट हय।
से हाँड़ि-परशे आर स्थान शुद्ध हय॥ 178॥

"विष्णु नैवेद्य बनानेके बाद हाँड़ियाँ जहाँ फेंक दी जाती थीं, वहाँ जाकर महाप्रभु एक हाँड़ीको आसन बनाकर बैठ गये। शचीमाता यह देखकर 'हाय' 'हाय' करती हुई आयीं और कहने लगीं,—'बेटा! यह स्थान बैठनेके योग्य नहीं है।' महाप्रभु बोले,—'मेरा तो सर्वत्र ही अद्वितीय ज्ञान है। इन सब हाँड़ियोंके मूलमें कोई दोष नहीं है। जिस हाँड़ीमें विष्णुके लिये भोग बनाया जाता है, वह कभी भी दूषित नहीं हो सकती और उस हाँड़ीके स्पर्शसे सभी स्थान पवित्र हो जाते हैं'।" चै:च: अन्त्यलीला, 4/174-176 संख्या द्रष्टव्य है। (भा: 11/28/4—श्रीकृष्णने उद्धवसे कहा)—

"किं भद्रं किमभद्रं वा द्वैतस्यावस्तुनः कियत्।
वाचोदितं तदनृतं मनसा ध्यातमेव च॥"

"अद्वयज्ञान-सम्बन्धरहित सभी मायिक प्रतीति-युक्त वस्तुएँ वास्तवमें 'अवस्तु' और 'द्वैत' हैं, उसमें यह भली है अथवा बुरी है, इसके सम्बन्धमें मनके द्वारा जो चिन्तन होता है अथवा वाक्यके द्वारा जो कहा जाता है, वह सब असत्य है।" अर्थात्

"भद्राभद्र-वस्तुज्ञान नाहि अप्राकृते।"

"अप्राकृत वस्तुमें 'भले-बुरे' की बुद्धि करना उचित नहीं है।"

"द्वैते भद्राभद्र-ज्ञान—सब मनोधर्म।
एइ भाल, एइ मन्द, एइ सब भ्रम॥"

"द्वैत-भावसे जो भले-बुरेका ज्ञान है, वह सब मनोधर्म है। यह भला है, यह बुरा है—यह सब मनका भ्रम है।" (भा: 11/19/45)—

"गुण-दोष-दृशिर्दोषो गुणस्तूभय-वर्ज्जितः।"

"(वास्तव वस्तुसे सम्बन्धरहित होकर) गुण और दोषका दर्शन 'दोष' और इन दोनों (गुण और दोष) को नहीं देखना ही गुण है।" (भा: 11/21/3-4)—

"शुद्ध्यशुद्धी विधीयते समानेष्वपि वस्तुषु।
द्रव्यस्य विचिकित्सार्थं गुणदोषौ शुभाशुभौ॥ 3॥
धर्मार्थं व्यवहारार्थं यात्रार्थमिति चानघ॥ 4क॥"

"हे निष्पाप उद्धव! द्रव्य योग्य अथवा अयोग्य है, इस सन्देहके निवारणके लिये द्रव्योंके धर्मार्थ (धर्म-सम्पदानके लिये) शुद्धि और अशुद्धि, व्यवहारार्थ (समाजका व्यवहार सुचारु रूपसे चले इसलिये) गुण और दोष तथा देहयात्रा (जीवन निर्वाहकी सुविधा) के लिये शुभ और अशुभ-निरूपण विहित है॥"73॥

शचीकी पुत्रको अशुद्धिके विचारके द्वारा सुधारनेकी चेष्टा :—

शची आसि' कहे,—"केने अशुचि छुँइला।
गङ्गास्नान कर याइ'—अपवित्र हइला॥"74॥

अनुवाद—शचीमाताने आकर कहा,—"तुमने इस अपवित्र स्थानका स्पर्श क्यों किया? तुम अपवित्र हो गये हो, इसलिये अब जाकर गङ्गामें स्नान करके आओ॥"74॥

पुत्रका माताको ब्रह्मज्ञान-उपदेश :—

इहा शुनि' माताके कहिल ब्रह्मज्ञान।
विस्मिता हइया माता कराइला स्नान॥ 75॥

अनुवाद—यह सुनकर महाप्रभुने माताको ब्रह्मज्ञानका उपदेश दिया, जिसे सुनकर माता विस्मित हो गयीं और वे स्वयं उनको स्नान कराने लगीं॥75॥

अमृतप्रवाह भाष्य—महाप्रभुने कहा,—"हे माता! उच्छिष्ट और अनुच्छिष्ट, ये दोनों मनुष्यके भावमात्र हैं, वास्तवमें इसमें कुछ भी सत्य नहीं है। आपने इन बर्तनोंमें विष्णुके लिये भोग-द्रव्य पकाकर विष्णुको अर्पण किया है, इसलिये ये सब बर्तन कभी भी उच्छिष्ट नहीं हो सकते। आत्मा नित्य पवित्र वस्तु है, उसके लिये उच्छिष्टादिका क्या विचार है? इस प्रकारके ब्रह्मज्ञानको सुनकर शचीमाता विस्मित हो गयीं और उनको स्नान कराने लगीं॥"75॥

इति अमृतप्रवाह-भाष्ये चतुर्दश परिच्छेद।
चौदहवें अध्यायका अमृतप्रवाह-भाष्य पूर्ण हुआ।

शयनके समय शचीके द्वारा देवताओंका दर्शन :—

कभु पुत्रसङ्गे शची करिला शयन।
देखे, दिव्यलोक आसि' भरिल भवन॥76॥

शची बले,—"याह, पुत्र, बोलाह बापेरे।"
मातृ-आज्ञा पाइया प्रभु चलिला बाहिरे॥77॥

माताके कहनेपर चलते समय चरणोंमें
नुपूर न होने पर भी नुपूर-ध्वनि :—

चलिते चरणे नूपुर बाजे झन्झन्।
शुनि' चमकित हैल पिता-मातार मन॥78॥

अनुवाद—एक दिन शचीमाता निमाइके साथ सो रही थीं, तो उन्होंने देखा कि दिव्य लोगोंसे उनका घर भर गया। शचीमाताने कहा,—"जाओ पुत्र, अपने पिताजीको बुला लाओ।" माताकी आज्ञा पाकर महाप्रभु बाहर चले और चलनेपर उनके चरणोंमें नूपुरोंकी झङ्कार होने लगी, जिसे सुनकर पिता-माता चकित हो गये॥76-78॥

मिश्रका विस्मय :—

मिश्र कहे,—"एइ बड़ अद्भुत काहिनी।
शिशुर शून्यपदे केने नूपुरेर ध्वनि॥"79॥

अनुवाद—जगन्नाथ मिश्रने कहा,—"यह बड़े आश्चर्यकी बात है! बालकके खाली पाँवोंसे नुपूरकी ध्वनि कैसे आ रही है?॥"79॥

देवताओंके दर्शनसे शचीका विस्मय :—

शची कहे,—"आर एक अद्भुत देखिल।
दिव्य दिव्य लोक आसि' अङ्गन भरिल॥80॥

किबा कोलाहल करे, बुझिते ना पारि।
काहाके वा स्तुति करे, अनुमान करि॥"81॥

अनुवाद—शचीमाताने कहा,—"मैंने भी एक आश्चर्य देखा था। दिव्य-दिव्य लोग हमारे आङ्गनमें आये और सारा आँगन भर गया था। वे कोलाहल करते हुए क्या कह रहे थे, उसे मैं समझ नहीं पा रही थी। मेरे अनुमानसे वे लोग किसीकी स्तुति कर रहे थे॥"80-81॥

दोनोंकी निमाइके कुशलकी चिन्ता :—

मिश्र बले,—"किछु हउक्, चिन्ता किछु नाइ।
विश्वम्भरेर कुशल हउक्,—एइमात्र चाइ॥"82॥

अनुवाद—जगन्नाथ मिश्रने कहा,—"कुछ भी हो, चिन्ताकी कोई बात नहीं है। मैं केवल यही चाहता हूँ कि हमारा पुत्र विश्वम्भर कुशलसे रहे॥"82॥

महाप्रभुकी चपलता देखकर मिश्रके
द्वारा तीव्र भर्त्सना :—

एकदिन मिश्र पुत्रेर चापल्य देखिया।
धर्म-शिक्षा दिल बहु भर्त्सना करिया॥83॥

अनुवाद—एक दिन जगन्नाथ मिश्रने निमाइकी चपलताको देखकर उसको बहुत फटकार लगायी और उसे धर्मके सम्बन्धमें शिक्षा प्रदान की॥83॥

रात्रिमें स्वप्न-दर्शन—एक ब्राह्मणके
द्वारा मिश्रकी भर्त्सना :—

रात्रे स्वप्न देखे,—एक आसि' ब्राह्मण।
मिश्रेरे कहये किछु सरोष वचन॥84॥

"मिश्र, तुमि पुत्रेर तत्त्व किछुइ ना जान।
भर्त्सन-ताड़न कर,—पुत्र करि' मान'॥"85॥

अनुवाद—उसी रात्रि जगन्नाथ मिश्रने स्वप्नमें देखा कि एक ब्राह्मण आकर उन्हें क्रोधित होकर कह रहा है,—"मिश्र, तुम अपने पुत्रके तत्त्वके सम्बन्धमें कुछ भी नहीं जानते हो, उसे केवल अपना पुत्र मानकर उसे डाँट-फटकार लगाते हो॥"84-85॥

मिश्रका अप्राकृत स्नेहपूर्ण उत्तर :—

मिश्र कहे,—"देव, सिद्ध, मुनि केने नय।
ये से बड़ हउक्, एबे आमार तनय॥86॥

पुत्रेर लालन-शिक्षा—पितार स्वधर्म।
आमि ना शिखाले, कैछे जानिबे धर्म-मर्म॥"87॥

अनुवाद—श्रीजगन्नाथ मिश्रने कहा,—"यह देव, सिद्ध, मुनि ही क्यों न हो अथवा कोई महान् पुरुष ही क्यों न हो, किन्तु अभी तो मेरा पुत्र ही है। पुत्रका लालन-पालन और उसे शिक्षा देना, यह पिताका स्वधर्म है। यदि मैं इसे शिक्षा नहीं दूँगा, तो धर्मके रहस्यको कैसे जानेगा?॥"86-87॥

विप्र और मिश्रकी उक्ति और प्रत्युक्ति :—

विप्र कहे,—"एइ यदि दैव-सिद्ध हय।
स्वतःसिद्धज्ञान, तबे शिक्षा व्यर्थ हय॥"88॥

मिश्र कहे,—"पुत्र केने नहे नारायण।
तथापि पितार धर्म—पुत्रके शिक्षण॥"89॥

अनुवाद—ब्राह्मणने कहा,—"यदि तुम्हारा पुत्र सिद्ध देवता है, तो इसका ज्ञान स्वतः सिद्ध ही है, तब तुम्हारा इसे शिक्षा देना व्यर्थ है।" जगन्नाथ मिश्रने उत्तर दिया,—"मेरा पुत्र यदि स्वयं नारायण ही क्यों न हो, तो भी पुत्रको शिक्षा देना पिताका धर्म है॥"88-89॥

अनुभाष्य—(श्रीजगन्नाथ मिश्रका) अपने पुत्र निमाईको अशिक्षित और अनभिज्ञ समझकर उसे शिक्षा देकर ज्ञानी बनानेकी अभिलाषाको देखकर ब्राह्मणने मिश्रसे कहा,—"तुम्हारे पुत्रके नित्यसिद्ध देवता होनेके कारण उसके नित्यसिद्ध स्वाभाविक ज्ञानको मूर्खता समझनेके कारण तुम्हारा उसे शिक्षा देना व्यर्थ है, इसलिये ऐसा करना तुम्हारे लिये अनुचित है॥"88॥

महाप्रभुके प्रति मिश्रका शुद्ध वात्सल्य-स्नेह :—

एइमते दुँहे करेन धर्मेर विचार।
शुद्ध वात्सल्य मिश्रेर, नाहि जाने आर॥90॥

अनुवाद—इस प्रकार दोनों धर्मका विचार करने लगे। किन्तु श्रीजगन्नाथ मिश्रका महाप्रभुके प्रति शुद्ध-वात्सल्य भाव होनेके कारण वे इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं जानते॥90॥

अनुभाष्य—(भक्तिरसामृतसिन्धु पश्चिम विभाग चतुर्थ लहरी)—

"विभावाद्यैस्तु वात्सल्यं स्थायी पुष्टिमुपागतः।
एष 'वत्सल'-नामात्र प्रोक्तः॥"

"वात्सल्य-रतिको स्थायीभाव, विभावादिके द्वारा पुष्टि लाभ करनेपर उसे पण्डित लोग 'वात्सल्य-भक्तिरस' कहते हैं।" (भाः 10/8/45)—

"त्रय्या चोपनिषद्भिश्च सांख्ययोगैश्च सात्वतैः।
उपगीयमानमाहात्म्यं हरिं सामन्यतात्मजम्॥"

"तीनों वेदों, उपनिषदों, सांख्य, योग और सात्वत-शास्त्रोंमें जिनके माहात्म्यका गान किया गया है, यशोदादेवी उन श्रीहरिको अपनी कोखसे उत्पन्न पुत्र मानती हैं॥"90॥

स्वप्न समाप्त होनेपर मिश्रका विस्मित होना और बन्धुओंको स्वप्नके सम्बन्धमें बताना :—

एत शुनि' द्विज गेला हञा आनन्दित।
मिश्र जागिया हइला परम विस्मित॥91॥

बन्धु-बान्धव-स्थाने स्वप्न कहिल।
शुनिया सकल लोक विस्मित हइल॥92॥

एइ मत शिशुलीला करे गौरचन्द्र।
दिने दिने पिता-मातार बाड़िल आनन्द॥93॥

अनुवाद—यह सुनकर वह ब्राह्मण आनन्दित होकर चला गया और जगन्नाथ मिश्र निद्रासे उठकर परम विस्मित हुए। जगन्नाथ मिश्रने अपने बन्धु-बान्धवोंको स्वप्नके विषयमें बतलाया, जिसे सुनकर सभी लोग आश्चर्यचकित हो गये। श्रीगौरचन्द्र इस प्रकार बाल्यलीला करते, जिसे देखकर पिता-माताका आनन्द दिन-प्रतिदिन बढ़ता जाता॥91-93॥

निमाइके हाथमें कलम (खड़िया) :—

कत दिने मिश्र पुत्रेर हाते खड़ि दिल।
अल्प दिने द्वादश-फला अक्षर शिखिल॥94॥

अनुवाद—कुछ दिनोंके बाद जगन्नाथ मिश्रने निमाइके हाथोंमें कलम दी और कुछ ही दिनोंमें वे द्वादश-फला अक्षर सीख गये॥94॥

अनुभाष्य—'द्वादश-फला'—रेफ, ण, न, म, य, र, ल, व, ऋ, ॠ, ऌ और ॡ फला॥94॥

इति अनुभाष्ये चतुर्दश परिच्छेद।
चौदहवें अध्यायका अनुभाष्य पूर्ण हुआ।

यह बाल्यलीला-सूत्र विस्तारसे
श्रीचैतन्यभागवतमें वर्णित :—

बाल्यलीला-सूत्र एइ कहिल अनुक्रम।
इहा विस्तारियाछेन दास-वृन्दावन॥95॥
अतएव बाल्यलीला संक्षेपे सूत्र कैल।
पुनरुक्ति-भये विस्तारिया ना कहिल॥96॥

अनुवाद—इस प्रकार मैंने बाल्यलीलाको क्रमानुसार सूत्र रूपमें कहा है, क्योंकि श्रीवृन्दावनदास ठाकुरने इन लीलाओंका विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। इसलिये मैंने पुनरुक्तिके भयसे विस्तारपूर्वक न कहकर बाल्यलीलाको संक्षेपमें सूत्ररूपसे ही वर्णन किया है॥95-96॥

श्रीरूप-रघुनाथ-पदे यार आश।
चैतन्यचरितामृत कहे कृष्णदास॥97॥

इति श्रीचैतन्यचरितामृते आदिखण्डे बाल्यलीला-सूत्रवर्णनं नाम चतुर्दश-परिच्छेदः।

अनुवाद—श्रीरूप-रघुनाथ गोस्वामीके चरणकमलोंकी कृपाभिलाषा करते हुए कृष्णदास इस श्रीचैतन्यचरितामृतका वर्णन कर रहा है॥97॥

श्रीचैतन्यचरितामृत आदिलीला बाल्यलीलाका सूत्ररूपमें वर्णन नामक चौदहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।

पन्द्रहवाँ अध्याय

चित्र 8

पन्द्रहवाँ अध्याय

पन्द्रहवें अध्यायका कथासार—इस अध्यायमें महाप्रभुका गङ्गादास पण्डितसे व्याकरण पढ़ना, पञ्जी-टीकामें प्रवीणता प्राप्त करना, माताको एकादशीमें अन्न खानेका निषेध करना वर्णित है। विश्वरूपने संन्यास ग्रहणकर महाप्रभुको भी संन्यास लेनेके लिये आह्वान किया, परन्तु महाप्रभुने उनकी बात न सुनकर पिता-माताकी सेवा करनेकी इच्छा व्यक्त की, इसलिये विश्वरूपने उन्हें वापिस घर भेज दिया, इस प्रकार एक आख्यान है। पुरन्दर मिश्रका परलोकगमन, वल्लभाचार्यकी पुत्री लक्ष्मीदेवीका पाणिग्रहण आदिका विवरण सूत्ररूपमें वर्णित हुआ है। (अमृतप्रवाह भाष्य)

श्रीगौरकी पूजा करनेसे दुर्बुद्धिकी भी सुबुद्धि :—
हरिभक्तिविलास (7/1)—

कुमनाः सुमनस्त्वं हि याति यस्य पदाब्जयोः।
सुमनोऽर्पणमात्रेण तं चैतन्य प्रभुं भजे॥1॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है॥1॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जिनके श्रीचरणकमलोंमें सुमन (पुष्प) अर्पण करने मात्रसे ही कुमनवाला व्यक्ति भी सुमनत्व लाभ करता है, उन श्रीचैतन्य महाप्रभुका मैं भजन करता हूँ॥1॥

अनुभाष्य—कुमनाः (कृष्णेतरविषयाविष्टं मनो यस्य सः) यस्य (चैतन्यदेवस्य) पदाब्जयोः (चरणकमलयोः) सुमनोऽर्पणमात्रेण (सुमनसां पुष्पाणां सु शुभं कृष्णसेवापरं मनस्तस्य वा अर्पणमात्रेण) सुमनस्त्वम् (अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतं कृष्णानुशीलनपर-स्वभावं) हि (निश्चितं) याति (प्राप्नोति) तं चैतन्यप्रभुम् अहं वन्दे।

श्लोक भावानुवाद—जिसका मन श्रीकृष्णेतरविषयोंमें आविष्ट है, ऐसे कुमनवाला व्यक्ति जिनके चरणकमलोंमें सुमन (पुष्प अर्थात् श्रीकृष्णसेवापर मन) अर्पण करने मात्रसे सुमनत्व (श्रीकृष्णेतर अभिलाषिताओंसे शून्य, ज्ञान-कर्मादिसे अनावृत श्रीकृष्णानुशीलनपर स्वभाव) निश्चित ही प्राप्त करता है, उन श्रीचैतन्य महाप्रभुकी मैं वन्दना करता हूँ॥1॥

जय जय श्रीचैतन्य, जय नित्यानन्द।
जयाद्वैतचन्द्र जय गौरभक्तवृन्द॥2॥

अनुवाद—महाप्रभु श्रीचैतन्यदेव की जय हो। श्रीनित्यानन्द प्रभुकी जय हो। श्रीअद्वैतचन्द्रकी जय हो। श्रीगौर भक्तवृन्दकी जय हो॥2॥

पौगण्ड-लीलामें अध्ययन-लीला ही प्रधान :—

पौगण्ड-लीलार सूत्र करिये गणन।
पौगण्ड-वयसे प्रभुर मुख्य अध्ययन॥3॥

अनुवाद—अब मैं पौगण्ड-लीलाका सूत्ररूपसे वर्णन करूँगा। पौगण्ड अवस्थामें महाप्रभुकी अध्ययन-लीला ही मुख्य है॥3॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'मुख्य अध्ययन'—मुख्य कार्य ही अध्ययन-लीला है॥3॥

महाप्रभुकी सुविस्तृत पौगण्डलीला :—

पौगण्ड-लीला चैतन्यकृष्णस्यातिसुविस्तृता।
विद्यारम्भमुखा पाणिग्रहणान्ता मनोहरा॥4॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है॥4॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीकृष्णचैतन्यकी विद्या आरम्भसे लेकर पाणिग्रहण तक मनोहर पौगण्डलीला अत्यन्त विस्तृत है॥4॥

अनुभाष्य—चैतन्यकृष्णस्य (भगवतो राधाकृष्णाभिन्नविग्रहस्य विश्वम्भरस्य) विद्यारम्भमुखा (विद्याभ्यासारम्भः मुखे आदौ यस्याः सा) पाणिग्रहणान्ता (पाणिग्रहणं च अन्तः समाप्तौ यस्यां सा)

मनोहरा (सकलहृदयाकर्षिणी) पौगण्ड लीला (पञ्चम-हायनमारभ्य दश-पर्यन्त-व्यापक-काल पौगण्डं तत्र या लीला) अति सुविस्तृता (सुबहुला)।

श्लोक भावानुवाद—श्रीराधाकृष्ण अभिन्न भगवान् श्रीचैतन्यकृष्णकी विद्यारम्भसे विवाहतक सर्वाकर्षक पौगण्ड (पाँच वर्षकी आयुसे लेकर दस वर्षकी आयुतक) लीला अत्यन्त विस्तृत है॥4॥

पण्डित गङ्गादाससे व्याकरण-अध्ययन :—

गङ्गादास पण्डित-स्थाने पड़ेन व्याकरण।
श्रवण-मात्रे कण्ठे कैल सूत्रवृत्तिगण॥5॥

अनुवाद—गङ्गादास पण्डितके टोलमें महाप्रभु व्याकरण पढ़ते थे। वे केवल सुनने मात्रसे ही सूत्रवृत्ति आदिको कण्ठस्थ कर लेते॥5॥

अमृतप्रवाह भाष्य—पहले विष्णु और सुदर्शनसे सामान्य विद्या उपार्जन करके महाप्रभु गङ्गादास पण्डितसे व्याकरण पढ़ने लगे॥5॥

अल्प समयमें ही पारदर्शिता :—

अल्पकाले हैला पञ्जी-टीकाते प्रवीण।
चिरकालेर पड़ुया जिने हइया नवीन॥6॥

अनुवाद—थोड़े समयमें ही महाप्रभु पञ्जी-टीकामें प्रवीण हो गये। वे अभी नवीन छात्र होते हुए भी बहुत समयसे पढ़ रहे छात्रोंको पराजित कर देते॥6॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'पञ्जी-टीका'—व्याकरणकी 'पञ्जी-टीका' नामक एक प्रसिद्ध टीका थी, महाप्रभुने उसकी टिप्पणी प्रस्तुत की थी॥6॥

अध्ययन-लीला प्रभुर दास-वृन्दावन।
'चैतन्यमङ्गले' कैल विस्तारित वर्णन॥7॥

अनुवाद—श्रीवृन्दावनदास ठाकुरने 'चैतन्यमङ्गल' में महाप्रभुकी अध्ययन लीलाका विस्तारसे वर्णन किया है॥7॥

अनुभाष्य—चैःभाः आदिखण्ड, छठा, सातवाँ, आठवाँ और दसवाँ अध्याय द्रष्टव्य है॥7॥

एकदिन मातार पदे करिया प्रणाम।
प्रभु कहे,—"माता, मोरे देह एक दान॥"8॥

शचीमाताको एकादशी-व्रत पालनमें प्रवृत्त करना :—

माता बले,—"ताइ दिब, या तुमि मागिबे।"
प्रभु कहे,—"एकादशीते अन्न ना खाइबे॥"9॥

शची कहे,—"ना खाइब, भालइ कहिला।"
सेइ हैते एकादशी करिते लागिला॥10॥

अनुवाद—एक दिन शचीमाताके श्रीचरणोंमें प्रणाम करके महाप्रभुने कहा,—"माता! मुझे एक दान दीजिये।" माताने प्रसन्नतासे कहा,—"जो तुम माँगोगे, मैं वही दूँगी।" महाप्रभुने कहा,—"आप एकादशीके दिन अन्न नहीं खाना।" शचीमाताने कहा,—"तुमने ठीक ही कहा है, मैं अबसे एकादशीके दिन अन्न नहीं खाऊँगी।" उस दिनसे शचीमाता एकादशी व्रतका पालन करने लगीं॥8-10॥

अनुभाष्य—श्रीजीव गोस्वामीने भक्ति सन्दर्भके 299 संख्यामें लिखा है—

"स्कान्दे—'मातृहा पितृहा चैव भ्रातृहा गुरुहा तथा।
एकादश्यान्तु यो भुङ्क्ते विष्णुलोकच्युतो भवेत्॥'
अत्र वैष्णवानां निराहारत्वं नाम महाप्रसादान्न परित्याग एव; तेषामन्यभोजनस्य नित्यमेव निषिद्धत्वात्। आग्नेये—'एकादश्यां न भोक्तव्यं तद्व्रतं वैष्णवं महत्।' तत्र तावदस्य अवैष्णवेऽपि नित्यत्वम्।"

"स्कन्दपुराणमें कहा गया है—'जो व्यक्ति एकादशीके दिन भोजन करता है, वह मातृ-हत्या, पितृ-हत्या, भ्रातृ-हत्या और गुरु-हत्या न करते हुए भी उनके पापोंका भागी होता है तथा उस व्यक्तिकी कभी भी विष्णुलोकमें जानेकी आशा नहीं है।' यहाँ वैष्णवोंके द्वारा निराहार रहनेसे महाप्रसादके त्यागको भी समझना चाहिये, क्योंकि वैष्णवोंके लिये महाप्रसादको छोड़कर अन्य भोजन सदा ही वर्जनीय है। अग्निपुराणमें भी

कहा गया है—'एकादशी तिथिके दिन भोजन मत करो, क्योंकि यह व्रत विष्णु सम्बन्धी है और महान् है।' यह एकादशी-व्रत अवैष्णवोंके लिये भी अवश्य कर्त्तव्य है।"

वैष्णव लोग महाप्रसादके अतिरिक्त अन्य कोई भी वस्तु किसी दिन, किसी भी समय स्वीकार नहीं करते, किन्तु एकादशीके दिन महाप्रसाद-त्याग करनेका नाम ही 'उपवास' है॥9॥

अमृतानुकणिका—हः भः विः (12/3)—

"अत्र व्रतस्य नित्यत्वादवश्यं तत् समाचरेत्।
सर्वपापापहं सर्वार्थदं श्रीकृष्णतोषणम्॥"

"एकादशी व्रत नित्य और अवश्य पालनीय है। इसका अनुष्ठान करनेसे सभी पाप नाश होते हैं, सर्वार्थकी प्राप्ति होती है और सर्वोपरि श्रीकृष्ण प्रसन्न होते हैं।" हः भः विः (12/5) में मत्स्य और भविष्यपुराणसे उद्धृत श्लोक—

"एकादश्यां निराहारो यो भुङ्क्ते द्वादशीदिने।
शुक्ले वा यदि कृष्णे तद्व्रतं वैष्णवं महत्॥"

"शुक्ल और कृष्ण, दोनों पक्षोंकी एकादशीमें उपवासी रहकर द्वादशीके दिन भोजन करनेसे इस व्रतसे श्रीकृष्ण परम सन्तुष्ट होते हैं।"

एकादशीके दिन भोजन निषेध है। जैसे अग्निपुराणमें (हः भः विः 12/6)—

"एकादश्यां न भुञ्जीत व्रतमेतद्धि वैष्णवम्॥"

तथा नारदीय पुराण और पद्मपुराणमें (हः भः विः 12/12) कहा गया है—

"न भोक्तव्यं न भोक्तव्यं संप्राप्ते हरिवासरे॥"

चारों आश्रमोंमें स्थित व्यक्तियोंके लिये एकादशी पालनीय है, ऐसा विष्णुधर्मोत्तर (हः भः विः 12/25) में कहा गया है—

"ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थोऽथवा यतिः।
एकादश्यां हि भुञ्जानो भुङ्क्ते गोमोसमेव हि॥"

"ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, अथवा संन्यासी, जो कोई भी हो,—हरिवासरमें भोजन करनेपर वह गोमांस भोजन होता है।" बृहन्नारदीये पुराण (हः भः विः 12/7) में सभी वर्णोंके लिये भी एकादशी पालनका निर्देश दिया गया है—

"ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणाञ्चैव योषिताम्।
मोक्षदं कुर्वतां भक्त्या विष्णु प्रियतरं द्विजाः॥"

"हे द्विजवृन्द! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, नारी—जो कोई भी क्यों न हो, भक्तिपूर्वक श्रीविष्णु-प्रीतिप्रद एकादशी व्रतका पालन करनेसे मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं।" इस श्लोकमें नारी कहनेसे सधवा और विधवा, दोनोंको लक्ष्य किया गया है। परन्तु कुछ लोगोंका मत है कि सधवा नारीको एकादशीका व्रत नहीं करना चाहिये, ऐसा वे एक स्मृति वाक्यको लेकर कहते हैं—

"पत्यौ जीविति या नारी उपवासव्रतञ्चरेत्।
आयुः सा हरति भर्त्तुर्नरकञ्चैव गच्छति॥"

"पतिके जीवित रहते जो नारी उपवास-व्रतका आचरण करती है, वह अपने पतिकी आयुका हरण करके नरकमें गमन करती है।" इस वाक्यका उद्देश्य एकादशी व्रतका निषेध नहीं है, अपितु अन्य सभी व्रतोपवासोंका ही निषेध है, अन्यथा इस वाक्यका अन्य शास्त्र प्रमाणोंसे विरोध होता है। विष्णुधर्मोत्तर (हः भः विः 12/47) में कहा है—

"सपुत्रश्च सभार्याश्च स्वजनैर्भक्तिसंयुतः।
एकादश्यामुपवसेत् पक्षयोरुभयोरपि॥"

"भक्तिसे युक्त होकर पत्नी, पुत्र और स्वजनोंके सहित दोनों पक्षोंकी एकादशी तिथिमें उपवास करना चाहिये।" यहाँ पत्नी सहित कहनेसे यह स्पष्ट है कि सधवा स्त्रियोंको भी एकादशीका व्रतोपवास करना चाहिये। इसलिये महाप्रभुने भी अपनी सधवा मातासे एकादशी उपवासके अनुरोध किया और श्रीशची माताने उसे सहर्ष स्वीकार किया॥9-10॥

विश्वरूपका विवाह करानेकी चेष्टा :—

तबे मिश्र विश्वरूपेर देखिया यौवन।
कन्या मागि' विवाह दिते कैल मन॥11॥

अनुवाद—जगन्नाथ मिश्र विश्वरूपके यौवनकालमें प्रवेशको देखकर उनके विवाहके लिये किसी योग्य कन्याका हाथ माँगनेका मनमें विचार करने लगे॥11॥

विश्वरूपके द्वारा संन्यास ग्रहण :—

विश्वरूप शुनि' घर छाड़ि' पलाइला।
संन्यास करिया तीर्थ करिवारे गेला॥12॥

अनुवाद—ऐसा सुनकर विश्वरूप घर छोड़कर भाग गये। वे संन्यास लेकर तीर्थयात्रापर निकल पड़े॥12॥

शची और मिश्रका दुःख और
महाप्रभुके द्वारा उन्हें सान्त्वना :—

शुनि' शची-मिश्रेर दुःखी हैल मन।
तबे प्रभु माता-पितार कैल आश्वासन॥13॥

श्रीकृष्णका भजन करनेके लिये सन्तानके
संन्याससे माता-पिताके कुलोंका उद्धार :—

"भाल हैल,—विश्वरूप संन्यास करिल।
पितृकुल, मातृकुल,—दुइ उद्धारिल॥14॥

महाप्रभुके आश्वासनसे माता-पिताका सन्तोष :—

आमि त' करिब तोमा' दुँहार सेवन।"
शुनिया सन्तुष्ट हैल पिता-मातार मन॥15॥

अनुवाद—ऐसा सुनकर शचीमाता और जगन्नाथ मिश्रके मनमें बहुत दुःख हुआ। तब महाप्रभुने माता-पिताको आश्वासन देते हुए कहा,—"अच्छा ही हुआ जो [भगवद्भजनके लिये] विश्वरूपने संन्यास ग्रहण कर लिया है। इसके द्वारा वे पितृकुल और मातृकुल, दोनोंका ही उद्धार करेंगे। मैं तो आपके साथ रहकर आप दोनोंकी सेवा करूँगा।" महाप्रभुके ऐसे मधुर वचनोंको सुनकर पिता-माताका मन सन्तुष्ट हो गया॥13-15॥

महाप्रभुकी मूर्च्छा :—

एकदिन नैवेद्य-ताम्बुल खाइया।
भूमिते पड़िला प्रभु अचेतन हञा॥16॥

अनुवाद—एक दिन महाप्रभुने भगवान्‌को निवेदित किये गये पानको खाया और वे साथ-ही-साथ मूर्च्छित होकर भूमिपर गिर पड़े॥16॥

विश्वरूपके साथ साक्षात्कार और महाप्रभुके
संन्यासके सम्बन्धमें दोनोंके बीच वार्तालाप :—

आस्ते-व्यस्ते पिता-माता मुखे दिल पानि।
सुस्थ हञा कहे प्रभु अपूर्व काहिनी॥17॥

"एथा हैते विश्वरूप मोरे लञा गेला।
'संन्यास करह तुमि', आमारे कहिला॥18॥

आमि कहि,—'आमार अनाथ पिता-माता।
आमि बालक,—संन्यासेर किबा जानि कथा॥19॥

गृहस्थ हइया करि पितृ-मातृ-सेवन।
इहाते सन्तुष्ट हबेन लक्ष्मी-नारायण॥'20॥

तबे विश्वरूप इहाँ पाठाइल मोरे।
माताके कहिओ कोटि कोटि नमस्कारे॥"21॥

अनुवाद—शीघ्रतासे माता-पिताने महाप्रभुके मुखमें जल दिया, जिससे वे स्वस्थ हो गये। तब उन्होंने एक अपूर्व बात कही,—"विश्वरूप आकर मुझे यहाँसे ले गये और मुझसे कहा—'तुम भी संन्यास ग्रहण करो।' मैंने उनसे कहा,—'यदि मैं भी संन्यास लूँगा, तो हमारे माता-पिता निराश्रय हो जायेंगे। मैं तो अभी बालक हूँ, मैं संन्यासके विषयमें क्या जानता हूँ? मैं गृहस्थ होकर अपने माता-पिताकी सेवा करूँगा जिससे लक्ष्मी-नारायण मेरे प्रति सन्तुष्ट होवेंगे।' मेरी बात सुनकर तब विश्वरूपने मुझे पुनः यहाँ भेज दिया और कहा कि माताको मेरी ओरसे कोटि-कोटि नमस्कार कहना॥"17-21॥

एइ मत नाना लीला करे गौरहरि।
कि-कारणे लीला,—इहा बुझिते ना पारि॥22॥

अनुवाद—इस प्रकार श्रीगौरहरि नाना प्रकारकी

लीलाएँ करते हैं। वे किस उद्देश्यसे ऐसी लीलाएँ करते हैं, कोई इसे नहीं समझ सकता॥ 22॥

मिश्रका अप्रकट होना :—

कतदिन रहि' मिश्र गेला परलोक।
माता-पुत्र दुँहार बाड़िल हृदि शोक॥ 23॥

अनुवाद—कुछ दिनोंके बाद श्रीजगन्नाथ मिश्र परलोक सिधार गये। उनके विरहमें माता और पुत्र दोनोंके हृदयका शोक दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगा॥ 23॥

अनुभाष्य—(चैःभाः आदिखण्ड, आठवाँ अध्याय)—

"हेनमते कतदिन थाकि' मिश्रवर।
अन्तर्धान हैल नित्यसिद्ध कलेवर॥ 109॥
मिश्रेर विजये प्रभु कान्दिला विस्तर।
दशरथ-विजये ये हेन रघुवर॥ 110॥
दुःख बड़—ए सकल, विस्तार करिते।
दुःख हय, अतएव कहिलुँ संक्षेपे॥ 112॥"

"इस प्रकार श्रीजगन्नाथ मिश्र कुछ दिन इस अनित्य संसारमें रहकर अपने नित्यसिद्ध शरीरके साथ अन्तर्धान हो गये। उनके अप्रकट होनेपर महाप्रभु बहुत रोये, जैसे दशरथ महाराजके अप्रकट होनेपर श्रीरघुवीरने विलाप किया था। यह बहुत करुण कथा है, इसे विस्तारसे कहनेपर बहुत दुःख होता है, इसलिये मैंने संक्षेपमें इसका वर्णन किया है॥"23॥

महाप्रभुका पितृ-श्राद्ध :—

बन्धु-बान्धव आसि' दुँहा प्रबोधिल।
पितृक्रिया विधिमते ईश्वर करिल॥ 24॥

अनुवाद—बन्धु-बान्धवोंने आकर दोनोंको सान्त्वना दी। भगवान् श्रीगौरहरिने स्वयं शास्त्रविधिके अनुसार अपने पिताका क्रिया-कर्म किया॥ 24॥

अमृतानुकणिका—हःभःविः (9/294) में वैष्णवश्राद्धकी विधि दी गयी है—

"प्राप्ते श्राद्धदिनेऽपि प्रागन्नं भगवतेऽर्पयेत्।
तच्छेषेणैव कुर्वीत श्राद्धं भागवतो नरः॥"

"भगवत् परायण मनुष्य श्राद्धके दिन पहले श्रीभगवान्‌को अन्न निवेदन करके उक्त अन्नके द्वारा श्राद्धका अनुष्ठान करें।" विष्णुधर्ममें भगवद्-वाक्य—

"प्राणेभ्यो जुहुयादन्नं मन्निवेदितमुत्तमम्।
तृप्यन्ति सर्वदा प्राणा मन्निवेदितभक्षणात्॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन प्रदेयं मन्निवेदितम्।
ममापि हृदयस्थस्य पितृणाञ्च विशेषतः॥"

"मेरे उद्देश्यसे निवेदित उत्कृष्ट अन्नकी आहुति प्राणसमूहमें प्रदान करें। मेरे उद्देश्यसे निवेदित वस्तु भक्षणके द्वारा प्राणादि वायु सर्वदा परितृप्त होते हैं। इसलिये यत्नपूर्वक सबके हृदयमें अवस्थित परमात्मास्वरूप मुझको विशेषतः पितृपुरुषोंको मेरे उद्देश्यसे निवेदित अन्न प्रदान करें।"

"भक्ष्यं भोज्यञ्च यत्किञ्चिदनिवेद्याग्रभोक्तरि।
न देयं पितृदेवेभ्यः प्रायश्चिती यतो भवेत्॥"

"अग्रभोक्ता श्रीभगवान्‌को भक्ष्य भोज्य सामग्री अर्पण न करके पितृगणको निवेदन न करे, क्योंकि अनिवेदित वस्तु प्रदान करनेसे प्रायश्चित करना पड़ता है।" स्कन्द पुराणमें श्रीमार्कण्डेय-भगीरथ संवादमें—

"यस्तु विद्याविनिर्मुक्तं मूर्खं मत्वा तु वैष्णवम्।
वेदविद्भ्योऽददाद्विप्रः श्राद्धां तद्राक्षसं भवेत्॥
सिक्थमात्रन्तु यद्भुङ्क्ते जलं गण्डूषमात्रकम्।
तदन्नं मेरुणा तुल्यं तज्जलं सागरोपमम्॥"

"जो विप्र, विद्यारहित वैष्णवको मूर्ख मानकर वेदज्ञोंको श्राद्धपात्र प्रदान करते हैं, वह राक्षस श्राद्ध होता है। श्राद्धमें यदि वैष्णव, एक ग्रास अन्न भोजन और चुल्लु भर जल पान करते हैं, तब वह अन्न मेरुतुल्य एवं वह जल सागरतुल्य होता है।"

दूसरोंको निवेदित की हुई वस्तु उच्छिष्ट कही गयी है। इसलिये किसी प्रकारसे ही उक्त सामग्री श्रीभगवान्‌को समर्पण न करें। जैसे नारदपुराणमें लिखित है—

"पितृशेषन्तु यो दद्याद्धरये परमात्मने।
रेतोदाः पितरस्तस्य भवन्ति क्लेशभागिनिः॥"

"जो मानव पितृपुरुषका उच्छिष्ट परमात्माको अर्पण

करते हैं, उनके पितृगण रेत पान करके क्लेशके भागी होते हैं।"

और भी विशेष विधि यह है कि श्राद्ध तिथि एकादशीके (अथवा उपवास यदि द्वादशीके दिन हो, तब उस) दिन उपस्थित होनेपर उस उपवासवाले दिन श्राद्ध न करके पारणके दिन श्राद्ध करना चाहिये। हः भः विः बारहवें अध्यायमें एकादशी नियमोंके प्रसङ्गमें ऐसा वर्णित है। जैसे पद्मपुराणके पुष्कर खण्डमें लिखा है—

"एकादश्यां यदा राम श्राद्धं नैमित्तिकं भवेत्।
तद्दिने तु परित्यज्य द्वादश्यां श्राद्धमाचरेत्॥"

"हे राम! एकादशीमें नैमित्तिक श्राद्ध उपस्थित होनेपर उस दिनको छोड़कर द्वादशीमें श्राद्ध करना चाहिये।" पद्मपुराणके उत्तरखण्डमें लिखा है—

"एकादश्यान्तु प्राप्तायां मातापित्रोर्मृतेऽहनि।
द्वादश्यां तत् प्रदातव्यं नोपवासदिने क्वचित्।
गर्हितान्नं न चाश्नन्ति पितरश्च दिवौकसः॥"

"माता-पिताके मृत्यु-दिनमें एकादशी उपस्थित होनेपर द्वादशीमें श्राद्ध करना चाहिये। उपवासके दिन कदापि श्राद्ध न करे, क्योंकि देवता एवं पितृगण निन्दितान्न भोजन नहीं करते हैं।" स्कन्द-पुराणमें भी कहा है—

"एकादशी यदा नित्या श्राद्धं नैमित्तिकं भवेत्।
उपवासं तदा कुर्याद्द्वादश्यां श्राद्धमाचरेत्॥"

"नित्य स्वरूपिणी एकादशीमें नैमित्तिक श्राद्ध समागत होनेपर एकादशीमें उपवासी रहकर द्वादशीमें श्राद्ध करना चाहिये।" ब्रह्मवैवर्त पुराणमें कहा है—

"ये कुर्वन्ति महीपाल श्राद्धं त्वेकादशीदिने।
त्रयस्ते नरकं यान्ति दाता भोक्ता परेतकः॥"

"हे राजन्! एकादशीके दिनमें श्राद्ध करनेसे दाता, भोक्ता एवं प्रेत—तीनोंकी नरकमें गति होती है॥"24॥

गृहस्थ-लीलाकी इच्छा :—

कत दिन प्रभु चित्ते करिला चिन्तन।
गृहस्थ हइलाम, एबे चाहि गृहधर्म॥25॥

गृहिणीसे ही गृह :—

गृहिणी बिना गृहधर्म ना हय शोभन।
एत चिन्ति' विवाह करिते हैल मन॥26॥

अनुवाद—कुछ समय व्यतीत होनेपर महाप्रभुने चिन्तन किया कि अब घरका दायित्व मुझपर आ गया है, इसलिये मुझे गृहस्थ धर्मका पालन करना चाहिये। महाप्रभुने विचार किया कि गृहणीके बिना गृहस्थ धर्म शोभा नहीं देता, इसलिये उन्होंने विवाह करनेका मनमें निश्चय किया॥25-26॥

उद्वाह-तत्त्व (7)—

न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते।
तया हि सहितः सर्वान् पुरुषार्थान् समश्नुते॥27॥

अनुवाद—अनुभाष्य द्रष्टव्य है॥27॥

अमृतप्रवाह भाष्य—गृहको 'गृह' नहीं कहते, गृहिणीको 'गृह' कहते हैं, गृहिणीके साथ समस्त पुरुषार्थोंको भोग करूँगा॥27॥

इति अमृतप्रवाह-भाष्ये पञ्चदश परिच्छेद।
पन्द्रहवें अध्यायका अमृतप्रवाह-भाष्य पूर्ण हुआ।

अनुभाष्य—गृहम् (आवासमन्दिरं) गृहं न, इति आहुः। गृहिणी (गृहाधिष्ठात्री सहधर्मिणी) एव गृहम् उच्यते। तया (गृहिण्या) सहितः (मिलितः सन्) [मानवः] सर्वान् पुरुषार्थान् (धर्मार्थकाममोक्षादीन् चतुर्वर्गान्) समश्नुते (प्राप्नोति)।

श्लोक भावानुवाद—केवल घरको ही गृह नहीं कहा जाता, गृहणी (सहधर्मिणी) को ही गृह कहा जाता है। पुरुष गृहणीके साथ मिलकर ही समस्त पुरुषार्थों (धर्म-अर्थ-काम-मोक्षादि चतुवर्ग) को भोग कर सकता है।

महाभारत शान्तिपर्व 144/6 श्लोक द्रष्टव्य है॥27॥

लक्ष्मीदेवीके साथ साक्षात्कार :—

दैवे एकदिन प्रभु पड़िया आसिते।
वल्लभाचार्येर कन्या देखे गङ्गा-पथे॥28॥

अनुवाद—दैवयोगसे एक दिन जब महाप्रभु पढ़कर आ रहे थे, तब उन्होंने श्रीवल्लभाचार्यकी कन्या 'लक्ष्मीदेवी' को गङ्गाकी ओर जाते देखा॥ 28॥

अमृतानुकणिका—श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका (श्लोक 45-46) में—

"श्रीजानकी रुक्मिणी च लक्ष्मीनाम्नी च तत्सुता।
चैतन्यचरिते व्यक्ता लक्ष्मीनाम्नी च सा यथा॥ 45॥
सा वल्लभाचार्यसुता चलन्ती
स्नातुं सखीभिः सुरदीर्घिकायाम्।
लक्ष्मीरनेनैव कृतावतारा
प्रभोर्ययौ लोचनवर्त्म तत्र॥"46॥

"श्रीजानकी और श्रीरुक्मिणी एक साथ मिलकर श्रीवल्लभाचार्यकी पुत्री श्रीलक्ष्मी अर्थात् लक्ष्मीप्रियादेवी हुई हैं। इन्हीं श्रीलक्ष्मीप्रियाके विषयमें श्रीचैतन्यचरित महाकाव्यके तृतीय सर्गके सातवें श्लोकमें कहा गया है कि श्रीवल्लभाचार्यकी कन्या श्रीलक्ष्मीप्रियादेवी, जो स्वयं लक्ष्मीका अवतार हैं, जिस समय वे सखियोंके साथ गङ्गा-स्नानके लिये जा रही थीं, तभी अकस्मात् श्रीमन् महाप्रभुकी दृष्टि उन पर पड़ी॥"28॥

वनमाली पण्डितके द्वारा घटकका
कार्य सम्पादन करना :—

पूर्वसिद्ध भाव दुँहार उदय करिला।
दैवे वनमाली घटक शची-स्थाने आइला॥ 29॥

अनुवाद—एक दूसरेको देखकर दोनोंका पूर्वसिद्ध [नित्य] भाव उदित हो गया। दैवयोगसे वनमाली नामक घटक (विवाहका सम्बन्ध करवानेवाला) शचीमाताके पास आया॥ 29॥

अनुभाष्य—'वनमाली घटक'—एक नवद्वीपवासी ब्राह्मण। इन्होंने महाप्रभुके विवाहमें घटकका कार्य किया। (श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 49वाँ श्लोक)—

"विश्वामित्रोऽपि घटकः श्रीरामोद्वाहकर्मणि।
रुक्मिण्या प्रेषितो विप्रो यस्य श्रीकेशवं प्रति।
तावयं वनमाली यत्कर्मणाचार्यतां गतः॥ 49॥"

"श्रीरामचन्द्रके विवाहमें घटक अर्थात् विवाहके संयोजकका कार्य करनेवाले विश्वामित्र और श्रीरुक्मिणीदेवीके द्वारा श्रीकृष्णके निकट भेजे गये ब्राह्मण—इन दोनोंने मिलकर वनमाली नामसे जन्म लेकर कर्मके द्वारा अर्थात् घटकका कार्य करने हेतु आचार्यत्वको प्राप्त किया है॥"29॥

सम्बन्ध और लक्ष्मीदेवीके साथ महाप्रभुका विवाह :—

शचीर इङ्गिते सम्बन्ध करिल घटन।
लक्ष्मीरे विवाह कैल शचीर नन्दन॥ 30॥

अनुवाद—शचीमाताकी सम्मति पाकर घटकने महाप्रभु और लक्ष्मीदेवीका सम्बन्ध करवा दिया। इस प्रकार शचीनन्दनने लक्ष्मीदेवीके साथ विवाह किया॥ 30॥

चैतन्यभागवतमें पौगण्डलीलाका विस्तारसे वर्णन :—

विस्तारिया वर्णिला ताहा वृन्दावन-दास।
एइ त' पौगण्ड-लीलार सूत्र-प्रकाश॥ 31॥

अनुवाद—श्रीवृन्दावनदासने इस लीलाका विस्तारसे वर्णन किया है। यहाँ तक महाप्रभुकी पौगण्ड लीलाका मैंने सूत्ररूपमें वर्णन किया है॥ 31॥

अनुभाष्य—चै:भा: आदिखण्ड, दसवाँ अध्याय द्रष्टव्य है। चै:भा: आदिखण्ड, आठवें अध्यायमें उपनयन और माताको स्वर्ण-दान अधिक विस्तृत रूपमें वर्णित किया गया है॥ 31॥

इति अनुभाष्ये पञ्चदश परिच्छेद।
पन्द्रहवें अध्यायका अनुभाष्य पूर्ण हुआ।

पौगण्ड-लीलाय लीला बहुत प्रकार।
वृन्दावन-दास इहा करियाछेन विस्तार॥ 32॥
अतएव दिङ्मात्र इहाँ देखाइल।
'चैतन्यमङ्गले' सर्वलोके ख्याति हैल॥ 33॥

अनुवाद—महाप्रभुकी पौगण्ड-लीलाएँ अनेक हैं,

जिनका श्रीवृन्दावनदासने विस्तृत रूपसे वर्णन किया है। 'चैतन्यमङ्गल' ग्रन्थके द्वारा ऐसी लीलाओंकी समस्त जगत्में ख्याति हुई है, इसलिये मैंने केवल उनका दिग्दर्शनमात्र कराया है॥ 33॥

श्रीरूप-रघुनाथ-पदे यार आश।
चैतन्यचरितामृत कहे कृष्णदास॥ 34॥

इति चैतन्यचरितामृते आदिखण्डे पौगण्ड लीलासूत्र-वर्णनं नाम पञ्चदश परिच्छेदः।

अनुवाद—श्रीरूप-रघुनाथ गोस्वामीके चरणकमलोंकी कृपाभिलाषा करते हुए कृष्णदास इस श्रीचैतन्यचरितामृतका वर्णन कर रहा है॥ 34॥

श्रीचैतन्यचरितामृत आदिलीला पौगण्ड लीलाका सूत्ररूपमें वर्णन नामक पन्द्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।

सोलहवाँ अध्याय

चित्र 9

सोलहवाँ अध्याय

सोलहवें अध्यायका कथासार—इस अध्यायमें महाप्रभुकी कैशोरलीला वर्णित है। अध्यापन, पण्डित-विजय, जाह्नवी (गङ्गा) में जलक्रीड़ा, धन एकत्रित करनेके लिये बङ्गदेशमें (वर्तमान बाङ्गलादेशमें) जाना, वहाँपर विद्या-विचार और नाम-सङ्कीर्तन, तपन मिश्रसे भेंट और उनको साध्य-साधनका उपदेश तथा उन्हें वाराणसी जानेका आदेश देना आदि लीलाएँ इस अध्यायमें वर्णित हैं। महाप्रभुके बङ्ग-विजयके समय लक्ष्मीदेवीका सर्पके काटे जानेके छलसे वैकुण्ठ-गमन हुआ। महाप्रभुने स्वदेशमें लौटकर शचीदेवीको तत्त्वज्ञानके द्वारा शान्त किया और बादमें विष्णुप्रियासे विवाह किया। महाप्रभुने दिग्विजयी केशवकाश्मीरके साथ वार्त्तालाप किया और उसके द्वारा रचित गङ्गा-माहात्म्य-श्लोकोंमेंसे एक श्लोकपर विचार करके उसमें पाँच अलङ्कार गुण और पाँच अलङ्कार दोष दिखाकर उसके गर्वको चूर्ण किया। दिग्विजयी कविने रात्रिमें सरस्वती देवीसे महाप्रभुके तत्त्वको जाना और अगले दिन प्रातःकाल उनके शरणागत हुआ। (अमृतप्रवाह भाष्य)

सदा कृपारत श्रीगौरहरि :—

कृपासुधा-सरिद्यस्य विश्वमाप्लावयन्त्यपि।
नीचगैव सदा भाति तं चैतन्यप्रभुं भजे॥1॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है॥1॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जिनकी कृपा-सुधा-सरिता विश्वको आप्लावित करनेपर भी सदैव निम्नगामिनी रूपमें प्रकाशित हो रही है, उन्हीं श्रीचैतन्य महाप्रभुका मैं भजन करता हूँ॥1॥

अनुभाष्य—यस्य (चैतन्यदेवस्य) कृपा-सुधा-सरित् (कृपामृत-नदी) विश्वं (संसारं) आप्लावयन्ती (निमज्जयन्ती) अपि, सदा नीचगा (निम्नगामिनी—ऐश्वर्यविहीनेषु अकिञ्चनेषु दीनजनेषु करुणामयी एव) भाति (प्रकाशते), तं चैतन्यप्रभुम् [अहं] भजे।

श्लोक भावानुवाद—जिनकी कृपामृत-नदी समस्त विश्वको निमज्जित करके भी अकिञ्चन दीन-हीन लोगोंके प्रति सदा करुणामयी रूपमें प्रकाशित होती है, उन श्रीचैतन्य महाप्रभुकी मैं वन्दना करता हूँ॥1॥

जय जय श्रीचैतन्य, जय नित्यानन्द।
जयाद्वैतचन्द्र जय गौरभक्तवृन्द॥2॥

अनुवाद—महाप्रभु श्रीचैतन्यदेवकी जय हो। श्रीनित्यानन्द प्रभुकी जय हो। श्रीअद्वैतचन्द्रकी जय हो। श्रीगौर भक्तवृन्दकी जय हो॥2॥

लक्ष्मी-सरस्वतीके द्वारा पूजित श्रीगौरहरि :—

जीयात् कैशोर-चैतन्यो मूर्त्तिमत्या गृहाश्रमात्।
लक्ष्म्यार्च्चितोऽथ वाग्देव्या दिशांजयिजयच्छलात्॥3॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है॥3॥

अमृतप्रवाह भाष्य—गृहमें विराजमान मूर्तिमती लक्ष्मीदेवीके द्वारा अर्चित और दिग्विजयीको जय करनेके छलसे सरस्वतीदेवीके द्वारा अर्चित कैशोर-श्रीचैतन्यदेव जययुक्त हों॥3॥

अनुभाष्य—गृहाश्रमात् (गृहागमात् वा गृहाश्रमं प्राप्य) मूर्तिमत्या (शरीरधारिण्या) लक्ष्म्या अर्च्चितः (सेवितः), अथ दिशांजयिजयच्छलात् (दिग्विजयी-केशवकाश्मीराख्य-विबुधस्य जयव्यपदेशात्) वाग्देव्या (सरस्वत्या) अर्च्चितः (पूजितः) कैशोरचैतन्यः (किशोर-वयसि स्थितः चैतन्यः) जीयात्।

श्लोक भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है॥3॥

कैशोर-लीला :—

एइ त' कैशोर-लीला-सूत्र-अनुबन्ध।
शिष्यगण पड़ाइते करिला आरम्भ॥4॥

अनुवाद—अब महाप्रभुकी कैशोरलीलाका सूत्ररूपमें वर्णन कर रहे हैं। महाप्रभुने अब शिष्योंको पढ़ाना आरम्भ किया॥4॥

अनुभाष्य—'कैशोर'—ग्यारह वर्षसे पन्द्रह वर्ष तककी अवस्थाको किशोर कहते हैं, उसी अवस्थाके अनुरूप ही महाप्रभु भावान्वित हैं॥4॥

निमाइके अध्यापनसे सभी विस्मित :—

शत शत शिष्यसङ्गे सदा अध्यापन।
व्याख्या शुनि' सर्वलोकेर चमकित मन॥5॥

अनुवाद—सैंकड़ों शिष्य आकर महाप्रभुसे शिक्षा प्राप्त करने लगे। महाप्रभुकी व्याख्याको सुनकर सभी चकित रह जाते॥5॥

निमाइसे पराजित होनेपर भी पण्डितोंमें सन्तोष :—

सर्वशास्त्रे सर्व पण्डित पाय पराजय।
विनयभङ्गीते कारो दुःख नाहि हय॥6॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है॥6॥

अमृतप्रवाह भाष्य—महाप्रभु पण्डितोंको सभी शास्त्रोंमें पराजित कर देते, परन्तु उनके विनीतभावके कौशलसे उन पण्डितोंको दुःख नहीं होता था॥6॥

विविध औद्धत्य करे शिष्यगण-सङ्गे।
जाह्नवीते जलकेलि करे नाना रङ्गे॥7॥

अनुवाद—शिष्योंके साथ महाप्रभु अनेक प्रकारकी चञ्चलता करते और गङ्गामें अनेक प्रकारसे जलक्रीड़ा करते॥7॥

पूर्व बङ्गालमें गमन और नामसङ्कीर्तन-प्रवर्त्तन :—

कत दिने कैल प्रभु बङ्गेते गमन।
याँहा याय, ताँहा लओयाय नाम-सङ्कीर्त्तन॥8॥

महाप्रभुके पण्डित्यकी ख्याति सुनकर
अनेक छात्रोंके द्वारा अध्ययन :—

विद्यार प्रभाव देखि' चमत्कार चित्ते।
शत शत पड़ुया आसि लागिला पड़िते॥9॥

अनुवाद—कुछ दिनोंके बाद महाप्रभु पूर्वी बङ्गाल गये। वे जहाँ भी जाते, वहाँपर लोगोंसे नाम-सङ्कीर्तन कराते। महाप्रभुकी विद्याके प्रभावको देखकर सभीका चित्त चमत्कृत हो जाता और वहाँ भी सैंकड़ों छात्र उनके निकट आकर पढ़ने लगे॥8-9॥

महाप्रभुके साथ तपन मिश्रका साक्षात्कार
और साध्य-साधन-तत्त्व-जिज्ञासा :—

सेइ देशे विप्र, नाम—मिश्र तपन।
निश्चय करिते नारे साध्य-साधन॥10॥

अनेक शास्त्रोंमें अनेक मुनियोंके
नाना-मतोंसे बुद्धि-विभ्रम :—

बहुशास्त्रे बहुवाक्ये चित्ते भ्रम हय।
साध्य-साधन श्रेष्ठ ना हय निश्चय॥11॥

अनुवाद—उस देशमें तपन मिश्र नामक एक ब्राह्मण रहते थे। अनेक शास्त्रोंका अध्ययन करके भी वे साध्य-साधन तत्त्वके विषयमें निश्चय नहीं कर पा रहे थे। बहुत शास्त्रोंके अनेक प्रकारके वाक्योंके द्वारा उनके चित्तमें और भी भ्रम होता। इसलिये वे श्रेष्ठ साध्य-साधन क्या है, इसका निर्णय नहीं कर पा रहे थे॥10-11॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'साध्य-साधन'—साधनके द्वारा जो साधित (प्राप्त) होता है, उसका नाम 'साध्य' है। जिस उपायके अवलम्बनसे साध्यवस्तुकी प्राप्ति होती है, उसका नाम 'साधन' है॥10॥

अनुभाष्य—(भाः 7/13/8)—

"न शिष्याननुबध्नीत ग्रन्थान् नैवाभ्यासेद् बहून्।
न व्याख्यामुपयुञ्जीत नारम्भानारभेत् क्वचित्॥"

"अपने चरम कल्याणकी कामनावाले (भगवद्भजनके इच्छुक) को बहुत ग्रन्थोंका कलाभ्यास और शास्त्र व्याख्याके द्वारा जीविका उपार्जन करनेवाला नहीं बनना चाहिये, उसे सर्वप्रथम ऐसे प्रलोभनका परित्याग करना चाहिये।" भक्तिरसामृतसिन्धु पूर्व, द्वितीय लहरी—(भाः 11/21/34,36)—

"एवं पुष्पितया वाचा व्याक्षिप्तमनसां नृणाम्।
मानिनाश्चातिलुब्धानां मद्वार्त्तापि न रोचते॥34॥
शब्दब्रह्म-सुदुर्बोधं प्राणेन्द्रियमनोमयम्।
अनन्तपारं गम्भीरं दुर्विगाह्यं समुद्रवत्॥36॥"

"कर्म और ज्ञानकाण्डके पोषक शास्त्रोंको जीविका बनानेवाले वक्ता मधुपुष्पित (मनोहर) वाक्योंके द्वारा निष्काम-भगवद्भक्ति-विरोधी तथा मात्सर्य और [स्वर्गादि] फलभोग-तात्पर्यमय कथा करते हैं। उनके वाक्योंको श्रवण अथवा पाठ करके अनभिज्ञ सरलमति कोमल श्रद्धावाले व्यक्ति जीवके नित्यसाधन और नित्यसाध्य श्रीकृष्णभक्ति और श्रीकृष्णप्रेमकी परम महिमा तथा सौन्दर्यको नहीं समझ पाते। जिसके फलस्वरूप वे अनादि बर्हिमुखतासे बँधे व्यक्ति बहुत सरलतासे कर्मी और ज्ञानीके आनुगत्यको स्वीकार कर लेते हैं। इस प्रकार वे लोग जीवोंके निर्मत्सर परम-हितैषी शुद्ध कृष्णभक्तोंकी कृपा प्राप्त करनेसे वञ्चित हो जाते हैं। इसलिये ऐसे व्यक्ति भक्ति-उन्मुखी सुकृतिके अभावमें एकमात्र नित्य कल्याणके मार्ग शुद्ध-भक्तिसे अत्यधिक दूर जाकर अन्तमें केवल दुर्गति तथा दुर्दशाकी चरम सीमाको प्राप्त करते हैं। जिस समय श्रीगौरसुन्दरने वाराणसी धाममें श्रीसनातन गोस्वामी प्रभुके प्रश्नके उत्तरमें साध्य-साधन तत्त्वको बतलाया था, उस समय वहाँपर तपन मिश्र भी उपस्थित थे और उसे श्रवण करके उनको निज संशयकी मीमांसा (गम्भीर आलोचना) प्राप्त हुई थी। अनेक शास्त्रों और अनेक गुरुब्रुवोंके (अयोग्य गुरुओंके) आनुगत्यको स्वीकार करनेवाले अबोध जीवोंके मङ्गल हेतु महाप्रभुने अपने भक्त तपनमिश्रके चरित्रसे (इस संशयकी मीमांसाके द्वारा) शिक्षा प्रदानकी है॥11॥

स्वप्नमें एक ब्राह्मणके द्वारा उनको निमाइ पण्डितसे तत्त्व जिज्ञासा करनेका उपदेश :—

स्वप्ने एक विप्र कहे,—"शुनह तपन।
निमाञिपण्डित-स्थाने करह गमन॥12॥
तेँहो तोमार साध्य-साधन करिबे निश्चय।
साक्षात् ईश्वर तेँहो,—नाहिक संशय॥"13॥

अनुवाद—[एक दिन] स्वप्नमें एक ब्राह्मणने कहा,—"तपन! सुनो, तुम निमाइ पण्डितके पास जाओ। वे तुम्हारे लिये साध्य-साधन तत्त्वको निश्चित रूपमें बतलायेंगे। वे साक्षात् ईश्वर हैं, इसमें कोई भी संशय नहीं है॥"12-13॥

अमृतप्रवाह भाष्य—शास्त्र अनेक हैं। इन-इन शास्त्रोंमें जिसको 'साध्य' और जिसको 'साधन' कहकर निर्देश किया गया है, वे भिन्न-भिन्न दिखायी देते हैं। बहुत शास्त्र पढ़नेपर, कौन-सा साध्य श्रेष्ठ है और कौन-सा साधन श्रेष्ठ है—यह स्थिर नहीं कर पानेके कारण चित्त भ्रमित हो जाता है। तपनमिश्रके चित्तमें इस प्रकारका भ्रम होनेपर उन्हें निमाइ-पण्डितके निकट जाकर उनसे साध्य-साधन निश्चित कर लेनेके लिये स्वप्नमें आदेश प्राप्त हुआ। उस स्वप्नमें यह भी कहा था कि 'निमाइ-पण्डित साक्षात् ईश्वर हैं, इस बातमें कोई संशय नहीं करना।'॥11-13॥

महाप्रभुको स्वप्नका वृत्तान्त सुनाना :—

स्वप्न देखि' मिश्र आसि' प्रभुर चरणे।
स्वप्नेर वृत्तान्त सब कैल निवेदने॥14॥

अनुवाद—स्वप्न देखनेके बाद तपन मिश्रने महाप्रभुके पास आकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया और उन्होंने स्वप्नमें जो देखा था, उसे महाप्रभुसे कहा॥14॥

महाप्रभुका हरिनामको ही साध्य-साधनके रूपमें बतलाना :—

प्रभु तुष्ट हञा साध्य-साधन कहिल।
'नाम-सङ्कीर्त्तन कर',—उपदेश कैल॥15॥

अनुवाद—महाप्रभुने प्रसन्न होकर उन्हें साध्य-साधन तत्त्वके विषयमें बतलाया और उन्हें नाम-सङ्कीर्तन करनेका उपदेश दिया॥15॥

अमृतप्रवाह भाष्य—महाप्रभुने कहा,—"अभेद ब्रह्मज्ञान और स्वर्गादि भुक्ति—ये जीवके लिये साध्यवस्तु नहीं हैं; श्रीकृष्णप्रेम ही जीवके लिये एकमात्र साध्यवस्तु है। कर्म और ज्ञान,—ये उक्त साध्यवस्तुके प्राप्तिके साधन अथवा उपाय नहीं हैं। शुद्ध श्रीकृष्णनामाश्रय ग्रहण करके भक्ति ही साध्यवस्तु प्राप्त करनेका एकमात्र उपाय है॥"15॥

उनको काशी जानेका आदेश :—

ताँर इच्छा,—"प्रभुसङ्गे नवद्वीपे बसि'।"
प्रभु आज्ञा दिल,—"तुमि याओ वाराणसी॥16॥
ताँहा आमा-सङ्गे तोमार हबे दरशन।"
आज्ञा पाञा मिश्र कैल काशीते गमन॥17॥

भविष्यमें काशीमें महाप्रभु-सेवाका सौभाग्य और श्रीसनातनके प्रश्नोंसे महाप्रभुके श्रीमुखसे साध्य-साधन-तत्त्वकी पूर्ण मीमांसा श्रवण करनेका सौभाग्य :—

प्रभुर अनन्त-लीला बुझिते ना पारि।
स्वसङ्ग छाड़ाञा केने पाठान काशीपुरी॥18॥

अनुवाद—तब तपन मिश्रने इच्छा प्रकाश की,—"मैं आपके साथ नवद्वीपमें वास करना चाहता हूँ।" परन्तु महाप्रभुने उन्हें आज्ञा दी,—"तुम वाराणसी जाओ। वहींपर ही तुम्हें मेरे दर्शन होंगे।" महाप्रभुकी आज्ञा पाकर तपन मिश्रने काशीके लिये प्रस्थान किया। महाप्रभुकी लीलाएँ अनन्त हैं, उन्हें कौन समझ सकता है? अपना सङ्ग छुड़ाकर उन्हें काशी नगरीमें क्यों भेज दिया?॥16-18॥

पूर्वी बंगालके सभी निवासियोंका मङ्गल :—

एइ मत बङ्गेर लोकेर कैल सबार हित।
'नाम' दिया भक्त कैल, पड़ाञा पण्डित॥19॥

अनुवाद—इस प्रकार महाप्रभुने पूर्वबङ्गालके लोगोंको 'नाम' प्रदान करके श्रीकृष्णभक्त और शास्त्र-विद्या दानकर उन्हें पण्डित बनाकर उनका कल्याण किया॥19॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'नाम दिया' अर्थात् "हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥"—इस कृष्णनामको प्रदानकर बङ्गवासियोंको भक्त बनाया और शास्त्र पढ़ाकर अनेक लोगोंको पण्डित बना दिया॥19॥

एइ मत बङ्गे प्रभु करे नाना लीला।
एथा नवद्वीपे लक्ष्मी विरहे दुःखी हैला॥20॥

महाप्रभुके विच्छेदरूपी कालसर्पके डँसनेसे लक्ष्मीदेवी अप्रकट :—

प्रभुर विरह-सर्प लक्ष्मीरे दंशिल।
विरह-सर्प-विषे ताँर परलोक हैल॥21॥

अनुवाद—इस प्रकार महाप्रभु जब पूर्व बङ्गालमें अनेक लीलाएँ कर रहे थे, तब इधर नवद्वीपमें श्रीलक्ष्मीप्रिया देवी उनके विरहमें अत्यन्त दुःखी हो रही थीं। महाप्रभुके विरहरूपी सर्पने श्रीलक्ष्मीप्रिया देवीको डँस लिया। विरहरूपी सर्पके विषसे वे परलोक सिधार गयीं॥20-21॥

अमृतप्रवाह भाष्य—महाप्रभुके विच्छेदके क्लेशने सर्पका रूप धारणकर लक्ष्मीप्रिया देवीको डँस लिया और उन्होंने परलोक अर्थात् सर्वश्रेष्ठ लोकरूप अपने वैकुण्ठधाममें गमन किया॥21॥

अमृतानुकणिका—चैःभाः आदिखण्ड चौदह अध्यायमें इसका वर्णन इस प्रकार है—

"एथा नवद्वीपे लक्ष्मी प्रभुर विरहे।
अन्तरे दुःखिता देवी का'रे नाहि कहे॥99॥
निरवधि करे देवी आइर सेवन।
प्रभु गियाछेन हैते नाहिक भोजन॥100॥
नामे से अन्नमात्र परिग्रह करे।
ईश्वर-विच्छेदे बड़ दुःखिता अन्तरे॥101॥
एकेश्वर सर्वरात्रि करेन क्रन्दन।
चित्ते स्वास्थ्य लक्ष्मी ना पायेन कोन क्षण॥102॥
ईश्वर-विच्छेद लक्ष्मी ना पारे सहिते।
इच्छा करिलेन प्रभुर समीपे याइते॥103॥
निज-प्रतिकृति-देह थुइ' पृथिवीते।
चलिलेन प्रभु-पाशे अति अलक्षिते॥104॥

प्रभु-पादपद्म लक्ष्मी धरिया हृदय।
ध्याने गङ्गातीरे देवी करिला विजय॥105॥"

"महाप्रभुकी विरहमें लक्ष्मी देवी अत्यन्त दुःखी थीं, परन्तु यह बात वे किसीसे नहीं कहती थीं। वे निरन्तर शचीमाताकी सेवा करती थीं, परन्तु महाप्रभुकी विरहमें उन्होंने भोजन करना छोड़ दिया था, वे नाम मात्रको अन्न ग्रहण करती थीं। महाप्रभुकी विरहमें हृदयमें बड़ी दुःखी थीं और अकेले रात्रि भर रोती रहती थीं, उनके चित्तको क्षण भर भी सुख नहीं मिलता था। वे महाप्रभुके विरहको सहन नहीं कर पा रही थीं और उनके पास जानेकी इच्छा करने लगीं, इसलिये अपनी छाया-देहको पृथ्वीपर छोड़कर वे अलक्षित रूपसे महाप्रभुके पास चली गयीं। लक्ष्मीदेवीने महाप्रभुके चरणोंको अपने हृदयमें धारण करते हुए गङ्गाके तटपर स्वधामकी ओर विजय (यात्रा) की॥"21॥

अन्तर्यामी महाप्रभुका स्वदेश लौटना :—

अन्तरे जानिला प्रभु, याते अन्तर्यामी।
देशेर आइला प्रभु शची-दुःख जानि'॥22॥

अनुवाद—महाप्रभु अन्तर्यामी हैं, इसलिये वे सब कुछ जान गये और शचीमाताके दुःखको समझकर वे नवद्वीप लौट आये॥22॥

महाप्रभुके मुखसे तत्त्वज्ञान-श्रवण करके शचीमाताका दुःख कम होना :—

घरे आइला प्रभु बहु लञा धन-जन।
तत्त्व कहि' कैल शचीर दुःख विमोचन॥23॥

अनुवाद—महाप्रभु बहुत धन और शिष्य लेकर अपने घर लौटे। उन्होंने शचीमाताको तत्त्व सिद्धान्त समझाकर उनके दुःखका निवारण किया॥23॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'तत्त्व कहि' के स्थानपर किसी अन्य पाठमें 'तत्त्वजाले' देखा जाता है। "के कस्य पति-पुत्राद्याः" अर्थात् 'कौन किसका पति, कौन किसका पुत्र, कौन किसकी पत्नी' इस प्रकार तत्त्वज्ञानरूप जालका विस्तार करके शचीमाताके दुःखका विमोचन किया॥23॥

महाप्रभुका विद्या-विलास :—

शिष्यगण लञा पुनः विद्यार विलास।
विद्या-बले सबा जिनि' औद्धत्य प्रकाश॥24॥

अनुवाद—नवद्वीपमें आकर महाप्रभु पुनः शिष्योंको विद्या अध्ययन कराने लगे। विद्याके बलपर महाप्रभु सभीको पराजित करके अभिमानको प्रकट करने लगे॥24॥

राजपण्डित सनातनकी पुत्री श्रीविष्णुप्रियाके साथ विवाह तथा केशव काश्मीरीकी पराजय :—

तबे विष्णुप्रिया-ठाकुराणीर परिणय।
तबे त' करिल प्रभु दिग्विजयी जय॥25॥

अनुवाद—कुछ समयके बाद उन्होंने श्रीविष्णुप्रिया ठाकुराणीके साथ विवाह किया। इसके बाद उन्होंने दिग्विजयीको पराजित किया॥25॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'दिग्विजयी'—काश्मीर देशके एक 'केशव-मिश्र' नामक एक पण्डित। महाप्रभुसे शिक्षित होनेके बाद उन्होंने श्रीनिम्बादित्य सम्प्रदायमें आचार्य पद प्राप्त किया और उन्होंने वेदान्त-पारिजातादि भाष्योंकी टिप्पणी लिखी॥25॥

अनुभाष्य—'दिग्विजयी'—काश्मीर देशके 'केशव' नामक पण्डित। ये उस समय भारतवर्षके विभिन्न स्थानोंपर अपनी प्रतिभाके द्वारा पण्डितोंको जय करनेके उद्देश्यसे भ्रमण करते-करते अन्तमें गौड़देशमें नवद्वीपमें पधारे। श्रीगौरसुन्दरसे पराजित होनेके बाद इन्होंने श्रीमन्महाप्रभुके तत्त्वको जानकर भगवद्-भजनके उद्देश्यसे निम्बार्क-सम्प्रदायमें प्रवेश किया। इन्होंने निम्बार्कके द्वारा रचित वेदान्त-दर्शनके 'पारिजात'-भाष्यके टीकाकार श्रीनिवासाचार्यके 'वेदान्त-कौस्तुभ' टीकाकी 'कौस्तुभप्रभा' नामक टिप्पणीकी रचना की। भक्ति-रत्नाकरकी बारहवीं तरङ्गमें—"श्रीनिम्बादित्यकी शिष्य परम्परा—

(1) श्रीनिवासाचार्य, (2) विश्वाचार्य, (3) पुरुषोत्तम, (4) विलास, (5) स्वरूप, (6) माधव, (7) बलभद्र, (8) पद्म, (9) श्याम, (10) गोपाल, (11) कृपा, (12) देवाचार्य, (13) सुन्दरभट्ट, (14) पद्मनाभ, (15) उपेन्द्र, (16) रामचन्द्र, (17) वामन, (18) कृष्ण, (19) पद्माकर, (20) श्रवण, (21) भुरि, (22) माधव, (23) श्याम, (24) गोपाल, (25) बलभद्र, (26) गोपीनाथ, (27) केशव, (28) गोकुल, (29) केशव काश्मीरी।" इसी भक्तिरत्नाकरमें—

"सरस्वती-देवीर करिया मन्त्र जप।
हैल सर्व विद्यास्फूर्ति बाड़िल प्रताप॥
सर्वदिशा जय करि' 'दिग्विजयी' ख्याति।
काश्मीर-देशस्थ अति शिष्ट विप्रजाति॥
सर्व त्याग करि' प्रभु-आज्ञाय चलिला।
॰ ॰ वर्णि लीलाभोग 'लघुकेशव' नामाते॥"

"सरस्वती देवीका मन्त्र जप करनेपर इनको सभी विद्याओंकी स्फूर्ति हुई और इनका प्रताप बहुत बढ़ गया। सभी दिशाओंके विद्वानोंको पराजित करनेके कारण इनकी 'दिग्विजयी' नामसे ख्याति हो गयी। ये काश्मीर-देशके बहुत कुलीन ब्राह्मण थे। महाप्रभुकी आज्ञासे ये अपना अभिमानादि सब कुछ त्यागकर चल दिये। इनकी लीला 'लघुकेशव' के नामसे वर्णनकी गयी है।" वैष्णव-मञ्जुषा (प्रथम संख्या) द्रष्टव्य है॥25॥

अमृतानुकणिका—श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका (श्लोक 47-48) में—

"श्रीसनातनमिश्रोऽयं पुरा सत्राजितो नृपः।
विष्णुप्रिया जगन्माता यत् कन्या भू-स्वरूपिणी॥47॥"

"पूर्वकालके सत्राजित राजा अब श्रीसनातन मिश्र हैं तथा भू-शक्ति स्वरूपिणी जगत् माता श्रीविष्णुप्रियादेवी इन्हींकी कन्या हैं। (इसका तात्पर्य यह है कि सत्राजितकी कन्या श्रीसत्यभामा ही श्रीविष्णुप्रियादेवी हैं)।"

"उक्ता प्रसङ्गात् कलिना श्रीचैतन्यविधूदये।
"भुवोऽंशरूपामपराञ्च विष्णुप्रियेति
वित्तां परिणीय कान्ताम्।" इत्यादि॥48॥

"श्रीचैतन्यचन्द्रोदय नाटकके प्रथम अङ्कके सैंतीसवें श्लोकमें कलिने प्रसङ्गवशतः कहा है कि देवादेव श्रीशचीनन्दनने अपनी एक अन्य शक्ति भू-देवीकी अंशरूपिणी श्रीविष्णुप्रिया-देवीके साथ विवाह किया इत्यादि॥"25॥

श्रीवृन्दावनदास ठाकुरको सम्मान-प्रदान :—

वृन्दावन-दास इहा करियाछेन विस्तार।
स्फुट नाहि करे दोष-गुणेर विचार॥26॥

केशव-काश्मीरीका श्लोकके दोष-गुण विचार :—

सेइ अंश कहि, ताँरे करि' नमस्कार।
या शुनि' दिग्विजयी कैल आपना धिक्कार॥27॥

अनुवाद—श्रीवृन्दावनदास ठाकुरने इस लीलाका विस्तारसे वर्णन किया है, परन्तु (दिग्विजयीके द्वारा कहे गये श्लोक) के दोष और गुणोंका स्पष्टरूपसे विचार नहीं किया। इसलिये मैं श्रीवृन्दावनदास ठाकुरको नमस्कार करके उसी अंशको कह रहा हूँ, जिसे सुनकर दिग्विजयीने अपनेको धिक्कार दिया था॥26-27॥

दिग्विजयी-पराजय-वृत्तान्त; दिग्विजयीका आगमन :—

ज्योत्सनावती रात्रि, प्रभु शिष्यगण सङ्गे।
बसियाछेन गङ्गातीरे विद्यार प्रसङ्गे॥28॥

हेनकाले दिग्विजयी ताहाँइ आइला।
गङ्गारे वन्दन करि' प्रभुरे मिलिला॥29॥

महाप्रभुका मान-प्रदान धर्म :—

बसाइला तारे प्रभु आदर करिया।
दिग्विजयी कहे मने अवज्ञा करिया॥30॥

अनुवाद—एक दिन चाँदनी रात्रिके समय महाप्रभु अपने शिष्योंको गङ्गाके तटपर बैठकर पढ़ा रहे थे। तभी दिग्विजयी वहाँपर आये और पहले गङ्गाकी वन्दना करके फिर महाप्रभुसे मिले। महाप्रभुने उन्हें आदरपूर्वक बैठाया। मन-ही-मन महाप्रभुका अनादर करते हुए दिग्विजयी कहने लगे॥28-30॥

अभिमानके कारण दिग्विजयीके
द्वारा महाप्रभुका अनादर :—

"व्याकरण पड़ाह, निमाञि पण्डित—तोमार नाम।
बाल्यशास्त्रे लोके तोमार कहे गुणग्राम॥31॥

अनुवाद—"मैं समझता हूँ कि तुम व्याकरण पढ़ाते हो और तुम्हारा नाम 'निमाइ पण्डित' है। लोग तुम्हारे बाल्यशास्त्र (व्याकरण) के अध्यापनकी प्रशंसा करते हैं॥31॥

अनुभाष्य—'बाल्यशास्त्र'—व्याकरण; क्योंकि सभी शास्त्रोंके अध्ययनसे पहले भाषाको जाननेके लिये व्याकरण-शास्त्रके अध्ययनका नियम ही प्रचलित है॥31॥

व्याकरण-मध्ये, जानि, पड़ाह कलाप।
शुनिलुँ फाँकिते तोमार शिष्येर संलाप॥"32॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है॥32॥

अमृतप्रवाह भाष्य—तुम 'कलाप'-नामक व्याकरण पढ़ाते हो, ऐसा मैंने तुम्हारे शिष्योंका व्याकरणकी फाँकिमें अर्थात् जटिल प्रश्नके विषयमें संलाप अर्थात् विशेष प्रकारका जो आलाप होता है, वह सुना है॥"32॥

महाप्रभुकी दैन्योक्ति और गङ्गाका
स्तव करनेके लिये अनुरोध :—

प्रभु कहे,—"व्याकरण पड़ाइ—अभिमान करि।
शिष्येते ना बुझे, आमि बुझाइते नारि॥33॥
काँहा तुमि सर्वशास्त्रे कवित्वे प्रवीण।
काहाँ आमि सबे शिशु—पड़ुआ नवीन॥34॥
तोमार कवित्व किछु शुनिते हय मन।
कृपा करि' कर यदि गङ्गार वर्णन॥"35॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"मैं तो केवल अभिमान करता हूँ कि मैं व्याकरण पढ़ाता हूँ। किन्तु न तो मेरे शिष्य ही मेरी बात समझते हैं और न ही मैं उनको समझा सकता हूँ। कहाँ आप, जो सभी शास्त्रोंमें और विशेषतः कविता रचनामें प्रवीण हैं और कहाँ हम, जो अभी बालक और नवीन छात्र हैं। आपकी कविताको सुननेकी मनमें उत्कण्ठा हो रही है। आपकी कृपा होगी यदि आप गङ्गाकी महिमाका कुछ वर्णन करें॥"33-35॥

दिग्विजयीका सौ श्लोकोंके द्वारा गङ्गाका स्तव-वर्णन :—

शुनिया ब्राह्मण गर्वे वर्णिते लागिला।
घटी एके शत श्लोक गङ्गार वर्णिला॥36॥

अनुवाद—यह सुनकर वे दिग्विजयी ब्राह्मण गर्वित होकर गङ्गाकी महिमाका वर्णन करने लगे। एक घण्टेमें ही उन्होंने गङ्गाका वर्णन एक सौ श्लोकोंमें किया॥36॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'घटि एके' अर्थात् एक घण्टेके भीतर॥36॥

महाप्रभुके द्वारा प्रशंसा और मान-प्रदान :—

शुनिया कहिल प्रभु बहुत सत्कार।
"तोमा-सम पृथिवीते कवि नाहि आर॥37॥
तोमार कविता-श्लोक बुझिते कार शक्ति।
तुमि भाल जान अर्थ किंवा सरस्वती॥38॥

स्तवमेंसे एक श्लोककी व्याख्या करनेका अनुरोध :—

एक श्लोकेर अर्थ यदि कर निज-मुखे।
शुनि' सब लोक तबे पाय बड़सुखे॥"39॥

अनुवाद—श्लोकोंको सुनकर महाप्रभुने उनका सम्मान करते हुए कहा,—"पृथ्वीपर आपके समान और कोई कवि नहीं है। आपकी कविताके श्लोकोंका अर्थ समझनेकी शक्ति किसमें है? उनके अर्थोंको आप ही अच्छी प्रकारसे जानते है अथवा सरस्वतीदेवी ही जानती हैं। यदि आप एक श्लोककी व्याख्या स्वयं अपने मुखसे कर दें, तो उसे सुनकर सब लोगोंको बहुत आनन्द होगा॥"37-39॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'करिल सत्कार'—सम्मान किया। **'किंवा'**—अथवा॥37-38॥

अलौकिक श्रुतिधर महाप्रभुके द्वारा
सौ श्लोकोंमेंसे एक श्लोकका दोहराना :—

तबे दिग्विजयी व्याख्यार श्लोक पुछिल।
शत-श्लोकेर एक श्लोक प्रभु त' पड़िल॥ 40॥

अनुवाद—तब दिग्विजयी पण्डितने पूछा कि किस श्लोककी व्याख्या सुनना चाहते हो। महाप्रभुने उन सौ श्लोकोंमेंसे एक श्लोक सुनाया॥ 40॥

अमृतप्रवाह भाष्य—दिग्विजयीने पूछा कि कौनसे श्लोककी व्याख्या करनी होगी?॥ 40॥

केशव-काश्मीरीका गङ्गा-माहात्म्य-श्लोक :—
दिग्विजयि-वाक्य—

महत्त्वं गङ्गायाः सततमिदमाभाति नितरां
यदेषा श्रीविष्णोश्चरणकमलोत्पत्तिसुभगा।
द्वितीय-श्रीलक्ष्मीरिव सुरनरैरर्च्यचरणा
भवानीभर्त्तुर्या शिरसी विभवत्यद्भुतगुणा॥ 41॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है॥ 41॥

अमृतप्रवाह भाष्य—इन गङ्गादेवीका महत्व सर्वदा दैदीप्यमान है, क्योंकि ये अति सौभाग्यवती हैं। ये श्रीविष्णुके चरणकमलोंसे उत्पन्न हुई हैं और लक्ष्मीदेवीके द्वितीय स्वरूपके समान देवताओं तथा मनुष्योंके द्वारा इनके चरणोंकी पूजा होती है। ये अद्भुत गुणवती हैं और भवानीके पति महादेवके मस्तकपर विराजमान हैं॥ 41॥

अनुभाष्य—गङ्गायाः इदं महत्त्वं सतत (नित्यं) नितरां (निःसंशयेन) आभाति (प्रकाशते); यत् (यस्मात्) एषा (गङ्गा) श्रीविष्णोश्चरणकमलोत्पतिसुभगा (श्रीविष्णोश्चरणकमलयोः भगवत्पादपद्मयोः उत्पतिः सृष्टिः, तया सुशोभनं भगं ऐश्वर्यं यस्याः सा) द्वितीय-श्रीलक्ष्मीरिव (सौन्दर्यशालिनी द्वितीयकमला इव) सुरनरैः (देवमानवाद्यैः) अर्च्यचरणाः (सेवितपदाः) भवानीभर्त्तुः (भवान्याः भर्त्ता स्वामी तस्य गिरिशस्य भवस्येत्यर्थः) शिरसि (मस्तके) या (गङ्गा) विभवति; [अतः इयम्] अद्भुतगुणा (चमत्कारगुणशलिनी)।

श्लोक भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है॥ 41॥

"एइ श्लोकेर अर्थ कर"—प्रभु यदि कहिल।
विस्मित हञा दिग्विजयी प्रभुके पुछिल॥ 42॥

महाप्रभुकी स्मृतिशक्तिको देखकर
दिग्विजयीका विस्मय और जिज्ञासा :—

झंझावात-प्राय आमि श्लोक पड़िल।
तार मध्ये श्लोक तुमि कैछे कण्ठे कैल॥ 43॥

अनुवाद—जब महाप्रभुने कहा,—"इस श्लोकका अर्थ कहिये", यह सुनकर दिग्विजयीने विस्मित होकर उनसे पूछा—'प्रायः आँधीके समान मैंने श्लोकोंको पढ़ा था, उनमेंसे इस श्लोकको तुमने कैसे कण्ठस्थ कर लिया?'॥ 42-43॥

महाप्रभुका सविनय उत्तर :—

प्रभु कहे,—"देवेर वरे तुमि—'कविवर'।
ऐछे देवेर वरे केह हय 'श्रुतिधर'॥"44॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"देवताओंके वरसे जैसे आप 'कवि-श्रेष्ठ' हैं, वैसे ही देवताओंके वरसे कोई 'श्रुतिधर' (सुनकर ही स्मरण कर लेने वाला) भी होता है॥"44॥

दिग्विजयीकी व्याख्या :—

श्लोकेर अर्थ कैल विप्र पाइया सन्तोष।
प्रभु कहे,—"कह श्लोकेर किवा गुण-दोष॥"45॥

अनुवाद—महाप्रभुकी बातसे सन्तुष्ट होकर दिग्विजयी ब्राह्मणने श्लोककी व्याख्या की। महाप्रभुने कहा,—"आप इस श्लोकमें कौनसे गुण और दोष हैं, यह बतलाइये॥"45॥

महाप्रभुके अनुरोधसे अपने श्लोकके निर्दोष
होनेका निर्देश और गुण-वर्णन :—

विप्र कहे,—"श्लोके नाहि दोषेर प्रकाश।
उपमालङ्कार गुण, किछु अनुप्रास॥"46॥

अनुवाद—दिग्विजयी ब्राह्मणने कहा,—"इस श्लोकमें कोई भी दोष नहीं है। इसमें उपमा-अलङ्कार और कुछ

अनुप्रास (एक समान ध्वनियों, अक्षरों या वर्णोंकी पुनरावृत्ति) हैं, जो इस श्लोकके गुण हैं॥"46॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'उपमालङ्कार'—उपमा देकर आलङ्कारिक गुणोंका प्रकाश करना। **'अनुप्रास'**—श्लोकके अन्तिम चरणमें अनेक बार 'भ' वर्ण और उसके समान ध्वनिवाले वर्णोंका बहुत बार प्रयोग करके जो शब्द-चातुर्य दिखलाया है, वह॥46॥

महाप्रभु और कविकी उक्ति एवं प्रत्युक्ति :—

प्रभु कहेन,—"कहि, यदि ना करह रोष।
कह तोमार श्लोके किवा आछे दोष॥47॥

महाप्रभुके द्वारा प्रशंसा और कविताके गुण-दोष विचारके लिये अनुरोध :—

प्रतिभार वाक्य तोमार, देवता सन्तोषे।
भालमते विचारिले जानि गुण-दोषे॥48॥

ताते भाल करि' श्लोक करह विचार।"
कवि कहे,—"ये कहिले सेइ वेदसार॥49॥

दिग्विजयीके द्वारा महाप्रभुको काव्यरसमें अनभिज्ञ समझकर उपहास :—

वैयाकरण तुमि, नाहि पड़ अलङ्कार।
तुमि कि जानिबे एइ कवित्वेर सार॥"50॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"यदि आप बुरा न मानें, तो आपके इस श्लोकमें क्या दोष हैं, उसे कहूँगा। आपकी काव्यकी प्रतिभासे देवता भी आपसे सन्तुष्ट हैं, परन्तु भली-भाँति विचार करनेपर इसके गुण और दोष जाने जा सकते हैं। इसलिये आप भली-भाँति इस श्लोकका विचार कीजिये।" कविने कहा,—"मैंने जो कुछ कहा है, वही वेदोंका सार है। तुम तो केवल व्याकरण जानते हो, तुमने अलङ्कार नहीं पढ़ा है। तुम इस कविताके सारको कैसे समझ सकते हो?"॥47-50॥

अमृतप्रवाह भाष्य—नये-नये प्रकारसे वाक्य-विन्यास करनेकी जो बुद्धि-शक्ति है, उसको 'प्रतिभा' कहते हैं। आपने इस श्लोकमें उस बुद्धिका परिचय देकर देवताओंको भी सन्तुष्ट कर दिया है; अर्थात् इस काव्यमें आपकी प्रचुर प्रतिभा-शक्ति है। किन्तु अच्छी तरह विचार करनेसे इसके गुण और दोषोंको देखा जा सकता है॥48॥

तुम वैयाकरण अथवा व्याकरणविद् अर्थात् (केवलमात्र) बालविद्यामें विशारद हो, इसलिये अलङ्कारादि शास्त्रका विचार करनेमें असमर्थ हो॥50॥

महाप्रभुकी उक्ति :—

प्रभु कहेन,—"अतएव पूछिये तोमारे।
विचारिया गुण-दोष बुझाह आमारे॥51॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"इसलिये तो मैं आपसे पूछ रहा हूँ कि विचार करके श्लोकके गुण और दोष मुझे समझायें॥51॥

नाहि पड़ि अलङ्कार, करियाछि श्रवण।
ताते एइ श्लोके देखि बहु दोष-गुण॥"52॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है॥52॥

अमृतप्रवाह भाष्य—[यह सत्य है कि] मैंने अलङ्कार नहीं पढ़े हैं, किन्तु पण्डितोंके मुखसे श्रवण किया है। उसीके आधारपर इस श्लोकमें अनेक दोष-गुण देखता हूँ॥52॥

कविके अनुरोधपर महाप्रभुके द्वारा श्लोकके गुण-दोष विचार :—

कवि कहे,—"कह देखि, कोन् गुण-दोष।"
प्रभु कहेन,—"कहि, शुन, ना करिह रोष॥53॥

पाँच दोष और पाँच गुण :—

पञ्च दोष एइ श्लोके पञ्च अलङ्कार।
क्रमे आमि कहि, शुन, करह विचार॥54॥

अनुवाद—कविने कहा,—"तो कहो मैं देखूँ इसमें कौनसे गुण और दोष हैं।" महाप्रभुने कहा,—"आप

क्रोध नहीं कीजियेगा, मैं जो कहने जा रहा हूँ, उसे कृपा सुनिये। इस श्लोकमें पाँच दोष हैं और पाँच अलङ्कार (गुण) हैं। मैं क्रमशः इनका वर्णन कर रहा हूँ, आप सुनकर विचार कीजिये॥ 53-54॥

श्लोकके पाँच दोष; प्रथम दोषकी व्याख्या :—

'अविमृष्ट-विधेयांश'—दुइ ठाञि चिह्न।
'विरुद्धमति', 'भग्नक्रम', 'पुनरात्त',—दोष तिन॥ 55॥

अनुवाद—'अविमृष्ट-विधेयांश' दोष दो स्थानोंपर है। 'विरुद्धमति', 'भग्नक्रम', 'पुनरात्त', ये तीन अन्य दोष हैं॥ 55॥

'गङ्गार महत्त्व'—श्लोके मूल 'विधेय'।
इदं-शब्दे 'अनुवाद'—पाछे अविधेय॥ 56॥
'विधेय' आगे कहि' पाछे कहिला 'अनुवाद'।
एइ लागि' श्लोकेर अर्थ करियाछे बाध॥ 57॥

अनुवाद—'गङ्गाका महत्व', श्लोकमें मूल 'विधेय' है (क्योंकि यह अभी ज्ञात नहीं है)। 'इदं' अर्थात् 'यह' शब्द ज्ञात वस्तुका द्योतक है, इसलिये 'अनुवाद' है, जिसको विधेयके बाद कहा गया है। 'विधेय' पहले कहकर बादमें 'अनुवाद' कहा गया है, इसलिये इस श्लोकके वास्तविक अर्थको समझनेमें बाधा होती है॥ 56-57॥

एकादशी-तत्त्वसे उद्धृत न्याय :—

अनुवादमनुक्त्वा तु न विधेयमुदीरयेत्।
न ह्यलब्धास्पदं किञ्चित् कुत्रचित् प्रतितिष्ठति॥ 58॥

अनुवाद—किसी वाक्यमें अनुवाद (ज्ञात वस्तु) को न कहकर विधेय (अज्ञात वस्तु) को पहले नहीं कहना चाहिये, क्योंकि ऐसा करनेसे उस वाक्यका कोई आधार नहीं होता और उसकी कहीं भी अल्प प्रतिष्ठा भी नहीं होती॥ 58॥

अनुभाष्य—चैःचः आदिलीला 2/74 संख्या द्रष्टव्य है॥ 58॥

दूसरे दोषकी व्याख्या :—

'द्वितीय श्रीलक्ष्मी' इहाँ 'द्वितीयत्व' विधेय।
समासे गौण हैल, शब्दार्थ गेल क्षय॥ 59॥
'द्वितीय' शब्द—विधेय, ताहा पड़िल समासे।
'लक्ष्मीर समता' अर्थ करिल विनाशे॥ 60॥
'अविमृष्ट-विधेयांश'—एइ दोष नाम।
आर एक दोष आगे, शुन सावधान॥ 61॥

अनुवाद—'द्वितीय श्रीलक्ष्मी'—यहाँपर 'द्वितीयत्व' विधेय है। (द्वितीय और श्रीलक्ष्मी) इन शब्दोंका समास करनेसे इसका अर्थ गौण होनेसे प्रयोजनीय अर्थ नष्ट हो गया है। 'द्वितीय' शब्द विधेय (अज्ञात) है, इसका 'श्रीलक्ष्मी'के साथ समास (संयुक्त शब्द) करनेसे जो 'लक्ष्मीके समान' अर्थ आप प्रकाश करना चाहते थे, वह अर्थ नष्ट हो गया है। इस दोषका नाम 'अविमृष्ट-विधेयांश' है। आगे और भी एक दोष है, सावधान होकर उसे सुनिये॥ 59-61॥

तीसरे दोषकी व्याख्या :—

'भवानीभर्त्तुः'-शब्द दिले पाइया सन्तोष।
'विरुद्धमति'—कृत नाम एइ महादोष॥ 62॥
भवानी-शब्दे कहे महादेवेर गृहिणी।
ताँर भर्त्ता कहिले द्वितीय भर्त्ता जानि॥ 63॥
'शिवपत्नीर भर्त्ता'—इहा शुनिते विरुद्ध।
'विरुद्धमति'—शब्द शास्त्रे कभु नहे शुद्ध॥ 64॥

इसका एक अन्य दृष्टान्त :—

'ब्राह्मण-पत्नीर भर्त्ता-हस्ते देह दान'।
शब्द शुनिलेइ हय द्वितीय-भर्त्ता ज्ञान॥ 65॥

अनुवाद—'भवानीभर्त्तुः' शब्दका प्रयोग करके आप बहुत सन्तुष्ट हुए हैं, परन्तु इसमें 'विरुद्धमति'-कृत नामक एक महादोष है। भवानी शब्द कहनेसे महादेव (भव) की पत्नीको समझा जाता है, उनका पति (महादेवकी पत्नीका पति) कहनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि उनका कोई दूसरा पति भी है। 'शिवकी पत्नीका

पति', इस उक्तिको सुननेपर इसमें विरोधी अर्थका भान होता है, इसलिये 'विरुद्धमति' शब्द शास्त्रमें कभी शुद्ध नहीं माना गया है। 'ब्राह्मणकी पत्नीके पतिके हाथमें दान दो', ऐसा सुननेसे ही उनका कोई दूसरा पति है, ऐसा ज्ञान होता है॥ 62–65॥

चौथे दोषकी व्याख्या :—

'विभवति' क्रियार वाक्य—साङ्ग, पुनः विशेषण।
'अद्भुतगुणा'—एइ पुनराय दूषण॥ 66॥

पाँचवें दोषकी व्याख्या :—

तिन पादे अनुप्रास देखि अनुपम।
एक पादे नाहि, एइ दोष 'भग्नक्रम'॥ 67॥

पाँच दोषोंके कारण श्लोककी महिमामें हानि :—

यद्यपि एइ श्लोके आछे पञ्च अलङ्कार।
एइ पञ्चदोषे श्लोक कैल छारखार॥ 68॥

अनुवाद—'विभवति' क्रियापर वाक्य सम्पूर्ण होता है, किन्तु पुनः विशेषण 'अद्भुतगुणा' का प्रयोग करना पुनरात्त दोष है। श्लोकके तीन पादोंमें—प्रथम पादमें 'त'कार, तृतीय पादमें 'र'कार और चतुर्थ पादमें 'भ'कार, ये अनुपम अनुप्रास देखता हूँ, किन्तु द्वितीय पादमें अनुप्रास नहीं है, यह 'भग्नक्रम' दोष है। यद्यपि इस श्लोकमें पाँच अलङ्कार हैं, तथापि इन पाँच दोषोंने श्लोकको नष्ट कर दिया है॥ 66–68॥

दश अलङ्कारे यदि एक श्लोक हय।
एक दोषे सब अलङ्कार हय क्षय॥ 69॥

उपमा :—

सुन्दर शरीर यैछे भूषणे भूषित।
एक श्वेतकुष्ठे यैछे करये विगीत॥ 70॥

अनुवाद—एक श्लोकमें यदि दस अलङ्कार भी हों, तो भी केवलमात्र एक दोषके कारण सभी अलङ्कार नष्ट हो जाते हैं। भूषणोंसे भूषित सुन्दर शरीरमें जैसे एक श्वेतकुष्ठका दाग पूरे शरीरको निन्दित कर देता है॥ 70॥

अनुभाष्य—'विगीत'—निन्दित॥ 70॥

भरतमुनि-वाक्य :—

रसालङ्कारवत् काव्यं दोषयुक् चेद्विभूषितम्।
स्याद्वपुः सुन्दरमपि श्वित्रेणैकेन दुर्भगम्॥ 71॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है॥ 71॥

अमृतप्रवाह भाष्य—विभूषित सुन्दर शरीर कुष्ठयुक्त होनेपर जिस प्रकार निन्दनीय होता है, रसालङ्कारयुक्त काव्य भी दोषयुक्त होनेपर वैसे ही निन्दित होता है॥ 71॥

अनुभाष्य—विभूषितं (समलङ्कृत) सुन्दरं (मनोहरम्) अपि वपुः (शरीरं) यथा एकेन श्वित्रेण (श्वेताख्यकुष्ठरोगेण) दुर्भगं (श्री-रहितं मलिनं) स्यात्, तथा रसालङ्कारवत् (रसः शृंगारादिः अलङ्कारः अनुप्रासोपमादिः, ताभ्यां युक्तं) काव्यं (रसात्मकं वाक्यं) चेत् (यदि) दोषयुक् भवति, तथा दुर्भगं (श्रीहीनं) ज्ञेयम्।

श्लोक भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है॥ 71॥

श्लोकके पाँच गुण :—

पञ्च अलङ्कारेर एबे शुनह विचार।
दुइ शब्दालङ्कार, तिन अर्थ-अलङ्कार॥ 72॥

अनुवाद—अब आप इन पाँच अलङ्कारोंका विचार सुनिये, इसमें दो शब्दालङ्कार और तीन अर्थालङ्कार हैं॥ 72॥

पहला और दूसरा गुण—दोनों ही शब्दालङ्कार :—

शब्दालङ्कारे—तिनपदे आछे अनुप्रास।
'श्रीलक्ष्मी'-शब्दे 'पुनरुक्तवदाभास'॥ 73॥

अनुवाद—तीन पदोंमें जो अनुप्रास हैं और 'श्रीलक्ष्मी' शब्दमें जो 'पुनरुक्तवदाभास' है, ये दो शब्दालङ्कार हैं॥ 73॥

प्रथम-चरणे पञ्च 'त'-कारेर पाँति।
तृतीय-चरणे हय पञ्च 'रेफ'-स्थिति॥ 74॥

चतुर्थ-चरणे चारि 'भ'-कार-प्रकाश।
अतएव शब्दालङ्कार अनुप्रास॥ 75॥

अनुवाद—प्रथम चरणमें पाँच बार 'त'-कार का, तीसरे पदमें पाँच बार 'र'-कार का और चौथे चरणमें चार बार 'भ'-कार का प्रयोग हुआ है। इसलिये यह अनुप्रास नामक शब्दालङ्कार है॥ 74-75॥

'श्री'-शब्दे, 'लक्ष्मी'-शब्दे—एक वस्तु उक्त।
पुनरुक्तवदाभासे, नहे पुनरुक्त॥ 76॥
'श्रीयुत लक्ष्मी' अर्थे अर्थेर विभेद।
पुनरुक्तवदाभासे शब्दालङ्कार-भेद॥ 77॥

अनुवाद—'श्री' और 'लक्ष्मी' शब्द एक ही वस्तुका नाम है, इससे पुनरुक्तिका आभास होता है, किन्तु यह पुनरुक्ति नहीं है। 'श्रीयुत लक्ष्मी' अर्थमें अर्थका विभेद है अर्थात् 'श्री' का अर्थ यहाँ शोभा है, इसलिये 'श्रीलक्ष्मी' का अर्थ 'शोभायुक्त लक्ष्मी' होनेसे यह पुनरुक्ति दोष नहीं है। इसी प्रकार पुनरुक्तवदाभास शब्दालङ्कारका एक भेद है॥ 76-77॥

तीसरा, चौथा और पाँचवाँ गुण—तीनों अर्थालङ्कार :—

'लक्ष्मीरिव' अर्थालङ्कार—उपमा-प्रकाश।
आर अर्थालङ्कार आछे, नाम—'विरोधाभास'॥ 78॥
'गङ्गाते कमल जन्मे'—सबार सुबोध।
'कमले गङ्गार जन्म'—अत्यन्त विरोध॥ 79॥
'इहाँ विष्णुपादपद्मे गङ्गार उत्पत्ति'।
विरोधालङ्कार इहार महा-चमत्कृति॥ 80॥
ईश्वर-अचिन्त्यशक्त्ये गङ्गार प्रकाश।
इहाते विरोध नाहि, विरोध-आभास॥ 81॥

अनुवाद—'लक्ष्मीरिव' में 'उपमा' अर्थालङ्कार है। श्लोकमें एक और अर्थालङ्कार है जिसका नाम 'विरोधाभास' है। 'गङ्गासे कमलकी उत्पत्ति' होती है, यह सभी भली-भाँति जानते हैं, किन्तु 'कमलसे गङ्गाकी उत्पत्ति' जो कहा गया है—इसमें अत्यन्त विरोध है। यहाँ श्रीविष्णुके चरणकमलोंसे गङ्गाकी उत्पत्ति कही गयी है, यह महाचमत्कारी विरोधालङ्कार है। ईश्वरकी अचिन्त्य शक्तिके प्रभावसे गङ्गाकी उत्पत्ति हुई है, इसमें कोई भी विरोध नहीं है; अपितु यह विरोधाभास अलङ्कार है॥ 78-81॥

श्रीकृष्णकी अचिन्त्य शक्तिका परिचय :—
श्रीभगवत्-श्रीकृष्णचैतन्यपादोक्त श्लोक—

अम्बुजमम्बुनि जातं क्वचिदपि न जातमम्बुजादम्बु।
मुरभिदि तद्विपरीतं पादाम्भोजान्महानदी जाता॥ 82॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है॥ 82॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जलमें ही कमल उत्पन्न होता है, कमलसे कभी भी जल उत्पन्न नहीं होता। किन्तु आश्चर्यका विषय यह है कि श्रीकृष्णमें इसके विपरीत देखा जाता है, उनके श्रीचरणकमलोंसे महानदी गङ्गाका जन्म हुआ है॥ 82॥

अनुभाष्य—अम्बुनि (जले) अम्बुजं (पद्मं) जातम् (उत्पन्नम्); क्वचित् (कुत्र) अपि अम्बुजात् (पद्मात्) अम्बु (जलं) न जातम्; किन्तु मुरभिदि (मुरारौ कृष्णे) तद्विपरीतं (कार्य-कारण-भावयोर्वैषम्यं) दृश्यते, यतः (कृष्णपादपद्मात्) महानदी (गङ्गा) जाता (निःसृता)।

श्लोक भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है॥ 82॥

गङ्गार महत्त्व—साध्य, साधन ताहार।
विष्णुपादोत्पत्ति—'अनुमान'-अलङ्कार॥ 83॥

अनुवाद—इस श्लोकमें गङ्गाका महत्त्व वर्णन करना साध्य है और महिमाका साधन अर्थात् कारण उनका श्रीविष्णुके चरणकमलोंसे उत्पन्न होना है। यह अनुमान-अलङ्कार है॥ 83॥

स्थूल एइ पञ्च दोष, पञ्च अलङ्कार।
सूक्ष्म विचारिये यदि आछये अपार॥ 84॥

अनुवाद—स्थूलरूपसे विचार करनेपर ये पाँच दोष

और पाँच अलङ्कार दिखलायी पड़ते हैं, परन्तु यदि सूक्ष्म रूपसे विचार किया जाये, तो इसमें अपार गुण और दोष हैं॥ 84॥

अमृतप्रवाह भाष्य—"महत्त्वं गङ्गायाः", इस श्लोकमें जो पाँच अलङ्कार हैं, वे गुण हैं; और इसमें पाँच दोष हैं अर्थात् दो स्थानोंपर 'अविमृष्ट-विधेयांश' दोष, तथा तीन स्थानोंपर 'विरुद्धमति', 'पुनरुक्ति' और 'भग्नक्रम' नामक दोष हैं। पहला 'अविमृष्ट-विधेयांश' दोष यह है कि इस श्लोकमें 'गङ्गाका महत्त्व' ही मूल विधेय है और 'इदं' शब्द अनुवाद है; इस स्थानपर 'गङ्गाका महत्त्व' पहले लिखकर 'इदं' शब्द बादमें लिखना अवैध है। अनुवाद अर्थात् पूर्व ज्ञात विषय पहले नहीं लिखनेपर अर्थकी हानि होती है। दूसरा 'अविमृष्ट-विधेयांश' दोष यह है कि 'द्वितीय-श्रीलक्ष्मीरिव' (द्वितीय श्रीलक्ष्मीके समान), इसमें प्रयुक्त 'द्वितीयत्व'—विधेय अर्थात् पूर्व अज्ञात विषय है, उसको पहले लिखकर समास करनेसे अर्थ गौण होकर नष्ट हो जाता है, अर्थात् लक्ष्मीके समान कहनेका जो तात्पर्य था, वह समास-दोषसे नष्ट हो गया। तीसरा दोष जो 'विरुद्धमति-कृत' है, वह 'भवानीभर्त्तुः' शब्दमें दिखेगा; ऐसे प्रयोगसे 'भवानी' शब्दसे महादेवकी पत्नीको समझा जाता है, 'भवानीभर्त्तुः' शब्दसे 'भवानीके दूसरे पति'—इस प्रकार द्वितीय-मति उदित होती है। ऐसे शब्द-व्यवहारसे काव्य 'विरुद्धमति-कृत' दोषसे दूषित हो जाता है। चौथा दोष यह है कि 'विभवति' क्रियामें वाक्य समाप्त होनेपर, उस स्थानपर 'अद्भुतगुण' विशेषणके प्रयोग करनेसे 'पुनरक्ति'-दोष हुआ है। पाँचवाँ दोष 'भग्नक्रम' है; पहले, तीसरे और चौथे, इन तीन पदोंमें 'त'कार, 'र'कार और 'भ'कारका अनुप्रास है, दूसरे पदमें अनुप्रास नहीं है, यही 'भग्नक्रम' दोष है। पाँच अलङ्कार गुण होनेपर भी इन पाँच दोषोंके कारण इस श्लोकका महत्त्व नष्ट हो गया। दस अलङ्कारोंसे युक्त श्लोकमें यदि एक भी दोष रहे, तो वह श्वेतकुष्ठयुक्त भूषणोंसे भूषित सुन्दर शरीरके समान निन्दित होता है। अब गुणोंकी बात बतला रहा हूँ,—तुम्हारे इस श्लोकमें दो शब्दालङ्कार और तीन अर्थालङ्कार हैं। (1) तीन पादोंमें जो अनुप्रास हैं, वे शब्दालङ्कार हैं। (2) 'श्रीलक्ष्मी' इसके प्रयोगसे पुनरुक्ति दोष नहीं होता, अपितु 'पुनरुक्तिवदाभास'रूप शब्दालङ्कार होता है। 'श्री' और 'लक्ष्मी' को एक वस्तु माननेपर किसी प्रकारका दोष नहीं होता। 'श्रीयुत लक्ष्मी'—इस प्रकार अर्थ करनेपर अर्थका विभेद अवश्य होता है, परन्तु इससे जो पुनरुक्त्याभास होता है, वह एक विशेष शब्दालङ्कार है। (3) 'लक्ष्मीरिव' इस शब्दके प्रयोगमें उपमालङ्काररूप अर्थालङ्कार है। (4) और एक विरोधाभास-रूप अर्थालङ्कार है, वह विष्णुचरण-कमलसे उत्पन्न गङ्गाके सम्बन्धमें है। जलसे ही कमलकी उत्पत्ति होती है, किन्तु कमलसे जलकी उत्पत्ति होना—ऐसी विरुद्ध बातसे 'विरोधालङ्कार' उत्पन्न होता है। ईश्वरकी अचिन्त्य शक्तिसे गङ्गाका प्रकाश होनेके कारण इसमें विरोधमात्र नहीं है, केवल 'विरोधाभास' है, वही अलङ्कार है। (5) जो वाक्य गङ्गाके महत्त्व-रूप साध्यवस्तुको साधन कर रहा है अर्थात् विष्णुपादोत्पत्ति-वाक्य, वह वाक्य ही 'अनुमान' अलङ्कार है॥ 54-84॥

अदोषदर्शी महाप्रभुके द्वारा कविको उत्साह-प्रदान :—

प्रतिभा, कवित्व तोमार देवता-प्रसादे।
अविचार काव्ये अवश्य पड़े दोष बाधे॥ 85॥

अनुवाद—देवताओंकी कृपासे आपने कविता रचनेकी प्रतिभा तो प्राप्तकी है, परन्तु अविचारपूर्वक कविता रचनेसे अवश्य ही उसमें दोष रहता है॥ 85॥

अनुभाष्य—काव्यका यदि विचार न किया जाये, तो अवश्य ही उसके दोष सहजमें दिखायी नहीं देते॥ 85॥

विचार करिले कवित्व हय सुनिर्मल।
सालङ्कार हैले अर्थ करे झलमल॥"86॥

अनुवाद—विचार करनेपर सुनिर्मल (दोषरहित)

कविताकी रचना होती है और उसमें अलङ्कारोंके प्रयोगसे उसका अर्थ झलमल करता है अर्थात् स्पष्टरूपसे प्रकाशित होता है॥"86॥

दिग्विजयीका विस्मित होकर मन-ही-मन विचार :—

शुनिया प्रभुर वाक्य दिग्विजयी विस्मित।
मुखे ना निःसरे वाक्य, प्रतिभा—स्तम्भित॥87॥

कहिते चाहये किछु ना आइसे उत्तर।
तबे विचारये मने हइया फाँफर॥88॥

अनुवाद—महाप्रभुके वाक्योंको सुनकर दिग्विजयी बहुत विस्मित हुए। उनके मुखसे वाक्य नहीं निकल रहा था और उनकी प्रतिभा स्तम्भित हो गई। वे कुछ कहना चाहते थे, परन्तु कुछ उत्तर नहीं दे पाये। तब वे किंकर्त्तव्य-विमूढ़ होकर मनमें विचार करने लगे॥87-88॥

'पड़ुया बालक कैल मोर बुद्धि लोप।
जानि—सरस्वती मोरे करियाछेन कोप॥89॥

महाप्रभुकी अलौकिक व्याख्याको
सरस्वतीकी व्याख्या समझना :—

ये व्याख्या करिल, से मनुष्येर नहे शक्ति।
निमाञि-मुखे रहि' बले आपने सरस्वती॥'90॥

अनुवाद—'एक विद्यार्थी बालकने मेरी बुद्धिका नाश कर दिया है। ऐसा लगता है कि सरस्वतीदेवी मुझसे रुष्ट हो गयी हैं। इसने जो व्याख्याकी है, ऐसी व्याख्या करनेकी शक्ति किसी मनुष्यकी तो नहीं हो सकती। निमाइके मुखसे स्वयं सरस्वती ही बोल रही हैं॥'90॥

महाप्रभुके प्रति कविकी उक्ति :—

एत भावि' कहे,—"शुन, निमाञि पण्डित।
तव व्याख्या शुनि' आमि हइलाङ् विस्मित॥91॥

अलङ्कार नाहि पड़, नाहि शास्त्राभ्यास।
केमने ए सब अर्थ करिले प्रकाश॥"92॥

अनुवाद—इस भावनासे दिग्विजयीने कहा,—"सुनो, निमाइ पण्डित! तुम्हारी व्याख्या सुनकर मैं विस्मित हो गया हूँ। तुमने न तो अलङ्कार पढ़ा है और न ही शास्त्रोंका अभ्यास किया है। फिर तुमने किस प्रकारसे इन सब अर्थोंको प्रकाशित किया है॥"91-92॥

इहा शुनि' महाप्रभु अति बड़ रङ्गी।
ताँहार हृदय जानि' कहे करि' भङ्गी॥93॥

महाप्रभुका सरस्वतीको ही व्याख्या-
नैपुण्यका कारण बताना :—

"शास्त्रेर विचार भाल-मन्द नाहि जानि।
सरस्वती याहा बलाय, सेइ बलि वाणी॥"94॥

अनुवाद—यह सुनकर महान् कौतुकी महाप्रभुने उनके हृदयके भावोंको जानकर परिहासपूर्वक कहा—"मैं शास्त्रोंके गुण और दोषके विचारोंको नहीं जानता, सरस्वतीदेवीने मुझसे जो बुलवाया है, मैंने वही कहा है॥"94॥

सरस्वतीके ऊपर दिग्वजयीका अभिमान :—

इहा शुनि' दिग्विजयी करिल निश्चय।
'शिशुद्वारे देवी मोरे करिल पराजय॥95॥

आजि ताँरे निवेदिब, करि' जप-ध्यान।
शिशुद्वारे कैल मोरे एत अपमान॥'96॥

अनुवाद—यह सुनकर दिग्विजयीने निश्चय किया कि 'स्वयं देवीने ही मुझे इस बालकके द्वारा पराजित करवाया है। आज ही मैं जप-ध्यान करके उनसे पूछूँगा कि एक छोटेसे बालकके द्वारा क्यों मेरा इतना अपमान करवाया है?'॥95-96॥

ग्रन्थकारके द्वारा घटनाके मूल कारणका निर्देश :—

वस्तुतः सरस्वती अशुद्ध श्लोक कराइल।
विचार-समय ताँर बुद्धि आच्छादिल॥97॥

अनुवाद—वास्तवमें सरस्वतीदेवीने विचार करते समय

उनकी बुद्धिको आच्छादित करके ही उनसे अशुद्ध श्लोककी रचना करवायी थी॥97॥

कविके पराजित होनेपर शिष्योंके द्वारा हँसना और महाप्रभुके द्वारा उसका निषेध :—

तबे शिष्यगण सब हासिते लागिल।
ता'-सबा निषेधि' प्रभु कविके कहिल॥98॥

कविको महाप्रभुके द्वारा सम्मान प्रदान :—

"तुमि महापण्डित हओ, कवि-शिरोमणि।
याँर मुखे बाहिराय ऐछे काव्यवाणी॥99॥
तोमार कवित्व येन गङ्गाजल-धार।
तोमासम कवि कोथा नाहि देखि आर॥100॥

जयदेव, कालिदास और भवभूतिके काव्यमें भी दोष :—

भवभूति, जयदेव आर कालिदास।
ताँ-सबार कवित्वे हय दोषेर प्रकाश॥101॥

अनुवाद—दिग्विजयी पण्डितकी पराजयको देखकर तब महाप्रभुके सभी शिष्य हँसने लगे। महाप्रभुने उन सबको हँसनेसे रोका और उन्होंने कविसे कहा—"आप तो महापण्डित हैं और कवियोंमें शिरोमणि हैं, जिनके मुखसे ऐसी सुन्दर कविता निकलती है। आपकी कविता तो गङ्गाजलकी धाराके समान है। मैंने आपके समान कवि कहीं नहीं देखा है। भवभूति, जयदेव और कालिदास जैसे महान कवियोंकी कविताओंमें भी कुछ दोष रहते हैं॥98-101॥

अनुभाष्य—'भवभूति अथवा श्रीकण्ठ'—ये 'मालतीमाधव', 'उत्तर-चरित', 'वीरचरित' आदि संस्कृत नाटकोंके रचयिता हैं। भोजराजाके राज्यकालमें इनका जन्म हुआ था। ये पद्मनगर-निवासी भट्टगोपाल नामक काश्यप-गोत्रीय श्रोत्रिय ब्राह्मणके पौत्र नीलकण्ठके पुत्र थे।

'कालिदास'—सम्राट् विक्रमादित्यकी सभामें नवरत्नोंमें अन्यतम महाकवि थे। इन्होंने 'रघुवंश', 'कुमारसम्भव', 'अभिज्ञान-शकुन्तल', 'मेघदूत' आदि लगभग तीस-चालीस संस्कृत महाकाव्य, नाटक और अन्यान्य विषयक ग्रन्थोंकी रचना की थी।

'जयदेव'—चैःचः आदिलीला, 13/42 संख्या द्रष्टव्य है॥101॥

इति अनुभाष्ये षोड़श परिच्छेद।
सोलहवें अध्यायका अनुभाष्य पूर्ण हुआ।

श्लोक-रचना ही वास्तविक गुण :—

दोष-गुण-विचारे एइ अल्प करि' मानि।
कवित्व-करणे शक्ति, ताँहा से बाखानि॥102॥

महाप्रभुकी दैन्योक्ति :—

शैशव-चापल्य किछु ना लबे आमार।
शिष्येर समान मुञि ना हङ तोमार॥103॥

महाप्रभुके द्वारा उनको सविनय-वाक्यसे विदायी-दान :—

आजि बासा' याह, कालि मिलन आबार।
शुनिब तोमार मुखे शास्त्रेर विचार॥"104॥

अनुवाद—दोष और गुणोंके विचारसे यह तो बहुत साधारण सी बात है, किन्तु आपकी कविता रचनाकी शक्ति प्रशंसनीय है। मेरी बाल्य-चपलताको आप अपने हृदयमें मत रखना, मैं तो आपके शिष्यके भी समान नहीं हो सकता। आज आप अपने वास स्थानपर जाइये, हम कल पुनः मिलेंगे। तब मैं आपके मुखसे शास्त्रोंके विचार श्रवण करूँगा॥"104॥

रात्रिमें कविके द्वारा सरस्वतीकी आराधना :—

एइमते निज-घरे गेला दुइ जन।
कवि रात्रे कैल सरस्वती-आराधन॥105॥

सरस्वतीके उपदेशसे महाप्रभुमें ईश्वर-बुद्धि :—

सरस्वती रात्रे ताँरे उपदेश कैल।
साक्षात् ईश्वर करि' प्रभुरे जानिल॥106॥

अनुवाद—इस प्रकार दोनों अपने-अपने घर चले गये और दिग्विजयी ब्राह्मण रात्रिमें सरस्वतीदेवीकी आराधना करने लगे। सरस्वतीदेवीने रात्रिमें दिग्विजयीको उपदेश दिया कि निमाइ पण्डित साक्षात् ईश्वर हैं॥105-106॥

प्रातःकाल महाप्रभुके श्रीचरणोंमें
शरण-ग्रहण और महाप्रभुकी कृपा :—

प्राते आसि' प्रभुपदे लइल शरण।
प्रभु कृपा कैल, ताँर खण्डिल बन्धन॥ 107॥

अनुवाद—प्रातःकालमें उन्होंने आकर महाप्रभुके चरणकमलोंकी शरण ग्रहण की और महाप्रभुने उनपर कृपा की, जिससे उनके सारे बन्धन कट गये॥ 107॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'बन्धन'—पण्डिताभिमानरूपी मायाका बन्धन॥ 107॥

इति अमृतप्रवाह-भाष्ये षोड़श परिच्छेद।
सोलहवें अध्यायका अमृतप्रवाह-भाष्य पूर्ण हुआ।

दिग्विजयीकी सुकृति :—

भाग्यवन्त दिग्विजयी सफल-जीवन।
विद्या-बले पाइल महाप्रभुर चरण॥ 108॥

अनुवाद—भाग्यवान् दिग्विजयीका जीवन सफल हो गया। विद्याके बलपर उसने महाप्रभुके श्रीचरणकमलोंको प्राप्त किया॥ 108॥

ए सब लीला वर्णियाछेन वृन्दावनदास।
ये किछु करिल इहाँ, विशेष प्रकाश॥ 109॥

अनुवाद—इन सब लीलाओंका श्रीवृन्दावनदास ठाकुरने श्रीचैतन्यभागवतमें वर्णन किया है। जो कुछ विशेष लीला थी, उसका मैंने यहाँ वर्णन किया है॥ 109॥

चैतन्य-गोसाञिर लीला—अमृतेर धार।
सर्वेन्द्रिय-तृप्ति हय श्रवणे याहार॥ 110॥

अनुवाद—श्रीचैतन्य महाप्रभुकी लीलाएँ अमृतकी धाराओंके समान हैं, जिनका श्रवण करनेसे सभी इन्द्रियाँ तृप्त हो जाती हैं॥ 110॥

श्रीरूप-रघुनाथ-पदे यार आश।
चैतन्यचरितामृत कहे कृष्णदास॥ 111॥

इति श्रीचैतन्यचरितामृते आदिखण्डे कैशोरलीला-सूत्र-वर्णनं नाम षोड़श-परिच्छेदः।

अनुवाद—श्रीरूप-रघुनाथ गोस्वामीके चरणकमलोंकी कृपाभिलाषा करते हुए कृष्णदास इस श्रीचैतन्यचरितामृतका वर्णन कर रहा है॥ 111॥

श्रीचैतन्यचरितामृत आदिखण्डका कैशोरलीला-सूत्र-वर्णन नामक सोलहवाँ-अध्याय पूर्ण।

सतरहवाँ अध्याय

चित्र 10

सतरहवाँ अध्याय

सतरहवें अध्यायका कथासार—सतरहवें अध्यायमें महाप्रभुकी सोलह वर्षकी आयुसे लेकर संन्यास ग्रहण करने तककी समस्त लीलाओंका सूत्र रूपमें यहाँ वर्णन किया है, क्योंकि व्यासावतार श्रीवृन्दावनदास ठाकुरने श्रीचैतन्यभागवतमें इन सब लीलाओंका विशेष रूपसे वर्णन किया है। तब भी जहाँ-जहाँ वृन्दावनदास ठाकुरने जिन अंशोंको छोड़ा है, उनका कुछ विशेष वर्णन इस अध्यायमें देखा जाता है। आम-महोत्सव लीला और काजीके साथ महाप्रभुका वार्त्तालाप विशेषरूपसे कहा गया है। बादमें यह दिखलाया है कि यशोदानन्दनने शचीनन्दन होकर चार प्रकारके भक्तभावोंका आस्वादन किया। राधाके प्रेमरसके माधुर्यका आस्वादन करते हुए राधाभावको अङ्गीकार करके एकान्त रूपसे गोपीभावको स्वीकार किया। जितने प्रकारके भक्तभाव हैं, उनमें गोपीभाव श्रेष्ठ है, क्योंकि गोपीभावमें व्रजेन्द्रनन्दनके अतिरिक्त अन्य किसी भी भजनीयतत्त्वका प्रकाश नहीं है। श्रीकृष्ण कौतुकवश चतुर्भुज रूप धारणकर जब गोपियोंके सामने आये, तो वे उन्हें केवल नमस्कार करके वहाँसे चली गयीं। साधारण गोपीभावमें मात्र श्रीकृष्णमूर्तिके अतिरिक्त अन्य सभी मूर्तियोंका परित्याग है, किन्तु गोपी-शिरोमणि श्रीमती राधिकाका भाव सर्वोच्च है। राधाजीको देखकर श्रीकृष्ण अपने चतुर्भुज रूपको नहीं रख पाये। व्रजेश्वर नन्द इस (गौर) लीलामें पिता जगन्नाथ हैं और व्रजेश्वरी यशोदा शचीमाता हैं। चैतन्य गोसाञि साक्षात् नन्दनन्दन हैं अर्थात् नन्दनन्दनके प्रकाश अथवा विलास नहीं हैं। श्रीनित्यानन्द प्रभुके वात्सल्य, दास्य और सख्य—ये तीन भाव हैं। श्रीअद्वैतप्रभुके सख्य और दास्य—ये दो भाव हैं। अन्य सभी अपने-अपने पूर्वाधिकारके अनुसार महाप्रभुकी सेवा करते हैं। एक ही तत्त्व—वंशीवदन, गोप-विलासी, श्यामरूप श्रीकृष्ण कभी ब्राह्मण और कभी संन्यासी वेशमें गौररूपमें श्रीकृष्णचैतन्य हैं। अब विरोधका स्थान यह है कि श्रीकृष्ण ही अब गोपी हुए हैं। यह अवश्य ही अचिन्तनीय है, परन्तु श्रीकृष्णकी अचिन्त्यशक्तिके द्वारा यह भी सम्भव है। इस विषयमें तर्क करना व्यर्थ है, क्योंकि अचिन्त्यभावके विषयमें तर्क करना नितान्त मूर्खताका कार्य है। जिस प्रकार श्रीव्यासदेवने भागवतमें लिखा है, उसी प्रकार इस अध्यायके अन्तमें श्रीकृष्णदास गोस्वामीने आदिलीलाके सतरह अध्यायोंका अनुवाद पृथक्-पृथक् संक्षेपमें लिखा है। (अमृतप्रवाह भाष्य)

श्रीगौरकृपासे अपवित्र व्यक्तिकी भी पवित्रता :—

वन्दे स्वैराद्भुतेहं तं चैतन्यं यत्प्रसादतः।
यवनाः सुमनायन्ते कृष्णनामप्रजल्पकाः॥1॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है॥1॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जिनकी कृपासे यवन लोग भी सद्-चरित्र होकर श्रीकृष्णनामका जप करने लगे, उन स्वच्छन्द रूपसे अद्भुत चेष्टा करनेवाले श्रीचैतन्यदेवकी मैं वन्दना करता हूँ॥1॥

अनुभाष्य—यत् (यस्य चैतन्यदेवस्य) प्रसादतः (अनुकम्पया) यवनाः (म्लेच्छाः) कृष्णनामप्रजल्पकाः (नामोच्चारणनिष्ठापराः सन्तः) सुमनायन्ते (सुमनसः इव आचरन्ति) तं स्वैराद्भुतेहं (स्वैरा स्वतन्त्रा अद्भुता अलौकिकी ईहा 'चेष्टा' यस्य तं स्मार्त्त-विधि-लङ्घनसमर्थं) चैतन्यम् अहं वन्दे।

श्लोक भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है। उनकी अद्भुत (अलौकिक) चेष्टा अर्थात् वे यवनोंको भी श्रीकृष्णनाम प्रदानकर स्मार्त्त-विधिका उल्लङ्घन करनेमें समर्थ हैं॥1॥

जय जय श्रीचैतन्य जय नित्यानन्द।
जयाद्वैतचन्द्र जय गौरभक्तवृन्द॥2॥

अनुवाद—महाप्रभु श्रीचैतन्यदेवकी जय हो। श्रीनित्यानन्द प्रभुकी जय हो। श्रीअद्वैतचन्द्रकी जय हो। श्रीगौर-भक्तवृन्दकी जय हो॥2॥

कैशोर-लीलार सूत्र करिल गणन।
यौवन-लीलार सूत्र करि अनुक्रम॥3॥

अनुवाद—पूर्व अध्यायमें मैंने कैशोर-लीलाका सूत्ररूपमें वर्णन किया। अब क्रमशः यौवनलीलाका सूत्ररूपमें वर्णन करूँगा॥3॥

यौवनमें अनेक लीला-विलास :—

विद्या-सौन्दर्य-सद्वेश-सम्भोग-नृत्य-कीर्त्तनैः।
प्रेमनाम-प्रदानैश्च गौरो दीव्यति यौवने॥4॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है॥4॥

अमृतप्रवाह भाष्य—विद्या, सौन्दर्य, सद्-वेश, सम्भोग, नृत्य, कीर्त्तन, प्रेम और नाम-दानके द्वारा श्रीगौरचन्द्र यौवनकालमें शोभाको प्राप्त हुए॥4॥

अनुभाष्य—गौरः यौवने (पञ्चदशवर्षातिक्रान्ते यौवन-प्राकट्ये) विद्या-सौन्दर्य-सद्वेश-सम्भोग-नृत्यकीर्त्तनैः (परमार्थज्ञानलावण्य-साधुवेशवसनमाल्यचन्दनादिसम्भोगनृत्यकीर्त्तनादिभीः एतैः) प्रेमनाम-प्रदानैः (प्रेम्णा सह कृष्णनाम-वितरणैः) दीव्यति (क्रीड़ति)।

श्लोक भावानुवाद—पन्द्रह वर्षकी आयुके बाद यौवनके प्रकट होनेपर श्रीगौरचन्द्रने विद्या (परमार्थ-ज्ञान), सौन्दर्य (लावण्य), सद्-वेश (साधुवेश, वस्त्र, माला, चन्दनादि), सम्भोग, नृत्यकीर्तनादि और प्रेमके साथ श्रीकृष्णनामके वितरणकी क्रीड़ा की॥4॥

यौवन लीला :—

यौवन-प्रवेशे अङ्गेर अङ्ग विभूषण।
दिव्य वस्त्र, दिव्य वेश, माल्य-चन्दन॥5॥

अनुवाद—यौवनकालमें प्रवेश करनेपर महाप्रभुके अङ्ग ही उनके अङ्गोंके आभूषण हो गये अर्थात् प्रत्येक अङ्गका गठन इतना सुन्दर था कि वह सम्पूर्ण देहका आभूषण प्रतीत होता था। वे दिव्य वस्त्र, दिव्य वेशभूषा और माला-चन्दनादिसे सुशोभित रहते थे॥5॥

विद्यार औद्धत्ये काहोँ ना करे गणन।
सकल पण्डित जिनि' करे अध्यापन॥6॥

अनुवाद—अपनी विद्याके अभिमानसे वे किसीको कुछ नहीं समझते थे। सभी पण्डितोंको अपने ज्ञानके द्वारा परास्तकर वे स्वयं पढ़ाने लगे॥6॥

वायुव्याधि-छले कैल प्रेम परकाश।
भक्तगण लञा कैल विविध विलास॥7॥

अनुवाद—वायु-रोगके छलसे उन्होंने प्रेमका प्रकाश किया। तब भक्तोंको लेकर नाना प्रकारकी लीलाओंका आस्वादन किया॥7॥

अमृतप्रवाह भाष्य—अध्ययन और अध्यापन समाप्त करके शुद्धभक्तिका प्रचार करनेके लिये श्रीगौरचन्द्रने कुछ दिन वायु-रोगके छलसे छात्रोंको सर्वत्र श्रीकृष्णनामकी व्याख्या की, सभी व्याकरणके सूत्रोंका श्रीकृष्णसे सम्बन्ध दिखलाया और उनको पढ़ानेके कार्यसे छुटकारा पानेकी चेष्टा करने लगे॥7॥

अनुभाष्य—चैःभाः आदिखण्ड, बारहवाँ अध्याय द्रष्टव्य है॥7॥

अमृतानुकणिका—एक दिन महाप्रभु वायु रोगके छलसे प्रेम-भक्तिके समस्त विकारोंको प्रकट करने लगे। वे अकस्मात् अलौकिक शब्द बोलने लगते, कभी भूमिपर लोट-पोट करने लगते, कभी हँसते और घरमें तोड़-फोड़ करने लगते। कभी हुँकार करते, कभी ताल ठोकते और जिसे सामने देखते उसे मारने लगते। थोड़ी देर बाद वे निश्चल हो जाते और उन्हें ऐसी मूर्च्छा होती, जिसे देखकर लोग भयभीत हो जाते।

सभी लोग अनेक प्रकारके खाद्य तेल उनके सिरमें

लगाकर उनका उपचार करनेकी चेष्टा करने लगे। परन्तु महाप्रभुके समस्त अङ्ग काँपने लगे और उनका शरीर तीव्रतासे झूमने लगा तथा उनकी हुँकार सुनकर सभी भयभीत हो गये। महाप्रभु कहने लगे,—"मैं ही सभी लोकोंका ईश्वर हूँ, मैंने ही विश्वको धारण कर रखा है, इसलिये मेरा नाम विश्वम्भर है। मैं वही हूँ, परन्तु मुझे कोई नहीं पहचानता।" ऐसा कहकर महाप्रभु दौड़कर लोगोंको पकड़ने लगे। उनके व्यवहारको देखकर किसीने कहा कि इनमें कोई दानव आ गया है, किसीने कहा कि यह किसी डाकिनीका काम है और कोई कहने लगे कि ये निरन्तर बोल रहे हैं, इसलिये निश्चित ही इन्हें वायु-विकार हो गया है। फिर एक बड़े लकड़ीके पात्रमें गलेतक तेल भरके उनको बैठाया। महाप्रभु तेलमें बैठकर खिलखिलाकर हँसने लगे, मानो वास्तवमें वायु अपना प्रभाव दिखा रही है। इस प्रकार कुछ देर लीला करनेके पश्चात् महाप्रभु अपनी स्वभाविक स्थितिमें आ गये। सभी भक्त आनन्दसे 'हरि' 'हरि' ध्वनि करने लगे। परन्तु विष्णुकी मायासे मोहित होकर कोई उनके तत्त्वको नहीं समझ पाया॥7॥

गयामें ईश्वरपुरीके साथ मिलन और दीक्षाभिनय :—

तबे त' करिला प्रभु गयाते गमन।
ईश्वरपुरीर सङ्गे तथाइ मिलन॥8॥

अनुवाद—तब महाप्रभुने गयाके लिये गमन किया और वहाँ उनका श्रीईश्वरपुरीसे मिलन हुआ॥8॥

अनुभाष्य—चै:भा: आदिखण्ड सतरहवाँ अध्याय द्रष्टव्य है॥8॥

दीक्षा-अनन्तरे हैल प्रेमेर प्रकाश।
देशे आगमन पुनः, प्रेमेर विलास॥9॥

अनुवाद—दीक्षाके बाद महाप्रभुने प्रेमका प्रकाश किया और पुनः नवद्वीप आकर प्रेमपूर्वक लीला-विलास किया॥9॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'परलोकगत पिताका गयामें श्राद्ध करूँगा'—इस भावसे महाप्रभुने अनेक छात्रोंके साथ गयाकी यात्रा की। मार्गमें उन्हें ज्वर आ गया और ब्राह्मणके चरणोदकका पान करके वे उस रोगसे मुक्त हुए। इस लीलाके द्वारा उन्होंने संसारी लोगोंको ब्राह्मणोंको सम्मान देनेका कर्त्तव्यका प्रदर्शन किया। गया पहुँचकर उन्होंने श्रीईश्वरपुरीसे श्रीकृष्णमन्त्रकी दीक्षा ग्रहण की। उस मन्त्रको ग्रहण करते ही महाप्रभुमें प्रेमका प्रकाश होने लगा। गयामें कार्य समाप्त करके श्रीनवद्वीप धाममें आकर प्रेमका प्रचार करने लगे॥9॥

अनुभाष्य—चै:भा: आदिखण्ड सतरहवाँ अध्याय और मध्य पहला अध्याय द्रष्टव्य है॥9॥

दीक्षाके उपरान्त नवद्वीप-लीला,
श्रीअद्वैतका विश्वरूप-दर्शन :—

शचीके प्रेमदान, तबे अद्वैत-मिलन।
अद्वैत पाइल विश्वरूप-दरशन॥10॥

अनुवाद—महाप्रभुने शचीमाताको प्रेमका दान किया। तब महाप्रभुका श्रीअद्वैताचार्यसे मिलन हुआ और बादमें महाप्रभुने उन्हें अपने विश्वरूपका दर्शन करवाया॥10॥

अमृतप्रवाह भाष्य—एक दिन महाप्रभुने श्रीवासके घरमें विष्णु-सिंहासनपर बैठकर कहा कि मेरी माताने श्रीअद्वैताचार्यके चरणोंमें वैष्णवापराध किया है। वह अपराध क्षमा न होनेतक उनको प्रेमभक्ति प्राप्त नहीं होगी। भक्त लोग यह सुनकर श्रीअद्वैताचार्यको वहाँ बुला लाये और श्रीअद्वैताचार्य (शचीमाताके माहात्म्यका कीर्त्तन करते-करते) प्रेममें आविष्ट हो गये। शचीदेवीने उस अवसरका लाभ उठाते हुए उनके चरणोंकी धूलि लेकर उस अपराधसे मुक्ति पायी। तब,

"प्रसन्न हइया प्रभु बले जननीरे।
एखन से विष्णुभक्ति हइल तोमारे॥
अद्वैतेर स्थाने अपराध नाहि आर।"

"तब प्रसन्न होकर महाप्रभुसे मातासे कहा कि अब

आपका श्रीअद्वैत प्रभुके प्रति कोई अपराध नहीं रहा है, इसलिये अब आपको विष्णुभक्ति प्राप्त होगी।"

एक दिन प्रेममें आविष्ट होकर श्रीअद्वैताचार्यने श्रीवास-अङ्गनमें महाप्रभुसे कहा—'पहले आपने अर्जुनको जो विश्वरूप दिखलाया था, वह रूप मुझे भी दिखलाइये।' तब महाप्रभुने दया करके उन्हें भी अपना विश्वरूप दिखलाया॥ 10॥

अनुभाष्य—'शचीमाताको प्रेमदान'—चै:भा: मध्यखण्ड बाइसवाँ अध्याय और **'श्रीअद्वैत-मिलन'**—चै:भा: मध्यखण्ड छठा अध्याय; **'श्रीअद्वैतका विश्वरूप दर्शन'**—चै:भा: मध्यखण्ड चौबीसवाँ अध्याय द्रष्टव्य है॥ 10॥

प्रभुर अभिषेक तबे करिल श्रीवास।
खाटे बसि' प्रभु कैल ऐश्वर्य-प्रकाश॥ 11॥

अनुवाद—तब श्रीवासने महाप्रभुका अभिषेक किया और महाप्रभुने सिंहासनपर बैठकर अपना ऐश्वर्य प्रकाश किया॥ 11॥

अमृतप्रवाह भाष्य—एकदिन श्रीवासके घरमें सब भक्तोंने मिलकर महाप्रभुका अभिषेक किया। महाप्रभुने विष्णु-सिंहासनके ऊपर बैठकर अपने राजराजेश्वर-ऐश्वर्यका प्रकाश किया। अनेक भक्तोंने उस समय कीर्तन किया। इधर श्रीअद्वैतादि भक्त महाप्रभुकी षोड़श उपचारसे पूजा करने लगे। तब जिसकी जैसी अभिलाषा थी, महाप्रभु वैसा वर उसे प्रदान करने लगे॥ 11॥

अनुभाष्य—'श्रीवास पण्डितके घरमें विष्णु-सिंहासनपर विराजमान महाप्रभु द्वारा 'सातप्रहरिया' भाव'—चै:भा: मध्यखण्ड नौवाँ अध्याय द्रष्टव्य है॥ 11॥

श्रीनित्यानन्दके साथ मिलन :—

तबे नित्यानन्द-स्वरूपेर आगमन।
प्रभुके मिलिया पाइला षड्भुज-दर्शन॥ 12॥

अनुवाद—तत्पश्चात् श्रीनित्यानन्द प्रभु नवद्वीप आये और महाप्रभुसे उनका मिलन हुआ। महाप्रभुने उन्हें अपने षड्भुज रूपके दर्शन करवाये॥ 12॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीनित्यानन्द प्रभुने वीरभूम जिलाके 'एकचक्रा' ग्राममें पद्मावतीके गर्भसे हड़ाई पण्डितके पुत्ररूपमें जन्म ग्रहण किया। श्रीनित्यानन्द प्रभु जब थोड़े बड़े हुए, तो एक संन्यासीने आकर हड़ाई पण्डितसे उनको माँग लिया। तब उस संन्यासीके साथ श्रीनित्यानन्द प्रभुने अनेक देशोंका भ्रमण करते-करते मथुरामण्डलमें आकर बहुत समय तक वास किया। महाप्रभुके आकर्षण करनेपर श्रीनित्यानन्द प्रभु श्रीनवद्वीपमें आकर नन्दन-आचार्यके घरमें आकर ठहरे। महाप्रभु भक्तोंको साथ लेकर वहाँ गये और श्रीनित्यानन्द प्रभुको अपने साथ अपने स्थानपर ले आये॥ 12॥

अनुभाष्य—'नित्यानन्दमिलन'—चै:भा: मध्यखण्ड, तीसरा अध्याय और श्रीवासगृहमें श्रीव्यास-पूजाके उपलक्ष्यमें **'श्रीनित्यानन्द प्रभुको महाप्रभुके द्वारा षड्भुजरूपका (शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, श्रीहल और मूषल धारण किये हुए रूपका) दर्शन'**—चै:भा: मध्यखण्ड, पाँचवाँ अध्याय द्रष्टव्य है॥ 12॥

निताइको महाप्रभुका षड्भुज, चतुर्भुज
और द्विभुज रूप-प्रदर्शन :—

प्रथमे षड्भुज ताँरे देखाइल ईश्वर।
शङ्खचक्रगदापद्म-शार्ङ्ग-वेणुधर॥ 13॥

पाछे चतुर्भुज हैला, तिन अङ्ग वक्र।
दुइ हस्ते वेणु बाजाय, दुइ हस्ते शङ्ख-चक्र॥ 14॥

तबे त' द्विभुज केवल वंशीवदन।
श्याम-अङ्ग पीतवस्त्र व्रजेन्द्रनन्दन॥ 15॥

अनुवाद—पहले महाप्रभुने श्रीनित्यानन्द प्रभुको शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, शार्ङ्ग और वेणुधारी षड्भुज रूप दिखलाया। बादमें वे त्रिभङ्ग ललित मुद्रामें चतुर्भुज रूप हो गये और वे दो हाथोंमें वंशी बजा रहे थे तथा उन्होंने अन्य दो हाथोंमें शङ्ख-चक्र धारण किये हुए थे। तब वे केवल वंशी बजाते हुए द्विभुज श्याम वर्णके पीतवस्त्रधारी व्रजेन्द्रनन्दन हो गये॥ 13-15॥

अमृतप्रवाह भाष्य—एकदिन महाप्रभुने श्रीनित्यानन्द प्रभुको शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, शार्ङ्ग और वेणुधारी षड्भुज रूप दिखाया, बादमें दो हाथोंमें शङ्ख, चक्र और दो हाथोंमें वंशी धारण किये हुए चतुर्भुज रूप दिखलाया। अन्तमें उन्होंने केवल वंशीधारी श्रीकृष्ण रूप दिखलाया—(चैःभाः, मध्य)॥13-15॥

श्रीगौर ही श्रीनित्यानन्द-बलराम :—

तबे नित्यानन्द-गोसाञि व्यास-पूजन।
नित्यानन्दावेशे कैल मूषल-धारण॥16॥

अनुवाद—तब श्रीनित्यानन्द प्रभुने महाप्रभुकी व्यासपूजाकी और महाप्रभुने श्रीनित्यानन्द प्रभुके आवेशमें मूसलको धारण किया॥16॥

अमृतप्रवाह भाष्य—महाप्रभुके आदेशसे श्रीनित्यानन्द प्रभुने पूर्णिमाकी रात्रिमें व्यासपूजाके लिये श्रीवासके द्वारा पूजाकी सामग्री एकत्रित करवायी। सङ्कीर्तन करते-करते श्रीनित्यानन्द प्रभुने पुष्पमाला महाप्रभुके गलेमें अर्पण की। उस समय श्रीनित्यानन्द प्रभुने षड्भुज रूपके दर्शन किये। तब व्यासपूजाका और कार्य नहीं हो सका।

श्रीबलरामके आवेशमें व्यासपूजाकी पूर्वरात्रिमें श्रीवासके गृहमें सङ्कीर्तनके समय महाप्रभुने विष्णु-सिंहासनके ऊपर बैठकर श्रीनित्यानन्द प्रभुसे हल-मूसल माँगा था। तब श्रीनित्यानन्द प्रभुने अपने हाथ महाप्रभुके हाथोंमें दे दिये और उस समय भक्तोंने हल और मूसलके प्रत्यक्ष दर्शन किये थे॥16॥

शचीका स्वप्न दर्शन और जगाइ-मधाइका उद्धार :—

तबे शची देखिल, रामकृष्ण—दुइ भाइ।
तबे निस्तारिल प्रभु जागाइ-माधाइ॥17॥

अनुवाद—इसके बाद शचीमाताने (श्रीनित्यानन्द प्रभु और महाप्रभुमें) श्रीबलराम-श्रीकृष्णके दर्शन किये। बादमें महाप्रभुने जगाइ और माधाइका उद्धार किया॥17॥

अमृतप्रवाह भाष्य—एकबार शचीदेवीने स्वप्नमें देखा कि उनके गृहमें स्थित कृष्ण-बलराम गौराङ्ग-नित्यानन्दके साथ नैवेद्यके लिये झगड़ रहे हैं। अगले दिन महाप्रभुकी इच्छासे शचीदेवीने श्रीनित्यानन्द प्रभुको उनके घर भोजनके लिये आमन्त्रित किया। विश्वम्भर और श्रीनित्यानन्द प्रभु जब भोजन कर रहे थे, उस समय शचीदेवीने साक्षात् श्रीकृष्ण और श्रीबलरामको भोजन करते हुए देखा, जिसे देखकर वे प्रेमके कारण मूर्च्छित हो गयीं।

जगाइ और माधाइका जन्म नवद्वीपमें हुआ था, परन्तु वे बहुत पापोंमें रत थे। महाप्रभुकी आज्ञासे श्रीनित्यानन्द प्रभु और हरिदास ठाकुर जब घर-घर नाम प्रचारके लिये जाने लगे, तब एकदिन जगाइ और माधाइ, दोनों मदिरापान करके नशेमें इनपर क्रोधित हो गये। उन्होंने उन्मत्त होकर श्रीनित्यानन्द प्रभु और हरिदास ठाकुरको डाँटा और धमकाया, तब ये दोनों वहाँसे भाग निकले। एक और दिन माधाइने श्रीनित्यानन्द प्रभुके मस्तकपर टूटे हुए मिट्टीके बर्तनसे प्रहार किया, जिसे देखकर जगाइको कुछ दुःख हुआ। महाप्रभुने जब यह वृत्तान्त सुना, तब वे अपने शिष्योंके साथ वहाँ आये और जगाइ और माधाइको दण्ड देनेके लिये उद्यत हुए। करुणामय गौराङ्ग महाप्रभुने जगाइके अच्छे व्यवहारके विषयमें सुनकर उसे प्रेमालिङ्गन दिया। भगवद्दर्शन और स्पर्शसे उन दोनों पापियोंका चित्त परिवर्तित हो गया और महाप्रभुने उन्हें हरिनाम देकर उनका उद्धार किया॥17॥

महाप्रभुका 'सातप्रहरिया' भाव :—

तबे सप्तप्रहर छिला प्रभु भावावेशे।
यथा तथा भक्तगण देखिल विशेषे॥18॥

अनुवाद—तब महाप्रभु सात प्रहरतक भावावेशमें रहे और भक्तोंने उनकी विशेष लीलाओंके दर्शन किये॥18॥

अमृतप्रवाह भाष्य—एकदिन श्रीवासके घरमें महाप्रभु विष्णु-सिंहासनपर बैठे थे, तब भक्तोंने 'सहस्रशीर्षपुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्' आदि पुरुष-सूक्त पाठकर गङ्गाजलसे

उनका अभिषेक किया और विविधोपचारोंसे उनकी पूजा की तथा अनेक प्रकारके खाद्य-द्रव्य उन्हें भोजनके लिये निवेदित किये। महाप्रभु उस समय भक्तोंके द्वारा दी गयी सारी खाद्य-सामग्री खाने लगे। उस दिन महाप्रभु सात प्रहरतक उस भावके आवेशमें रहे और उन्होंने सब अवतारोंके भावोंको दिखलाया। उन्होंने भक्तोंके पूर्व गुह्य समस्त सम्वादोंको व्यक्त करके सबके सन्देहको दूर करके सबको वरदान दिये। इस भावको कोई-कोई 'सातप्रहरिया भाव' और कोई-कोई 'महाप्रकाश' भी कहते हैं॥18॥

अनुभाष्य—श्रीवास पण्डितके घरमें जब महाप्रभु सातप्रहरिया-भावमें थे, तब उस समय उनके अभिषेकके लिये जल लानेवाली 'दुःखी'-नामक एक भाग्यवती स्त्रीको प्रभुने 'सुखी' नाम प्रदान किया। खोलाबेचा (केलेके तने आदि बेचने वाले) श्रीधरको महाप्रकाश-दर्शन, मुरारि गुप्तको श्रीराम रूपके दर्शन, श्रीहरिदास ठाकुरके प्रति कृपा, श्रीअद्वैताचार्यको गीताका सत्यपाठ-कथन और मुकुन्दके प्रति कृपा आदिके लिये चैःभाः मध्यखण्ड, नौवाँ अध्याय द्रष्टव्य है॥18॥

मुरारिके घरमें वराहका आवेश :—

वराह-आवेशे हैला मुरारि-भवने।
ताँर स्कन्धे चड़ि' प्रभु नाचिला अङ्गने॥19॥

अनुवाद—एकदिन महाप्रभु वराह-आवेशमें मुरारि गुप्तके घरमें आये। (किसी और दिन) महाप्रभु मुरारि गुप्तके कन्धेपर चढ़कर आङ्गनमें नाचने लगे॥19॥

अमृतप्रवाह भाष्य—एकदिन महाप्रभुने 'शूकर!' 'शूकर!' कहकर चिल्लाते हुए स्वयं वराहरूप धारण करके मुरारि गुप्तके घरमें प्रवेश किया। उन्होंने जलसे भरे एक पात्र (सुराही) को पृथ्वीको उठानेकी भाँति अपने दाँतोंसे उठाकर जलपान किया। किसी और दिन महाप्रभुने मुरारि गुप्तके कन्धेपर चढ़कर बहुत नृत्य किया॥19॥

अनुभाष्य—'मुरारि गुप्तके घरमें महाप्रभुका वराहावेश'—चैःभाः मध्यखण्ड, तीसरा अध्याय द्रष्टव्य है।॥19॥

शुक्लाम्बरको माधुकरी-भिक्षासे प्राप्त चावलका भोजन :—

तबे शुक्लाम्बरेर कैल तण्डुल भक्षण।
'हरेर्नाम' श्लोकेर कैल अर्थ विवरण॥20॥

अनुवाद—महाप्रभुने शुक्लाम्बर ब्रह्मचारीके भिक्षाके चावल छीनकर खाये। बादमें उन्होंने 'हरेर्नाम' श्लोककी व्याख्या की॥20॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी'—ये गङ्गाके तटपर नवद्वीपमें रहते थे। एक समय जब महाप्रभु नृत्य कर रहे थे, तब ये भिक्षा करके लाये चावलकी झोलीके साथ वहाँ पहुँचे। भक्तवात्सल्यके कारण महाप्रभुने उनके हाथसे वह झोली ले [छीन] ली और सारे चावल महाप्रेमके साथ खाने लगे॥20॥

अनुभाष्य—'महाप्रभुके द्वारा शुक्लाम्बरके भिक्षासे प्राप्त चावलका खाना'—चैःभाः मध्यखण्ड, सोलहवाँ अध्याय द्रष्टव्य है।॥20॥

हरिनामके बिना जीवकी गति नहीं :—

बृहन्नारदीय पुराण (38/126)—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥21॥

अनुवाद—कलियुगमें हरिनाम ही, हरिनाम ही, हरिनाम ही एकमात्र साधन है, इसके अतिरिक्त अन्य कोई गति नहीं है, नहीं है, नहीं है॥21॥

अनुभाष्य—चैःचः आदिलीला, 7/76 संख्या द्रष्टव्य है॥21॥

'हरेर्नाम'-श्लोककी व्याख्या :—

कलिकाले नामरूपे कृष्ण-अवतार।
नाम हैते हय सर्वजगत्-निस्तार॥22॥

अनुवाद—कलिकालमें नामरूपमें श्रीकृष्णका अवतार हुआ है। इस नामसे समस्त जगत्का उद्धार हो सकता है॥ 22॥

दार्ढ्य लागि' 'हरेर्नाम'–उक्ति तिनबार।
जड़लोक बुझाइते पुनः 'एव'–कार॥ 23॥

अनुवाद—तीन बार 'हरेर्नाम' का प्रयोग इस सिद्धान्तमें दृढ़ता दिखानेके लिये है। [तो भी यदि किसीका इसमें विश्वास नहीं हो, तो ऐसे] जड़बुद्धि व्यक्तिके लिये एव–कार (ही) का प्रयोग किया गया है॥ 23॥

'केवल'–शब्दे पुनरपि निश्चय–करण।
ज्ञान–योग–तप आदि कर्म–निवारण॥ 24॥

अनुवाद—इस सिद्धान्तको पुनः सुनिश्चित करनेके लिये और ज्ञान–योग–तपादि कर्मोंकी अनुपयोगिता दिखानेके लिये 'केवल' शब्दका प्रयोग किया गया है॥ 24॥

अन्यथा ये माने, तार नाहिक निस्तार।
नाहि, नाहि, नाहि,—तिन उक्त 'एव'–कार॥ 25॥

अनुवाद—इस सिद्धान्तका जो अन्य अर्थ मानता है, उसका कभी भी उद्धार नहीं हो सकता, यह दर्शानेके लिये 'नहीं' शब्द तीन बार कहकर 'एव'–कार अर्थात् 'ही' भी कहा गया है॥ 25॥

नाम ग्रहण करनेकी प्रणाली :—

तृण हैते नीच हञा सदा लबे नाम।
आपनि निरभिमानी, अन्ये दिबे मान॥ 26॥

अनुवाद—स्वयंको तृणसे भी नीच मानकर, स्वयं निरभिमानी होकर अन्योंको मान देते हुए सदा श्रीकृष्णका नाम लेना चाहिये॥ 26॥

तरुसम सहिष्णुता वैष्णव करिबे।
भर्त्सना–ताड़ने काके किछु ना बलिबे॥ 27॥
काटिलेइ तरु येन किछु ना बलय।
शुकाइया मरे, तबु जल ना मागय॥ 28॥
एइमत वैष्णव कारे किछु ना मागिबे।
अयाचित–वृत्ति, किम्बा शाक–फल खाइबे॥ 29॥

अनुवाद—वैष्णवोंको वृक्षके समान सहनशील होना चाहिये। किसीके द्वारा भर्त्सना अथवा ताड़ना किये जानेपर भी प्रतिकारमें कुछ नहीं बोलना चाहिये। वृक्ष जैसे काटे जानेपर भी कुछ नहीं बोलता और सूखकर मरनेपर भी किसीसे जल नहीं माँगता, वैसे ही वैष्णवको किसीसे कुछ नहीं माँगना चाहिये। अयाचक–वृत्ति (किसीसे भिक्षा नहीं करना) का अवलम्बन करते हुए अथवा शाक–फल जो भी स्वतः मिल जाँय, उन्हें खाकर जीवन धारण करना चाहिये॥ 27–29॥

अमृतानुकणिका—वैष्णवको वृक्षके समान सहनशील होना चाहिये, यह साधक भक्तोंके लिये शिक्षा है। फलदार वृक्ष साधारणतः पत्थर मारनेवालेको फल प्रदान करते हैं, परन्तु कभी–कभी आँधी–तूफानसे गिरकर नीचे बैठे व्यक्तिको कुचलकर मार भी डालते हैं। उत्तम वैष्णव वृक्षसे भी अधिक सहनशील और उपकारी होते हैं। वे किसी भी परिस्थितिमें किसीका भी अपकार नहीं करते हैं। यदि वे किसीको शाप भी देते हैं, तो उसमें भी उस व्यक्तिका कल्याण निहित होता है। जैसे नारदजीने कुबेरके पुत्रोंको वृक्ष बननेका शाप दिया था, वह उनके पक्षमें वरदान ही था, उन्हें वृक्षयोनिसे मुक्त करके श्रीकृष्णने भी उनसे ऐसा ही कहा था। इसी शापके फलस्वरूप श्रीकृष्णके चरणकमलोंके स्पर्शसे उन्हें गोलोक धामकी प्राप्ति हुई, जो कोटि–कोटि जन्मोंकी तपस्या आदिके द्वारा भी सम्भव नहीं है॥ 27–29॥

सदा नाम लइबे, यथा–लाभेते सन्तोष।
एइमत आचार करे भक्तिधर्म–पोष॥ 30॥

अनुवाद—सदा नाम लेते हुए स्वतः जो कुछ प्राप्त

हो जाये, उसीमें सन्तोष करना चाहिये। इस प्रकारका आचरण भक्तिधर्मका पोषक है॥30॥

अनुभाष्य—चैःचः अन्त्यलीला, 20/22-26 संख्या द्रष्टव्य है॥30॥

श्रीमुखकी वाणी :—

श्रीकृष्णचैतन्यचन्द्रोक्त शिक्षाष्टकके अन्तर्गत एक पद्य—

तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्त्तनीयः सदा हरिः॥31॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है॥31॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जो अपनेको तृणसे भी छोटा मानते हैं, जो वृक्षके समान सहनशील हैं, अपने लिये मानशून्य हैं और दूसरोंको सम्मान प्रदान करते हैं, वे ही सदा हरिकीर्तन करनेके अधिकारी हैं॥31॥

अनुभाष्य—तृणादपि (सर्वपददलित-गुरुभावरहितात् तृणादपि) सुनीचेन (सर्वतोभावेन नीचेन प्राकृतमर्यादा-रहितभाव-समन्वितेन जनेन) तरोरपि (वृक्षादपि) सहिष्णुना (सहनगुणयुक्तेन जनेन) अमानिना (स्वयं मननीयोऽपि तादृश-प्राकृत-मर्यादा-परित्यागेन) मानदेन (अन्येभ्यः मानरहितेभ्यः अयोग्येभ्यः अपि मानं गौरवं प्रदेन, एवम्भूतेन जनेन) सदा (नित्यकालं) हरिः [एव] कीर्त्तनीयः (अधरोष्ठजिह्वादौ उच्चारणीयः)।

श्लोक भावानुवाद—स्वयंको सभीके पाँवोंके नीचे रोंदे जानेपर भी कोई प्रतिरोध नहीं करनेवाले तृणसे भी अपनेको नीचा माननेवाले, वृक्षसे भी अधिक सहनशीलता-गुणयुक्त, समस्त सांसारिक अभिमानसे रहित, अन्य सभीको (योग्य अथवा अयोग्यको) मान प्रदान करनेवाले जन, निरन्तर हरि-कीर्तन (अधर-ओष्ठ-जिह्वासे हरिनाम उच्चारण) कर सकते हैं॥31॥

इस श्लोकके अनुसार चलनेके लिये कविराज गोस्वामीका सभीको सविनय अनुरोध :—

उर्द्धबाहु करि' कहोँ, शुन, सर्वलोक।
नाम-सूत्रे गाँथि' पर कण्ठे एइ श्लोक॥32॥
प्रभु-आज्ञाय कर एइ श्लोक आचरण।
अवश्य पाइबे तबे श्रीकृष्णचरण॥33॥

अनुवाद—मैं अपनी भुजाएँ उठाकर कह (विनती कर) रहा हूँ,—"सब लोग सुनो! इस श्लोकको श्रीकृष्णनामके धागेपर पिरोकर सदा स्मरण करनेके लिये अपने कण्ठमें धारण करो।" महाप्रभुकी आज्ञा है कि इस श्लोककी शिक्षाका अपने जीवनमें आचरण करो, तब अवश्य ही तुम्हें श्रीकृष्णके चरणोंकी प्राप्ति होगी॥32-33॥

अमृतप्रवाह भाष्य—ग्रन्थकार कह रहे हैं,—"ओहे सर्वजनगण! मैं अपनी भुजाएँ उठाकर कह रहा हूँ, तुम इसे सुनो। श्रीकृष्णनाम-मालामें इस श्लोकको गून्थकर कण्ठमें धारण करो। तात्पर्य यह है कि अधिकारी नहीं होनेपर नाम जप करनेसे 'नामाभास' अथवा 'नामापराध' होता है। इससे जीवको नामका फल जो 'श्रीकृष्णप्रेम' है, वह प्राप्त नहीं होता है। महाप्रभुके द्वारा रचित इस 'तृणादपि' श्लोकमें जो उपदेश दिया गया है, उसके अनुसार आचरण करते-करते हरिनाम करो, ऐसा करनेसे तुम अवश्य ही श्रीकृष्णचरणोंको प्राप्त करोगे॥"32-33॥

अनुभाष्य—'नामसूत्रे गाँथि'—प्राकृत अभिमानसे रहित ये चार भाव—(1) सुनीचता, (2) सहिष्णुता, (3) अमानी होना और (4) सबको मान प्रदान करना, श्रीहरिनामरूपी सूत्रसे माला अथवा रक्षाकवच पिरोनेकी वस्तु हैं। प्राकृत अभिमान रहनेपर निरन्तर हरिनाम कीर्तन करना सम्भव नहीं है। जड़ीय अभिमानादि हरिनाममें बाधक हैं। चार प्रकारके अभिमानोंसे रहित होनेके उपरान्त ही शुद्धजीव सदैव हरिनाम कीर्तन कर पाते हैं। इस प्रकार साधन-भक्तिकी (उपरोक्त चार भावोंको धारण करनेकी) अनुशासनरूपी इस आज्ञाका सुचारु रूपसे पालन करनेपर हरिनाम-कीर्तनके फलस्वरूप श्रीकृष्णचरणोंकी अवश्य ही प्राप्ति होगी॥32-33॥

एक वर्षतक श्रीवासके घरमें सङ्कीर्तन :—

तबे प्रभु श्रीवासेर गृहे निरन्तर।
रात्रे सङ्कीर्त्तन कैल एक सम्वत्सर॥34॥

अनुवाद—तत्पश्चात् महाप्रभुने श्रीवासके घरपर एक वर्षतक निरन्तर रात्रिकालमें सङ्कीर्त्तन किया॥ 34॥

द्वेषी-पाषण्डी व्यक्तियोंका प्रवेश निषेध :—

कपाट दिया कीर्त्तन करे परम आवेशे।
पाषण्डी हासिते आइसे, ना पाय प्रवेशे॥ 35॥

श्रीवासके प्रति ईर्ष्या और विद्वेष :—

कीर्त्तन शुनि' बाहिरे तारा ज्वलि' पुड़ि' मरे।
श्रीवासेरे दुःख दिते नाना युक्ति करे॥ 36॥

अनुवाद—द्वार बन्द करके महाप्रभु परमावेशमें सङ्कीर्त्तन करते थे। पाषण्डी लोग उनका उपहास करनेके लिये आते, परन्तु द्वार बन्द होनेके कारण वे भीतर प्रवेश नहीं कर पाते। वे बाहरसे ही कीर्तन सुनकर ईर्ष्याके कारण जल मरते थे। तब वे श्रीवासको दुःख देनेके लिये अनेक प्रकारकी युक्तियाँ करने लगे॥ 35-36॥

श्रीवासके विरुद्ध गोपाल-चापालका काण्ड :—

एकदिन विप्र, नाम—'गोपाल चापाल'।
पाषण्डि-प्रधान सेइ दुर्मुख, वाचाल॥ 37॥

भवानी-पूजार सब सामग्री लञा।
रात्रे श्रीवासेर द्वारे स्थान लेपाञा॥ 38॥

अनुवाद—एक दिन रात्रिमें पाषण्डियोंमें प्रधान दुर्वचन और अधिक बोलनेवाला 'गोपाल-चापाल' नामका एक ब्राह्मण भवानी-पूजाकी सारी सामग्री लाया और उसने श्रीवास पण्डितके घरके द्वारके बाहर भूमिको लेपकर वह सामग्री रख दी॥ 37-38॥

अनुभाष्य—चैतन्यभागवतमें 'गोपाल-चापाल' का कोई वृत्तान्त प्राप्त नहीं होता है॥ 37॥

श्रीवासको शक्तिके उपासक दिखलानेकी चेष्टा :—

कलार पात उपरे थुइल ओड़-फुल।
हरिद्रा, सिन्दूर आर रक्तचन्दन, तण्डुल॥ 39॥

मद्यभाण्ड-पाशे धरि' निज-घरे गेल।
प्रातःकाले श्रीवास ताहा त' देखिल॥ 40॥

श्रीवासको शक्तिका उपासक सिद्ध करनेकी चेष्टा :—

बड़ बड़ लोकेर आनिल बोलाइया।
सबारे कहे श्रीवास हासिया हासिया॥ 41॥

"नित्य रात्रे करि आमि भवानी-पूजन।
आमार महिमा देख, ब्राह्मण-सज्जन॥"42॥

अनुवाद—वह केलेके पत्तेके ऊपर जवा-पुष्प, हल्दी, सिन्दूर, लाल-चन्दन, चावल और साथमें मदिराका पात्र रखकर अपने घर चला गया। प्रातःकाल श्रीवासने उठकर जब उस सामग्रीको देखा, तो वे पड़ोसके सभी सम्मानीय व्यक्तियोंको बुलाकर हँसते-हँसते कहने लगे, "हे ब्राह्मणों! हे सज्जनों! मेरी महिमा देखो। मैं प्रत्येक रात्रिमें भवानीकी पूजा करता हूँ॥"39-42॥

अनुभाष्य—'बोलाइया'—बुलाकर॥ 41॥

स्थानीय सज्जन व्यक्तियोंके मनमें क्षोभ और स्थान-शुद्धिकरण :—

तबे सब शिष्टलोक करे हाहाकार।
'ऐछे कर्म हेथा कैल कोन् दुराचार॥'43॥

हाड़िके आनिया सब दूर कराइल।
जल-गोमय दिया सेइ स्थान लेपाइल॥ 44॥

अनुवाद—तब सब सज्जन लोग हाहाकार करके कहने लगे, "किस दुराचारीने ऐसा नीच कर्म किया है?" उन्होंने जमादारको बुलवाकर वह सब सामग्री दूर फिंकवा दी और जल तथा गोबरसे उस स्थानको लीपकर शुद्ध किया॥ 43-44॥

वैष्णव-अपराधके फलस्वरूप गोपाल-चापालको कोढ़ :—

तिन दिन रहि' सेइ गोपाल-चापाल।
सर्वाङ्गे हइल कुष्ठ, बहे रक्तधार॥ 45॥

अनुवाद—तीन दिन बाद उस गोपाल-चापालके सभी अङ्गोंमें कुष्ट रोग हो गया और उनमेंसे रक्त बहने लगा॥ 45॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जिस समय महाप्रभु श्रीवास

आङ्गनमें द्वार बन्द करके कीर्तन-आनन्दका आस्वादन करते थे, उस समय नगरके अनेक बहिर्मुख ब्राह्मण वैष्णवोंका परिहास करनेके लिये अनेक प्रकारसे चेष्टा करने लगे। 'गोपाल-चापाल' नामका कोई एक वाचाल भट्टाचार्य देवी-पूजाकी सामग्री, केलेका पत्ता, जवाफूल और लाल-चन्दनादि मदिराके बर्तनके साथ उस बन्द द्वारके बाहर रखकर चला गया। प्रातःकालमें श्रीवासपण्डितने उसे देखकर परिहास करते हुए सभीसे कहा,—'देखो देखो, मैं प्रत्येक रात्रिमें भवानीकी पूजा करता हूँ, इसके द्वारा मेरे 'शाक्त' होनेके परिचयकी जो महिमा है, उसे आप लोग जान लें।' सभी सज्जन लोग उसे देखकर बहुत दुःखी हुए और उन्होंने जमादारको बुलाकर मदिरादि गन्दी वस्तुओंको दूर फिंकवा दिया। तब जल और गोबरके द्वारा उस स्थानको लीपकर शुद्ध किया। इस वैष्णवापराधके कारण गोपाल-चापालको रक्तस्राव होनेवाला कुष्टरोग हो गया॥35-45॥

सर्वाङ्ग बेड़िल कीटे, काटे निरन्तर।
असह्य वेदना, दुःखे ज्वलये अन्तर॥46॥

अनुवाद—उसके सभी अङ्गोंमें कीड़े पड़ गये, जो उसे निरन्तर काटने लगे और उसको असहनीय पीड़ा होने लगी। उस दुःखकी ज्वालासे उसका अन्तःकरण जलने लगा॥46॥

गङ्गातटपर वास और महाप्रभुसे उद्धार-कामना :—

गङ्गाघाटे वृक्षतले रहे त' बसिया।
एक दिन बले किछु प्रभुके देखिया॥47॥
"ग्राम-सम्बन्धे आमि तोमार मातुल।
भागिना, मुइ कुष्ठव्याधिते हञाछि व्याकुल॥48॥
लोक सब उद्धारिते तोमार अवतार।
मुञि बड़ दुःखी, मोरे करह उद्धार॥"49॥

अनुवाद—[कुष्टरोग संक्रामक रोग होनेके कारण वह ग्रामसे निकाल दिया गया था, इसलिये] वह गङ्गाके तटपर एक वृक्षके नीचे रहने लगा। एक दिन उसने महाप्रभुको देखकर उनसे कहा,—"ग्रामके सम्बन्धसे मैं तुम्हारा मामा लगता हूँ। हे भाञ्जे! मुझे यह कुष्ट रोग हो गया है, जिसके कारण मैं बहुत कष्टमें हूँ। लोगोंका उद्धार करनेके लिये तुम्हारा यह अवतार हुआ है। मैं बहुत दुःखी हूँ, मेरा भी उद्धार करो॥"47-49॥

उसके वैष्णवापराधी होनेके कारण महाप्रभुके क्रोधपूर्ण वचन और उद्धारके लिये असम्मति :—

एत शुनि' महाप्रभुर हइल क्रु
क्रोधावेशे बले तारे तर्ज्जन-वचन॥50॥
"आरे पापि, भक्तद्वेषि, तोरे ना उद्धारिमु।
कोटिजन्म एइ मते कीड़ाय खाओयाइमु॥51॥
श्रीवासे कराइलि तुइ भवानी-पूजन।
कोटि जन्म हबे तोर रौरवे पतन॥52॥
पाषण्डी संहारिते मोर एइ अवतार।
पाषण्डी संहारि' भक्ति करिमु सञ्चार॥"53॥

अनुवाद—यह सुनकर महाप्रभुको क्रोध आ गया और क्रोधके आवेशमें उसे डाँटते हुए कहा,—"अरे पापी, भक्तद्वेषी! मैं तुम्हारा उद्धार नहीं करूँगा। करोड़ों जन्म इसी प्रकार कीड़ोंके द्वारा तुम्हारे शरीरको कटवाऊँगा। तुमने श्रीवासपर भवानी पूजाका दोष लगाया है, करोड़ों जन्म तुम्हें रौरव नरक भोगना पड़ेगा। पाषण्डियोंके संहारके लिये ही मेरा यह अवतार हुआ है। पाषण्डियोंका संहार करके मैं जगत्में भक्तिका सञ्चार करूँगा॥"50-53॥

अनुभाष्य—अवैष्णव लोग ही भवानीकी पूजा करते हैं, यह वैष्णवोंका कार्य नहीं है। उसकी निन्दा करके महाप्रभुने बतलाया है कि अपने हृदयमें बहु-ईश्वरवादका पोषण करनेवाले अर्थात् अनेक देव-देवीकी उपासनाके पक्षपाती प्राकृत बिद्ध-वैष्णवोंका (जो शुद्ध वैष्णव नहीं हैं, उनका) सङ्ग वास्तवमें 'दुःसङ्ग' ही है॥52॥

वैष्णवापराधीका निरन्तर कष्ट भोग करनेके कारण सहज मृत्यु नहीं :—

एत बलि' गेला प्रभु करिते गङ्गास्नान।
सेइ पापी दुःख भोगे, ना याय पराण॥54॥

अनुवाद—यह कहकर महाप्रभु गङ्गास्नानके लिये चले गये। वह पापी बहुत दुःख भोगता रहा, परन्तु उसके प्राण नहीं निकलते थे॥54॥

अनुभाष्य—'भोगे'—भोग रहा था॥54॥

महाप्रभुके पुनः आनेपर उसकी शरणागति :—

संन्यास करिया यबे प्रभु नीलाचले गेला।
तथा हैते यबे कुलिया ग्रामे आइला॥55॥

तबे सेइ पापी प्रभुर लइल शरण।
हित-उपदेश कैल हइया करुण॥56॥

श्रीवास पण्डितसे अपराध-क्षमा प्रार्थनाके लिये महाप्रभुका उपदेश :—

"श्रीवास पण्डितेर स्थाने आछे अपराध।
तथा याह, तेँहो यदि करेन प्रसाद॥57॥

शरणागतिके बाद पुनः पापाचरणका निषेध :—

तबे तोमार हबे एइ पाप-विमोचन।
यदि पुनः ऐछे नाहि कर आचरण॥"58॥

अनुवाद—संन्यास लेनेके बाद महाप्रभु नीलाचल चले गये और वहाँसे जब वे कुलिया लौटकर आये, तब उस पापीने उनकी शरण ग्रहण की। महाप्रभुने करुणा करके उसके हितके लिये उपदेश दिया,—"श्रीवास पण्डितके चरणोंमें तुम्हारा अपराध हुआ है, इसलिये उनके पास जाकर क्षमा याचना करो। यदि वे तुमपर कृपा करेंगे और पुनः ऐसे पापका आचरण नहीं करोगे, तो तुम्हारी इस पापसे मुक्ति हो जायेगी॥"55-58॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'कुलियाग्राम'—गङ्गाके पूर्व तटपर उस समय नवद्वीप था और गङ्गाके दूसरी ओर कुलियाग्राम था, जिसे अब नवद्वीप कहते हैं॥55॥

अनुभाष्य—'कुलिया'-ग्राम अर्थात् जिसे अब नवद्वीप शहर कहते हैं। 'सबे गङ्गा मध्ये नदीयाय-कुलियाय'—चैःभाः अन्त्यखण्ड, 3/380; कुलिया गङ्गाके पश्चिम तटपर और नवद्वीप पूर्व तटपर था। 'भक्तिरत्नाकर'—बारहवीं तरङ्ग, 'चैतन्य-चरित महाकाव्य', 'चैतन्य-चन्द्रोदय' नाटक और 'चैतन्यभागवत' में गङ्गाके पश्चिम तटपर स्थित कुलियाका उल्लेख द्रष्टव्य है। कोलद्वीपके अन्तर्गत कुलिया-ग्राममें आजतक 'कुलियार गञ्ज' नामक एक पल्ली (मोहल्ला) है; 'कुलियार दह' नामक जो जलस्रोत है, वह इस समय नवद्वीप शहरमें है। महाप्रभुके समय गङ्गाके पश्चिम तटपर जो 'कुलिया' और 'पाहाड़पुर' नामक ग्राम थे, वे 'बाहिर द्वीप' के अन्तर्गत थे। नवद्वीप उस समय गङ्गाके पूर्व तटपर था, जिसे अब 'अन्तर्द्वीप' कहते हैं । वह श्रीमायापुरमें 'द्वीपेर माठ' के नामसे अभी भी प्रसिद्ध है। काँचड़ा-पाड़ाके निकट जो 'कुलिया' नामक गाँव है, वह उपरोक्त कुलिया ग्राम अथवा 'अपराध-भञ्जन पाट' नहीं है। धामविद्वेषके कारण कल्पना और भ्रमवश कुछेक वर्षोंसे वैसी मिथ्या धारणाकी उत्पत्ति हुई है॥55॥

गोपाल-चापालकी श्रीवास-चरणोंकी शरण ग्रहण और अपराध-मोचन :—

तबे विप्र लइल श्रीवासेर शरण।
ताँहार कृपाय हैल पाप-विमोचन॥59॥

अनुवाद—तब उस ब्राह्मणने श्रीवास पण्डितकी शरण ग्रहण की और उनकी कृपासे उसकी पापसे मुक्ति हुई॥59॥

और एक दुर्बुद्धि ब्राह्मणके द्वारा महाप्रभुको शाप-प्रदान-कार्य :—

आर एक विप्र आइल कीर्त्तन देखिते।
द्वारे कपाट,—ना पाइल भितरे याइते॥60॥

फिरि' गेल विप्र घरे मने दुःख पाञा।
आर दिन प्रभुके कहे गङ्गाय देखिया॥61॥

"शापिब तोमारे मुञि, पाञाछि मनोदुःख।"
पैता छिण्डिया शापे प्रचण्ड दुर्मुख॥ 62॥
"संसार-सुख तोमार हउक विनाश।"
शाप शुनि' महाप्रभुर हइल उल्लास॥ 63॥

अनुवाद—कीर्तनको देखनेके लिये एक और ब्राह्मण आया था, परन्तु द्वार बन्द होनेके कारण वह भीतर नहीं जा सका। वह मन-ही-मन दुःखी होकर अपने घर लौट गया। वह ब्राह्मण कटु भाषी और दूसरोंको शीघ्र ही शाप देनेवाला था। बादमें एक दिन उसने महाप्रभुको गङ्गा तटपर देखकर कहा,—"मैं तुम्हें शाप दूँगा, क्योंकि तुमने मेरे मनको कष्ट दिया है।" उसने अपने जनेऊको तोड़कर महाप्रभुको शाप दिया,—"तुम्हारा संसार सुख नष्ट हो जाय।" इसे सुनकर महाप्रभु बहुत प्रसन्न हुए॥ 60-63॥

प्रभुर शाप-वार्त्ता शुने हञा श्रद्धावान्।
ब्रह्मशाप हैते तार हय परित्राण॥ 64॥

अनुवाद—महाप्रभुके प्रति ब्राह्मणके शापकी कथा जो श्रद्धापूर्वक सुनेगा, ब्रह्मशापसे भी उसकी मुक्ति हो जायेगी॥ 64॥

अनुभाष्य—मायाधीश महाप्रभुको शापादिके अधीन अथवा यमदण्ड तथा कर्मफलके अधीन जीव समझकर पाषण्डी होनेकी अपेक्षा उन्हें नित्य सेव्य परमेश्वर जाननेपर जीवोंकी अनादि-कृष्णबहिर्मुखता दूर होती है। यह घटना चैतन्यभागवतमें नहीं है॥ 64॥

मुकुन्दको दण्ड देकर उसपर कृपा :—

मुकुन्द-दत्तेरे कैल दण्ड-परसाद।
खण्डिल ताहार चित्ते सब अवसाद॥ 65॥

अनुवाद—महाप्रभुने मुकुन्द-दत्तपर दण्डरूप कृपा की और उनके चित्तके सभी दुःखोंको दूर किया॥ 65॥

अमृतप्रवाह भाष्य—महाप्रभुके महाप्रकाशके दिन मुकुन्ददत्त द्वारके बाहर खड़े थे। महाप्रभुने एक-एक करके अन्य सभी भक्तोंपर कृपा की। उन भक्तोंने महाप्रभुको बतलाया कि मुकुन्ददत्त बाहर खड़े हैं। तब महाप्रभुने कहा,—'मैं मुकुन्ददत्तपर शीघ्र ही प्रसन्न नहीं होऊँगा, क्योंकि वह भक्तोंको तो शुद्धभक्तिकी कथा कहता है और मायावादियोंके पास जाकर योगवाशिष्ठमें लिखे मायावादको स्वीकार करता है। उसके इस आचरणसे मुझे सदा दुःख होता है।' मुकुन्ददत्तने बाहर यह बात सुनकर कहा,—'मैं धन्य हूँ, क्योंकि जगत्-तारण महाप्रभु यदि शीघ्र कृपा नहीं करेंगे, तो कभी-न-कभी तो वे मुझपर अवश्य ही कृपा करेंगे।' तब महाप्रभुने मुकुन्ददत्तका दृढ़तापूर्वक मायावादियोंके सङ्गके परित्यागका निश्चय जानकर उसी क्षण उनको अपने पास बुलाकर अपनी प्रसन्नता प्रकाश की। इस कार्यसे महाप्रभुने मुकुन्ददत्तको मायावादियोंके सङ्गरूप अपराधका दण्ड प्रदानकर उन्हें शुद्धभक्तसङ्गके फलस्वरूप कृपा दी॥ 65॥

अनुभाष्य—'मुकुन्दके ऊपर दण्ड-रूपी कृपा'—चैःभाः मध्यखण्ड, दसवाँ अध्याय द्रष्टव्य है॥ 65॥

श्रीअद्वैतको दण्डरूपी कृपा :—

आचार्य-गोसाञिरे प्रभु करे गुरुभक्ति।
ताहाते आचार्य बड़ हय दुःखमति॥ 66॥

अनुवाद—महाप्रभु श्रीअद्वैताचार्यका गुरुकी भाँति सम्मान करते थे, जिससे श्रीअद्वैताचार्यके मनमें बहुत दुःख होता था॥ 66॥

भङ्गी करि' ज्ञानमार्ग करिल व्याख्यान।
क्रोधावेशे प्रभु तारे कैल अवज्ञान॥ 67॥
तबे आचार्य-गोसाञिर आनन्द हइल।
लज्जित हइया प्रभु प्रसाद करिल॥ 68॥

अनुवाद—जान-बूझकर श्रीअद्वैताचार्य ज्ञानमार्गकी श्रेष्ठताकी व्याख्या करने लगे। यह सुनकर महाप्रभुने क्रोधके आवेशमें उनको दण्ड दिया, जिससे श्रीअद्वैताचार्यको

बहुत आनन्द हुआ। तब महाप्रभुने लज्जित होकर उनपर कृपा की॥67॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीअद्वैताचार्य महाप्रभुके गुरु श्रीईश्वरपुरीके गुरुभ्राता थे, इस सम्बन्धसे महाप्रभु स्वयंको दास मानकर उनकी गुरुके समान भक्ति करते थे। श्रीअद्वैताचार्य महाप्रभुके द्वारा इस प्रकार गौरव प्रदान किये जानेपर दुःखी होते थे और उनसे दण्डरूपी कृपा पानेके लिये शान्तिपुरमें कुछ दुर्भागे व्यक्तियोंको ज्ञानमार्गकी श्रेष्ठताकी व्याख्या करने लगे। यह सुनकर महाप्रभुने क्रोधमें आविष्ट होकर शान्तिपुर जाकर श्रीअद्वैतप्रभुकी अच्छी प्रकारसे पिटायी की। वह पिटायी खाकर श्रीअद्वैतप्रभु यह कहकर नाचने लगे,—"देखो, आज मेरी इच्छा पूर्ण हुई। महाप्रभु कृपणतापूर्वक मुझे गुरुके समान मानते थे और आज उन्होंने मुझे अपना दास और शिष्य मानकर मेरी मायावादरूप दुर्म्मतिसे रक्षा करनेकी चेष्टा की।" श्रीअद्वैताचार्यकी यह भङ्गी देखकर महाप्रभु लज्जित हुए और उनके प्रति प्रसन्न हुए॥66-68॥

मुरारि गुप्तकी ऐकान्तिकी श्रीरामनिष्ठा :—

मुरारिगुप्त-मुखे शुनि' राम-गुणग्राम।
ललाटे लिखिल ताँर 'रामदास' नाम॥69॥

अनुवाद—महाप्रभुने मुरारिगुप्तके मुखसे श्रीरामचन्द्रके गुणोंका बखान सुनकर उनके माथेपर उनका 'रामदास' नाम लिख दिया॥69॥

अमृतप्रवाह भाष्य—एक दिन महाप्रभुने राममन्त्रोपासक मुरारिगुप्तको श्रीरामके स्तवका पाठ करनेको कहा। तब मुरारिगुप्तने महाप्रेममें आविष्ट होकर श्रीरामाष्टकका पाठ किया,—

"इत्थं निशम्य रघुनन्दनराजसिंहश्लोकाष्टकं स भगवान् चरणं मुरारेः। वैद्यस्य मूर्ध्नि विनिधाय लिलेख भाले त्वं 'रामदास' इति भो भव मत्प्रसादात्॥"

"रघुनन्दनराजसिंहश्लोकाष्टकं' को सुनकर महाप्रभुने अपने चरण मुरारिगुप्तके मस्तकपर रख दिये और उनके माथेपर 'रामदास' लिखकर कहा कि तुम मेरी कृपासे सदाके लिये रामदास हुए हो॥"69॥

अनुभाष्य—चैतन्यमङ्गल मध्यखण्ड—

'रामं जगत्रयगुरूं सततं भजामि।'
"एइमते रघुवीराष्टक श्लोक शुनि'।
मुरारि-मस्तके पद दिला त' आपनि॥
'रामदास' बलि' नाम लिखिला कपाले।
मोर परसादे तुमि 'रामदास' हइले॥
इहा बलि' राम-रूप देखाइल तारे।
स्तव करे मुरारि पड़िया पदतले॥"

"'तीनों जगत्के गुरु श्रीरामचन्द्रका मैं निरन्तर भजन करता हूँ', इस प्रकार रघुवीराष्टकका श्लोक सुनकर महाप्रभुने अपने चरणोंको मुरारि गुप्तके मस्तकपर रखा और उनके माथेपर 'रामदास' लिख दिया। तब महाप्रभुने कहा कि मेरी कृपासे तुम 'रामदास' हुए हो। यह कहकर महाप्रभुने उन्हें अपना रामरूप दिखलाया। उसे देखकर मुरारिगुप्त उनकी स्तुति करते हुए उनके चरणोंमें गिर पड़े।" मुरारिगुप्तके प्रति महाप्रभुकी कृपा—चैःभाः मध्यखण्ड, दसवाँ अध्याय द्रष्टव्य है॥69॥

श्रीधरके घरमें लोहेके पात्रमें जलपान और वरप्रदान :—

श्रीधरेर लौहपात्रे कैल जलपान।
समस्त भक्तेरे दिल इष्ट वरदान॥70॥

अनुवाद—महाप्रभुने श्रीधरके घरमें उसके टूटे हुए लोहेके पात्रमें जलका पान किया। महाप्रभुने सभी भक्तोंको उनके इष्ट वरको प्रदान किया॥70॥

अमृतप्रवाह भाष्य—प्रथम नगरकीर्तन-रात्रिमें काजीका उद्धार करनेके बाद चाँदकाजी कीर्तनके साथ-साथ श्रीधरके आङ्गनतक आया था। वहाँपर कीर्तनका विश्राम होनेपर महाप्रभुने कृपापूर्वक श्रीधरके टूटे हुए लोहेके पात्रमें जो जल था, उसे 'भक्तके द्वारा दिया गया जल' कहकर उसका पान किया। काजी उस स्थानसे वापिस लौट गया। मायापुरके उत्तर-पूर्वांशमें उस स्थानको अभी भी 'कीर्तन-विश्रामस्थान' कहते हैं॥70॥

अनुभाष्य—'श्रीधरके लौह-पात्रमें महाप्रभुके द्वारा जलपान'—चै:भा: मध्यखण्ड, तेइसवाँ अध्याय द्रष्टव्य है॥ 70॥

ठाकुर श्रीहरिदासपर कृपा, शचीमाताके अपराध-मोचनका अभिनय :—

हरिदास ठाकुरेर करिल प्रसाद।
आचार्य-स्थाने मातार खण्डाइल अपराध॥ 71॥

अनुवाद—महाप्रभुने हरिदास ठाकुरपर कृपा की और शचीमाताके द्वारा श्रीअद्वैताचार्यके प्रति हुए अपराधको खण्डित करवाया॥ 71॥

अमृतप्रवाह भाष्य—महाप्रकाशके दिन महाप्रभुने हरिदास ठाकुरको आलिङ्गन करके उनको प्रह्लादका अवतार बतलाकर उन्हें वरदान दिया।

विश्वरूपके संन्यास लेनेपर शचीमाताने इसका दोष श्रीअद्वैताचार्यपर लगाया। इस प्रकार मातासे जो यह वैष्णवापराध हुआ, उसे उनके द्वारा श्रीअद्वैताचार्यकी पदधूलि लेकर खण्डन करवाया॥ 71॥

अनुभाष्य—'हरिदास ठाकुरपर कृपा'—चै:भा: मध्यखण्ड, दसवाँ और **'शचीमातापर महाप्रभुकी कृपा'**—चै:भा: मध्यखण्ड, बाइसवाँ अध्याय द्रष्टव्य है॥ 71॥

एक पाषण्डी छात्रका श्रीनाममें अर्थवाद :—

भक्तगणे प्रभु नाम-महिमा कहिल।
शुनिया पड़ुया ताहाँ अर्थवाद कैल॥ 72॥
नामे स्तुतिवाद शुनि' प्रभुर हैल दुःख।
सबारे निषेधिल,—"इहार ना देखिह मुख॥"73॥

सगण वस्त्र-सहित गङ्गास्नान और एकमात्र अभिधेय भक्तिकी महिमा-गान :—

सगणे सचेले गिया कैल गङ्गास्नान।
भक्तिर महिमा ताहाँ करिल व्याख्यान॥ 74॥
ज्ञान-कर्म-योग-धर्मे नहे कृष्ण वश।
कृष्णवश-हेतु एक—कृष्णप्रेम-रस॥ 75॥

अनुवाद—एक दिन महाप्रभुने भक्तोंको नामकी महिमा सुनायी। इसे सुनकर एक छात्रने उसमें अर्थवादका आरोप किया। नाममें स्तुतिवाद सुनकर महाप्रभुको दुःख हुआ और उन्होंने सभी भक्तोंसे कहा,—"आजसे इसका मुख भी मत देखना।" महाप्रभुने तब अपने परिकरोंके साथ वस्त्रोंके सहित स्नान किया और वहाँ उन्होंने भक्तिकी महिमाकी व्याख्या की—'ज्ञान, कर्म, योग, धर्मादि साधनोंके द्वारा श्रीकृष्णको वशीभूत नहीं किया जा सकता। श्रीकृष्णको वशमें करनेका एकमात्र उपाय श्रीकृष्णप्रेम-रस ही है॥'72-75॥

अमृतप्रवाह भाष्य—एकदिन महाप्रभुने भक्तोंको नामकी अपार महिमाका वर्णन किया, उसे सुनकर किसी दुर्भागे छात्रने कहा,—'यह सब नामकी महिमा वास्तविक नहीं है, शास्त्रमें नामका स्तुतिवाद मात्र किया गया है।' इस प्रकार नाम-महिमाका अन्य अर्थ करनेसे नाममें 'अर्थवादरूप' नामापराध होता है। नामापराधके समान और किसी प्रकारका अपराध उतना भयङ्कर नहीं है। उस अपराधी छात्रका मुख भी देखनेका निषेध करके महाप्रभुने अपने परिकरोंके साथ वस्त्र-सहित गङ्गास्नान किया। इसका तात्पर्य यह है कि नामापराधीका मुख देखनेपर वस्त्रोंके साथ ही स्नान करना उचित है—यही इसकी शिक्षा है॥ 72-73॥

अनुभाष्य—साक्षात् श्रीकृष्णसे अभिन्न श्रीनामप्रभुकी महिमाको 'अतिस्तुति' (महिमाको बढ़ा-चढ़ाकर कहा गया है), 'अप्रकृत' (वास्तवमें नहीं है), इसलिये उसे 'असत्य' मानकर (नाम और नामीमें) भेद-बुद्धिका नाम ही 'अर्थवाद' अथवा (मिथ्या) स्तुतिवाद अथवा निन्दावाद है। यह केवल पाषण्डता अथवा नास्तिकता अर्थात् केवल ईश्वरका विरोध मात्र ही है॥ 72॥

श्रीमद्भागवत (11/14/20)—

ना साध्यति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्ज्जिता॥ 76॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है॥76॥

अमृतप्रवाह भाष्य—हे उद्धव! मेरे प्रति की गयी प्रबल भक्ति जिस प्रकार मुझे वशीभूत कर सकती है, अष्टाङ्ग-योग, अभेद-ब्रह्मवादरूप सांख्यज्ञान, ब्राह्मणोंका स्वशाखा-अध्ययनरूप स्वाध्याय, सब प्रकारकी तपस्या और त्यागरूप संन्यासादिके द्वारा मुझे वैसा वशीभूत नहीं किया जा सकता है॥76॥

अनुभाष्य—हे उद्धव, योगः (मरुन्नियमज-यमनियमासन-प्राणायामादिः), सांख्यं (कपिलकथितं तत्त्वसंख्यानं) धर्मः (वर्णाश्रम धर्मः), स्वाध्यायः (वेदाध्ययनं), तपः, त्यागः (संन्यासः), [तथा] मां न साधयति (वशीकरोति) यथा मम उर्जिता (वर्द्धिता) भक्तिः [मां वशीकरोति]।

श्लोक भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है॥76॥

मुरारिकी प्रंशसा :—

मुरारिके कहे प्रभु,—कृष्ण वश कैला।
शुनिया मुरारि श्लोक कहिते लागिला॥77॥

अनुवाद—अनुभाष्य द्रष्टव्य है॥77॥

अनुभाष्य—महाप्रभुने मुरारिगुप्तसे कहा,—'तुमने अपनी प्रेमाभक्तिके द्वारा श्रीकृष्णको वशीभूत कर लिया है।' मुरारिगुप्तने 'सुदामा'-विप्रके द्वारा कहे गये भागवतके श्लोकका उच्चारण करके उसका उत्तर दिया॥77॥

श्रीमद्भागवत (10/81/16)—

क्वाहं दरिद्रः पापीयान् क्व कृष्णः श्रीनिकेतनः।
ब्रह्मबन्धुरिति स्माहं बाहुभ्यां परिरम्भितः॥78॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है॥78॥

अमृतप्रवाह भाष्य—(सुदामाने कहा)—कहाँ मैं अति पापी दरिद्र, कहाँ श्रीनिकेतन (लक्ष्मीके निवासस्थान) श्रीकृष्ण! उन्होंने मुझे अयोग्य ब्राह्मण-पुत्र जानकर मेरा आलिङ्गन किया, यह अति आश्चर्यका विषय है॥78॥

अनुभाष्य—घर जानेको तत्पर 'श्रीसुदामा' अथवा 'श्रीदाम' विप्रकी मन-ही-मनमें उक्ति—

'दरिद्रः (समृद्धिरहितः) पापीयान् (पापसहितः) अहं क्व? श्रीनिकेतनः (ऐश्वर्यमूलविग्रहः निखिल-पुण्याश्रयः) कृष्णः क्व? अहं ब्रह्मबन्धुः (शौक्रविप्राधमः) [तया कृष्णेन] बाहुभ्यां परिरम्भितः (आलिङ्गतः)। (अयोग्ये मयि ब्रह्मबन्धौ कृष्णालिङ्गनं कदापि न सम्भवतीति कृष्णस्य महत्त्वमेव दर्शितं वक्तु

श्लोक भावानुवाद—"कहाँ मैं दरिद्र और पापी? और कहाँ ऐश्वर्यके मूल विग्रह तथा समस्त पुण्योंके आश्रय श्रीकृष्ण? परन्तु श्रीकृष्णने मुझे ब्रह्मबन्धु (अर्थात् जन्मके कारण ब्राह्मण, परन्तु गुणोंमें अधम) जानकर अपनी भुजाओंसे मेरा आलिङ्गन किया। (मेरा अयोग्य ब्रह्मबन्धु होना श्रीकृष्णके आलिङ्गनका कारण नहीं है, अपितु यह श्रीकृष्णकी ही महिमा है, ऐसा वचन सुदामाकी दैन्यताका सूचक है।)।"

महाप्रभुके द्वारा कहे गये वाक्यको अनुकूलरूपसे स्वीकार करनेपर यह अर्थ होता है कि श्रीकृष्णको वशीभूत करनेकी शक्ति मुरारिगुप्तमें नहीं है, श्रीकृष्ण अपने भक्तवात्सल्य-गुणसे ही अयोग्य दासके किसी एक तुच्छ गुणको लक्ष्य करके उसे अकल्पनीय सौभाग्यका अधिकारी बनाते हैं। ऐसी भावनासे ही मुरारिगुप्तने इस श्लोकका उच्चारण किया गया है।

महाप्रभुके द्वारा कहे गये वाक्यको अपने हितके प्रतिकूल समझकर स्वयंको अयोग्य दिखलानेके उद्देश्यसे यह श्लोक उच्चारण करनेके पश्चात् मुरारि गुप्तने कहा,—'मैं श्रीकृष्णको वशमें करनेमें सम्पूर्ण अयोग्य हूँ, मैं उन्हें वशीभूत नहीं कर पाया।' सुदामा-विप्रने अपनी दरिद्रता, पापमें प्रवृत्ति, अ-ब्राह्मणतादि अपनी अयोग्यताका उल्लेख करके श्रीकृष्ण-आलिङ्गन रूप अपने सौभाग्यको सूचित किया था, किन्तु मुरारि गुप्तकी भावना इस प्रकार है,—'मैं इस प्रकारकी भावनाके भी अयोग्य हूँ'।

दशम-टिप्पणी 'वैष्णव-तोषणी' में इस श्लोकका अर्थ इस प्रकार कहा गया है,—

"क्वेति। पापीयान् दुर्भगः; कृष्ण साक्षात् भगवान्; एवं कृष्णत्व-पापीयस्त्वयोस्तथा दारिद्रय-श्रीनिकेतत्वयोर्विरोधः, तथापि

ब्रह्मबन्धुः विप्रकुलजात इति बाहुभ्यां द्वाभ्यामेव परिरम्भितः परिरब्धः। 'स्म'-विस्मये। एवं परिरम्भे विप्रत्वमेव कारणमुक्तं, न तु सख्यं, तत्रात्मनोऽतीवायोग्यत्वमननात्। अतो भगवतो ब्रह्मण्यतैव श्लाघिता, न तु भक्तवत्सलतापीति।"

"'क्वाहं दरिद्रः'—श्लोकका अर्थ बतला रहे हैं। सुदामा कह रहे हैं,—"मैं 'पापीयान्' अर्थात् भाग्यहीन हूँ और श्रीकृष्ण साक्षात् भगवान् हैं। इस प्रकार श्रीकृष्णत्व और पापीयत्व जिस प्रकार परस्पर विरुद्ध हैं, उसी प्रकार दारिद्र्य और श्रीनिकेतनत्व भी हैं। तथापि मैं अधम, ब्राह्मण-कुलमें उत्पन्न हुआ हूँ, इसी कारण 'बाहूभ्यां'—दो बाहुओंके द्वारा 'परिरम्भित'—आलिङ्गित हुआ हूँ। मेरा ब्राह्मण कुलमें जन्म लेना ही उस आलिङ्गनका कारण है, मेरा सखाभाव नहीं।" यहाँपर उन्होंने अपनी अतीव अयोग्यताका मनन करनेके कारण ऐसा कहा है। इसलिये इस श्लोकमें भगवान्की ब्राह्मणोंके प्रति प्रीतिकी ही प्रशंसा हुई है, उनके भक्त-वात्सल्यकी नहीं।

इससे पहलेवाले श्लोकमें सुदामाका भाव इस प्रकार कहा गया है,—जिस वक्षपर श्रीकृष्णकी प्राणोंसे अधिक प्रिया कमला विराजती हैं, उस वक्षके द्वारा उनकी ब्राह्मण-सम्बन्धीय प्रीतिके वशीभूत होकर ब्रह्मण्यदेवने मेरे जैसे लक्ष्मीहीन दरिद्रका आलिङ्गन किया। इस श्लोकके भावानुसार ही उद्धृत श्लोककी टीकामें कहा गया है,—'ब्राह्मण होना ही आलिङ्गनका कारण है, सखा होना नहीं; तथा दैन्यताके कारण सुदामा विप्र स्वयं नितान्त अयोग्य हैं, वे स्वयं ब्राह्मणका धर्म पालन करने योग्य नहीं हैं, केवल भगवान्ने ही ब्राह्मणकी श्रेष्ठता और अपनी गरिमाके प्रदर्शनके लिये एक ब्रह्मबन्धुके लिये भी वैसी ही प्रीति दिखलायी—यही विस्मयका कारण है। सुदामा विप्रने दैन्यवशतः और स्वयंको अधम ज्ञापन करनेके उद्देश्यसे अपने आपको 'ब्रह्मबन्धु' कहकर अपना तिरस्कार किया। तथा ब्रह्मबन्धुके प्रति भी श्रीकृष्णका असामान्य अनुग्रह है, इसको व्यक्त करके उन्होंने अपने दैन्य और ब्राह्मण स्वभावका वास्तविक परिचय दिया। ऐसी दैन्यताके द्वारा सुदामा-विप्रने अपनी महिमाके त्यागका ज्वलन्त आदर्श प्रस्तुत किया। सुदामा ब्रह्मबन्धु अर्थात् पतित ब्राह्मण नहीं हैं, किन्तु ब्रह्मबन्धुत्व रूप विषयान्तर ही [जो सुदामा विप्रकी निज-सम्पत्ति नहीं है अर्थात् वे वास्तवमें ब्राह्मण हैं, परन्तु स्वयंको ब्रह्मबन्धु मान रहे हैं] वही कृष्णप्रीतिका कारण है, उनका अपना महत्त्व अथवा अपनी श्रीकृष्णभक्ति, श्रीकृष्णको उस प्रकारसे वशीभूत नहीं करती।

मुरारि गुप्तने भी वैसे भावोंका अवलम्बन करके निज-महत्त्व आवरण करके दैन्य प्रकाशित किया। उस समयके सामाजिक-दृष्टिकोणसे मुरारिगुप्त शूद्रकुलमें उत्पन्न हुए थे और उन्हें 'ब्रह्मबन्धु' भी नहीं कहा जा सकता था। तब भी 'स्त्रीशूद्रद्विजबन्धुनां त्रयी न श्रुतिगोचरा' इस (भाः 1/4/25) श्लोकका तात्पर्य विचार करके मुरारिगुप्तने शूद्रके समान द्विजबन्धुत्वकी भी उपमा ग्रहण की थी।

छान्दोग्य उपनिषद्की टीकामें शङ्कराचार्यने 'ब्रह्मबन्धु' की व्याख्या करते हुए कहा है—

'ब्राह्मणान् बन्धून-व्यपदिशति, न स्वयं ब्राह्मण-वृत्तः।'

(भाः 1/7/57)—

"वपनं द्रविणादानं स्थानान्निर्यापणं तथा।
एष हि ब्रह्मबन्धूनां वधो नान्योऽस्ति दैहिकः॥"

"शास्त्रकी आज्ञाके अनुसार सिरका मुण्डन कर देना, धन छीन लेना और अपने स्थानसे बाहर निकाल देना—यह सब पतित ब्राह्मणके लिये उसका वध करनेके समान ही हैं। इसके अतिरिक्त सिर काटना आदिके द्वारा ब्राह्मणके शारीरिक-वधकी आज्ञा शास्त्रोंमें नहीं दी गयी है।"

कूर्मपुराण (उत्तरभाग 21/28)—

"शूद्रप्रेष्यो भृतो राज्ञो वृषलो ग्रामयाजकः।
वधबन्धोपजीवी च षड़ेते ब्रह्मबन्धवः॥"

"जो ब्राह्मण शूद्रका दास हो, राजाका सेवक रहा हो, अन्त्यजोंका याजक रहा हो, किसीका वध करके अथवा अपहरण करके आजीविका चलाता हो—ऐसे

छह प्रकारके ब्रह्मबन्धु अर्थात् नीच ब्राह्मण कहे गये हैं।"

ब्रह्मबन्धु अथवा केवल ब्राह्मणकुलमें जन्म अपनी योग्यताका परिचय नहीं हैं, परन्तु उससे वस्तुभेदका सापेक्षत्व ही प्रमाणित होता है॥ 77-78॥

महाप्रभुके द्वारा आमका वृक्ष लगाना
और फल-दान कहानी :—

एकदिन प्रभु सब भक्तगण लञा।
सङ्कीर्त्तन करि' बैसे श्रमयुक्त हञा॥ 79॥

एक आम्रबीज प्रभु अङ्गने रोपिल।
ततक्षणे जन्मिया वृक्ष बाड़िते लागिल॥ 80॥

देखिते देखिते वृक्ष लागिल फलिते।
पाकिल अनेक फल, सबेइ विस्मिते॥ 81॥

शत दुइ फल प्रभु शीघ्र पाड़ाइल।
प्रक्षालन करि' कृष्णे भोग लगाइल॥ 82॥

रक्त-पीतवर्ण,—नाहि अष्ठि-वल्कल।
एकजनेर पेट भरे—खाइले एक फल॥ 83॥

अनुवाद—एक दिन महाप्रभु सब भक्तोंको लेकर सङ्कीर्तन करते हुए कुछ थककर बैठ गये। तब महाप्रभुने एक आमके बीजको आङ्गनमें रोपित किया। उसी क्षण ही उससे एक वृक्ष निकला और वह बढ़ने लगा। देखते-ही-देखते उस वृक्षमें फल लगने लगे और अनेक फल पक गये। यह देखकर सभी विस्मित हो गये। तब महाप्रभुने शीघ्र ही दो सौ फल तुड़वाये और उन्हें धोकर श्रीकृष्णको भोग लगाया। वे फल लाल-पीले रंगके थे और उनमें गुठली और छिलका भी नहीं था। एक फल खानेसे ही एक व्यक्तिका पेट भर जाता था॥ 79-83॥

देखिया सन्तुष्ट हैला शचीर नन्दन।
सबाके खाओयाल आगे करिया भक्षण॥ 84॥

अष्ठि-वल्कल नाहि,—अमृत-रसमय।
एक फल खाइले रसे उदर पूरय॥ 85॥

एइमत प्रतिदिन फले बारमास।
वैष्णव खायेन फल,—प्रभुर उल्लास॥ 86॥

एइसब लीला करे शचीर नन्दन।
अन्य लोक नाहि जाने बिना भक्तगण॥ 87॥

एइ मत बारमास कीर्त्तन-अवसाने।
आम्रमहोत्सव प्रभु करे दिने दिने॥ 88॥

अनुवाद—उन फलोंको देखकर महाप्रभु सन्तुष्ट हुए और पहले स्वयं फलको खाकर बाकी फलोंको सबको खिलाया। छिलके-गुठलीसे रहित वह फल अमृतके समान रसमय था और उस एक फलके रससे ही पेट भर जाता था। इसी प्रकार बारह मास प्रतिदिन वैष्णवोंने फल खाये, जिसे देखकर महाप्रभुके हृदयमें उल्लास हुआ। महाप्रभुने जो ये सब लीलाएँ की, इन्हें भक्तोंके अतिरिक्त अन्य कोई नहीं जान सकता है। इस प्रकार बारह मास तक प्रतिदिन कीर्तनके विश्राम होनेपर महाप्रभु आम-महोत्सव करते रहे॥ 84-88॥

अमृतप्रवाह भाष्य—किसी दिन महाप्रभु भक्तोंके साथ नगर-कीर्तन करते हुए थककर जिस स्थानपर पहुँचे, वहाँपर उस भक्तके आङ्गनमें उन्होंने एक आमके बीजको रोपण किया और उसी क्षण उससे वृक्ष निकला तथा उसपर फल लग गये। तब महाप्रभुने उन आमोंसे आम-महोत्सव किया। वह स्थान आज भी 'आम्रघट्ट' (आम-घाटा) के नामसे प्रसिद्ध है॥ 79-86॥

अनुभाष्य—यह घटना चैतन्यभागवतमें नहीं है॥ 79-86॥

कीर्तनके समय महाप्रभुका मेघोंको
न बरसनेका आदेश :—

कीर्त्तन करिते प्रभु, आइला मेघगण।
आपन-इच्छाय कैल मेघ निवारण॥ 89॥

अनुवाद—एक दिन जिस समय सङ्कीर्तन चल रहा था, उस समय आकाशमें घनघोर मेघ घिर आये। महाप्रभुकी इच्छासे वे मेघ शीघ्र ही छिन्न-भिन्न हो गये॥ 89॥

अमृतप्रवाह भाष्य—एकदिन महाप्रभु (अपने वासस्थानसे) दूर स्थानपर सङ्कीर्तन कर रहे थे, उसी समय आकाशमें घनघोर मेघ छा गये। महाप्रभुने उनको वहाँसे चले जानेकी इच्छा की और मेघोंको जानेकी आज्ञा दी। वे मेघ तत्क्षणात् वहाँसे चले गये। इस कारणसे गङ्गातटकी उस भूमिको 'मेघेर चर' कहते हैं। आजकल गङ्गाका प्रवाह परिवर्तन होनेसे 'बेलपुखुरिया' ग्राम उस 'मेघेर चर' में स्थानान्तरित हो गया है। बेलपुखुरिया पहले जिस स्थानपर था, उसका वर्तमान नाम 'तारणवास' अथवा 'टोटा' हो गया है॥ 89॥

अनुभाष्य—चैतन्यमङ्गल मध्यखण्ड—

"दिन अवसान, सन्ध्या धन्य दिगन्तर।
आचम्बिते मेघारम्भ गगनमण्डल॥
घन घन गरजय गम्भीर निनादे।
देखिया वैष्णवगण गणिल प्रमादे॥
तबे महाप्रभु से मन्दिरा करि' करे।
नामगुण-सङ्कीर्त्तन करे उच्चैःस्वरे॥
देवलोक कृतार्थ करिब हेन मने।
ऊर्ध्वमुखे चाहे प्रभु आकाशेर पाने॥
दूर गेल मेघगण प्रकाश आकाश।
हरिषे वैष्णवगणेर बाड़िल उल्लास॥
निरमल भेल शशी-रञ्जित रजनी।
अनुगत गुण गाये नाचये आपनि॥"

"दिनके ढल जानेपर सन्ध्याका धन्य समय था, तभी गगनमें मेघ एकत्रित होने लगे और गम्भीर गर्जना करने लगे। उसे देखकर वैष्णव भयभीत हो गये। तब महाप्रभु अपने हाथोंमें करताल लेकर उच्च-स्वरसे श्रीकृष्णनाम-गुणका सङ्कीर्तन करने लगे। देवता कीर्तन सुनकर उन्हें कृतार्थ करेंगे, ऐसा मनमें विचार करके वे ऊपर आकाशकी ओर देखने लगे। तभी सभी मेघ वहाँसे दूर चले गये और निर्मल आकाशमें चन्द्रमा उदित हो गया। वैष्णवोंके मनमें हर्ष और उल्लास हुआ तथा महाप्रभु आनन्दसे नाचने लगे॥"89॥

श्रीवासका विष्णु-सहस्रनाम पाठ :—

एकदिन प्रभु श्रीवासे आज्ञा दिल।
'बृहत् सहस्रनाम' पड़, शुनिते मन हैल॥ 90॥

अनुवाद—एक दिन महाप्रभुने श्रीवासको आज्ञा दी कि 'बृहत् सहस्रनाम' सुननेका मेरा मन कर रहा है, इसलिये उसका पाठ करो॥ 90॥

महाप्रभुकी नृसिंहावेश-लीला :—

पड़िते आइला स्तवे नृसिंहेर नाम।
शुनिया आविष्ट हैला प्रभु गुणधाम॥ 91॥

पाषण्डियोंके एकमात्र दण्डविधाता श्रीनृसिंहके आवेशमें महाप्रभुका पाषण्डियोंको भय-प्रदान :—

नृसिंह-आवेशे प्रभु हाते गदा लञा।
पाषण्डी मारिते याय नगरे धाइया॥ 92॥

नृसिंह-आवेश देखि' महातेजोमय।
पथ छाड़ि' भागे लोक पाञा बड़ भय॥ 93॥

महाप्रभुका क्रोध-सम्वरण और करुणा :—

लोक-भय देखि' प्रभुर बाह्य हइल।
श्रीवास-गृहेते गिया गदा फेलाइल॥ 94॥

अनुवाद—(सहस्रनाम) पढ़ते-पढ़ते स्तवमें नृसिंह भगवान्का नाम आया, तो उसे सुनकर महाप्रभु नृसिंहके आवेशमें आ गये। उस आवेशमें उन्होंने अपने हाथमें गदा ले ली और पाषण्डियोंको मारनेके लिये नगरमें भागे। उनके महातेजोमय नृसिंह-आवेशको देखकर लोग डरकर मार्ग छोड़कर इधर-उधर भागने लगे। लोगोंको भयभीत देखकर महाप्रभुको बाह्य-ज्ञान हुआ और उन्होंने श्रीवासके घर जाकर गदा फेंक दी॥ 91-94॥

अनुभाष्य—'भागे'—पलायन करना। यह घटना चैतन्यभागवतमें नहीं है॥ 93॥

श्रीवासे कहेन प्रभु करिया विषाद।
"लोक भय पाय,—मोर हय अपराध॥"95॥

अनुवाद—महाप्रभु बहुत दुःखी होकर श्रीवाससे कहने लगे,—"मुझे देखकर लोग भयभीत हो गये, मुझसे यह अपराध हो गया॥"95॥

अनुभाष्य—चैतन्यमङ्गल मध्यखण्ड—

"पितृकर्म करे सेइ श्रीवासपण्डित।
शुनये 'सहस्रनाम' अति शुद्धचित्त॥
हेनकाले सेइ ठाञि गेला गौरहरि।
शुनये 'सहस्रनाम' मनोरथ पूरि'॥
शुनिते-शुनिते भेल नृसिंह-आवेश।
क्रोधे राङ्गा दु'नयन, ऊर्ध्व भेल केश॥
पुलकित सब अङ्ग अरुण वरण।
घनघन हुँकार सिंहेर गर्जन॥
आचम्बिते गदा लञा धाइल सत्वर।
देखिया सकल लोक काँपिल अन्तर॥
सब सम्वरिया प्रभु बसिला आसने।
ना जानि, कि अपराध भैगेला आमार॥"

"वे श्रीवास पण्डित पितृ-कर्म करते हुए शुद्ध चित्तसे 'सहस्रनाम' सुन रहे थे। उस समय गौरहरि वहाँ पहुँचे और 'सहस्रनाम' सुनकर उनकी मनोवाच्छा पूर्ण हुई। सुनते-सुनते उनमें नृसिंह भगवान्का आवेश आ गया। क्रोधसे उनके नेत्र लाल हो गये और केश खड़े हो गये। उनके सभी अङ्ग पुलकित होकर लाल रङ्गके हो गये और वे जोरसे सिंहके समान गर्जन करने लगे। वे हाथमें गदा लेकर भागे और उनके ऐसे उग्र रूपको देखकर सभीके हृदय काँपने लगे। तब उस आवेशको सम्वरण करके महाप्रभु आकर आसनपर बैठ गये और कहने लगे, "मैं नहीं जानता कि मुझसे क्या अपराध हो गया है?"॥90-95॥

श्रीवासकी उक्ति, श्रीगौरनामसे अपराध क्षय :—

श्रीवास बलेन,—"ये तोमार नाम लय।
तार कोटि अपराध सब हय क्षय॥96॥

श्रीगौरदर्शनसे संसार-ध्वंस :—

अपराध नाहि, कैले लोकेर निस्तार।
ये तोमा' देखिल, तार छुटिल संसार॥"97॥

अनुवाद—श्रीवास बोले,—"जो आपका नाम लेता है, उसके कोटि-कोटि अपराध नष्ट हो जाते हैं। आपसे कोई अपराध हो ही नहीं सकता, अपितु आपने लोगोंका उद्धार किया है। जिन्होंने भी आपके दर्शन किये हैं, वे संसार बन्धनसे मुक्त हो गये हैं॥"96-97॥

एत बलि' श्रीवास करिल सेवन।
तुष्ट हञा प्रभु आइला आपन-भवन॥98॥

अनुवाद—यह कहकर श्रीवास उनकी सेवा करने लगे। तब महाप्रभु सन्तुष्ट होकर अपने घर लौट आये॥98॥

महाभाग्यवान् शैवके कन्धेपर चढ़े
महाप्रभुका शिवावेश :—

आर दिन शिवभक्त शिवगुण गाय।
प्रभुर अङ्गने नाचे, डम्बुरु बाजाय॥99॥
महेश-आवेश हैला शचीर नन्दन।
तार स्कन्धे चड़ि' नृत्य कैल बहुक्षण॥100॥

अनुवाद—और एक दिन एक शिवभक्त शिवजीके गुण गाता हुआ महाप्रभुके आङ्गनमें आकर डमरु बजा-बजाकर नाचने लगा। उसे देखकर महाप्रभुको शिवजीका आवेश हो गया और उसके कन्धेपर चढ़कर महाप्रभुने बहुत देर तक नृत्य किया॥99-100॥

अनुभाष्य—चैःभाः मध्यखण्ड, अष्टम अध्याय द्रष्टव्य है॥99-100॥

नृत्यपरायण भिक्षुकको प्रेमदान :—

आर दिन एक भिक्षुक आइला मागिते।
प्रभुर नृत्य देखि' नृत्य लागिला करिते॥101॥

प्रभु सङ्गे नृत्य करे परम उल्लासे।
प्रभु तारे प्रेम दिल, प्रेमरसे भासे॥ 102॥

अनुवाद—और एक दिन एक भिक्षुक भिक्षा माँगते हुए आया और महाप्रभुका नृत्य देखकर वह भी नृत्य करने लगा। वह महाप्रभुके साथ परम-उल्लाससे नृत्य करता रहा। महाप्रभुने उसे प्रेम प्रदान किया और वह प्रेमरसमें डूब गया॥ 101-102॥

महाप्रभुके द्वारा ज्योतिषीसे अपने पूर्वजन्मकी जिज्ञासा :—

आर दिने ज्योतिष एक सर्वज्ञ आइल।
ताहारे सम्मान करि' प्रभु प्रश्न कैल॥ 103॥

"के आछिलुँ पूर्वजन्मे आमि, कह गणि'।"
गणिते लागिला सर्वज्ञ प्रभुवाक्य शुनि'॥ 104॥

अनुवाद—और एक दिन एक सर्वज्ञ ज्योतिषी आया। महाप्रभुने उसका सम्मान करके एक प्रश्न पूछा, "मैं पूर्व जन्ममें कौन था?" यह सुनकर वह सर्वज्ञ गणना करने लगा॥ 103-104॥

अनुभाष्य—'सर्वज्ञ'—भूत, भविष्य और वर्तमानको जाननेवाला त्रिकालज्ञ।

अभी भी पूर्व बङ्गाल (बाङ्गलादेश) में 'छिल', 'छिले' और 'छिलाम' आदि क्रिया विभक्तिके स्थानपर 'आछिल', 'आछिला' और 'आछिलाम' व्यवहार होता आ रहा है॥ 103-104॥

ज्योतिषीकी महाप्रभुमें परमेश्वर-बुद्धि :—

गणि' ध्याने देखे सर्वज्ञ,—महाज्योतिर्मय।
अनन्त वैकुण्ठ-ब्रह्माण्ड—सबार आश्रय॥ 105॥

परमतत्त्व, परब्रह्म, परम-ईश्वर।
देखि' प्रभुर मूर्त्ति सर्वज्ञ हइल फाँफर॥ 106॥

अनुवाद—गणना करके सर्वज्ञने ध्यानमें महाप्रभुको महाज्योतिर्मय अनन्त वैकुण्ठ-ब्रह्माण्डोंके आश्रय, परमतत्त्व, परब्रह्म, परमेश्वर रूपमें देखा और वह असमञ्जसमें पड़ गया॥ 105-106॥

बलिते ना पारे किछु, मौन हइल।
प्रभु पुनः प्रश्न कैल, कहिते लागिल॥ 107॥

"पूर्वजन्मे छिला तुमि परम-आश्रय।
परिपूर्ण भगवान्—सर्वैश्वर्यमय॥ 108॥

पूर्वे यैछे छिला तुमि एबेह सेरूप।
दुर्विज्ञेय नित्यानन्द—तोमार स्वरूप॥"109॥

अनुवाद—वह कुछ बोल नहीं पाया और मौन धारण करके रहा। जब महाप्रभुने पुनः उससे वही प्रश्न किया, तो वह कहने लगा—"पूर्वजन्ममें आप सबके परमाश्रय, सर्वैश्वर्यमय परिपूर्ण भगवान् थे। पूर्व जन्ममें आप जैसे थे, अब भी वैसे ही उसी स्वरूपमें हो। आपका नित्यानन्द स्वरूप दुर्विज्ञेय है॥"107-109॥

महाप्रभुके द्वारा अपने गोपस्वरूपका परिचय प्रदान :—

प्रभु हासि' कैला,—"तुमि किछु ना जानिला।
पूर्वे आमि छिलाम जातिते गोयाला॥ 110॥

गोपगृहे जन्म छिल, गाभीर राखाल।
सेइ पुण्ये हैलाङ आमि ब्राह्मण-छाओयाल॥"111॥

अनुवाद—महाप्रभुने हँसकर कहा—"तुम कुछ भी नहीं जानते हो। मैं तो पूर्व जन्ममें ग्वाला था। मेरा जन्म गोपके घरमें हुआ था और मैं गायोंका रखवाला था। गायोंकी सेवाके पुण्यसे ही मैं इस जन्ममें ब्राह्मणका पुत्र हुआ हूँ॥"110-111॥

अमृतप्रवाह भाष्य—गायोंकी सेवा करनेसे पुण्य होता है। गायोंकी देखभाल करनेवाला होनेके कारण मैंने पूर्वजन्ममें उनकी सेवा करके जो पुण्य अर्जित किया था, उसके फलसे मैं इस जन्ममें 'ब्राह्मण' हुआ हूँ॥ 111॥

अनुभाष्य—सर्वज्ञ ज्योतिषीके साथ महाप्रभुका रहस्यमय वाक्य॥ 110-111॥

ज्योतिषीके द्वारा शरण ग्रहण और प्रेमलाभ :—

सर्वज्ञ कहे,—"आमि ताहा ध्याने देखिलाङ।
ताहाते ऐश्वर्य देखि' फाँफर हइलाङ॥ 112॥
सेइरूपे एइरूपे देखि एकाकार।
कभु भेद देखि, एइ मायाय तोमार॥ 113॥

ज्योतिषीपर कृपा और प्रेमदान :—

ये हओ, से हओ तुमि, तोमाके नमस्कार।"
प्रभु तारे प्रेम दिल, कैल पुरस्कार॥ 114॥

अनुवाद—सर्वज्ञने कहा—"मैंने वह ध्यानमें देखा था, परन्तु आपका ऐश्वर्य देखकर मैं असमञ्जसमें पड़ गया था। आपका वह रूप और यह रूप कभी एक समान और कभी उनमें भेद देखता हूँ, यह आपकी माया ही है। आप जो हैं, सो हैं, मैं आपको नमस्कार करता हूँ।" तब महाप्रभुने प्रसन्न होकर कृपाकर उसे प्रेम प्रदान किया॥ 112-114॥

अनुभाष्य—ज्योतिषीका वृत्तान्त चैतन्यभागवतमें दिखलायी नहीं देता है॥ 103-114॥

महाप्रभुकी बलदेव-आवेशमें यमुनाकर्षण-लीला :—

एकदिन प्रभु विष्णुमण्डपे बसिया।
'मधु आन', 'मधु आन' बलेन डाकिया॥ 115॥
नित्यानन्द-गोसाञि प्रभुर आवेश जानिल।
गङ्गाजल-पात्र आनि' सन्मुखे धरिल॥ 116॥
जल पान करिया नाचे हञा विह्वल।
यमुनाकर्षण-लीला देखये सकल॥ 117॥

अनुवाद—एक दिन महाप्रभु विष्णुमण्डपमें बैठकर जोर-जोरसे कहने लगे—'मधु लाओ', 'मधु लाओ'। श्रीनित्यानन्द प्रभुने महाप्रभुके आवेशको समझकर गङ्गाजलका पात्र उनके सामने लाकर रखा। महाप्रभु जलपान करके आनन्दसे नृत्य करने लगे। सबने देखा कि महाप्रभु यमुना-आकर्षण लीला कर रहे हैं॥ 115-117॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'यमुनाकर्षणलीला'—श्रीबलदेव प्रभुने एक दिन यमुनापर क्रोध करके हल-मूसलके द्वारा यमुनाको खींचा था। महाप्रभु जब श्रीबलदेवके आवेशमें 'मधु लाओ', 'मधु लाओ' कह रहे थे, उस समय अन्य सभी उपरोक्त यमुनाकर्षण-लीलाको देख रहे थे॥ 117॥

अनुभाष्य—चैःभाः मध्यखण्ड, छब्बीसवाँ अध्याय द्रष्टव्य है॥ 116॥

श्रीबलदेव प्रभु गोकुलमें आकर चैत्र और वैशाख, दो मास गोपियोंसे परिवृत होकर वास कर रहे थे। वारूणी पान करते हुए उन्होंने जलक्रीड़ाके लिये यमुनाजीको अपने निकट आह्वान किया। (भाः 10/65/25-30, 33)—

"स आजुहाव यमुनां जलक्रीड़ार्थमीश्वरः।
निजं वाक्यमनादृत्य मत्त इत्यापगां बलः।
अनागतां हलाग्रेण कुपितो विचकर्ष ह॥
पापे त्वं मामनादृत्य यन्नायासि मयाहुता।
नेष्ये त्वां लाङ्गलाग्रेण शतधा कामचारिणीम्॥
एवं निर्भर्त्सिता भीता यमुना यदुनन्दनम्।
उवाच चकिता वाचं पतिता पादयोर्नृप॥
राम राम महाबाहो न जाने तव विक्रमम्।
यस्यैकांशेन विधृता जगती जगतः पते॥
परं भावं भगवतो भगवन्मामजानतीम्।
मोक्तु
ततो व्यमुञ्चत् यमुनां याचितो भगवान् बलः।
विजगाह जलं स्त्रीभिः करेणुभिरिवेभराट॥
अद्यापि दृश्यते राजन् यमुनाकृष्टवर्त्मना।
बलस्यानन्तवीर्यस्य वीर्यं सुचयतीव हि।"

"श्रीबलदेव प्रभुने जलकेलिके लिये यमुनाजीका आह्वान किया। यमुनाजीने यह समझकर कि ये तो मतवाले हो रहे हैं, उनकी आज्ञाका उल्लङ्घन किया और वे नहीं आयीं। तब श्रीबलदेव प्रभुने क्रोधित होकर उन्हें अपने हलकी नोकसे खींचा। उन्होंने कहा,—'पापिनी यमुने! क्योंकि तुम मेरी आदेशकी अवज्ञा करके यहाँ नहीं आ रही हो और स्वेच्छाचार करके तुम जो अपराध कर रही हो, उसका फल मैं तुम्हें अभी चखाता हूँ। मैं अपने हलकी नोकके द्वारा

तुम्हारे सौ-सौ भाग किये देता हूँ।' हे राजन्! श्रीबलदेव प्रभुकी इस प्रकार फटकारसे भयभीत होकर यमुनाजी काँपते हुए उनके चरण-युगलमें गिर पड़ीं और प्रार्थना करने लगीं,—'हे जगन्नाथ! हे महाबाहो! हे राम! आप अपने एक अंश (शेष) के द्वारा इस जगत्को धारण करते हैं, ऐसे प्रभावशाली आपके पराक्रमको मैं भूल गयी थी। हे अखिलान्तर्यामी भक्तवत्सल, भगवन्! मैं आपके मुख्य स्वरूपसे अवगत नहीं हूँ, इसलिये मुझ शरणागतको मुक्ति दान करें।' यमुनाजीकी इस प्रकार प्रार्थना सुनकर भगवान् श्रीबलरामने यमुनाजीको मुक्त कर दिया और फिर जैसे गजराज हथिनियोंके साथ क्रीड़ा करता है, वे गोपियोंके साथ जलक्रीड़ा करने लगे। हे राजन्! अभी भी यमुनाजी श्रीबलदेव प्रभुके द्वारा खींचे हुए मार्गसे बहती हैं और ऐसा जान पड़ता है कि वे महाविक्रमशाली श्रीबलदेव प्रभुके यश-पराक्रमका गान कर रही हों॥"117॥

चन्द्रशेखर आचार्यरत्नका महाप्रभुका
बलदेवरूपमें दर्शन :—

मदमत-गति बलदेव-अनुकार।
आचार्य शेखर ताँरे देखे रामाकार॥ 118॥

वनमाली आचार्यका महाप्रभुके
हाथमें स्वर्ण हल-दर्शन :—

वनमाली आचार्य देखे सोणार लाङ्गल।
सबे मिलि' नृत्य करे आनन्दे विह्वल॥ 119॥

एइमत नृत्य हइल चारि प्रहर।
सन्ध्याय गङ्गास्नान करि' सबे गेला घर॥ 120॥

अनुवाद—महाप्रभु श्रीबलदेव प्रभुके समान मदमत्त गतिसे चलने लगे। श्रीचन्द्रशेखर आचार्यने उन्हें श्रीबलरामके रूपमें देखा। वनमाली आचार्यने महाप्रभुके हाथमें सोनेका हल देखा। सभी भक्त मिलकर आनन्दसे नृत्य करने लगे। इस प्रकार चार प्रहर तक नृत्य हुआ। सन्ध्यामें सभीने गङ्गास्नान किया और सब अपने-अपने घरोंको गये॥ 118-120॥

अनुभाष्य—चैतन्यमङ्गल मध्यखण्ड—

"वनमाली-नाम ताँर पुत्र एक सङ्गे।
विप्रकुले जन्म, बैसे पूर्वदेश बङ्गे॥
देखिलेक काञ्चन-निर्मित कलेवर।
रत्नविभूषित येन सुमेरु-शिखर॥
हलायुध-वेशे नाचे तिनलोक-नाथ॥

"वनमाली नामका उनका एक पुत्र था। उनका जन्म ब्राह्मण कुलमें हुआ था और वे पूर्व बङ्गालमें रहते थे। उन्होंने देखा कि महाप्रभुका शरीर मानो सोनेका बना है। वह ऐसा लग रहा था मानो रत्नोंसे जड़ित सुमेरु पर्वत हो। हलायुधको लेकर त्रिलोकी-नाथ नृत्य कर रहे थे।" चैःचः आदिलीला, 10/73 संख्यामें कहा गया है कि 'वनमाली पण्डित' ने भी महाप्रभुके हाथोंमें सोनेका हल-मूसल देखा था। उनकी 'पण्डित'-पदवी, और इनकी 'आचार्य'-पदवी, दोनों एक ही व्यक्ति हैं अथवा पृथक् व्यक्ति हैं?॥ 119॥

महाप्रभुकी आज्ञासे घर-घरमें श्रीकृष्ण-कीर्त्तन :—

नगरिया लोके प्रभु यबे आज्ञा दिला।
घरे घरे सङ्कीर्त्तन करिते लागिला॥ 121॥

नामगीति :—

'हरि हरये नमः, कृष्ण यादवाय नमः।
गोपाल गोविन्द राम श्रीमधुसूदन॥'122॥

मृदङ्ग-करताल सङ्कीर्त्तन-महाध्वनि।
'हरि' 'हरि'-ध्वनि बिना अन्य नाहि शुनि॥ 123॥

अनुवाद—महाप्रभुने जब नगरके लोगोंको आज्ञा दी, वे घर-घरमें सङ्कीर्तन करने लगे। 'हरि हरये नमः, कृष्ण यादवाय नमः। गोपाल गोविन्द राम श्रीमधुसूदन' का कीर्तन होने लगा। मृदङ्ग-करतालके साथ सङ्कीर्तनकी ध्वनि सर्वत्र होने लगी और 'हरि-हरि' की ध्वनिके अतिरिक्त कुछ भी सुनायी नहीं देता था॥ 121-123॥

अमृतप्रवाह भाष्य—नगरमें नाम प्रचार करनेके समय महाप्रभुने श्रीवास-अङ्गनके निकटमें रहनेवाले

नगरवासियोंको पहले करतालके साथ हरिनाम करनेकी आज्ञा दी; क्रमशः सङ्कीर्तनमें मृदङ्ग-करतालादि बजने लगे। तबसे घर-घरमें सङ्कीर्तनका प्रचार होता आ रहा है॥ 121॥

कीर्तन-विरोधी यवन और काजी :—

शुनिया ये क्रु
काजी-पाशे आसि' सब कैल निवेदन॥ 124॥

अनुवाद—सङ्कीर्तनकी ध्वनि सुनकर यवन लोग क्रोधित हो गये और उन्होंने काजीके पास आकर सङ्कीर्तन बन्द करवानेका निवेदन किया॥ 124॥

अनुभाष्य—नगरवासियोंका श्रीकृष्ण-कीर्त्तन और काजीका क्रोध तथा काजीका उद्धार—चैःभाः मध्यखण्ड, तेइसवाँ अध्याय द्रष्टव्य है।

'काजी'—फौजदार, चाँदकाजी। पहले जमींदार, राजा अथवा मण्डल भूमिके करका संग्रह करते थे। दण्डका विधान और शासन आदिका कार्य काजी लोगोंके द्वारा ही सम्पादित होता था। जमींदार अथवा काजी—ये दोनों ही बङ्गाल-सूबाके सूबेदारके अधीन थे। नदिया, इस्लामपुर और बागोयान आदि परगना ही उस समय हरि होड़के अथवा उनके अधीन कृष्णदास होड़के अधीन था। इनके भूमि अधिकारी होनेपर भी शासनका भार काजीके पास ही था। कहा जाता है कि चाँदकाजी बङ्गालके नवाब 'हुसेन शाह' के गुरु थे। किसीके मतसे इनका दूसरा नाम 'मौलाना सिराजुद्दीन' तथा किसीके मतसे 'हबिबर रहमान' था। इनके वंशज अभी भी उस स्थानपर वर्तमान है और चाँदकाजीकी समाधि भी वहाँ विद्यमान है॥ 124॥

काजीका मृदङ्ग तोड़ना, कीर्तनका
विरोध और न करनेकी आज्ञा :—

क्रोधे सन्ध्याकाले काजी एक घरे आइल।
मृदङ्ग भाङ्गिया लोके कहिते लागिल॥ 125॥

"एतकाल प्रकटे केह ना कैल हिन्दुयानि।
एबे ये उद्यम चालाओ कार बल जानि'॥ 126॥

केह कीर्त्तन ना करिह सकल नगरे।
आजि आमि क्षमा करि' याइतेछोँ घरे॥ 127॥

आर यदि कीर्त्तन करिते लाग पाइमु।
सर्वस्व दण्डिया तार जाति ये लइमु॥"128॥

अनुवाद—सन्ध्याके समय काजी क्रोधित होकर एक हिन्दूके घरमें आया और मृदङ्ग तोड़कर कहने लगा—"अभी तक तो हिन्दुओंका ऐसा आचरण नहीं था, किसके बलपर तुम लोग यह सब कर रहे हो? आज मैं तुम्हें क्षमा करके अपने घर जा रहा हूँ, परन्तु कोई भी अबसे नगरमें कहीं भी कीर्तन नहीं करेगा। और यदि मैंने किसीको कीर्तन करते हुए पाया, तो मैं उसका सब कुछ हरण करके उसकी जाति भ्रष्ट कर दूँगा॥"125॥

अमृतप्रवाह भाष्य—बक्तियार खिलजीके आनेके समयसे लेकर चाँदकाजीके समय तक हिन्दुओंका धर्माचरण बहुत कमजोर हो गया था। जिनकी वास्तविक हिन्दू धर्ममें आस्था थी, वे चुपचाप एक बार "हरि हरि" बोलकर चुप हो जाते थे। इसलिये काजीने कहा—'अभी तक तो हिन्दुओंका ऐसा आचरण नहीं था, किसके बलपर ऐसा प्रयास कर रहे हो?'॥ 126॥

अनुभाष्य—अब भी वह स्थान मायापुरमें 'खोलभाङ्गार डाङ्गा' के नामसे प्रसिद्ध है॥ 125॥

दुःखी सज्जन व्यक्तियोंका महाप्रभुके निकट आवेदन :—

एत बलि' काजी गेल,—नगरिया लोक।
प्रभु-स्थाने निवेदिल पाञा बड़ शोक॥ 129॥

महाप्रभुका क्रोध तथा सभीको
सङ्कीर्तन करनेका आदेश :—

प्रभु आज्ञा दिल—"याह, करह कीर्त्तन।
मुञि संहारिमु आजि सकल यवन॥"130॥

अनुवाद—यह कहकर काजी चला गया। नगरके लोगोंको बहुत दुःख हुआ और वे महाप्रभुके पास जाकर निवेदन करने लगे। महाप्रभुने उन्हें आज्ञा दी—"तुम लोग जाकर निर्भय होकर कीर्तन करो। मैं आज ही सभी यवनोंका संहार करूँगा॥"130॥

घरे गिया सब लोक करय कीर्त्तन।
काजीर भये स्वच्छन्द नहे, चमकित मन॥131॥

ता-सबार अन्तरे भय प्रभु मने जानि'।
कहिते लागिला लोके शीघ्र डाकि' आनि'॥132॥

"नगरे नगरे आजि करिमु कीर्त्तन।
सन्ध्याकाले कर सबे नगर मण्डन॥133॥

सन्ध्याते देउटि सबे ज्वाल घरे घरे।
देख, कोन् काजी आसि मोरे माना करे॥"134॥

अनुवाद—सभी लोग अपने-अपने घरमें जाकर कीर्तन करने लगे। परन्तु काजीका भय उनके मनमें था, इसलिये वे स्वच्छन्द रूपसे कीर्तन नहीं कर पा रहे थे। महाप्रभु मन-ही-मनमें उन सबके हृदयके भयको जानते थे, इसलिये उन्होंने कहा,—"शीघ्र ही सभी लोगोंको बुलाकर लाओ। आज मैं नगर-नगरमें कीर्तन करूँगा। सन्ध्याकालमें सारे नगरको सजा दो और उस समय सब घरोंमें मशालें जला दो। मैं देखूँगा कि कौन काजी आकर मुझे ऐसा करनेसे मना करता है?॥"131-134॥

एत कहि' सन्ध्याकाले चले गौरराय।
कीर्त्तनेर कैल प्रभु तिन सम्प्रदाय॥135॥

तीन गुटोंमें कीर्तन-विभाग :—

आगे सम्प्रदाये नृत्य करे हरिदास।
मध्ये नाचे आचार्य-गोसाञि परम उल्लास॥136॥

पाछे सम्प्रदाये नृत्य करे गौरचन्द्र।
ताँर सङ्गे नाचि' बुले प्रभु नित्यानन्द॥137॥

अनुवाद—यह कहकर श्रीगौरराय सन्ध्याके समय चले और उन्होंने कीर्तन करनेवालोंके तीन मण्डलियाँ बना दीं। सबसे आगेवाली मण्डलीमें श्रीहरिदास नृत्य कर रहे थे। बीचवाली मण्डलीमें श्रीअद्वैताचार्य परमोल्लासके साथ नृत्य कर रहे थे और पीछेवाली मण्डलीमें स्वयं श्रीगौरचन्द्र नृत्य कर रहे थे। श्रीनित्यानन्द प्रभु भी महाप्रभुके साथ चलते हुए नृत्य कर रहे थे॥135-137॥

वृन्दावन-दास इहा 'चैतन्यमङ्गले'।
विस्तारि' वर्णियाछेन, चैतन्य-कृपाबले॥138॥

अनुवाद—श्रीवृन्दावन-दासने महाप्रभुकी कृपाके बलपर इसका 'चैतन्यमङ्गल' में विस्तारसे वर्णन किया है॥138॥

कीर्तन करते-करते नवद्वीप-नगर भ्रमण :—

एइमत कीर्त्तन करि' नगरे भ्रमिला।
भ्रमिते भ्रमिते प्रभु काजीद्वारे गेला॥139॥

अनुवाद—इस प्रकार वे नगरमें भ्रमण करते हुए कीर्तन करने लगे। समस्त नगरमें भ्रमण करते-करते महाप्रभु काजीके द्वार तक जा पहुँचे॥139॥

अनुभाष्य—चैःभाः तेइसवाँ अध्याय—

"तुया चरणे मन लागहुँ रे।
(शार्ङ्गधर) तुया चरणे मन लागहुँ रे॥241॥
चैतन्यचन्द्रेर एइ आदि सङ्कीर्त्तन।
भक्तगण गाय नाचे श्रीशचीनन्दन॥242॥
'गङ्गातीरे तीरे पथ आछे नदीयाय।
आगे सेइ पथे नाचि' याय गौरराय॥298॥
आपनार घाटे आगे बहु नृत्य करि'।
तबे माधाइर घाटे गेला गौरहरि॥299॥
'नाचे विश्वम्भर, सबार ईश्वर,
भागीरथी-तीरे तीरे'। (ध्रु) ॥271(क)॥
वारकोणा-घाटे नागरिया-घाटे गिया।
गङ्गानगर दिया प्रभु गेला 'सिमुलिया'॥300॥
नदीयार एकान्ते नगर 'सिमुलिया'।
नाचिते नाचिते प्रभु उत्तरिल गिया॥348॥
काजिर बाड़ीर पथ धरिला ठाकुर॥359(क)॥
आइला नाचिया यथा काजिर नगर॥379॥"

"चैतन्यचन्द्रका यह आदि कीर्तन है—'तुम्हारे चरणोंमें मेरा मन लग जाये, हे शार्ङ्गधर! तुम्हारे चरणोंमें मेरा मन लग जाये।' (नगर-कीर्तनमें) भक्त लोग गा रहे थे और श्रीशचीनन्दन नृत्य कर रहे थे। 'नदियामें गङ्गाके किनारे जो मार्ग था, उसपर श्रीगौरसुन्दर आगे-आगे नृत्य करते हुए जा रहे थे। पहले 'अपने-घाट' पर बहुत नृत्य किया और तब श्रीगौरहरि 'माधाइ-घाट' पर गये। 'नाचे विश्वम्भर, सर्वेश्वर, भागीरथीके तीरे-तीरे। (ध्रु०)। फिर 'बारकोणा-घाट' और 'नगरिया-घाट' से 'गङ्गानगर' होते हुए महाप्रभु 'सिमुलिया' पहुँचे। नदीयाके एक प्रान्त भागमें 'सिमुलिया' नगर है, नाचते-नाचते महाप्रभु वहाँ पहुँच गये। तब ठाकुर (महाप्रभु) काजीके घरकी ओर चल पड़े। नाचते-नाचते वे काजीके नगरमें पहुँचे॥"139॥

तर्ज्ज-गर्ज्ज करे लोक, करे कोलाहल।
गौरचन्द्र-बले लोक प्रश्रय-पागल॥140॥

अनुवाद—श्रीगौरसुन्दरके बलके आश्रयके कारण लोग पागलसे हो गये और वे तर्जन-गर्जन करते हुए कोलाहल करने लगे॥140॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीश्रीगौरचन्द्रके बलसे लोग तब उनके आश्रय प्राप्तकर पागल हो गये॥140॥

काजीका अपनेको छिपाना :—

कीर्त्तनेर ध्वनिते काजी लुकाइल घरे।
तर्ज्जन गर्ज्जन शुनि' ना हय बाहिरे॥141॥

अभद्र व्यक्तियोंका काण्ड :—

उद्धत लोक भाङ्गे काजीर घर-पुष्पवन।
विस्तारि' वर्णिला इहा दास-वृन्दावन॥142॥

अनुवाद—कीर्तनकी ध्वनि सुनकर काजी अपने घरमें छिप गया और तर्जन-गर्जन सुनकर भयसे बाहर नहीं आया। कुछ अभद्र लोग उत्तेजित होकर काजीके घरमें घुसकर उसके घर और वाटिकाको नष्ट करने लगे। इस प्रसङ्गको श्रीवृन्दावनदासने विस्तारसे कहा है॥141-142॥

अनुभाष्य—चै:भा: तेइसवाँ अध्याय द्रष्टव्य है॥138-142॥

भद्र सज्जन व्यक्तियोंके द्वारा काजीका आह्वान :—

तबे महाप्रभु तार द्वारेते बसिला।
भव्यलोक पाठाइया काजी बोलाइला॥143॥

काजीको लौकिकी मर्यादा-दान :—

दूर हइते आइला काजी माथा नोङाइया।
काजीरे बसाइला प्रभु सम्मान करिया॥144॥

अनुवाद—तब महाप्रभु काजीके द्वारपर बैठ गये और उन्होंने कुछ शिष्ट लोगोंको भीतर भेजकर काजीको बुलवाया। काजीने बाहर आकर दूरसे महाप्रभुको अपना शीश नवाया। महाप्रभुने काजीको सम्मानपूर्वक वहाँ बैठाया॥143-144॥

काजीके आचरणसे महाप्रभुकी विस्मयसूचक उक्ति :—

प्रभु बलेन,—"आमि तोमार आइलाम अभ्यागत।
आमा देखि' लुकाइला,—ए धर्म केमत॥"145॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"मैं तुम्हारा अतिथि बनकर आया हूँ और मुझे देखकर तुम छुप रहे हो, यह कैसा धर्मका आचरण है?"॥145॥

काजीका प्रत्युतर :—

काजी कहे,—"तुमि आइस क्रु
तोमा शान्त कराइते रहिनु लुकाइया॥146॥
एबे तुमि शान्त हैले, आसि' मिलिलाङ।
भाग्य मोर,—तुमि-हेन अतिथि पाइलाङ॥147॥

अनुवाद—काजीने कहा,—"आप तो क्रोधित होकर आये हो, आपके क्रोधको शान्त करनेके लिये ही मैं छुपा हुआ था। अब आप शान्त हो गये हो, इसलिये मैं आपसे आकर मिल रहा हूँ। यह तो मेरा सौभाग्य है कि आप मेरे अतिथि बने हैं॥146-147॥

ग्राम-सम्बन्धे 'चक्रवर्त्ती' हय मोर चाचा।
देह-सम्बन्ध हैते ग्राम-सम्बन्ध साँचा॥ 148॥

नीलाम्बर चक्रवर्त्ती हय तोमार नाना।
से सम्बन्धे हओ तुमि आमार भागिना॥ 149॥

भागिनार क्रोध मामा अवश्य सहय।
मातुलेर अपराध भागिना ना लय॥"150॥

अनुवाद—ग्रामके सम्बन्धसे नीलाम्बर चक्रवर्ती मेरे चाचा लगते हैं और देहके सम्बन्धसे भी श्रेष्ठ ग्रामका सम्बन्ध होता है। नीलाम्बर चक्रवर्ती तुम्हारे नाना हैं और इस सम्बन्धसे तुम मेरे भाञ्जे लगते हो। भाञ्जेका क्रोध मामा अवश्य ही सहन करता है और मामाका अपराध भाञ्जा नहीं लेता है॥"148-150॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'ब्राह्मणपुष्करिणी' ग्रामके एक भागमें काजियोंका पुराना घर अभी भी वर्तमान है। उस ग्रामके दूसरे भागसे लगा हुआ 'तारणवास' है, जो पहले 'बिल्वपुष्करिणी' था। वह ग्राम और काजियोंका 'ब्राह्मणपुष्करिणी' एक ही ग्राम होनेसे चाँदकाजीका महाप्रभुके साथ मामाका सम्बन्ध था॥ 148॥

अनुभाष्य—**'चक्रवर्त्ती'**—नीलाम्बर चक्रवर्त्ती। **'चाचा'**—पिताका छोटा भाई, बङ्गालमें चलती भाषामें उन्हें 'काका' कहते हैं। **'साँचा'**—वास्तविक, शुद्ध, सच्चा॥ 148॥

एह मत दुँहार कथा हय ठारे-ठोरे।
भितरेर अर्थ केह बुझिते ना पारे॥ 151॥

अनुवाद—इस प्रकार उन दोनोंकी सङ्केतमें बातें हो रही थीं, उनका भीतरी अर्थ कोई नहीं समझ पाया॥ 151॥

महाप्रभु और काजीकी उक्ति एवं प्रत्युक्ति :—

प्रभु कहे,—"प्रश्न लागि' आइलाम तोमार स्थाने।"
काजी कहे,—"आज्ञा कर, ये तोमार मने॥"152॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"मेरे मनमें कुछ प्रश्न हैं, जिनके समाधानके लिये मैं आपके घरपर आया हूँ।" काजीने कहा,—"आज्ञा करो जो आपके मनमें है॥"152॥

इस्लाम धर्मके आचारके सम्बन्धमें महाप्रभुका प्रश्न :—

प्रभु कहे,—"गोदुग्ध खाओ, गाभी तोमार माता।
वृष अन्न उपजाय, ताते तेँहो पिता॥ 153॥

पिता माता मारि' खाओ—एबा कोन् धर्म।
कोन् बले कर तुमि एमत विकर्म॥"154॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"आप गायका दूध पीते हैं, इस कारण गाय आपकी माता हुई। बैल [खेतोंमें हल चलाकर] अन्न उत्पन्न करते हैं, इसलिये वे आपके पिता हुए। पिता-माताको मारकर खाना, यह कौनसा धर्म है। किसके बलपर आप ऐसा पाप करते हैं?"॥ 153-154॥

अनुभाष्य—**'अन्न उपजाय'**—बैल हलको खींचकर धानादि फसलको बोने और रोपणके लिये खेतको तैयार करके किसानको बीज और चावलादि अन्नके उत्पादनमें मुख्यरूपसे सहायता करता है।

'एबा'—यह॥ 153-154॥

काजीका उत्तर :—

काजी कहे,—"तोमार यैछे वेद-पुराण।
तैछे आमार शास्त्र—केताब 'कोराण'॥ 155॥

सेइ शास्त्रे कहे,—प्रवृत्ति-निवृत्ति-मार्ग-भेद।
निवृत्ति-मार्गे जीवमात्र-वधेर निषेध॥ 156॥

प्रवृत्ति-मार्गे गोवध करिते विधि हय।
शास्त्र-आज्ञाय वध कैले नाहि पाप-भय॥ 157॥

तोमार वेदेते आछे गोवधेर वाणी।
अतएव गोवध करे बड़ बड़ मुनि॥"158॥

अनुवाद—काजीने कहा,—"आपके जैसे वेद-पुराण हैं, वैसे ही हमारा शास्त्र-ग्रन्थ 'कुरान' है। उस शास्त्रमें

प्रवृत्ति और निवृत्ति भेदसे दो मार्ग दिखलाये हैं। निवृत्ति-मार्गमें जीवमात्रका वध निषेध है। प्रवृत्ति-मार्गमें गोवधकी विधिका विधान है, इसलिये हमें शास्त्रकी आज्ञानुसार वध करनेसे पापका भय नहीं है। आपके वेदोंमें भी तो गोवधके विषयमें कहा गया है, इसलिये बड़े-बड़े मुनि भी तो गोवध करते हैं॥"155-158॥

अनुभाष्य—'केताब'—ग्रन्थ। 'सरियत्', 'तरिकत्' और 'मारफत्'—ये तीन प्रकारके पथ हैं॥155—158॥

अमृतानुकणिका—श्रीमद्भागवतम् ग्यारहवें स्कन्ध (11/5/11, 13-15) में आठवें योगेन्द्र चमसने राजा निमिसे कहा—

"लोके व्यवायामिषमद्यसेवा नित्या
हि जन्तोर्न हि तत्र चोदना।
व्यवस्थितिस्तेषु विवाहयज्ञ-
सुराग्रहैरासु निवृत्तिरिष्टा॥11॥
यद्घ्राणभक्षो विहितः सुरायास्तथा
पशोरालभनं न हिंसा।
एवं व्यवायः प्रजया न रत्यै
इमं विशुद्धं न विदुः स्वधर्मम्॥13॥
ये त्वनेवम्विदोऽसन्तः स्तब्धाः सदभिमानिनः।
पशून् द्रुह्यन्ति विश्रब्धाः प्रेत्य खादन्ति ते च तान्॥14॥
द्विषन्तः परकायेषु स्वात्मानं हरिमीश्वरम्।
मृतके सानुबन्धेऽस्मिन् बद्धस्नेहाः पतन्त्यधः॥"15॥

"कर्म मीमांसक वेदोंके अर्थवादमें निरत होकर ऐसा सिद्धान्त स्थापित करते हैं कि स्त्रीसङ्ग, आमिष (मांस) भोजन एवं मदिरापान करनेके लिये वेदोंकी प्रेरणा है, अर्थात् इन सभी क्रियाओंको करनेकी प्रेरणा देनेके लिये ही वेदोंमें इस प्रकारके यज्ञोंकी व्यवस्था दी गयी है। किन्तु वे यह नहीं जानते कि ये सभी प्रवृत्तियाँ जीव-जन्तुमात्रके (वास्तविक आत्माके स्वभावमें नहीं, बल्कि देहके) निसर्गगत स्वभावमें ही हैं, इसलिये वे प्रेरणाकी अपेक्षा नहीं रखतीं। इन सभी प्रवृत्तियोंकी निवृत्तिके लिये ही विवाहके द्वारा स्त्रीसङ्ग, यज्ञके माध्यमसे आमिष भोजन और (सौत्रामणि यज्ञमें ही) सुरा-ग्रहणकी व्यवस्था वेदोंमें दी गयी है। इसलिये निवृत्ति ही वेदोंका गूढ़ तात्पर्य है। किसी विशेष परिस्थितिमें मद्यके सूँघनेमात्रको ही भक्षणके रूपमें कहा गया है और (वृद्ध) पशुओंका वध करके उसे पुनर्जीवितकर युवा शरीर देनेके उद्देश्यसे ही विधान है, पशु वधका नहीं। इसी प्रकार स्त्रीसङ्ग भी केवल सन्तानोत्पत्तिके लिये विहित है, रतिक्रीड़ाके लिये नहीं। यह विशुद्ध वेदमत ही स्वधर्म है, परन्तु वेदार्थवादीगण इस निगूढ़ सिद्धान्तको जानते ही नहीं हैं। जो व्यक्ति वेदोंके इस तात्पर्यको नहीं जानते, वे वास्तवमें धर्मके तत्त्वको नहीं जाननेवाले, अविनीत और साधु होनेका अभिमान करनेवाले हैं। ये लोग निर्भीक होकर पशुओंका वध करते हैं और इन लोगोंके मरनेके बाद वे पशु ही इन्हें खाते हैं। देखो! आत्मास्वरूप ईश्वर श्रीहरि (हमारे एवं अन्यान्य) सभी प्राणियोंके शरीरमें अवस्थान कर रहे हैं, किन्तु मूर्ख लोग (अन्योंके शरीरमें स्थित हरिके प्रति विद्वेष करके) अपने शवतुल्य अनित्य शरीरके पोषणके अभिप्रायसे पशुओंका वध करते हैं, जिसके फलस्वरूप वे देहमें आसक्त होकर अधःपतित हो जाते हैं॥"155-158॥

पुनर्जीवन प्राप्तिके कारण वेद-विहित वध-समर्थन :—

प्रभु कहे,—"वेदे कहे गोवध निषेध।
अतएव हिन्दुमात्र ना करे गोवध॥159॥

जियाइते पारे यदि, तबे मारे प्राणी।
वेद-पुराणे आछे हेन आज्ञा-वाणी॥160॥

अतएव जरद्गव मारे मुनिगण।
वेदमन्त्रे सिद्ध करे ताहार जीवन॥161॥

जरद्गव हञा युवा हय आरबार।
ताते तार वध नहे, हय उपकार॥162॥

कलिकालमें ब्राह्मण निःशक्तिक :—

कलिकाले तैछे शक्ति नाहिक ब्राह्मणे।
अतएव गोवध केह ना करे एखने॥163॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"वेदोंमें गोवध निषेध

किया गया है। इसलिये कोई भी हिन्दू गोवध नहीं करता है। वेद-पुराणोंकी यह आज्ञा है कि यदि किसी प्राणीको जीवन दे सकते हो, तभी उसे मार सकते हो। इसलिये हमारे मुनि लोग बूढ़ी गायका वध करके वेदके मन्त्रोंके द्वारा उसे पुनः जीवित कर देते थे। बूढ़ी गायको वे पुनः युवा बना देते थे, इसलिये वे वध नहीं अपितु उसका उपकार करते थे। कलिकालमें ब्राह्मणोंके पास वैसी शक्ति नहीं है, इसलिये वे अब गोवध नहीं करते हैं॥159-163॥

अमृतप्रवाह भाष्य—(काजीने कहा,—) उस कुरानशास्त्रमें 'प्रवृत्ति' और 'निवृत्ति'—इन दो प्रकारसे मार्गका भेद है। निवृत्ति-मार्गमें जीवोंके वधका निषेध है, किन्तु मेरे जैसे जो प्रवृत्ति-मार्गमें हैं, वे शास्त्र आज्ञानुसार गोवध करनेपर पापके भागी नहीं होते हैं। और देखो, आपके वेदशास्त्रोंमें गोवधकी विधिके निर्देश प्राप्त होते हैं, इसलिये बड़े-बड़े मुनि लोग चिरकालसे गोवध करते आये हैं। महाप्रभुने कहा,—वेदशास्त्रोंमें गोवधकी विधि नहीं है, तो भी गोवधके द्वारा जो यज्ञ करनेका वाक्य शास्त्रमें देखा जाता है, वह केवल अत्यन्त वृद्ध गायके सम्बन्धमें कहा गया है। मुनि लोग अति वृद्ध गायको मारकर वेदमन्त्रोंके द्वारा उसे पुनः युवा रूपमें जीवित करते थे। उस प्रकारका वध, वध नहीं है, वह तो वृद्ध गायके लिये उपकार मात्र है। कलियुगमें ब्राह्मणोंमें वैसी शक्ति नहीं है, इसलिये अब गोवध नहीं हो सकता है॥156-163॥

मलमासतत्त्वमें उद्धृत ब्रह्मवैवर्त्तीय कृष्णजन्मखण्डमें (185/180)—

अश्वमेधं गवालम्भं संन्यासं पलपैतृकम्।
देवेरेण सुतोत्पत्तिं कलौ पञ्च विवर्ज्जयेत्॥164॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है॥164॥

अमृतप्रवाह भाष्य—अश्वमेध, गोमेध, संन्यास, मांसके द्वारा पितृ-श्राद्ध, देवरके द्वारा पुत्रोत्पत्ति—कलियुगमें ये पाँच कार्य निषिद्ध हैं॥164॥

अनुभाष्य—अश्वमेधं (अश्वहनन-यज्ञविशेषं), गवालम्भं (गोमेधं) संन्यासं (चतुर्थाश्रमग्रहणं), पलपैतृकं (मांसेन पितृश्राद्धं) देवरेण (पत्युः कनिष्ठ भ्राता) सुतोत्पत्तिं (पुत्रोत्पादनं)—[एतानि] पञ्च कलौ (कलियुगे) विवर्ज्जयेत् (परित्यज्येत)।

श्लोक भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है॥164॥

महाप्रभुके द्वारा इस्लाम-धर्माचारकी समालोचना :—

तोमरा जीयाइते नार,—वधमात्र सार।
नरक हइते तोमार नाहिक निस्तार॥165॥

गो-अङ्गे यत लोम, तत सहस्र वत्सर।
गोवधे रौरव-मध्ये पचे निरन्तर॥166॥

तोमा-सबार शास्त्रकर्त्ता—सेह भ्रान्त हैल।
ना जानि' शास्त्रेर मर्म ऐछे आज्ञा दिल॥"167॥

अनुवाद—तुम लोग पशुओंको जीवित नहीं कर सकते हो, इसलिये तुम केवल उनका वध करते हो। इस पापके फलस्वरूप नरकमें जानेपर भी तुम्हारा उद्धार नहीं हो सकेगा। गायके शरीरमें जितने रोम हैं, उतने हजार वर्षतक गोवध करनेवाला रौरव नरकमें सड़ता रहता है। तुम्हारे शास्त्रकर्त्ता भ्रान्त हो गये थे, इसलिये शास्त्रके वास्तविक अर्थको न जानकर उन्होंने तुम्हें ऐसी (गोवधकी) आज्ञा दी है॥"165-167॥

अनुभाष्य—'भ्रान्त'—द्वितीयाभिनिवेश (देहमें आत्मबुद्धि) के फलस्वरूप बुद्धि विपरीत अथवा भ्रमयुक्त होनेके कारण वृथा ही जीव-हिंसाका अनुमोदन किया है॥167॥

काजी निरुत्तर और शास्त्रकी असम्पूर्णता-स्वीकार :—

शुनि' स्तब्ध हैल काजी, नाहि स्फुरे वाणी।
विचारिया कहे काजी पराभव मानि'॥168॥

"तुमि ये कहिले, पण्डित, सेइ सत्य हय।
आधुनिक आमार शास्त्र, विचार-सह नय॥169॥

अनुवाद—यह सुनकर काजी स्तब्ध हो गया और

उसके मुखसे वाणी नहीं निकल पायी। तब विचार करके काजीने अपनी पराजय स्वीकार करते हुए कहा,—"हे पण्डित! आप जो कह रहे हैं, वह सत्य है। हमारे शास्त्र आधुनिक हैं और नित्य-वास्तव सत्यके प्रतिपादक नहीं हैं॥ 168-169॥

अनुभाष्य—'आधुनिक'—नवीन, कालके अन्तर्गत हैं, वेदोंके समान अपौरुषेय (किसी मनुष्यके द्वारा नहीं रचित) नहीं हैं।

'विचार-सह नय'—नित्य-वास्तव सत्यके प्रतिपादक नहीं हैं और इसका युक्तिके द्वारा सहज ही खण्डन किया जा सकता है॥ 169॥

कल्पित आमार शास्त्र,—आमि सब जानि।
जाति-अनुरोधे तबु सेइ शास्त्र मानि॥ 170॥
सहजे यवन-शास्त्रे अदृढ़ विचार।"
हासि' ताहे महाप्रभु पुछेन आरबार॥ 171॥

अनुवाद—मैं यह सब जानता हूँ कि हमारे शास्त्र कल्पित हैं, परन्तु सम्प्रदायमें निष्ठासे तब भी उन्हीं शास्त्रोंको मानता हूँ। यवन-शास्त्रका विचार स्वभाविक रूपसे दृढ़ सिद्धान्तपर आधारित नहीं है।" यह सुनकर महाप्रभु हँसे और फिर पूछने लगे॥ 170-171॥

अमृतप्रवाह भाष्य—यवनशास्त्र तीन प्रकारके हैं—यहूदियोंकी पुरानी पोथी, कुरान और बाइबल। इन समस्त ग्रन्थोंके आदिकालका ज्ञान होता है, कोई भी वेदवाक्यके समान अनादि नहीं है। इसलिये इन सब शास्त्रोंमें जो विचार हैं, उनका मूल दृढ़ नहीं होकर सन्देहास्पद है॥ 169-171॥

अनुभाष्य—'कल्पित'—मनोधर्मसे प्रकटित, इसलिये नित्य सत्य नहीं है।

'जाति'—सम्प्रदाय और उसमें निष्ठा।

'अदृढ़ विचार'—जिसका युक्तिके द्वारा खण्डन किया जा सके॥ 170-171॥

महाप्रभुके द्वारा पुनः प्रश्न :—

"आर एक प्रश्न करि, शुन, तुमि मामा।
यथार्थ कहिबे, छले ना वञ्चिबे आमा॥ 172॥
तोमार नगरे हय सदा सङ्कीर्त्तन।
वाद्यगीत-कोलाहल, सङ्गीत, नर्त्तन॥ 173॥
तुमि काजी—हिन्दु-धर्म-विरोधे अधिकारी।
एबे ये ना कर माना, बुझिते ना पारि॥"174॥

अनुवाद—"सुनो मामा! मैं एक और प्रश्न कर रहा हूँ, उसका उत्तर सत्य-सत्य देना, कोई छल करके मुझे ठगना नहीं। वाद्य-गीतके कोलाहल, सङ्गीत और नृत्यके साथ तुम्हारे नगरमें सदा कीर्तन हो रहा है। तुम हिन्दू धर्मका विरोध करनेके लिये नियुक्त अधिकारी काजी हो, परन्तु तुम इस सबको निषेध क्यों नहीं करते हो, यह मैं समझ नहीं पा रहा हूँ॥"172-174॥

उत्तरमें काजीकी अपने स्वप्नकी कहानी :—

काजी बले,—"सबे तोमाय बले 'गौरहरि'।
सेइ नामे आमि तोमाय सम्बोधन करि॥ 175॥
शुन, गौरहरि, एइ प्रश्नेर कारण।
निभृत हओ यदि, तबे करि निवेदन॥"176॥

अनुवाद—काजीने कहा,—"सब आपको 'गौरहरि' कहते हैं, मैं भी आपको उसी नामसे सम्बोधन करूँगा। हे गौरहरि! इस प्रश्नका उत्तर यदि आप एकान्तमें मेरे साथ हों, तो मैं उसे निवेदन करूँ॥"175-176॥

महाप्रभुके द्वारा आश्वासन-दान :—

प्रभु बले,—"ए लोक आमार अन्तरङ्ग हय।
स्फुट करि' कह तुमि, ना करिह भय॥"177॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"ये लोग मेरे अन्तरङ्ग हैं, इसलिये तुम्हें जो कुछ कहना है, उसे स्पष्ट कहो, कोई भी भय मत करो॥"177॥

अनुभाष्य—'स्फुट'—स्पष्ट॥ 177॥

काजीके द्वारा स्वप्न-वृत्तान्तका वर्णन :—

काजी कहे,—"यबे आमि हिन्दुर घरे गिया।
कीर्त्तन करिलुँ माना मृदङ्ग भाङ्गिया॥178॥

स्वप्नमें नृसिंहदेवसे भय प्राप्ति :—

सेइ रात्रे एक सिंह महाभयङ्कर।
नरदेह, सिंहमुख, गर्ज्जये विस्तर॥179॥

शयने आमार उपर लाफ दिया चड़ि'।
अट्ट अट्ट हासे, करे दन्त-कड़मड़ि॥180॥

मोर बुके नख दिया घोर-स्वरे बले।
'फाड़िमु तोमार बुक मृदङ्ग-बदले॥181॥

मोर कीर्त्तन माना करिस्, करिमु तोर क्षय।'
आँखि मुदि' काँपि आमि पाञा बड़ भय॥182॥

अनुवाद—काजीने कहा,—"जिस दिन मैं हिन्दूके घर गया और कीर्तनके लिये मना किया तथा उसके मृदङ्गको भी तोड़ा था, उस रात्रिमें एक बहुत भयङ्कर सिंह, जिसका शरीर मनुष्यका था और मुख सिंहका था, बहुत जोरसे गर्जन करते हुए मेरे ऊपर कूदकर चढ़ गया। वह जोर-जोरसे हँसते हुए और दाँतोंको कड़कड़ाते हुए मेरी छातीपर अपने नख रखकर गम्भीर स्वरमें बोला,—'मैं मृदङ्गके बदले तेरी छातीको फाड़ दूँगा। मेरे कीर्तनके लिये मना करता है, मैं तेरा सर्वनाश कर दूँगा।' मैंने डरकर आँखें मूँद लीं॥178-182॥

अनुभाष्य—'नरदेह, सिंहमुख'—श्रीनृसिंहदेव; ये भक्त, भक्ति और भगवान्‌के विद्वेष और विद्वेषियोंका विनाश करते हैं।

'फाड़िमु'—विदीर्ण करके फेंक दूँगा॥179-181॥

भीत देखि' सिंह बले हइया सदय।
'तोरे शिक्षा दिते कैलु तोर पराजय॥183॥

से दिन बहुत नाहि कैलि उत्पात।
तेञि क्षमा करि, ना करिनु प्राणघात॥184॥

ऐछे यदि पुनः कर, तबे ना सहिमु।
सवंशे तोमारे आर यवन नाशिमु॥'185॥

अनुवाद—मुझे भयभीत देखकर सिंहको दया आ गयी और बोले,—'तुम्हें शिक्षा देनेके लिये मैंने तुम्हें पराजित किया है। उस दिन तुमने अधिक उत्पात नहीं किया था, इसलिये मैंने तुम्हें क्षमा करके तुम्हारे प्राण नहीं लिये हैं। ऐसे यदि तुम पुनः करोगे, तो मैं उसे सहन नहीं करूँगा और वंशसहित तुम्हारा और सभी यवनोंको नाश कर दूँगा॥'183-185॥

एत कहि' सिंह गेल, आमार हैल भय।
एइ देख, नखचिह्न आमार हृदय॥"186॥

अनुवाद—यह कहकर वह सिंह चला गया, परन्तु मैं बहुत डर गया हूँ। यह देखो, मेरे वक्षस्थलपर उसके नखचिह्न हैं॥"186॥

एत बलि' काजी निज-बुक देखाइल।
शुनि' देखि' सर्वलोक आश्चर्य मानिल॥187॥

अनुवाद—यह कहकर काजीने अपना वक्षस्थल दिखलाया। इस बातको सुनकर और नखचिह्न देखकर सभी आश्चर्यचकित हो गये॥187॥

काजी कहे,—"इहा आमि कारे ना कहिल।
सेइ दिन एक आमार पियादा आइल॥188॥

आसि' कहे,—'गेलुँ मुञि कीर्त्तन निषेधिते।
अग्नि उल्का मोर मुखे लागे आचम्बिते॥189॥

पुड़िल सकल दाड़ि, मुखे हैल व्रण।
येइ पेयादा याय, तार एइ विवरण॥'190॥

अनुवाद—काजीने कहा,—"इस बातको मैंने किसीसे नहीं कहा। उस दिन मेरा एक पियादा (सेवक) आया और आकर बोला,—'मैं एक स्थानपर कीर्तनके लिये मना करनेके लिये गया था, तो अचानक ना जाने

कहाँसे आगका एक उल्का मेरे मुखपर आ गिरा। उससे मेरी सारी दाढ़ी जल गयी और मुखपर छाले पड़ गये।' जो भी पियादा [कीर्तनके विरोधमें] जाता, उसके साथ भी ऐसा ही होता॥188-190॥

अनुभाष्य—'पियादा'—निम्न श्रेणीका सेवक, संवाद अथवा पत्र लेकर जानेवाला। साधारण भाषामें जिसे 'चपरासी' कहते हैं॥188॥

ताहा देखि' रहिनु मुञि महाभय पाञा।
कीर्त्तन ना वर्ज्जिया घरे रहोँ त' बसिया॥191॥

तबे त' नगरे हइबे स्वच्छन्दे कीर्त्तन।
शुनि' सब म्लेच्छ आसि' कैल निवेदन॥192॥

'नगरे हिन्दुर धर्म बाड़िल अपार।
'हरि' 'हरि' ध्वनि बइ नाहि शुनि आर॥'193॥

अनुवाद—ऐसा देखकर मैं बहुत भयभीत हो गया। मैंने सभी पियादोंको कीर्तन बन्द करानेके लिये कहीं भी जानेसे मना किया और उन्हें कहा कि वे केवल अपने घरोंमें बैठे रहें। यह सुनकर सब म्लेच्छ आकर निवेदन करने लगे—'तब तो नगरमें स्वच्छन्द रूपसे कीर्तन होगा। नगरमें हिन्दुओंका धर्म बहुत बढ़ गया है और 'हरि' 'हरि' के अतिरिक्त और कोई ध्वनि सुनायी नहीं देती॥'192-193॥

अनुभाष्य—'म्लेच्छ'—

"गो-मांस-खादको यस्तु विरुद्धं बहु भाषते।
सर्वाचारविहीनश्च म्लेच्छ इत्यभिधीयते॥"

"जो गो-मांसको खानेवाला हो, शास्त्रके विरुद्ध बहुत बोलनेवाला हो तथा सम्पूर्ण आचारसे विहीन हो, उसे म्लेच्छ कहा जाता है॥"192॥

आर म्लेच्छ कहे,—'हिन्दु 'कृष्ण' 'कृष्ण' बलि'।
हासे, कान्दे, नाचे, गाय, गड़ि याय धूलि॥194॥

'हरि' 'हरि' करि' हिन्दु करे कोलाहल।
पातसाह शुनिले तोमार करिबेक फल॥'195॥

अनुवाद—एक और म्लेच्छने कहा,—'हिन्दू तो 'कृष्ण' 'कृष्ण' बोलकर कभी हँसते, रोते, नाचते, गाते हैं और कभी भूमिपर लोटपोट करते हैं। 'हरि' 'हरि' कहकर हिन्दू कोलाहल कर रहे हैं। यदि बादशाह (पातसाह) यह सुनेगा, तो वह तुम्हें इसका फल चखायेगा॥194-195॥

अमृतप्रवाह भाष्य—बादशाह तुम्हारा स्वजन होनेपर भी तुम्हें दण्ड दे सकता है। बादशाह अर्थात् गौड़देशका बादशाह 'हुसैन' शाह॥195॥

अनुभाष्य—'पातसाह'—आलाउद्दीन सैयद हुसैन शाह (सन् 1498 ई. से 1521 ई. तक) बङ्गालका स्वाधीन राजा था। अपने संरक्षक और स्वामी हाव्सी-वंशके भीषण अत्याचारी नवाब मुज़फर खाँको मारकर वह स्वयं बङ्गालके सिंहासनपर बैठ गया। बङ्गालके सिंहासनपर बैठकर उसने 'सैयद हुसैन आलाउद्दीन शरीफ मक्का'-नाम धारण किया। 'रियाज उस्-सलातिन' नामक इतिहासके प्रणेता गुलाम हुसैनका कहना हैं कि नवाब हुसैन शाहके कोई पूर्वज मक्का-शरीफमें रहते थे, इसलिये लगता है कि अपने वंशके गौरवको स्मरण करके उसने यह नाम ग्रहण किया, तो भी गौड़के इतिहासमें वह 'हुसैन शाह' के नामसे ही परिचित है। उसकी मृत्युके बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र नसरत् शाह सन् 1521 ई. से 1533 ई. तक बङ्गालका नवाब बना। वह निष्ठुर प्रकृतिका नवाब वैष्णवोंपर निर्दयतापूर्वक अत्याचार करता था और अपने पापोंके फलस्वरूप अपने ही एक नपुंसक कर्मचारीके हाथों मस्जिदमें मारा गया॥195॥

तबे सेइ यवनेरे आमि त' पुछिल।
'हिन्दु 'हरि' बले, तार स्वभाव जानिल॥196॥

तुमिह यवन हञा केने अनुक्षण।
हिन्दुर देवतार नाम लह कि कारण॥'197॥

अनुवाद—तब मैंने उस यवनसे पूछा,—'हिन्दू तो 'हरि' बोलते हैं, यह उनका स्वभाव है। तुम यवन

होकर सदा हिन्दुओंके देवताका नाम ले रहे हो, इसका क्या कारण है?'॥ 196-197॥

म्लेच्छ कहे,—'हिन्दुरे आमि करि परिहास।
केह केह—कृष्णदास, केह—रामदास॥ 198॥
केह—हरिदास, सदा बले 'हरि' 'हरि'।
जानि कार घरे धन करिबेक चुरि॥ 199॥
सेइ हैते जिह्वा मोर बले 'हरि' 'हरि'।
इच्छा नाहि, तबु बले,—कि उपाय करि॥'200॥

अनुवाद—म्लेच्छने कहा,—'मैंने हिन्दुओंसे परिहासमें कहा कि तुम लोग कोई कृष्णदास हो, कोई रामदास हो और कोई हरिदास हो। तुम सदा 'हरि' 'हरि' बोलते हो। लगता है कि किसीके घरमें चोरी करोगे? तबसे मेरी जिह्वा भी 'हरि' 'हरि' बोलने लगी। मेरी इच्छा नहीं है, तो भी यह बोलना नहीं छोड़ती है, मैं क्या उपाय करूँ?'॥ 198-200॥

आर म्लेच्छ कहे, शुन—'आमि त' एइमते।
हिन्दुके परिहास कैनु से दिन हइते॥ 201॥
जिह्वा कृष्णनाम करे, ना माने वर्ज्जन।
ना जानि, कि मन्त्रौषधि जाने हिन्दुगण॥'202॥

अनुवाद—और एक मलेच्छ कहने लगा,—'सुनो! मैंने भी जिस दिनसे इसी प्रकार हिन्दुओंसे परिहास किया था, उसी दिनसे मेरी जिह्वा भी कृष्णनाम करने लगी है और अब यह मेरे बहुत रोकनेपर भी रुकती नहीं है। न जाने ये हिन्दू कौनसी मन्त्रौषधि जानते हैं?॥'201-202॥

अमृतप्रवाह भाष्य—काजीने कहा,—"हे गौरहरि! मैंने जिस भी म्लेच्छ पियादेसे पूछा, उसने यही उत्तर दिया,—मैंने हिन्दुओंको कहा, 'तुम लोग कोई कोई 'कृष्णदास', 'रामदास', 'हरिदास'—इस नामके परिचयसे 'हरि' 'हरि' बोलते हो, किन्तु 'हरि' 'हरि' शब्दका अर्थ तो 'चोरी करता हूँ' 'चोरी करता हूँ' होता है। ऐसा लगता है कि दूसरोंके घरोंसे धन चोरी करनेके अभिप्रायसे 'हरि' 'हरि' ('हरण करूँ' 'हरण करूँ') ऐसा कहते हो।' मैंने जिस दिनसे उनके साथ यह परिहास किया, उस दिनसे मेरी जिह्वा इच्छा न होनेपर भी 'हरि' 'हरि' बोल रही है, मैं इसे रोकनेका कोई उपाय नहीं कर पा रहा हूँ॥"196-202॥

अनुभाष्य—'परिहास'—चार प्रकारके नामाभासोंमें एक। जैसे, (भाः 6/2/14)—

"साङ्केत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा।
वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः॥"

"सङ्केत (दूसरी वस्तुको लक्ष्य करके भगवन्नाम उच्चारण), परिहास (उपहासपूर्वक नामोच्चारण), स्तोभ (तिरस्कारपूर्वक नामोच्चारण) और हेला (अनादरपूर्वक नामोच्चारण), ये चार छाया नामाभास हैं, विद्वान लोग ऐसे नामाभासको समस्त पापोंका नाशक मानते हैं।" क्योंकि इनका उच्चारण जड़ीय अक्षर-उच्चारणमात्र नहीं है। नामाभास नित्य-वास्तव वस्तुको लक्ष्य करके विष्णुकी स्मृति जाग्रत कराता है, यह जीवोंकी विषय-वासनाओंका विनाश करता है और इसके फलस्वरूप सेवोन्मुख मुक्तजीवोंके द्वारा उच्चारित शुद्ध नाममें बद्धजीवका अधिकार उदित होता है॥ 198-202॥

काजीसे स्मार्त्त पाषण्डियोंका अभियोग :—

एत शुनि' ता सभारे घरे पाठाइल।
हेनकाले पाषण्डी हिन्दु पाँच-सात आइल॥ 203॥

अनुवाद—यह सुनकर मैंने उन सबको अपने घरोंमें भेज दिया। तब पाँच-सात पाषण्डी हिन्दू मेरे पास आये॥ 203॥

अनुभाष्य—'पाषण्डी'—सांसारिक कर्मोंमें श्रद्धा रखनेवाले, अनेक ईश्वरोंको माननेवाले और विष्णु-वैष्णव-द्वेषी मूर्त्तिपूजक (श्रीविग्रहमें काष्ठ-पत्थरकी बुद्धि रखनेवाले)॥ 203॥

आसि' कहे,—'हिन्दुर धर्म भाङ्गिल निमाञि।
ये कीर्त्तन प्रवर्त्ताइल, कभु शुनि नाइ॥204॥

मङ्गलचण्डी, विषहरि करि जागरण।
ता'ते नृत्य, गीत, वाद्य—योग्य आचरण॥205॥

पूर्वे भाल छिल एइ निमाइ पण्डित।
गया हैते आसिया चालाय विपरीत॥206॥

उच्च करि' गाय गीत, देय करतालि।
मृदङ्ग-करताल-शब्दे कर्णे लागे तालि॥207॥

न जानि,—कि खाञा मत्त हञा नाचे, गाय।
हासे, कान्दे, पड़े, उठे, गड़ागड़ि याय॥208॥

नगरिया पागल कैल सदा सङ्कीर्त्तन।
रात्रे निद्रा नाहि याइ, करि जागरण॥209॥

अनुवाद—उन्होंने आकर कहा,—'निमाइने हिन्दुओंके धर्मको नष्ट कर दिया है। उसने जिस प्रकारका कीर्तन प्रारम्भ किया है, उसे तो हमने पहले कभी सुना नहीं है। हम जो मङ्गलचण्डी, शङ्करादिका जागरण करते हैं, उसमें तो वाद्यादिके साथ नृत्य-गीत हिन्दुओंके लिये उचित है। निमाइ पण्डित पहले तो बहुत अच्छा था, परन्तु गयासे आनेके बाद यह विपरीत चाल चलने लगा है। निमाइ और उसके सङ्गी हाथोंसे ताली बजाते हुए ऊँचे स्वरमें गीत गाते हैं और साथमें मृदङ्ग-करतालादि भी बजते हैं। उनके शोरसे तो कानमें कुछ और सुनायी ही नहीं देता। न जाने क्या खाकर (क्या किसी मादक द्रव्यका पानकर) मत्त होकर नाचते, गाते हैं, हँसते हैं, रोते हैं, गिरते हैं, उठते हैं और भूमिपर लोट-पोट होते हैं। निमाइके सङ्कीर्तनने तो सारे नगरवासियोंको पागल बना दिया है। उनके सङ्कीर्तनसे हमें रातमें नींद नहीं आती, हम तो जागरण करते हैं॥204-209॥

'निमाञि' नाम छाड़ि' एबे बोलाय 'गौरहरि'।
हिन्दुर धर्म नष्ट कैल पाषण्डी सञ्चारि'॥210॥

कृष्णेर कीर्त्तन करे नीच बाड़ बाड़।
एइ पापे नवद्वीप हइबे उजाड़॥211॥

अनुवाद—अब वह अपना 'निमाइ' नाम छोड़कर अपनेको 'गौरहरि' कहता है और पाषणताका प्रचारकर हिन्दू धर्मको नष्ट कर रहा है। अब तो इसके साथ श्रीकृष्णनामके कीर्तनमें (जिनका कीर्तनमें अधिकार नहीं है, ऐसे) नीच जातिके लोग बढ़ रहे हैं, इस पापसे तो नवद्वीप उजड़ जायेगा॥210-211॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'नीच बाड़बाड़'—अनेक नीच जातिके लोगोंको लेकर श्रीकृष्णकीर्तन कर रहा है, इससे नीच जातिकी बाड़ अर्थात् वृद्धि हो रही है॥211॥

हिन्दुशास्त्रे 'ईश्वर' नाम—महामन्त्र जानि।
सर्वलोक शुनिले मन्त्रेर वीर्य हय हानि॥212॥

अनुवाद—हिन्दू शास्त्रोंमें ईश्वरके नामको महामन्त्र बतलाया गया है, [उच्च स्वरसे कीर्तन करनेपर] सभी लोगोंके द्वारा मन्त्र सुननेपर मन्त्रकी शक्ति लुप्त हो जाती है॥212॥

अनुभाष्य—अनेक ईश्वरोंको माननेवाले ईश्वरको और ईश्वरके नामको 'कर्मका अङ्ग' समझते हैं, इसलिये वे 'पाषण्डी' कहलाते हैं। श्रीकृष्णनामकी महान् औदार्यमयी महिमाको न जाननेके कारण सांसारिक उच्च-कुलमें जन्म और सामाजिक पदवीके मोहमें भूलकर वे सोचते हैं कि नीच अर्थात् नीच-कुलमें उत्पन्न व्यक्तिके द्वारा श्रीकृष्णनाम ग्रहण करना विशेष पापका कार्य है। इसलिये सत्कुल अथवा उच्चकुलमें जन्में व्यक्तिका ही श्रीकृष्णनाम ग्रहण करनेमें अधिकार है। ये सब बहु-ईश्वरवादी सदा कीर्तनीय श्रीकृष्णनाम-महामन्त्रको अन्यान्य जप्यमन्त्रोंके समान मानते हैं। जो अपने अद्वितीय परमैश्वर्यको प्रकाशित करके ब्रह्मासे लेकर चींटीतकका उद्धार करनेकी शक्ति रखता है, ऐसे महामन्त्रका उच्च-स्वरसे कीर्तन करनेपर

उसके हठात् ही जिह्वा और कानोंपर अवतीर्ण होनेपर वह स्वयं निष्फल हो जाता है—इन लोगोंका ऐसा मानना है। अहो! प्रत्यक्ष ज्ञानको ही सर्वोच्च ज्ञान माननेवाले ये लोग श्रौतपन्थाके इतने अधिक विरोधी हैं!!॥211-212॥

ग्रामेर ठाकुर तुमि, सब तोमार जन।
निमाइ बोलाइया तारे करह वर्ज्जन॥'213॥

अनुवाद—आप तो इस ग्रामके स्वामी हैं और हम सभी आपकी प्रजा हैं। इसलिये आप कृपाकर निमाइको बुलाकर उसे निष्कासित कर दीजिये॥'213॥

अनुभाष्य—इसके बाद उन्होंने काजीसे कहा,—'आप इस स्थानके सर्वस्व कर्त्ता-धर्त्ता हैं, ग्रामके सभी लोग आपके अधीन हैं, इसलिये आप निमाइ पण्डितको अपने पास बुलाकर उसे निष्कासित कर दो॥'213॥

काजीके द्वारा उनको सान्त्वना-प्रदान :—

तबे आमि प्रीतिवाक्य कहिल सबारे।
'सबे घरे याह, आमि निषेधिब तारे॥'214॥

अनुवाद—उनकी प्रार्थना सुनकर मैंने उन सबसे प्रीतिपूर्वक कहा,—'आप सभी अपने-अपने घर जाँय, मैं निमाइको सङ्कीर्तनके लिये मना कर दूँगा॥'214॥

महाप्रभुके प्रति काजीकी उक्ति :—

हिन्दुर ईश्वर बड़ येइ नारायण।
सेइ तुमि हओ,—हेन लय मोर मन॥"215॥

अनुवाद—हिन्दुओंके सबसे बड़े ईश्वर जो नारायण हैं, मेरा मन कहता है कि तुम वही हो॥"215॥

महाप्रभुकी कृपापूर्ण उक्ति :—

एत शुनि' महाप्रभु हासिया हासिया।
कहिते लागिला प्रभु काजीरे छुँइया॥216॥

नामाभाससे पापक्षय :—

"तोमार मुखे कृष्णनाम,—ए बड़ विचित्र।
पापक्षय गेल, हैला परम पवित्र॥217॥

'हरि' 'कृष्ण' 'नारायण'—लैले तिन नाम।
बड़ भाग्यवान् तुमि, बड़ पुण्यवान्॥"218॥

अनुवाद—ऐसा सुनकर महाप्रभु हँसते-हँसते काजीको स्पर्श करके कहने लगे,—"यह बड़ी ही विचित्र बात है कि तुम्हारे मुखसे कृष्णनाम निकल रहा है। इस कृष्णनामसे तुम्हारे समस्त पाप नष्ट हो गये हैं तथा तुम परम पवित्र हो गये हो। तुमने 'हरि', 'कृष्ण' और 'नारायण'—इन तीन नामोंका उच्चारण किया है। तुम बहुत ही भाग्यवान् और पुण्यवान् हो॥"216-218॥

अनुभाष्य—काजीके मुखमें नामाभास उदित हुआ था॥217-218॥

काजीकी दैन्योक्ति :—

एत शुनि' काजीर दुइ चक्षे पड़े पानि।
प्रभुर चरण छुँइ बले प्रियवाणी॥219॥
"तोमार प्रसादे मोर घुचिल कुमति।
एइ कृपा कर,—येन तोमाते रहु भक्ति॥"220॥

अनुवाद—ऐसा सुनकर काजीके दोनों नेत्रोंसे अश्रु प्रवाहित होने लगे और वह महाप्रभुके चरणकमलोंको स्पर्श करके प्रियवाणी कहने लगा,—"आपकी कृपासे मेरी कुमति दूर हो गयी है। अब आप मुझपर ऐसी कृपा करें जिससे मेरे हृदयमें आपके प्रति भक्ति रहे॥"220॥

महाप्रभुकी उक्ति :—

प्रभु कहे,—"एक दान मागिये तोमाय।
सङ्कीर्त्तन बाद यैछे नहे नदीयाय॥"221॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"मैं आपसे एक दान माँगता हूँ कि नदियामें सङ्कीर्तनमें कभी भी बाधा न हो॥"221॥

अनुभाष्य—जिससे नवद्वीपमें श्रीकृष्णनाम-कीर्तनमें कोई बाधा न हो॥221॥

काजीकी प्रतिज्ञा :—

काजी कहे,—"मोर वंशे यत उपजिबे।
ताहाके 'तालाक' दिब,—कीर्त्तन ना बाधिबे॥"222॥

अनुवाद—काजीने कहा,—"मेरे वंशमें जो भी उत्पन्न होंगे, मैं उन सबको प्रतिज्ञा करवा दूँगा कि वे कीर्तनमें किसी भी प्रकारकी बाधा उत्पन्न नहीं करेंगे॥"222॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'तालाक'—गम्भीररूपसे की गयी जो प्रतिज्ञा॥222॥

अनुभाष्य—आज भी काजीके वंशधर श्रीकृष्णसङ्कीर्तनमें योगदान करते हैं, वे किसी भी प्रकारकी कोई आपत्ति नहीं करते हैं॥222॥

महाप्रभु और भक्तोंमें हर्ष :—

शुनि प्रभु 'हरि' बलि' उठिला आपनि।
उठिल वैष्णव सब करि' हरिध्वनि॥223॥

भक्तोंके साथ महाप्रभुका घर लौटना :—

कीर्त्तन करिते प्रभु करिला गमन।
सङ्गे चलि' आइसे काजी उल्लासित मन॥224॥

अनुवाद—यह सुनकर महाप्रभु 'हरि-हरि' बोलते हुए उठकर खड़े हो गये। सभी वैष्णव भी 'हरि-हरि' ध्वनि करते हुये उठ गये। कीर्तन करते हुए महाप्रभु वहाँसे चले और काजी भी बड़े उल्लासके साथ उनके सङ्ग चलने लगा॥223-224॥

काजीरे विदाय दिल शचीर नन्दन।
नाचिते नाचिते आइला आपन भवन॥225॥

अनुवाद—थोड़ी दूर चलनेपर शचीनन्दन श्रीगौरहरिने काजीको विदायी दी। काजी नाचते-नाचते अपने भवनमें लौट आया॥225॥

एइ मते काजीरे प्रभु करिला प्रसाद।
इहा येइ शुने तार खण्डे अपराध॥226॥

अनुवाद—इस प्रकार महाप्रभुने काजीपर कृपा की। जो व्यक्ति इस कथाको श्रद्धापूर्वक सुनता है, उसके सभी अपराध नष्ट हो जाते हैं॥226॥

श्रीवास-भवनमें महाप्रभुके कीर्तनके समय श्रीवास पण्डितके पुत्रका देहत्याग :—

एक दिन श्रीवासेर मन्दिरे गोसाञि।
नित्यानन्द-सङ्गे नृत्य करे दुइ भाइ॥227॥
श्रीवास-पुत्रेर ताँहा हैल परलोक।
तबु श्रीवासेर चित्ते ना जन्मिल शोक॥228॥

अनुवाद—एक दिन श्रीचैतन्य गोसाईं और श्रीनित्यानन्द प्रभु, दोनों भाई श्रीवास पण्डितके मन्दिरमें नृत्य कर रहे थे। उसी समय श्रीवास पण्डितका पुत्र परलोक सिधार गया। ऐसा होनेपर भी श्रीवास पण्डितके चित्तमें किसी प्रकारका शोक उत्पन्न नहीं हुआ॥227-228॥

मृतपुत्रके मुखसे तत्त्वकथा :—

मृतपुत्र-मुखे कैल ज्ञानेर कथन।
आपने दुइ भाइ हैला श्रीवास-नन्दन॥229॥

अनुवाद—महाप्रभुने उस मृत पुत्रके मुखसे ज्ञानकी कथा कहलवायी। तब महाप्रभुने श्रीवास पण्डितसे कहा कि हम दोनों भाइयों (मुझे और नित्यानन्द प्रभु) को अपना पुत्र ही समझो॥229॥

अमृतप्रवाह भाष्य—एक रात महाप्रभु श्रीवास-आङ्गनमें कीर्तन कर रहे थे, उसी समय श्रीवास पण्डितके एक पुत्र परलोक सिधार गये। श्रीवास पण्डितने कीर्तनका रसभङ्ग होनेके भयसे सभीको शोक प्रकाशित करनेसे निषेध किया और महाप्रभु बहुत रात तक कीर्तन करते रहे। कीर्तन समाप्त होनेपर महाप्रभु समझ गये कि इस घरपर कोई विपत्ति आयी है। श्रीवासके पुत्रकी मृत्युका संवाद सुनकर पहले तो महाप्रभुने देरीसे संवाद देनेके लिये दुःख प्रकट किया और मृत बालकसे सभीके सम्मुखस्थ करवाकर पूछा,—"ओहे बालक! तुमने श्रीवासका क्यों परित्याग किया?" मृत बालकने कहा,—"मेरा

जितने दिन तक श्रीवासके घरमें रहना निर्धारित था, वह समाप्त होनेपर अब मैं आपकी इच्छासे अन्य स्थानपर जा रहा हूँ। मैं आपका नित्य अनुगत परतन्त्र जीव हूँ—आपकी इच्छाके अतिरिक्त और कुछ करनेका मुझे अधिकार नहीं है।" मृत बालकके मुखसे इन वचनोंको सुनकर श्रीवास पण्डितके परिवारवालोंको दिव्य ज्ञानकी प्राप्ति हुई और उनको कोई शोक नहीं रहा। इसके बाद उन्होंने मृत बालकका संस्कार किया। महाप्रभुने श्रीवासको कहा,—'जो तुम्हारा पुत्र था, वह तुम्हें छोड़कर चला गया। मैं और नित्यानन्द—तुम्हारे नित्यपुत्र हैं, हम तुम्हें कभी भी नहीं छोड़ पायेंगे।'॥ 229॥

अनुभाष्य—चैःभाः मध्यखण्ड, पच्चीसवाँ अध्याय द्रष्टव्य है॥ 228-229॥

श्रीवासकी भतीजी नारायणीको अपना उच्छिष्ट-प्रदान :—

तबे त' करिला सब भक्ते वर दान।
उच्छिष्ट दिया नारायणीर करिल सम्मान॥ 230॥

अनुवाद—तब महाप्रभुने सभी भक्तोंको वरदान दिया और नारायणीको अपना उच्छिष्ट प्रदान करके कृतार्थ किया॥ 230॥

अनुभाष्य—चैःभाः मध्यखण्ड, दसवाँ अध्याय द्रष्टव्य है। कोई-कोई चरित्रहीन पाषण्ड-प्रकृतिके प्राकृतसहजिया लोग प्राकृत बुद्धि होनेके कारण श्रील वृन्दावनदासकी निन्दा और उनसे द्वेष करनेके कारण ऐसा कहते हैं,—'महाप्रभुके उच्छिष्ट अथवा ताम्बुल खानेके फलस्वरूप विधवा अवस्थामें श्रीमती नारायणीदेवीसे श्रीवृन्दावनदास ठाकुरका जन्म हुआ था।' ऐसी निन्दनीय बात नितान्त अपराधमय है, इसलिये यह कभी भी सुनने योग्य नहीं है॥ 230॥

यवनकुलमें उत्पन्न दर्जीका महाप्रभुका रूपदर्शन और उन्माद :—

श्रीवासेर वस्त्र सिये दरजी यवन।
प्रभु तारे कराइल निजरूप दर्शन॥ 231॥

'देखिनु' 'देखिनु' बलि' हइल पागल।
प्रेमे नृत्य करे, हैल वैष्णव आगल॥ 232॥

अनुवाद—श्रीवासके वस्त्र सिलनेवाला दर्जी यवन था, उसे महाप्रभुने अपने रूपके दर्शन कराये। 'मैंने देखा है', 'मैंने देखा है', यह कहते-कहते वह पागलसा हो गया। प्रेममें पागल होकर वह नृत्य करने लगा और वह श्रेष्ठ वैष्णव बन गया॥ 231-232॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीवासके घरके निकट रहनेवाला कोई एक यवन दर्जी उनके वस्त्र सिलता था। वह श्रद्धापूर्वक महाप्रभुका नृत्य देखकर मन्त्र-मुग्ध हो गया, महाप्रभुने उसे अपने रूपके चिन्मय-भावका दर्शन कराया। वह दर्जी 'मैंने देखा है! मैंने देखा है!' ऐसा कहते हुए प्रेममें पागल होकर नृत्य करने लगा। **'आगल'**—अग्रगण्य॥ 231-232॥

महाप्रभुकी इच्छानुसार श्रीवासका मधुर श्रीकृष्णलीला-वर्णन :—

आवेशेते महाप्रभु वंशी त' मागिल।
श्रीवास कहे,—"वंशी तोमार गोपी हरि' निल॥"233॥

अनुवाद—एक समय व्रजभावके आवेशमें महाप्रभुने अपनी वंशी माँगी, तब श्रीवास पण्डितने कहा,—"आपकी वंशी तो गोपियोंने चुरा ली है॥"233॥

शुनि' प्रभु 'बल' 'बल' बलेन आवेशे।
श्रीवास वर्णेन वृन्दावन-लीलारसे॥ 234॥

प्रथमेते वृन्दावन-माधुर्य वर्णिल।
शुनिया प्रभुर चित्ते आनन्द बाड़िल॥ 235॥

तबे 'बल' 'बल' प्रभु बले बारबार।
पुनः पुनः कहे श्रीवास करिया विस्तार॥ 236॥

वंशीवाद्ये गोपीगणेर वने आकर्षण।
ताँ-सबार सङ्गे यैछे वन-विहरण॥ 237॥

ताहि मध्ये छयऋतुर लीलार वर्णन।
मधुपान, रासोत्सव, जलकेलि कथन॥ 238॥

'बल' 'बल' बले प्रभु शुनिते उल्लास।
श्रीवास कहेन तबे रास-विलास॥ 239॥

अनुवाद—यह सुनकर महाप्रभु आवेशमें 'बोलो', 'बोलो' कहने लगे। श्रीवास पण्डित वृन्दावनकी रसमयी लीलाओंका वर्णन करने लगे। उन्होंने पहले वृन्दावनके माधुर्यका वर्णन किया। जिसे सुनकर महाप्रभुका चित्त अत्यधिक आनन्दित हो गया। तब महाप्रभु बार-बार 'बोलो', 'बोलो' कहने लगे। श्रीवास पण्डित पुनः-पुनः विस्तारपूर्वक वृन्दावनकी कथाका वर्णन करने लगे। श्रीकृष्णने कैसे वंशीकी ध्वनिके द्वारा गोपियोंको वनमें आकर्षण करके उनके साथ किस प्रकार वनमें विहार किया। उस विहारके समय छह ऋतुओंमें की गयी लीलाओंका श्रीवासने वर्णन किया [श्रीकृष्णकी इच्छानुसार वृन्दादेवीकी आज्ञासे लीलारसके वर्धनके लिये छहों ऋतुओंने भिन्न-भिन्न वनोंमें एक ही समयमें अपने-अपने प्रभावका विस्तार किया। इस प्रकार श्रीकृष्णने गोपियोंके साथ एक वनसे दूसरे वनमें विहार करते हुए उन सभी ऋतुओंके अनुरूप लीलाओंका रसास्वादन किया]। और मधुपान, रासोत्सव तथा जलकेलिकी लीलाओंका भी गान किया। महाप्रभुके मनमें ये लीलाएँ सुनकर बहुत उल्लास हुआ और उन्होंने श्रीवाससे रास-विलासका वर्णन करनेके लिये कहा॥ 234-239॥

अनुभाष्य—श्रीवास पण्डितके द्वारा व्रजकी गोपियोंके साथ श्रीकृष्णके मधुर (शृंगार) रसका वर्णन विशेषरूपसे लक्ष्य करनेका विषय है॥ 235-239॥

कहिते, शुनिते ऐछे प्रातःकाल हैल।
प्रभु श्रीवासेर तोषि' आलिङ्गन कैल॥ 240॥

अनुवाद—इस प्रकार कहते-सुनते प्रातःकाल हो गया। महाप्रभुने परम प्रसन्न होकर श्रीवास पण्डितका आलिङ्गन किया॥ 240॥

आचार्यरत्नके घर महाप्रभुका लक्ष्मीवेशमें नृत्य :—

तबे आचार्येर घरे कैल कृष्णलीला।
रुक्मिण्यादि-रूप प्रभु याते आपने हैला॥ 241॥

अनुवाद—तब महाप्रभुने श्रीचन्द्रशेखर आचार्यके घरमें श्रीकृष्णलीलाका अभिनय किया। महाप्रभुने स्वयं ही श्रीरुक्मिणी आदिके रूपको धारण किया॥ 241॥

अमृतप्रवाह भाष्य—एक रात्रि श्रीचन्द्रशेखर आचार्यरत्नके घरमें महाप्रभुने रुक्मिणी आदिके रूपको धारण करके एक लीलाका अभिनय किया था। उसमें श्रीअद्वैताचार्य, श्रीहरिदासादि अनेकोंको नाना वेशोंमें सजाया था॥ 241॥

अनुभाष्य—रुक्मिणीभावमें और वेशमें महाप्रभुका प्रसङ्ग चैःभाः मध्यखण्ड, अठारहवें अध्यायमें द्रष्टव्य है॥ 241॥

कभु दुर्गा, लक्ष्मी हय, कभु वा चिच्छक्ति।
खाटे बसि' भक्तगणे दिल प्रेमभक्ति॥ 242॥

अनुवाद—महाप्रभु कभी दुर्गा, कभी लक्ष्मी और कभी चित्शक्ति बन जाते। तब महाप्रभुने सिंहासनपर बैठकर सभी भक्तोंको प्रेमदान किया॥ 242॥

अनुभाष्य—आद्याशक्तिके वेशमें महाप्रभुके द्वारा भक्तोंको स्तनपान कराना और प्रेमभक्ति प्रदान करनेका प्रसङ्ग चैःभाः मध्यखण्ड, अठारहवें अध्यायमें द्रष्टव्य है॥ 242॥

ब्राह्मणीके द्वारा महाप्रभुके चरणस्पर्श करनेपर महाप्रभुका गङ्गामें स्नान :—

एकदिन महाप्रभुर नृत्य-अवसाने।
एक ब्राह्मणी आसि' धरिल चरणे॥ 243॥

चरणेर धूलि सेइ लय बार बार।
देखिया प्रभुर दुःख हइल अपार॥ 244॥

सेइक्षणे धाञा प्रभु गङ्गाते पड़िल।
नित्यानन्द-हरिदास धरि' उठाइल॥ 245॥

विजय आचार्येर घरे से रात्रे रहिला।
प्रातःकाले भक्त सबे घरे लञा गेला॥ 246॥

अनुवाद—एक दिन महाप्रभुके नृत्यके अन्तमें एक ब्राह्मणीने आकर उनके चरणोंको पकड़ लिये। वह ब्राह्मणी बार-बार उनके चरणोंकी धूलिको लेने लगी, उसको ऐसा करते देखकर महाप्रभुको बहुत दुःख हुआ। उसी समय महाप्रभु दौड़कर गङ्गामें जाकर कूद पड़े। श्रीनित्यानन्द प्रभु तथा श्रीहरिदास ठाकुरने जाकर उन्हें बाहर निकाला। उस रात्रि महाप्रभु विजय आचार्यके घर पर ही रहे। प्रातःकाल सभी भक्त उन्हें घर ले गये॥ 243-246॥

अनुभाष्य—इस घटनाका चैतन्यभागवतमें वर्णन नहीं है॥ 243-246॥

उच्चस्वरमें 'गोपी' 'गोपी' पुकारते हुए महाप्रभु :—

एकदिन गोपीभावे गृहेते बसिया।
'गोपी' 'गोपी' नाम लय विषण्ण हञा॥ 247॥

अनुवाद—एक दिन अपने घरमें बैठे हुए महाप्रभु गोपीभावमें आविष्ट होकर दुःखित हृदयसे 'गोपी' 'गोपी' पुकार रहे थे॥ 247॥

मर्म-अनभिज्ञ पाषण्डी छात्रका महाप्रभुको मना करना :—

एक पड़ुया आइल प्रभुके देखिते।
'गोपी' 'गोपी' नाम शुनि' लागिल बलिते॥ 248॥

"कृष्णनाम ना लओ केने, कृष्णनाम—धन्य।
'गोपी' 'गोपी' बलिले वा किवा हय पुण्य॥"249॥

अनुवाद—उस समय एक छात्र महाप्रभुसे मिलने आया और महाप्रभुके मुखसे 'गोपी' 'गोपी' नाम सुनकर वह कहने लगा,—"आप कृष्णनाम क्यों नहीं लेते? कृष्णनाम तो परम धन्य है। 'गोपी' 'गोपी' कहनेसे क्या कोई पुण्य होता है?॥"249॥

प्रहार करनेके लिये महाप्रभुका उसके पीछे दौड़ना; छात्रका भागना :—

शुनि' प्रभु क्रोधे कैल कृष्णे दोषोद्गार।
ठेङ्गा लञा उठिला प्रभु पड़ुया मारिबार॥ 250॥

अनुवाद—उसकी बात सुनकर महाप्रभु क्रोधित होकर श्रीकृष्णके दोषोंका वर्णन करने लगे और लाठी लेकर छात्रको मारनेके लिये उठ खड़े हुए॥ 250॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'दोषोद्गार'—परिहासपूर्वक दोषारोपण॥ 250॥

भये पलाय पड़ुया, प्रभु पाछे पाछे धाय।
आस्ते व्यस्ते भक्तगण प्रभुरे रहाय॥ 251॥

अनुवाद—वह छात्र डरकर भागा और महाप्रभु उसके पीछे दौड़े। जैसे-तैसे करके भक्तोंने महाप्रभुको रोका॥ 251॥

महाप्रभुको सान्त्वना :—

प्रभुरे शान्त करि' आनिल निज घरे।
पड़ुया पलाया गेल पड़ुया-सभारे॥ 252॥

छात्रसमाजमें महाप्रभुके प्रति कटु बातें और क्रोध :—

पड़ुया सहस्र याहाँ पड़े एकठाञि।
प्रभुर वृत्तान्त द्विज कहे ताहाँ याइ॥ 253॥

अनुवाद—भक्त महाप्रभुको शान्त करके उनके घरपर ले आये। वह छात्र भागकर छात्रोंकी सभामें जा पहुँचा जहाँ एक साथ सैकड़ों छात्र पढ़ रहे थे। उस ब्राह्मण छात्रने उस सभामें महाप्रभुका वृत्तान्त सुनाया॥ 252-253॥

शुनि' क्रोध कैल सब पड़ुयार गण।
सबे मेलि' करे तबे प्रभुर निन्दन॥ 254॥

"सब देश भ्रष्ट कैल एकला निमाञि।
ब्राह्मण मारिते चाहे, धर्मभय नाइ॥ 255॥

महाप्रभुपर प्रहार करनेके लिये षड़यन्त्र :—

पुनः यदि ऐछे करे, मारिब ताहारे।
कोन् वा मानुष हय, कि करिते पारे॥"256॥

अनुवाद—ऐसा सुनकर सभी छात्र क्रोधित हो गये और सभी मिलकर महाप्रभुकी निन्दा करने लगे,—"अकेले निमाइने सारे देशको भ्रष्ट कर दिया है। वह ब्राह्मणको मारना चाहता है, उसे धर्मका कोई भी भय नहीं है। यदि फिर कभी वह ऐसा करनेका प्रयास करेगा, तो हम भी उसे मारेंगे। वह कोई भी हो, वह हमारा क्या बिगाड़ लेगा?॥"254-256॥

महाप्रभुसे ईर्ष्या करनेके फलस्वरूप
उनकी विद्या-बुद्धि-लुप्त :—

प्रभुर निन्दाय सबार बुद्धि हैल नाश।
सुपठित विद्या कारओ ना हय प्रकाश॥257॥

अनुवाद—महाप्रभुकी निन्दा करनेसे उन सबकी बुद्धि नष्ट हो गयी और उनकी भली-भाँति पढ़ी हुई विद्या विस्मृत हो गयी॥257॥

अनुभाष्य—क्योंकि, (श्वेताश्वर उपनिषद्में)—

"यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥"

"जिसकी, परदेवता विष्णुके प्रति जैसी, उनके प्रिय श्रीगुरुदेवके प्रति भी वैसी परमा (अहैतुकी और निरन्तर) भक्ति है, उसी महात्माके शुद्धचित्तमें ही सभी श्रुतियोंके वास्तविक हरिभक्ति तात्पर्यमय अर्थ प्रकाशित होते हैं, अन्य किसीके हृदयमें नहीं।" श्रीप्रह्लाद महाराजकी उक्ति (भाः 7/5/24)—

"इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा।
क्रियते भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम्॥"

"जो भगवान् श्रीविष्णुके प्रति आत्मसमर्पणपूर्वक ये नौ प्रकारकी भक्ति करते हैं, उन्होंने ही उत्तमरूपसे शास्त्र अध्ययन किया है—ऐसा कहा जाता है।" इस श्लोककी श्रीधर स्वामीकी टीका—

"सा चार्पितैव सती यदि क्रियते, न तु कृता सती पश्चादर्प्येत, तदुत्तममधीतं मन्ये, न त्वस्माद्गुरोरधीतं शिक्षितं वा तथाविधं किञ्चिदस्तीति भावः।"

"पहले आत्मसमर्पण, बाद में हरिभजन-क्रिया—यही विधि है। ऐसा होनेपर ही उत्तम शास्त्र अध्ययन हुआ है, ऐसा विचार है। आत्मसमर्पणपूर्वक विष्णुपूजाकी अपेक्षा और कुछ भी श्रेष्ठ शिक्षा अथवा अध्ययन नहीं हो सकता।"

अविद्याके वशमें होकर उन जड़विद्या-अभिमानी (छात्रों) ने परविद्यारूपी वधूके जीवन-स्वरूप विष्णुकी अवज्ञा की और नित्य वास्तववस्तु विष्णुके चरणोंमें आत्मसमर्पणके अभावके कारण उन दाम्भिकोंके कलुषित-मलिन हृदयमें विद्याकी स्फूर्ति नहीं हुई। इसलिये (भाः 11/11/18)—

"शब्दब्रह्मणि निष्णातो न निष्णायात् परे यदि।
श्रमस्तस्य श्रमफलो ह्यधेनुमिव रक्षतः॥"

"यदि कोई वेदादि शास्त्रोंमें पारदर्शी होनेपर भी परब्रह्म विष्णुमें भक्तिपरायण न हो, तो उसका समस्त शास्त्रानुशीलन-श्रम केवल व्यर्थके परिश्रममें ही समाप्त होता है॥"257॥

तथापि दाम्भिक पड़ुया नम्र नाहि हय।
याहाँ ताहाँ प्रभुर निन्दा हासि' से करय॥258॥

अनुवाद—तब भी वे दाम्भिक छात्र नम्र नहीं हुए। जहाँ-तहाँ सभी स्थानोंपर वे हँसी उड़ाते हुए महाप्रभुकी निन्दा करने लगे॥258॥

पाखण्डियोंकी दुर्गति देख महाप्रभुकी करुणा :—

सर्वज्ञ गोसाञि जानि' सबार दुर्गति।
घरे बसि' चिन्तेन ता'-सबार अव्याहति॥259॥

अनुवाद—सर्वज्ञ महाप्रभु उन सबकी उस अपराधके फलस्वरूप दुर्गतिको जानकर घरमें बैठकर उनके उद्धारकी चिन्ता करने लगे॥259॥

अभक्त व्यक्तियोंका परिचय :—

'यत अध्यापक, आर ताँर शिष्यगण।
धर्मी, कर्मी, तपोनिष्ठ, निन्दक, दुर्जन॥ 260॥

श्रीकृष्णविद्वेष-अपराधसे मुक्त करनेके उपायकी चिन्ता :—

एइ सब मोर निन्दा-अपराध हैते।
आमि ना लओयाइले भक्ति, ना पारे लइते॥ 261॥

निस्तारिते आइलाम आमि, हैल विपरीत।
एसब दुर्जनेर कैछे हइबेक हित॥ 262॥

अनुवाद—'जितने भी अध्यापक और उनके शिष्य हैं, वे सभी धर्मी-कर्मी (वर्णाश्रम धर्म और कर्मकाण्डमें रत) अथवा तपादिको मुख्य धर्म माननेवाले हैं और वैष्णवोंके निन्दक हैं, इसलिये ये दुर्जन हैं। ये सब मेरी निन्दारूपी अपराधके कारण स्वयं भक्ति नहीं कर सकते, जब तक मैं इन्हें भक्ति प्रदान न करूँ। मैं तो सभीका उद्धार करनेके लिये आया था, किन्तु सब विपरीत हो रहा है। इन सभी दुर्जनोंका कैसे कल्याण होगा?॥ 260-262॥

अनुभाष्य—गोपीभावमें आविष्ट होनेके कारण महाप्रभुका श्रीकृष्णके प्रति क्रोध और दोषरोपणको अप्राकृत न समझनेके कारण एक कर्मजड़ स्मार्त्त छात्रका महाप्रभुके साथ वादानुवाद और गोपीभावमय महाप्रभुका उसको श्रीकृष्णका पक्षपाती समझकर क्रोधित होकर उसके पीछे दौड़ना; ऐसा देखकर कर्मजड़ हरिविमुख नाम मात्रके ब्राह्मणोंके द्वारा मोहवशतः महाप्रभुको पीटनेका परामर्श; उनकी दुर्गति और दुर्दशा दूर करनेके लिये प्राकृत समाजकी दृष्टिमें श्रेष्ठ जन्म और वर्णके अभिमानी लोगोंके गुरुका संन्यास आश्रम स्वीकार करनेकी अभिलाषा— चैःभाः मध्यखण्ड, छब्बीसवाँ अध्याय द्रष्टव्य है।॥ 247-262॥

आमाके प्रणति करे, हय पापक्षय।
तबे से इहारे भक्ति लओयाइले लय॥ 263॥

पाषण्डियोंके उद्धारकी इच्छा :—

मोरे निन्दा करे ये, ना करे नमस्कार।
एसब जीवेरे अवश्य करिब उद्धार॥ 264॥

अनुवाद—यदि ये मुझे नमस्कार करेंगे, तो इनके पाप नष्ट हो जायेंगे। तब मेरे द्वारा इनको भक्ति प्रदान करनेपर ये उसे धारण कर सकेंगे। जो मेरी निन्दा करते हैं, मुझे नमस्कार भी नहीं करते, तो भी मैं उन सभी जीवोंका अवश्य ही उद्धार करूँगा॥ 263-264॥

लौकिक मर्यादामय संन्यास-लीलाभिनयका सङ्कल्प :—

अतएव अवश्य आमि संन्यास करिब।
संन्यासि-बुद्धये मोरे प्रणत हइब॥ 265॥

अनुवाद—इसलिये मैं अवश्य ही संन्यास ग्रहण करूँगा। तब ये सभी मुझे संन्यासी जानकर प्रणाम करेंगे॥ 265॥

अमृतप्रवाह भाष्य—शास्त्रोंके मतानुसार यदि कोई ब्राह्मण संन्यास ग्रहण करे, तो संन्यासी-बुद्धिसे अर्थात् संन्यासीको प्रणामके योग्य समझकर गृहस्थ और ब्राह्मणादि सभी प्रणाम करते हैं। मेरे संन्यास लेनेपर निन्दक ब्राह्मण अवश्य ही प्रणाम करके मुझसे सुबुद्धि लाभ करेंगे॥ 265॥

संन्यासी जानकर महाप्रभुको नमस्कारके फलस्वरूप पाषण्ड ब्राह्मणादि उच्चजातिके व्यक्तियोंमें भी शुद्धचित्तसे सेवा-प्रवृत्तिका उदय :—

प्रणतिते ह'बे इहार अपराध-क्षय।
निर्मल हृदये भक्ति कराइब उदय॥ 266॥

अनुवाद—मुझे प्रणाम करनेसे जब इनके अपराध नष्ट हो जायेंगे, तब इनके निर्मल हृदयमें मैं भक्ति उदय कराऊँगा॥ 266॥

अनुभाष्य—पाषण्डी ब्राह्मणब्रुव अर्थात् नाम मात्रके ब्राह्मण जो ब्राह्मण जातिके विहित कर्त्तव्योंका पालन नहीं करते, वे भी वैष्णव-संन्यासीको दण्डवत् प्रणाम

करेंगे—यही श्रीमन्महाप्रभुकी धारणा थी; उस समयमें सदाचार भी ऐसा ही था। इस समय जो इन सभी नाम मात्रके ब्राह्मणोंकी अपेक्षा और भी अधिक दाम्भिकता दिखाते हुए वैष्णव-संन्यासीको दण्डवत् प्रणाम नहीं करते, उनके सम्बन्धमें शास्त्रोंकी विधि,—

"देवता-प्रतिमां दृष्ट्वा यतिश्चैव त्रिदण्डिनम्।
नमस्कारं न कुर्याद् यः प्रायश्चित्तीयते नरः॥"
(पाठान्तरमें, नमस्कारं न कुर्याच्चेदुपवासेन शुद्ध्यति॥")

"परमदेवता श्रीविष्णुके विग्रह और वैष्णव-त्रिदण्डी-संन्यासीको देखकर यदि कोई ब्राह्मण (चाहे वह नाम मात्रका ब्राह्मण हो) प्रणाम न करे, तो इस दोषके कारण उसे प्रायश्चित करना पड़ता है, अथवा उपवास करके शुद्ध होना पड़ता है॥"265-266॥

एसब पाषण्डी तबे हइबे निस्तार।
आर कोन उपाय नाहि, एइ युक्ति सार॥'267॥

अनुवाद—यही युक्ति ठीक है, क्योंकि इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है, तभी इन सब पाषण्डियोंका उद्धार होगा॥'267॥

उसी समय केशव भारतीका नवद्वीपमें
महाप्रभुके घरमें भिक्षा ग्रहण :—

एइ दृढ़ युक्ति करि' प्रभु आछे घरे।
केशव भारती आइला नदिया-नगरे॥268॥

अनुवाद—ऐसा दृढ़ निश्चय कर जब महाप्रभु घरमें विराजमान थे, तभी श्रीकेशव भारती नदिया-नगरमें पधारे॥268॥

प्रभु ताँरे नमस्करि' कैल निमन्त्रण।
भिक्षा कराइया ताँरे कैल निवेदन॥269॥

भारतीके निकट महाप्रभुका निवेदन :—

"तुमि त' ईश्वर वट,—साक्षात् नारायण।
कृपा करि' कर मोर संसार-मोचन॥"270॥

अनुवाद—महाप्रभुने जाकर उन्हें नमस्कार करके अपने घर निमन्त्रित किया और भिक्षा करानेके उपरान्त उनसे निवेदन किया,—"आप कृपा करके मेरे संसार-बन्धनको काट दीजिये, आप यह करनेमें समर्थ हैं। आप ईश्वर हैं, साक्षात् नारायण ही हैं॥"269-270॥

भारतीकी उक्ति :—

भारती कहेन,—"तुमि ईश्वर, अन्तर्यामी।
ये कहे, से करिब,—स्वतन्त्र नहि आमि॥"271॥

अनुवाद—श्रीकेशव भारतीने कहा,—"आप तो ईश्वर हो, अन्तर्यामी हो। आप जो कहेंगे, मैं वही करूँगा, क्योंकि मैं स्वतन्त्र नहीं, आपके परतन्त्र हूँ॥"271॥

भारतीका काटोया लौटकर आना
और महाप्रभुका उनसे संन्यास ग्रहण :—

एत बलि' भारती गोसाञि काटोयाते गेला।
महाप्रभु ताहा याइ' संन्यास करिला॥272॥

अनुवाद—यह कहकर श्रीकेशव भारती कटोया चले गये। महाप्रभुने वहीं जाकर उनसे संन्यास ग्रहण किया॥272॥

अमृतप्रवाह भाष्य—महाप्रभुकी चौबीस वर्षकी आयुके अन्तमें जो माघी शुक्लपक्ष पड़ा, उस उत्तरायणके समय संक्रमणके दिन महाप्रभुने रात्रिके अन्तमें श्रीनवद्वीपको त्यागकर 'नदियार घाट'से तैरते हुये गङ्गा पारकर कण्टकनगर या कटोया-ग्राममें पहुँचकर श्रीकेशव भारतीसे (एक) दण्ड ग्रहण किया। चन्द्रशेखर आचार्य रत्नने महाप्रभुकी आज्ञानुसार संन्यासके सभी कृत्योंका अनुष्ठान किया। सारा दिन कीर्त्तन करते-करते लगभग सन्ध्याके समय क्षौरकार्य (मुण्डन) समाप्त हुआ। अगले दिन प्रातःकाल दण्डधारी संन्यासीका वेश धारण किये हुये श्रीकृष्णचैतन्यने राढ़देशमें भ्रमण करना आरम्भ किया। श्रीकेशवभारती भी कुछ दूरी तक उनके साथ-साथ गये थे॥272॥

महाप्रभुके संन्यासके समय निताइ,
आचार्यरत्न और मुकुन्द :—

सङ्गे नित्यानन्द, चन्द्रशेखर आचार्य।
मुकुन्ददत्त,—एइ तिन कैल सर्व कार्य॥ 273॥

अनुवाद—श्रीनित्यानन्द प्रभु, श्रीचन्द्रशेखर आचार्य और श्रीमुकुन्ददत्त, इन तीनोंने संन्यास ग्रहण करनेके सभी अनुष्ठानादि आवश्यक कार्योंको किया॥ 273॥

एइ आदिलीलार कैल सूत्र गणन।
विस्तारि वर्णिला इहा दास वृन्दावन॥ 274॥

अनुवाद—यहाँ तक आदि-लीलाकी सूत्ररूपमें मैंने गणना की है। इन समस्त लीलाओंका श्रीवृन्दावनदासने विस्तारपूर्वक वर्णन किया है॥ 274॥

अनुभाष्य—चै:भा: मध्यखण्ड, अठाइसवाँ अध्याय द्रष्टव्य है॥ 274॥

महाप्रभुकी शान्तको छोड़कर दास्य, सख्य,
वात्सल्य और मधुर भावमें उक्त चित्तवृत्ति :—

यशोदानन्दन हैला शचीर नन्दन।
चतुर्विध भक्त-भाव करे आस्वादन॥ 275॥

अनुवाद—श्रीयशोदानन्दन अब श्रीशचीनन्दनके रूपमें अवतीर्ण हुये हैं और उन्होंने चार प्रकारके भक्तोंके भावोंका आस्वादन किया॥ 275॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'चतुर्विध भक्त-भाव'—दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर रसके आश्रित चार प्रकारके भक्तोंके भाव॥ 275॥

आश्रयजातीय भावमय विषयविग्रह ही गौरसुन्दर—
"गौरनागरी"-वादका खण्डन :—

माधुर्य राधा-प्रेमरस आस्वादिते।
राधाभाव अङ्गीकार करियाछे भालमते॥ 276॥

अनुवाद—अपने माधुर्य और राधाके प्रेम रसका आस्वादन करनेके लिये श्रीकृष्ण श्रीराधाके भाव और अङ्गकान्तिको अङ्गीकार करके श्रीगौरसुन्दरके रूपमें अवतीर्ण हुए॥ 276॥

गोपी-भाव याते प्रभु करियाछे एकान्त।
व्रजेन्द्रनन्दने माने आपनार कान्त॥ 277॥

अनुवाद—महाप्रभुने ऐकान्तिक रूपसे गोपीभावको ग्रहण किया है, इसलिये वे श्रीव्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णको अपने कान्तके रूपमें मानते हैं॥ 277॥

गोपिका-भावेर एइ सुदृढ़ निश्चय।
व्रजेन्द्रनन्दन बिना अन्यत्र ना जानय॥ 278॥

अनुवाद—गोपी-भावका यही सुदृढ़ निश्चय है कि व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण ही उनके एकमात्र प्राण-प्रियतम हैं और वे उनके अतिरिक्त किसी औरको नहीं जानती हैं॥ 278॥

अनुभाष्य—'श्रीगौरसुन्दर'—श्रीराधाभावद्युति-सुवलित श्रीकृष्ण हैं, इसलिये श्रीकृष्णकी सेवाके लिये आश्रय-जातीय श्रीमती राधिकादि गोपियोंके हृदयमें जो भाव है, महाप्रभु सदा उसी भावमें ही स्थित रहते थे। उसे त्यागकर कभी भी उन्होंने स्वयं श्रीकृष्णके समान विषय-जातीय चेष्टाएँ अर्थात् भोक्ताके अभिमानसे परस्त्री-दर्शनादिके द्वारा 'लम्पट नागर' की वृत्तिका परिचय नहीं दिया। परन्तु प्राकृत कामुक परस्त्री लम्पट सहजिया-सम्प्रदायके लोग निज-निज घृणित काम-पिपासा और व्यभिचारको जगद्गुरु आचार्यकी लीलाका प्रदर्शन करने वाले श्रीगौरसुन्दरके कन्धेपर आरोपित करके वैष्णवाचार्य शिरोमणि श्रीस्वरूप-दामोदर और ठाकुर वृन्दावनदासके श्रीचरणोंमें केवलमात्र अपराधकी ही वृद्धि करते हैं। चै:भा: पन्द्रहवाँ अध्याय—

"सबे पर-स्त्री प्रति नाहि परिहास।
स्त्री देखिले दूरे प्रभु हन एकपाश॥ 27॥
एइमत चापल्य करेन सबा-सने।
सबे स्त्री-मात्र नाहि देखेन दृष्टिकोणे॥ 28॥

'स्त्री' हेन नाम प्रभु एइ अवतारे।
श्रवणो ना करिला—विदित संसारे॥ 29॥
अतएव यत महामहिम सकले।
'गौराङ्ग-नागर' हेन स्तव नाहि बले॥ 30॥
यद्यपि सकल स्तव सम्भव ताहाने।
तथापिह स्वभावे से गाय बुधगणे॥ 31॥"

"सबके साथ परिहास करनेपर भी महाप्रभु पर-स्त्रीके साथ कभी परिहास नहीं करते थे, स्त्रीको देखकर वे दूरसे ही एक ओर हट जाते थे। इस प्रकार महाप्रभु सबके साथ चपलता करते रहते, किन्तु किसी भी स्त्रीकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखते थे। संसारमें प्रसिद्ध है कि इस अवतारमें महाप्रभुने 'स्त्री' नामका भी श्रवण नहीं किया। इसलिये जितने भी महिमाशाली महापुरुष हैं, उनमेंसे किसीने भी महाप्रभुकी स्तुति 'गौराङ्ग-नागर' कहकर नहीं की है। यद्यपि महाप्रभुके लिये सभी प्रकारकी स्तुति सम्भव है, तथापि विद्वान लोग महाप्रभुके तत्त्वके अनुकूल ही उनकी लीलाका कीर्तन करते हैं।"

इन तीन पद्योंमें सुस्पष्ट रूपसे भक्तिसिद्धान्त विरोधी दुराचार-पुष्ट कल्पित 'गौराङ्गनागरीवाद' का खण्डन हुआ है।॥ 276-278॥

स्वयंरूप श्रीकृष्णके अतिरिक्त अन्य
रूपोंमें गोपियोंकी प्रीति नहीं :—

श्यामसुन्दर, शिखिपिच्छ-गुञ्जा-विभूषण।
गोप-वेश, त्रिभङ्गिम, मुरली-वदन॥ 279॥

इहा छाड़ि' कृष्ण यदि हय अन्याकार।
गोपिकार भाव नाहि याय निकट ताहार॥ 280॥

अनुवाद—जिनका परम सुन्दर रूप श्याम वर्णका है, सिरपर मयूर-पंख है, गलेमें गुञ्जाकी माला है, गोप-वेश है और अधरोंपर मुरली धारणकर त्रिभङ्ग ललित मुद्रामें खड़े हैं—ऐसे रूपको छोड़कर श्रीकृष्णका यदि कोई अन्य आकार हो, तो गोपियोंका उनके प्रति कान्त-भाव स्फुरित नहीं होता॥ 279-280॥

ललितमाधव (6/14)—

गोपीनां पशुपेन्द्रनन्दनजुषो भावस्य कस्तां कृती
विज्ञातुं क्षमते दुरूहपदवीसञ्चारिणः प्रक्रियाम्।
आविष्कुर्वति वैष्णवीमपि तनुं तस्मिन् भुजैर्जिष्णुभि-
र्यासां हन्त चतुर्भिरद्भुतरुचिं रागोदयः कुञ्चति॥ 281॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है॥ 281॥

अमृतप्रवाह भाष्य—किसी समय श्रीकृष्णने कौतुकवशतः अद्भुत-रुचियुक्त चतुर्भुज नारायणरूप प्रकाश किया, जिसे देखकर गोपियोंके रागका उदय सङ्कुचित हो गया। इसलिये नन्दनन्दनमें अनन्य-भजनशील दुर्गम-पारकीय-पथका अवलम्बन करनेवाली गोपियोंकी भाव-क्रियाको कौन पण्डित समझ सकता है?॥ 281॥

अनुभाष्य—सूर्यपत्नी सवर्णाके प्रति विशाखाके वचन,—

गोपीनां दुरूहपदवीसञ्चारिणः (दुरूहायां पदव्यां सञ्चरितुं शीलं यस्य तस्य) पशुपेन्द्र-नन्दनजुषः (पशुपेन्द्रस्य गोपराजस्य नन्दस्य नन्दनं सूनुं जुषते सेवते यस्तस्य कृष्णसेवापरस्य) भावस्य तां प्रक्रियां विज्ञातुं (बोद्धुं) कः कृति क्षमते (समर्थवान् भवति)? [यतः] हन्त! जिष्णुभिः (जयशीलैः) चतुर्भिः भुजैः (धृतनारायण विग्रहैः) अद्भुतरुचि (अद्भुत-रुचिः शोभा यस्याः ताम् अलौकिकीं कान्तिमयीं) वैष्णवीं तनुं आविष्कुर्वति (प्रकटयति सति) तस्मिन् (कृष्णे) अपि यासां (गोपीनां) रागोदयः कुञ्चति (विकाशं न लभते)।

श्लोक भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है॥ 281॥

रासके समय आत्मगोपनकी इच्छासे श्रीकृष्णके द्वारा
गोपियोंको चतुर्भुज प्रदर्शन और संरक्षण :—

वसन्तकाले रासलीला करे गोवर्धने।
अन्तर्धान कैला सङ्केत करि' राधा-सने॥ 282॥

निभृतनिकुञ्जे बसि' देखे राधार बाट।
अन्वेषिते आइला ताहाँ गोपिकार ठाट॥ 283॥

अनुवाद—वसन्त ऋतुमें गोवर्धनमें रासके मध्य श्रीकृष्ण श्रीमती राधिकाके साथमें एकान्तमें विहारकी इच्छासे उन्हें सङ्केत करके अन्तर्धान हो गये। श्रीकृष्ण

निभृतनिकुञ्जमें बैठकर राधाजीकी बाट जोहने लगे। श्रीकृष्णको रासमें न देखकर सब गोपियाँ श्रीकृष्णको ढूँढ़ती हुई तभी वहाँ आयीं॥ 283॥

अनुभाष्य—'बाट'—वर्त्म अथवा पथ। **'ठाट'**—श्रेणीबद्ध सैन्य॥ 283॥

दूर हैते देखि' ताँरे बले गोपीगण।
"एइ देख कुञ्जेर भितर व्रजेन्द्रनन्दन॥"284॥

अनुवाद—दूरसे देखकर ही गोपियोंने कहा,—"वह देखो, व्रजेन्द्रनन्दन इसी कुञ्जके भीतर हैं॥"284॥

गोपीगण देखि' कृष्णेर हइल साधवस।
लुकाइते नारिल, ताहे हैला विरस॥ 285॥
चतुर्भुज मूर्त्ति करि' आछेन बसिया।
कृष्ण देखि' गोपी कहे निकटे आसिया॥ 286॥

अनुवाद—गोपियोंको देखकर श्रीकृष्ण भयभीत हो गये और उनसे छिपना चाहते थे, परन्तु छिपनेको कोई स्थान न देखकर वे विवश हो गये। वे कहीं और जा नहीं सकते थे, इसलिये वहीं चतुर्भुजरूप धारण करके बैठ गये। उन्हें देखकर गोपियाँ उनके निकट आकर कहने लगीं॥ 285-286॥

अनुभाष्य—'साधवस'—भय, त्रास, शङ्का, मनका आवेग, सम्भ्रम॥ 285॥

गोपियोंका नारायण-स्तव :—

'इहोँ कृष्ण नहे, इहोँ नारायण-मूर्त्ति।'
एत बलि' सबे ताँरे करे नति-स्तुति॥ 287॥
"नमो नारायण, देह' करह प्रसाद।
कृष्णसङ्ग देह' मोरे, घुचाह विषाद॥"288॥
एत बलि नमस्करि' गेला गोपीगण।
हेनकाले राधा आसि' दिला दरशन॥ 289॥

अनुवाद—'अरे! ये तो श्रीकृष्ण नहीं हैं, ये तो भगवान् नारायण हैं।' यह कहकर वे सब उन्हें प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लगीं,—"हे नारायण! आपको हम नमस्कार करती हैं। आप कृपा करें और हमें श्रीकृष्णका सङ्ग प्रदान करके हमारे हृदयकी विरह-वेदनाको दूर करें।" यह कहकर गोपियोंने उन्हें नमस्कार किया और तभी राधाजी वहाँ उपस्थित हुईं॥ 287-289॥

अनुभाष्य—'मोरे'—हमें॥ 288॥

श्रीमती राधिकाके आगमन-मात्रसे ही चतुर्भुजका अन्तर्धान, द्विभुज-मूर्ति अथवा स्वयंरूप :—

राधा देखि' कृष्ण ताँरे हास्य करिते।
सेइ चतुर्भुज-मूर्त्ति चाहेन राखिते॥ 290॥
लुकाइला दुइ भुज राधार अग्रेते।
बहु यत्न कैला कृष्ण, नारिल राखिते॥ 291॥

अनुवाद—राधाजीको देखकर श्रीकृष्ण अपने चतुर्भुज रूपमें रहकर उनसे परिहास करना चाहते थे, परन्तु बहुत प्रयास करनेपर भी राधाजीके सामने वे उस रूपकी रक्षा नहीं कर सके और उनकी दो भुजाएँ अन्तर्हित हो गयीं॥ 290-291॥

श्रीराधाका अचिन्त्य कृष्णप्रेम :—

राधार विशुद्ध-भावेर अचिन्त्य-प्रभाव।
ये कृष्णेरे कराइला द्विभुज-स्वभाव॥ 292॥

अनुवाद—श्रीकृष्णके प्रति राधाजीके विशुद्ध-भावका यह अचिन्त्य प्रभाव है कि उसने श्रीकृष्णको उनके मूल द्विभुजरूपमें आनेपर विवश कर दिया॥ 292॥

श्रीराधाके सामने कृष्ण-चातुर्यकी पराजय,
नित्य स्वयंरूप श्यामसुन्दर :—
उज्ज्वलनीलमणिमें नायिकाभेद-प्रकरणमें छठे अङ्कमें—

रासारम्भविधौ निलीयवसता कुञ्जे मृगाक्षीगणै-
र्दृष्टं गोपयितुं स्वमुद्धुरधिया या सुष्ठु सन्दर्शिता।
राधायाः प्रणयस्य हन्त महिमा यस्य श्रिया रक्षितुं
सा शक्या प्रभविष्णुनापि हरिणा नासीच्चतुर्बाहुता॥ 293॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है॥293॥

अमृतप्रवाह भाष्य—रासके आरम्भमें कौतुकवशतः श्रीकृष्ण कुञ्जमें छिपकर बैठे थे। मृगनयनी गोपियोंको उधर आते देखकर उन्होंने शङ्कित होकर अपना मनोहर चतुर्भुजरूप उन्हें प्रदर्शित किया। साधारण गोपियोंने केवल यही कहा,—'ये हमारे प्रेमके विषय श्रीकृष्ण नहीं हैं।' किन्तु राधाजीके प्रेमकी आश्चर्यमयी महिमा! श्रीराधाके आगमन-मात्रसे ही श्रीकृष्ण चेष्टा करके भी उस चतुर्भुज रूपको नहीं रख पाये॥293॥

अनुभाष्य—[गोवर्द्धनोपत्यकायां परासौलीति ख्यातनाम्नां रासस्थल्यां वसन्तकाले] रासारम्भविधौ (रासस्य आरम्भविधौ प्रवृत्तिकल्पे) कुञ्जे निलीयवसता (संलग्नावस्थितेन) हरिणा (श्रीकृष्णेन) मृगाक्षिगणैः (कुरङ्गनयनाभिः गोपीभिः) [प्रविष्टक-नामारण्ये पेठाख्ये] दृष्टं स्वम् (आत्मानं) गोपयितुं (बहवीभिस्ताभिः सर्वतः आवृतात् तस्मात् कुञ्जात् सहसापसर्पणासम्भवात्) उद्धूरधिया (उत्कृष्टबुद्धया) या चतुर्बाहुता सुष्ठु सन्दर्शिता, यस्य (कृष्णप्रणयमहिम्नः) श्रिया प्रभविष्णुना (कृष्णेन) अपि या चतुर्बाहुता रक्षितुं न शक्या आसीत—हन्त! (भोः!) राधायाः प्रणयस्य महिमा (माहात्म्यम्)—[एतादृगचिन्त्यम्!] (गौतमीये—'गोवर्द्धनगिरौ रम्ये स्थितं रासरसोत्सुकम्।' भगवतोऽपि प्रेमाधीनत्वात् प्रेमणोऽग्रे ऐश्वर्यं न तिष्ठतीति न शक्यते वक्तु तस्य नित्यत्वात्, किन्तु तिरोभवति)।

श्लोक भावानुवाद—वसन्तकालमें गोवर्धनके प्रान्तमें रसौली नामक रास-स्थलीमें रासके आरम्भमें कौतुकवशतः श्रीकृष्ण पेठा नामक वनमें एक कुञ्जमें छिपकर बैठे थे। मृगनयनी गोपियोंको उधर आते देखकर उन्होंने शङ्कित होकर चातुर्यपूर्वक अपना मनोहर चतुर्भुजरूप उन्हें प्रदर्शित किया। साधारण गोपियोंने यही कहा,—'ये हमारे प्रेमके विषय श्रीकृष्ण नहीं हैं।' किन्तु राधाजीके प्रेमकी अचिन्त्य महिमा! श्रीराधाके आगमन-मात्रसे ही श्रीकृष्ण चेष्टा करके भी उस चतुर्भुज रूपको नहीं रख पाये। (गौतमीय-तन्त्रमें—रम्य गोवर्धनमें स्थित रासरसोत्सुक भगवान् श्रीकृष्ण भी प्रेमके अधीन हैं, प्रेमके आगे वे भी अपने नित्य ऐश्वर्यको धारण करनेमें असमर्थ हैं)॥293॥

नन्द—जगन्नाथ मिश्र, यशोदा—शची :—

सेइ व्रजेश्वर—इहँ जगन्नाथ पिता।
सेइ व्रजेश्वरी—इहँ शचीदेवी माता॥294॥

व्रजके कानाइ-बलाइ—गौड़के गौर-निताइ :—

सेइ नन्दसुत—इहँ चैतन्य-गोसाञि।
सेइ बलदेव—इहँ नित्यानन्द-भाइ॥295॥

अनुवाद—वे व्रजेश्वर नन्द महाराज इनके (महाप्रभुके) पिता श्रीजगन्नाथ हैं और वे व्रजेश्वरी यशोदा इनकी माता शचीदेवी हैं। वे नन्दनन्दन ही ये चैतन्य-महाप्रभु हैं और वे श्रीबलदेव ही उनके भाई श्रीनित्यानन्द प्रभु हैं॥294-295॥

मधुररसके अतिरिक्त अन्य रसोंमें
श्रीनित्यानन्द-रामकी श्रीगौरकृष्णसेवा :—

वात्सल्य, दास्य, सख्य—तिन भावमय।
सेइ नित्यानन्द—कृष्णचैतन्य-सहाय॥296॥
प्रेमभक्ति दिया तेँहो भासाल जगते।
ताँर चरित्रचित्र लोके ना पारे बुझिते॥297॥

अनुवाद—श्रीनित्यानन्द प्रभु वात्सल्य, दास्य और सख्य—ये तीन भाव महाप्रभुके प्रति रखते हैं और वे सदा महाप्रभुकी लीलाओंमें सहायक हैं। प्रेमाभक्ति प्रदान करके उन्होंने समस्त जगत्को उसमें डुबो दिया है। उनके अलौकिक चरित्रको साधारण लोग समझ नहीं पाते हैं॥296-297॥

भक्तावतार श्रीअद्वैताचार्यका शुद्धभक्ति-प्रचार :—

अद्वैत-आचार्य-गोसाञि भक्त-अवतार।
कृष्ण अवतारिया कैला भक्तिर प्रचार॥298॥

श्रीअद्वैताचार्यकी दो भावोंमें श्रीगौरकृष्णसेवा :—

सख्य, दास्य,—दुइ भाव सहज ताँहार।
कभु प्रभु करेन ताँरे गुरु-व्यवहार॥299॥

अनुवाद—श्रीअद्वैताचार्य गोसाईं भक्तावतार हैं, उन्होंने श्रीकृष्णको अवतरित करवाकर जगत्में भक्तिका प्रचार

किया है। सख्य और दास्य—ये दो उनके महाप्रभुके प्रति स्वभाविक भाव हैं, परन्तु महाप्रभु कभी-कभी उन्हें गुरुके समान मानकर व्यवहार करते हैं॥ 298-299॥

श्रीवासादि शुद्धभक्तोंका दास्य :—

श्रीवासादि यत महाप्रभुर भक्तगण।
निज निज भावे करेन चैतन्य-सेवन॥ 300॥

श्रीगदाधर-स्वरूप-रामानन्द-श्रीरूपादि शक्तियोंकी मधुररसमें श्रीगौरकृष्णसेवा :—

पण्डित-गोसाञि आदि याँर सेइ रस।
सेइ सेइ रसे कृष्ण हय ताँर वश॥ 301॥

अनुवाद—श्रीवासादि जितने भी भक्त हैं, वे अपने-अपने भावोंके अनुरूप महाप्रभुकी सेवा करते हैं। श्रीवास पण्डित, श्रीगदाधर पण्डित, श्रीस्वरूप, श्रीरूप-सनातनादि गोस्वामीका श्रीकृष्णके प्रति जो-जो भाव है, श्रीकृष्ण उसी भावके द्वारा उन भक्तोंके वशीभूत होते हैं॥ 300-301॥

अनुभाष्य—इन सब (296-301) पद्योंमें श्रीनित्यानन्द प्रभु और श्रीअद्वैताचार्यकी परम चमत्कारमय गौरसेवा-भाव-वैचित्रीके तारतम्यका वर्णन हुआ है। (श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 11-13वें श्लोक)—

"भक्तरूपो गौरचन्द्रो यतोऽसौ नन्दनन्दनः।
भक्तस्वरूपो नित्यानन्दो व्रजे यः श्रीहलायुधः।
भक्तावतार आचार्योऽद्वैतो यः श्रीसदाशिवः।
भक्ताख्याः श्रीनिवासाद्या यतस्ते भक्तरूपिणः।
भक्तशक्तिर्द्विजाग्रण्यः श्रीगदाधरपण्डितः॥ 11॥
श्रीमद्विश्वम्भराद्वैतनित्यानन्दावधूतकाः ।
अत्र त्रयः समुन्नेया विग्रहाः प्रभवश्च ते।
एको महाप्रभुर्ज्ञेयः श्रीचैतन्यो दयाम्बुधिः।
प्रभू द्वौ श्रीयुतौ नित्यानन्दाद्वैतौ महाशयौ।
गोस्वामिनो विग्रहाश्च ते द्विजश्च गदाधरः।
पञ्चतत्त्वात्मका एते श्रीनिवासश्च पण्डितः॥ 12॥
यदुक्तं तत्र गोस्वामि श्रीस्वरूपपदाम्बुजैः।
"त्रयोऽत्र विग्रहा ज्ञेयाः प्रभवश्चात्र ते त्रयः।
एको महाप्रभुर्ज्ञेयो द्वौ प्रभु सम्मतौ सताम्॥"13॥

"यद्यपि श्रीस्वरूप दामोदर गोस्वामीने पञ्चतत्त्वके अर्थका विस्तृत वर्णन किया है, तथापि यहाँपर उसे संक्षेपमें लिखा जा रहा है—

जो श्रीनन्दनन्दन हैं, वे ही भक्तरूपमें श्रीगौरचन्द्र हैं। जो व्रजमें श्रीहलधर (श्रीबलदेव) प्रभु हैं, वे ही भक्तस्वरूपमें श्रीनित्यानन्द प्रभु हैं। जो सदाशिव हैं, वे ही भक्तावतार श्रीअद्वैताचार्य हैं। श्रीवासादि भक्तवृन्द ही भक्ताख्य अर्थात् शुद्धभक्तके रूपमें प्रसिद्ध हैं। द्विजश्रेष्ठ श्रीगदाधर पण्डित ही भक्तशक्ति हैं। यद्यपि पञ्चतत्त्वके अन्तर्गत आनेवाले श्रीमान् विश्वम्भर, श्रीअद्वैताचार्य और अवधूत श्रीनित्यानन्द—तीनों ही भगवद्-विग्रह अर्थात् विष्णुतत्त्व और महाप्रभावशाली होनेके कारण प्रभु हैं, तथापि इन तीनोंमेंसे दयाके सागर श्रीचैतन्यदेव 'महाप्रभु' तथा श्रीनित्यानन्द और श्रीअद्वैताचार्य 'प्रभु' के नामसे प्रसिद्ध हैं। (भक्तोंके द्वारा) ये गोस्वामी (अर्थात् श्रीचैतन्य गोसाईं, श्रीनित्यानन्द गोसाईं तथा श्रीअद्वैत गोसाईं) के नाम से भी जाने जाते हैं। अन्य दो तत्त्वोंमेंसे श्रीगदाधर 'द्विज' और श्रीनिवास 'पण्डित' के नामसे प्रसिद्ध हैं। श्रीस्वरूप दामोदर गोस्वामी पादने भी ऐसा ही कहा है कि यद्यपि भगवद्-विग्रह होनेके कारण ये तीनों ही 'प्रभु' हैं, तथापि साधुओंकी सम्मत रीतिके अनुसार उनमेंसे एक 'महाप्रभु' तथा अन्य दोनों 'प्रभु' हैं—ऐसा समझना चाहिये। (श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका 23-24वाँ श्लोक)—

"तस्य शिष्योऽभवच्छ्री
कलयामास शृङ्गारं यः शृङ्गारफलात्मकः॥ 23॥
अद्वैतः कलयामास दास्यसख्ये फले उभे।
श्रीमान् रङ्गपुरी ह्येष वात्सल्ये यः समाश्रितः॥ 24॥"

"श्रीईश्वरपुरी शृङ्गाररसके, श्रीअद्वैतप्रभु दास्य और सख्यरसके एवं श्रीरङ्गपुरी शुद्धवात्सल्यरसके सेवक थे।" चैःचः आदिलीला, 7/10-17 संख्या द्रष्टव्य है॥ 296-301॥

व्रजमें मुरलीधारी गोपबालक श्यामलीला, गौड़में ब्राह्मण-संन्यासी वेशधारी कीर्तन-विग्रह गौरलीला :—

तिँह श्याम,—वंशीमुख, गोपविलासी।
इहँ गौर—कभु द्विज, कभु त' संन्यासी॥ 302॥

अनुवाद—व्रजमें वे (श्रीकृष्ण) श्यामवर्णके हैं, उनके मुखपर वंशी सुशोभित होती है और वे गोपबालकके रूपमें विलास करते हैं। [वे ही श्रीकृष्ण] नवद्वीपमें [महाप्रभुके रूपमें] गौर वर्णके हुए हैं, ये कभी ब्राह्मण (गृहस्थ) और कभी संन्यासीकी लीला करते हैं॥ 302॥

गोपीभावयुक्त श्रीकृष्णका श्रीगौररूपमें
श्रीकृष्णप्रेमास्वादन :—

अतएव आपने प्रभु गोपीभाव धरि'।
व्रजेन्द्रनन्दने कहे 'प्राणनाथ' करि'॥ 303॥

अनुवाद—इसलिये स्वयं महाप्रभुने गोपीभावको अङ्गीकार किया है और वे व्रजेन्द्रनन्दनको अपना 'प्राणनाथ' मानते हैं॥ 303॥

रूपानुगजनोंके आनुगत्यके बिना श्रीगौरका
विप्रलम्भरस सुदुर्लभ :—

सेइ कृष्ण, सेइ गोपी,—परम विरोध।
अचिन्त्य चरित्र प्रभुर अति सुदुर्बोध॥ 304॥

अनुवाद—वे ही श्रीकृष्ण हैं और वे ही गोपी हैं, यह तो परस्पर परम विरोधी बात है, परन्तु महाप्रभुके अचिन्त्य चरित्रको समझना अत्यन्त कठिन है॥ 304॥

अनुभाष्य—चै:च: आदिलीला, 17/276-278 संख्या द्रष्टव्य है॥ 303-304॥

श्रीगौरके परमवैचित्र्य-चमत्कारमय
अचिन्त्यभाव तर्कसे अतीत :—

इथे तर्क करि' केह ना कर संशय।
कृष्णेर अचिन्त्यशक्ति एइ मत हय॥ 305॥

अनुवाद—इसमें तर्क करके कोई संशय मत करो, क्योंकि श्रीकृष्णकी अचिन्त्यशक्तिका प्रभाव इसी प्रकार है॥ 305॥

अचिन्त्य, अद्भुत कृष्णचैतन्य-विहार।
चित्र भाव, चित्र गुण, चित्र व्यवहार॥ 306॥

तार्किककी दुर्गति—"संश्यात्मा विनश्यति" :—

तर्के इहा नाहि माने, येइ दुराचार।
कुम्भीपाके पचे सेइ, नाहिक निस्तार॥ 307॥

अनुवाद—श्रीकृष्णचैतन्यकी लीलाएँ अचिन्त्य और अद्भुत हैं। उनके भाव, गुण और व्यवहार सभी आश्चर्यजनक हैं। जो दुराचारी कुतर्कसे इसको नहीं मानता, वह कुम्भीपाक नरकमें यातना भोगता है और वहाँसे उसका उद्धार नहीं होता है॥ 306-307॥

अनुभाष्य—'कुम्भीपाक'—एक विशेष प्रकारका नरक। पापी व्यक्तिको 'कुम्भी' नामके एक विशेषपात्र में पकाया जाता है। (भा: 5/26/13)—

"यस्तिह वा उग्रः पशुन् पक्षिणो वा प्राणत उपरन्धयति तमपकरुणं पुरुषादैरपि विगर्हितममुत्र यमानुचराः कुम्भीपाके तप्ततैल उपरन्धयन्ति॥"

"प्राणियोंका वध करनेवाले जीवको यमराज दण्डके रूपमें कुम्भीपाक नरकमें तप्त तेलमें राँधते हैं॥"307॥

महाभारतमें भीष्मपर्वमें (5/12)—

अचिन्त्याः खलु ये भावा न तांस्तर्केण योजयेत्।
प्रकृतिभ्यः परं यच्च तदचिन्त्यस्य लक्षणम्॥ 308॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है॥ 308॥

अमृतप्रवाह भाष्य—प्रकृतिसे अतीत जो तत्त्व है, उसका लक्षण ही [प्राकृत इन्द्रियों, मन और बुद्धिके द्वारा वह] अचिन्त्य है। तर्क तो प्राकृत है, इसलिये वह तत्त्वको स्पर्श नहीं कर सकता। इसलिये अचिन्त्यभावोंको समझनेके लिये तर्क मत करो॥ 308॥

इति अमृतप्रवाह-भाष्ये सप्तदश परिच्छेद।
सतरहवें अध्यायका अमृतप्रवाह-भाष्य पूर्ण हुआ।

अनुभाष्य—नदी-पर्वत-वनादि भूतलपर स्थित पदार्थोंके नामोंको श्रवण करनेकी इच्छा होनेपर धृतराष्ट्र उत्तरमें सञ्जयने कहा,—

ये भावाः अचिन्त्याः (प्राकृत-भोगमय-चिन्तातीताः) खलु (निश्चयं) तान् अचिन्त्यभावान् तर्केण न योजयेत् (ते हेतुभिः

न हन्तव्याः इत्यर्थः); यत् च प्रकृतिभ्यः परं (भिन्नम् अतीतम् अप्राकृतमिति यावत्) तत् एव अचिन्त्यस्य लक्षणम्।

श्लोक भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है॥ 308॥

श्रद्धावान्‌को ही सेवा-प्राप्ति :—

अद्भुत चैतन्यलीलाय याहार विश्वास।
सेइ जन याय चैतन्येर पद-पाश॥ 309॥

अनुवाद—अद्भुत चैतन्यलीलामें जिसका दृढ़ विश्वास है, वही व्यक्ति श्रीचैतन्य महाप्रभुके चरणकमलोंको प्राप्त कर सकता है॥ 309॥

प्रसङ्गे करिल एइ सिद्धान्तेर सार।
इहा येइ शुने, शुद्धभक्ति हय तार॥ 310॥

अनुवाद—प्रसङ्गवश मैंने सभी सिद्धान्तोंके सारको कहा है। इसे जो श्रद्धापूर्वक सुनता है, उसके हृदयमें शुद्धभक्ति उदित होती है॥ 310॥

पुनरावृत्ति :—

लिखित ग्रन्थेर यदि करि अनुवाद।
तबे से ग्रन्थेर अर्थ पाइबे आस्वाद॥ 311॥

अनुवाद—लिखित ग्रन्थका यदि अन्तमें संक्षेपरूपमें वर्णन किया जाय, तो ग्रन्थके सभी विषयोंका एक साथ आस्वादन किया जा सकता है॥ 311॥

भागवतमें श्रीव्यास-रीतिके अनुसार अध्याय-वर्णन :—

अतएव भागवते व्यासेर आचार।
कथा कहि' अनुवाद करे बार बार॥ 312॥

अनुवाद—इसलिये श्रीमद्भागवतमें श्रीव्यासदेवका ऐसा ही आचरण देखा जाता है। उन्होंने श्रीमद्भागवतके शेषमें उसके विषयका पुनः संक्षेपमें वर्णन किया है॥ 312॥

अनुभाष्य—श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यासने श्रीमद्भागवतके अन्तमें बारहवें स्कन्धके बारहवें अध्यायमें बावन श्लोकोंमें प्रारम्भसे अन्त तक सम्पूर्ण भागवतको जिस प्रकार प्रतिछायारूपमें (संक्षेपमें) वर्णन करके ग्रन्थ समाप्त किया है, उन महाजनके द्वारा प्रदर्शित पथका अनुसरण करते हुये ग्रन्थकार (श्रीकृष्णदास) ने भी श्रीचैतन्य महाप्रभुकी आदिलीलाको संक्षेपरूपमें पुनः वर्णन किया है॥ 312॥

संक्षेपमें अध्यायोंमें वर्णित विषयोंकी पुनारवृत्ति :—

ताते आदिलीलार करि परिच्छेद गणन।
प्रथम परिच्छेदे कैलुँ 'मङ्गलाचरण'॥ 313॥

अनुवाद—इसलिये मैं भी आदिलीलाके सभी अध्यायोंके विषयोंकी सूची गणना कर रहा हूँ। पहले अध्यायमें मैंने 'मङ्गलाचरण' किया गया है॥ 313॥

द्वितीय परिच्छेदे 'चैतन्यतत्त्व-निरूपण'।
स्वयं भगवान् येइ व्रजेन्द्रनन्दन॥ 314॥
तेँहो त' चैतन्य-कृष्ण—शचीर नन्दन।
तृतीय परिच्छेदे जन्मेर 'सामान्य' कारण॥ 315॥
तहिँ मध्ये प्रेमदान—'विशेष' कारण।
युगधर्म—कृष्णनाम-प्रेम-प्रचारण॥ 316॥

अनुवाद—दूसरे अध्यायमें चैतन्यतत्त्वका निरूपण किया है। व्रजेन्द्रनन्दन जो स्वयं भगवान् हैं, वे ही तो शचीनन्दन श्रीकृष्णचैतन्यके रूपमें अवतीर्ण हुए हैं। तीसरे अध्यायमें उनके जन्मका 'सामान्य' कारण कहा है, उसके मध्यमें प्रेमदानको विशेष कारण बतलाया है। श्रीकृष्णनाम और उसके द्वारा प्रेमका प्रचाररूपी युगधर्मका भी इस अध्यायमें वर्णन हुआ है॥ 314-316॥

चतुर्थे कहिलुँ जन्मेर 'मूल' कारण।
स्वमाधुर्य-प्रेमानन्दरस-आस्वादन॥ 317॥

अनुवाद—चौथे अध्यायमें महाप्रभुके जन्मका 'मूल' कारण अपने माधुर्य और प्रेमानन्दरसके आस्वादनको कहा है॥ 317॥

पञ्चमे 'श्रीनित्यानन्द'–तत्त्व निरूपण।
नित्यानन्द हैला राम रोहिणीनन्दन॥ 318॥

अनुवाद—पाँचवें अध्यायमें 'श्रीनित्यानन्द'-तत्त्वका निरूपण हुआ है, रोहिणीनन्दन श्रीबलराम ही अब श्रीनित्यानन्द प्रभुके रूपमें अवतीर्ण हुए हैं॥ 318॥

षष्ठ परिच्छेदे 'अद्वैत–तत्त्वे'र विचार।
अद्वैत–आचार्य—महाविष्णु–अवतार॥ 319॥

अनुवाद—छठे अध्यायमें 'श्रीअद्वैत-तत्त्व' का विचार हुआ है। श्रीअद्वैताचार्य महाविष्णुके अवतार हैं॥ 319॥

सप्तम परिच्छेदे 'पञ्चतत्त्वे'र आख्यान।
पञ्चतत्त्व मिलि' यैछे कैला प्रेमदान॥ 320॥

अनुवाद—सातवें अध्यायमें 'पञ्चतत्त्व' का वर्णन है। इन पाँच-तत्त्वोंने मिलकर कैसे सर्वत्र श्रीकृष्णप्रेमका दान किया, इसका वर्णन हुआ है॥ 320॥

अष्टमे 'चैतन्यलीला–वर्णन'–कारण।
एक कृष्णनामेर महा–महिमा–कथन॥ 321॥

अनुवाद—आठवें अध्यायमें श्रीकृष्णदास गोस्वामीने श्रीचैतन्यचरितामृत लिखनेका कारण कहा है। इसी अध्यायमें श्रीकृष्णनामकी महामहिमाकी कथा भी वर्णित है॥ 321॥

नवमेते 'भक्तिकल्पवृक्षेर वर्णन'।
श्रीचैतन्य–माली कैला वृक्ष आरोपण॥ 322॥

अनुवाद—नौवें अध्यायमें 'भक्तिकल्पवृक्ष' का वर्णन है। श्रीचैतन्य महाप्रभुरूपी मालीने इस वृक्षका आरोपण किया है॥ 322॥

दशमेते मूल–स्कन्धेर 'शाखादि–गणन'।
सर्वशाखागणेर यैछे फल–वितरण॥ 323॥

अनुवाद—दसवें अध्यायमें इस भक्तिकल्पवृक्षके मूल स्कन्धकी शाखाओं-उपशाखाओंकी गणना हुई है और उनके द्वारा प्रेमरूपी फलके वितरणका वर्णन हुआ है॥ 323॥

एकादशे 'नित्यानन्दशाखा–विवरण'।
द्वादशे 'अद्वैतस्कन्ध शाखार वर्णन'॥ 324॥

अनुवाद—ग्यारहवें अध्यायमें 'श्रीनित्यानन्दशाखा' का विवरण और बारहवें अध्यायमें 'श्रीअद्वैतस्कन्धकी शाखा' का वर्णन हुआ है॥ 324॥

त्रयोदशे महाप्रभुर 'जन्म–विवरण'।
कृष्णनाम–सह यैछे प्रभुर जनम॥ 325॥

अनुवाद—तेरहवें अध्यायमें महाप्रभुके 'जन्मका विवरण' हुआ है और कैसे सर्वत्र श्रीकृष्णनामके कीर्तनके साथ महाप्रभुका जन्म हुआ॥ 325॥

चतुर्दशे 'बाल्यलीला'र किछु विवरण।
पञ्चदशे 'पौगण्डलीला'र सङ्क्षेपे कथन॥ 326॥

अनुवाद—चौदहवें अध्यायमें कुछ 'बाल्यलीला' का वर्णन हुआ है और पन्द्रहवें अध्यायमें महाप्रभुकी 'पौगण्डलीला' का संक्षेपमें वर्णन किया है॥ 326॥

षोड़शे कहिलुँ 'कैशोरलीला'र उद्देश।
सप्तदशे 'यौवनलीला' कहिलुँ विशेष॥ 327॥

अनुवाद—सोलहवें अध्यायमें मैंने महाप्रभुकी 'कैशोरलीला' के उद्देश्यको बतलाया है। सतरहवें अध्यायमें 'यौवनलीला' का विशेष वर्णन किया है॥ 327॥

अनुभाष्य—313से 327पयार संख्यामें अध्यायोंकी गणना लिखी है—

पहले अध्यायमें—गुरु आदिके वन्दनरूपी मङ्गलाचरण।
दूसरे अध्यायमें—गौरतत्त्वनिर्देश मङ्गलाचरण।
तीसरे अध्यायमें—अवतारका सामान्य कारण; प्रेमदान।

चौथे अध्यायमें—अवतारका मूलकारण।
पाँचवें अध्यायमें—श्रीनित्यानन्दतत्त्व-निरूपण।
छठे अध्यायमें—श्रीअद्वैततत्त्व-निर्देश।
सातवें अध्यायमें—पञ्चतत्त्व-निर्देश और प्रचार।
आठवें अध्यायमें—उपक्रमणिका और नाम-महिमा।
नौवें अध्यायमें—भक्तिकल्पवृक्ष-वर्णन-प्रचार।
दसवें अध्यायमें—गौरगणोंकी गणना।
ग्यारहवें अध्यायमें—श्रीनित्यानन्द प्रभुके गणोंकी गणना।
बारहवें अध्यायमें—श्रीअद्वैताचार्य और श्रीगदाधरगणोंकी गणना।
तेरहवें अध्यायमें—गौरजन्मलीला।
चौदहवें अध्यायमें—बाल्यलीला।
पन्द्रहवें अध्यायमें—पौगण्डलीला।
सोलहवें अध्यायमें—कैशोरलीला।
सतरहवें अध्यायमें—यौवनलीला॥ 313-327॥

एइ सप्तदश प्रकार 'आदि-लीला'र प्रबन्ध।
द्वादश प्रबन्ध, ताते ग्रन्थ-मुखबन्ध॥ 328॥

अनुवाद—इस प्रकार सतरह अध्यायोंमें 'आदिलीला' का वर्णन है, इनमेंसे पहले बारह अध्यायोंमें आदिलीलाकी भूमिका है॥ 328॥

पञ्चप्रबन्धे पञ्चवयस चरित।
संक्षेपे कहिलुँ अति,—ना कैलुँ विस्तृत॥ 329॥
वृन्दावनदास इहा 'चैतन्यमङ्गले'।
विस्तारि' वर्णिला नित्यानन्द-आज्ञा-बले॥ 330॥

अनुवाद—शेष पाँच अध्यायोंमें महाप्रभुकी पाँच विभिन्न अवस्थाके अनुरूप (जन्म, बाल्य, पौगण्ड, कैशोर और यौवन) लीला-चरित्रका वर्णन है। मैंने आदिलीला अति संक्षेपमें कही है, इसे विस्तारमें नहीं कहा है, क्योंकि श्रीनित्यानन्द प्रभुकी आज्ञाके बलपर श्रीवृन्दावनदासने 'चैतन्यमङ्गल' में इनका विस्तारसे वर्णन किया है॥ 329-330॥

अनुभाष्य—आदिलीलामें सतरह अध्याय अथवा प्रबन्ध हैं, उनमेंसे पहले बारह अध्याय ग्रन्थकी भूमिका अथवा उपक्रमणिका मात्र हैं। बादके तेरहसे सतरह अध्याय तक 'जन्म', 'बाल्य', 'पौगण्ड', 'कैशोर' और 'युवा',— पाँच प्रकारकी अवस्थाकी कथा पाँच प्रबन्धोंके रूपमें पाँच अध्याय हैं॥ 329॥

श्रीगौरलीला अपार :—

श्रीकृष्णचैतन्यलीला—अद्भुत, अनन्त।
ब्रह्मा-शिव-शेष याँर नाहि पाय अन्त॥ 331॥

अनुवाद—श्रीकृष्णचैतन्यलीला तो अद्भुत-अनन्त है, जिसका ब्रह्मा-शिव-शेषादि भी अन्त नहीं पा पाते॥ 331॥

अनुभाष्य—चैःचः मध्यलीला, 21/10,12 संख्या और भागवत 2/7/41 एवं 10/14/7 आदि श्लोक द्रष्टव्य हैं॥ 331॥

श्रीगौरलीलाके श्रवण-कीर्तनकारीको
चरम मङ्गलकी प्राप्ति :—

येइ येइ अंशे कहे, येइ शुने धन्य।
अचिरे मिलिबे तारे श्रीकृष्णचैतन्य॥ 332॥

अनुवाद—जो उस अनन्त लीलाके जिस भी अंशको कहेगा अथवा जो उसे सुनेगा, उसे अति शीघ्र ही श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुके चरणोंकी प्राप्ति होगी॥ 332॥

श्रीकृष्णचैतन्य, अद्वैत, नित्यानन्द।
श्रीवासादि गदाधरादि यत भक्तवृन्द॥ 333॥

वृन्दावनवासी भक्तोंकी वन्दना :—

यत यत भक्तगण बैसे वृन्दावने।
नम्र हञा शिरे धरोँ ताँहार चरणे॥ 334॥

अनुवाद—श्रीकृष्णचैतन्य, श्रीनित्यानन्द प्रभु, श्रीअद्वैताचार्य; तथा श्रीवासादि और श्रीगदाधरादि जितने भक्त हैं तथा जो-जो भक्त वृन्दावनमें वास कर रहे हैं, अति विनीत भावसे मैं उन सबके चरणकमलोंमें अपने शीशको नत करता हूँ॥ 333-334॥

श्रीगुरु-प्रणाम :—

श्रीस्वरूप-श्रीरूप-श्रीसनातन।
श्रीरघुनाथदास, आर श्रीजीव-चरण॥ 335॥
शिरे धरि वन्दोँ, नित्य करोँ ताँर आश।
चैतन्यचरितामृत कहे कृष्णदास॥ 336॥

इति श्रीचैतन्यचरितामृते आदिखण्डे
यौवनलीलासूत्र-वर्णनं नाम सप्तदशपरिच्छेदः।

अनुवाद—श्रीस्वरूप दामोदर गोस्वामी, श्रीरूप गोस्वामी, श्रीसनातन गोस्वामी, श्रीरघुनाथदास गोस्वामी और श्रीजीव गोस्वामीके चरणकमलोंको अपने सिरपर धारण करते हुए, उनकी वन्दना करते हुए और नित्य उनकी कृपाकी आशा रखकर यह कृष्णदास चैतन्यचरितामृतका गान कर रहा है॥ 335-336॥

अनुभाष्य—'श्रीस्वरूप'—श्रीदामोदर-स्वरूप; चै:च: मध्यलीला, 10/102-127संख्या और अनुभाष्य द्रष्टव्य है॥ 335॥

इति अनुभाष्ये सप्तदश परिच्छेद।
सतरहवें अध्यायका अनुभाष्य पूर्ण हुआ।

श्रीचैतन्यचरितामृत आदिखण्डमें यौवनलीलासूत्र-वर्णन
नामक सतरहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।

इति आदिलीला समाप्ता॥
यह आदिलीला समाप्त हुई॥

श्लोक सूची

[वर्णक्रमानुसार प्रथम और तृतीय चरण]

अद्वैताङ्घ्र्यब्जभृङ्गांस्तान् 12/1
अचिन्त्याः खलु ये भावा 17/308
अनुवादमनुक्त्वा तु न 16/58
अमानिना मानदेन 17/31
अम्बुजमम्बुनि जातं 16/82
अश्वमेधं गवालम्भं 17/164
अस्त्वेवमङ्ग भजतां 8/19
अहो एषां वरं जन्म 9/46
आविष्कुर्वंति वैष्णवीमपि 17/281
ऊर्ध्वस्कन्धावधूतेन्दोः 11/4
एतावज्जन्मसाफल्यं देहिना 9/42
ओतं प्रोतमिदं यस्मिन् 13/77
कथञ्चन स्मृते यस्मिन् 14/1
कथञ्चिदाश्रयाद् येषां 10/1
कर्मणा मनसा वाचा 9/43
कलौ नास्त्येव नास्त्येव 17/21
कुमनाः सुमनस्त्वं हि 15/1
कृपासुधा-सरिद्यस्य 16/1
क्वाहं दरिद्रः पापीयान् 17/78
गोपीनां पशुपेन्द्रनन्दन 17/281
जीयात् कैशोर-चैतन्यो 16/3
ज्ञानतः सुलभा मुक्ति 8/17
तं श्रीमत्कृष्णचैतन्यदेवं 9/1
तदश्मसारं हृदयं 8/25
तया हि सहितः सर्वान् 15/27
तल्लीलावर्णने योग्यः सद्यः 13/1
तस्य श्रीकृष्णचैतन्य 11/4
तृणादपि सुनीचेन तरोरिव 17/31
त्रिह्रस्व-पृथु-गम्भीरो 14/15
दाता भोक्ता तत्फलानां 9/6
देवेरेण सुतोत्पत्तिं कलौ 17/164
द्वितीय-श्रीलक्ष्मीरिव 16/41
न गृहं गृहमित्याहुः 15/27
नत्वाखिलान् तेषु मुख्या 11/1
न विक्रियेताथ यदा 8/25
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो 17/76
न ह्यलब्धास्पदं किञ्चित् 16/58
ना साध्यति मां योगो 17/76
नित्यानन्द-पदाम्भोज 11/1
नीचगैव सदा भाति 16/1
नैतच्चित्रं भगवति 13/77
पञ्चदीर्घः पञ्चसूक्ष्मः 14/15
पौगण्ड-लीला चैतन्य 15/4
प्रकृतिभ्यः परं यच्च 17/308
प्रसभं नर्त्तते चित्रं 8/1
प्राणिनामुपकाराय यदेवेह 9/43
प्राणैरर्थैर्धिया वाचा श्रेय 9/42
प्रेमनाम-प्रदानैश्च गौरो 17/4
ब्रह्मबन्धुरिति स्माहं 17/78
मयानुमोदितः सोऽसौ 14/69
महत्त्वं गङ्गायाः 16/41
मालाकारः स्वयं कृष्ण 9/6
मुरभिदि तद्विपरीतं पाद 16/82
यवनाः सुमनायन्ते कृष्ण 17/1
यस्यां श्रीकृष्णचैतन्यो 13/19
यस्यानुकम्पया श्वापि 9/1
यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्य 8/58
रसालङ्कारवत् काव्यं 16/71
राजन् पतिर्गुरुरलं भवतां 8/19
राधायाः प्रणयस्य हन्त 17/293
रासारम्भविधौ निलीय 17/293
लक्ष्म्यार्च्चितोऽथ वाग्देव्या 16/3
लौकिकीमपि तामीश 14/5

वन्दे चैतन्यकृष्णस्य 14/5
वन्दे चैतन्यदेवं तं भगवन्तं 8/1
वन्दे श्रीकृष्णचैतन्य 10/7
वन्दे स्वैराद्भुतेहं तं 17/1
विद्यारम्भमुखा पाणिग्रहणा 15/4
विद्या–सौन्दर्य–सद्वेश 17/4
विस्मृते विपरीतं स्यात् 14/1
शाखारूपान् भक्तगणान् 10/7
श्रीचैतन्यपदाम्भोज 10/1
श्रीचैतन्यामरतरोर्द्वितीय 12/3
श्रीमदद्वैतचन्द्रस्य शाखा 12/3
सङ्कल्पो विदितः साध्व्यो 14/69
स प्रसीदतु चैतन्यदेवो 13/1
सर्वसद्गुणपूर्णां तां 13/19
सुजनस्येव येषां वै 9/46
सुमनोऽर्पणमात्रेण तं 15/1
सेयं साधनसाहस्रैर्हरि 8/17
स्याद्वपुः सुन्दरमपि 16/71
हरावभक्तस्य कुतो 8/58
हरेर्नाम हरेर्नाम हरे 17/21
हित्वाऽसारान् सारभृतो 12/1

प्रयोजनीय अंशकी पद्य-सूची

[वर्णक्रमानुसार प्रथम और द्वितीय चरण]

अ

अङ्के लञा शची ताँरे 14/10
अङ्गसेवा गोविन्देर दिलेन 10/141
अञ्जलि अञ्जलि भरि' 9/30
अ-कलङ्क गौरचन्द्र 13/91
अकिञ्चन प्रभुर प्रिय 10/66
अक्रूर बलि' प्रभु याँरे 10/76
अग्नि उल्का मोर मुखे 17/189
अचिन्त्य, अद्भुत कृष्ण 17/306
अचिन्त्य चरित्र प्रभुर 17/304
अचिरे मिलिबे तारे 17/332
अच्युतानन्द—अद्वैत 10/150
अच्युतानन्द-प्राय, चैतन्य 12/75
अच्युतानन्द—बड़ शाखा 12/13
अट्ट अट्ट हासे, करे 17/180
अतएव अवश्य आमि 17/265
अतएव आदिखण्डे 13/18
अतएव आपने प्रभु 17/303
अतएव आमि आज्ञा 9/36
अतएव गोवध करे बड़ 17/158
अतएव गोवध केह ना 17/163
अतएव जरद्गव मारे 17/161
अतएव तटे रहि' चाकि 12/94
अतएव ताँ-सबार वन्दिये 12/92
अतएव ताँ-सबारे करि' 10/6
अतएव दण्ड करि' 12/35
अतएव दिङमात्र इहाँ 15/33
अतएव दुइगणे दुँहार 11/15
अतएव प्रभु ताँरे बले 13/78
अतएव पुनः कहोँ 8/13
अतएव बाल्यलीला संक्षेपे 14/96
अतएव भज, लोक, चैतन्य 8/43
अतएव भागवते व्यासेर 17/312
अतएव 'विश्वरूप' नाम 13/76
अतएव शब्दालङ्कार 16/75
अतएव सब फल देह' 9/39
अतएव 'हरि' 'हरि' बले 13/24
अतएव हिन्दुमात्र ना करे 17/159
अतएव हैल ताँर 13/25
अतिथि-विप्रेर अन्न खाइल 14/37
अत्यन्त विरक्त, सदा 11/31
'अद्भुतगुणा'—एइ पुनराय 16/66
अद्भुत चैतन्यलीलाय याहार 17/309
अद्यापि याँहार कृपा-महिमा 11/11
अद्यापिह देख चैतन्य 8/22
अद्वैत आचार्य, आर पण्डित 13/55
अद्वैत-आचार्येर स्थाने 13/63
अद्वैत-आचार्य-गोसाञि 17/298
अद्वैत-आचार्य-भार्या 13/111
अद्वैत-आचार्य—महाविष्णु 17/319
अद्वैत पाइल विश्वरूप 17/10
अध्ययन-लीला प्रभुर दास 15/7
अनन्त आचार्य, कविदत्त 12/80
अनन्त चैतनलीला क्षुद्र 13/44
अनन्त चैतन्यभक्त ना 10/121
अनन्तदास, कानुपण्डित 12/61
अनन्त नित्यानन्दगण—के 11/57
अनन्त वैकुण्ठ-ब्रह्माण्ड 17/105
अनर्गल प्रेम सबार, चेष्टा 11/59
अनायासे पाइल सेइ 12/74
अनायासे भवक्षय, कृष्णेर 8/28
अनुपम, जीव, राजेन्द्रादि 10/85
अनुपम वल्लभ, श्रीरूप 10/84
अन्तरीक्षे देवगण 13/106
अन्तरे ईश्वर-चेष्टा, बाहिरे 11/10
अन्तरे जानिला प्रभु 16/22
अन्तरे विस्मित शची 14/30
अन्तर्धान कैला सङ्केत 17/282
अन्न-जल त्याग कैल 10/98
अन्यथा ये माने, तार 17/25
अन्य लोक नाहि जाने 17/87
अन्वेषिते आइला ताहाँ 17/283
अपत्य-विरहे मिश्रेर 13/73
अपरश याय गोसाञि 10/142
अपराध नाहि, कैले लोकेर 17/97
अमोघ पण्डित, हस्तिगोपाल 12/86
अयाचित-वृत्ति, किम्बा 17/29
अलङ्कार नाहि पड़, नाहि 16/92
अलौकिक ऐछे प्रभुर 10/59
अलौकिक प्रेम ताँर 11/24
अलौकिक वृक्ष करे 9/32
अल्पकाले हैला पञ्जी 15/6
अल्प दिने द्वादश-फला 14/94

अवतीर्ण हैते मने 13/52
अवश्य पाइबे तबे 17/33
अविचार काव्ये अवश्य 16/85
अविचारे देह दोष 14/29
'अविमृष्ट–विधेयांश'—एइ 16/61
'अविमृष्ट–विधेयांश'—दुइ 16/55
अष्ट कन्या क्रमे हैल 13/72
अष्टमास रहिल भिक्षा देन 10/156
अष्टमे 'चैतन्यलीला–वर्णन' 17/321
अष्टादश वत्सर रहिला 13/13
अष्ठि–वल्कल नाहि 17/85
असंख्य अनन्त गण 11/7
असंख्य अद्वैत–शाखा 12/65
असंख्य भक्तेर कराइला 13/62
असह्य वेदना, दुःखे ज्वलये 17/46
असारेर नामे इँहा नाहि 12/11

आ

आँखि मुदि' काँपि आमि 17/182
आउलाय सकल अङ्ग 8/23
आकाशे उड़िया याङ, पाङ 10/20
आगे अवतारिल ये गुरु 13/53
"आगे केन इहा, माता 14/33
आगे ता' करिब, शुन 9/20
आगे विस्तारिया ताहा 10/104
आगे सम्प्रदाये नृत्य करे 17/136
आचार्य कहे,—"इहाके 12/47
आचार्य–गोसाञि मने 12/53
आचार्य गोसाञि याँरे 10/44
आचार्य गोसाञिर शिष्य 8/70
आचार्य–गोसाञिरे प्रभु करे 17/66
'आचार्यरत्न'–नाम धरे 10/12
आचार्यरत्न, विद्यानिधि 13/55
आचार्य वैष्णवानन्द भक्ति 11/42
आचार्य–व्यवहार सब 12/28
आचार्यरत्न, श्रीनिवास 13/102
आचार्यरत्न, श्रीनिवास 13/108
आचार्यरत्नेर नाम 10/13
आचार्य शेखर ताँरे 17/118
आचार्य–स्थाने मातार 17/71
आचार्येर अभिप्राय 12/54
आचार्येर आज्ञा पाञा 13/111
आचार्येर आर पुत्र 12/27
आचार्येर दुःखे वैष्णव 12/24
आचार्येर मत येइ, सेइ 12/10
आचार्येर लज्जा–धर्म 12/49
आचार्येरे स्थापियाछे करिया 12/34
आजन्म आज्ञाकारी तेँहो 10/74
आजन्म निमग्न नित्यानन्देर 11/39
आजन्म सेविला तेँहो 12/13
आजि आमि क्षमा करि' 17/127
आजि ताँरे निवेदिब, करि' 16/96
आजि दिन भाल,—करिब 14/18
आजि बासा' याह, कालि 16/104
आज्ञा पाञा मिश्र कैल 16/17
आज्ञामाला पाञा आमार 8/77
आटचल्लिश वत्सर 13/8
आत्म–इच्छामृते वृक्ष सिञ्चि 9/38
आत्मपवित्रता–हेतु लिखिलाङ 1/57
आत्म लुकाइते प्रभु 14/33
आत्मवृत्ति करि' करे कुटुम्ब 10/50
आदिलीला–मध्ये प्रभुर 13/15
आदिलीला–सूत्र लिखि 13/51
आधुनिक आमार शास्त्र 17/169
आनन्दे विह्वल मन 13/102
आनन्दित हइया आइल 12/43
आनन्दित हञा सबे 12/26
आनिया नैवेद्य तारा 14/60
आपन–इच्छाय कैल 17/89
आपना शोधिते कहि 11/7
आपनि चन्दन परि' 14/51
आपनि निरभिमानी, अन्ये 17/26
आपने चैतन्यमाली स्कन्ध 9/11
आपने दुइ भाइ हैला 17/229
आपने महाप्रभु गाय याँर 10/18
आमाके प्रणति करे, हय 17/263
आमा देखि' लुकाइला 17/145
आमा सबार पक्षे इहा 14/53
आमा हैते प्रसादपात्र 12/44
आमार महिमा देख, ब्राह्मण 17/42
आमार लिखन येन शुकेर 8/78
आमार हृदय हैते गेला 13/85
आमारे पूजिले पाबे 14/66
आमारेह कभु येइ 12/45
आमि कहि,—'आमार 15/19
आमि त' करिब 15/15
आमि ना लओयाइले 17/261
आमि ना शिखाले 14/87
आमि बालक,—संन्यासेर 15/19
आम्रमहोत्सव प्रभु करे 17/88
आर अर्थालङ्कार आछे 16/78
आर एक दोष आगे 16/61
"आर एक प्रश्न करि 17/172
आर एक विप्र आइल 17/60
आर कोन उपाय नाहि 17/267

आर चब्बिश वत्सर कैल 13/11
आर दिन एक भिक्षुक 17/101
आर दिन प्रभुके कहे 17/61
आर दिन शिवभक्त शिव 17/99
आर दिने ज्योतिष 17/103
आर पुत्र—'स्वरूप' 12/27
आर म्लेच्छ कहे, शुन 17/201
आर म्लेच्छ कहे 17/194
आर यत भक्तगण 10/128
आर यत वृन्दावने 8/71
आर यदि कीर्त्तन 17/128
"आरे पापि, भक्तद्वेषि 17/51
आलिङ्गन करि' ताँरे 10/132
आवेशेते महाप्रभु वंशी 17/233
आसि' कहे,—'गेलुँ 17/189
आसि' कहे,—'हिन्दुर 17/204
आ–सिन्धुनदी–तीर 10/87
आसिया श्रीरूप–गोसाञि 10/157
आसि' रूप–सनातनेर 10/95
आस्ते–व्यस्ते पिता–माता 15/17
आस्ते व्यस्ते भक्तगण 17/251
आस्वादिया पूर्ण कैल 13/43
आस्वादिल एसब रस 10/60
आस्वादेन रामानन्द–स्वरूप 13/42

इ

इँहा सबार यैछे हैल 10/104
इँहा–सबार श्रीचरण 13/124
इच्छा नाहि, तबु बले 17/200
इत्यादिक पूर्वसङ्गी बड़ 10/127
इथि लागि' कृपार्द्र 8/10
इथे तर्क करि' केह 17/305
इथे दोष नाहि, आचार्य 12/34
इदं–शब्दे 'अनुवाद' 16/56
इहँ गौर—कभु द्विज 17/302
इह माटि, सेह माटि 14/28
इहा छाड़ि' कृष्ण यदि 17/280
इहा येइ शुने तार 17/226
इहा येइ शुने, शुद्धभक्ति 17/310
इहा विस्तारियाछेन दास 14/95
इहा शुनि' ता–सबार 14/59
इहा शुनि' दिग्विजयी 16/95
इहा शुनि' महाप्रभु अति 16/93
इहा शुनि' माताके कहिल 14/75
इहा हैते हबे दुइ 14/17
इहार मध्ये मालि–पाछे 12/67
इहार विचार नाहि जाने 9/29
इहाते विरोध नाहि, विरोध 16/81
इहाते सन्तुष्ट हबेन 15/20
'इहाँ विष्णुपादपद्मे गङ्गार 16/80
'इहोँ कृष्ण नहे 17/287

ई

ईश्वर–अचिन्त्यशक्त्ये 16/81
ईश्वरत्वे आचार्येरे करियाछे 12/31
ईश्वरपुरीर शिष्य—ब्रह्मचारी 10/138
ईश्वरपुरीर सङ्गे तथाइ 17/8
ईश्वर हइया कहाय महा 11/9
ईश्वरेर दैन्य करि' करियाछे 12/35

उ

उच्च करि' गाय गीत 17/207
उच्छिष्ट–गर्त्ते त्यक्त–हाण्डीर 14/73
उच्छिष्ट दिया नारायणीर 17/230
उच्छिष्ट–मार्जन आर पाद 10/155
"उठह, गोपाल—बल 12/25
उठिल गोपाल प्रभुर स्पर्श 12/26
उठिल वैष्णव सब करि 17/223
उडुम्बर–वृक्ष येन फले 9/25
उद्धत लोक भाङ्गे काजीर 17/142
उन्मादेर चेष्टा करे 13/40
उपमालङ्कार गुण, किछु 16/46
उपरि उपरि शाखा 9/17
उर्द्धबाहु करि' कहोँ 17/32

ऋ

ऋण शोधिबारे चाहि 12/32

ए

एइ आज्ञा कैल यदि 9/47
एइ आदिलीलार कैल 17/274
एइ कृपा कर,—येन 17/220
एइ ग्रन्थ लेखाय मोरे 8/78
एइ त' करिबे वैष्णव 14/17
एइ त' कहिल ग्रन्थारम्भे 13/6

एइ त' कहिलाङ आचार्य 12/76
एइ त' कहिलुँ प्रेमफल 9/54
एइ त' कैशोर–लीला 16/4
एइ त' निश्चय करि' आइल 10/95
एइ त' पौगण्ड–लीलार 15/31
एइ त' प्रस्तावे आछे बहुल 12/55
एइ त' संक्षेपे कहिलाङ 12/88
एइ तिन शाखा वृक्षेर 10/84
एइ तिन स्कन्धेर कैलुँ 12/90
एइ दुइ–घरे प्रभु एकादशी 10/71
एइ दुइजनेर सूत्र देखिया 13/17
"एइ देख कुञ्जेर भितर 17/284
एइ देख, नखचिह्न आमार 17/186
एइ दृढ़ युक्ति करि' 17/268
एइ नव मूल निकसिल 9/15
एइ नव मूले वृक्ष 9/16
एइ नव मूले वृक्ष 9/15
एइ पञ्चदोषे श्लोक कैल 16/68
एइ पञ्चपुत्र तोमार—मोर 10/134
एइ पापे नवद्वीप हइबे 17/211
एइ पितार वाक्य शुनि' 12/14
एइमत आचार करे भक्ति 17/30
एइमत कीर्त्तन करि' 17/139
एइ मत चापल्य सब 14/61
एह मत दुँहार कथा 17/151
एइ मत नाना लीला 15/22
एइमत नृत्य हइल चारि 17/120
एइमत प्रतिदिन फले 17/86
एइ मत बङ्गे प्रभु 16/20
एइ मत बङ्गेर लोकेर 16/19
एइ मत बारमास कीर्त्तन 17/88
एइ मत भक्तयति 13/103
एइ मत भक्तिवृक्षे 9/25
एइमत लीला दुँहे 14/70
एइमत वैष्णव कारे 17/29
एइ मत शिशुलीला करे 14/93
एइमत संख्यातीत चैतन्य 10/159
एइमत सब शाखा 10/16
एइ मते काजीरे प्रभु 17/226
एइमते दुँहे करेन धर्मेर 14/90
एइमते नाना छले ऐश्वर्य 14/36
एइमते निज–घरे गेला 16/105
एइ 'मध्यलीला'—नाम 13/37
एइ मालाकार खाय एइ 9/51
एइ मालीर—एइ वृक्षेर 10/3
एइ मासे पुत्र हबे 13/88
एइ लागि' श्लोकेर अर्थ 16/57
एइ शिक्षा सबाकारे, सबे 12/53
एइ शिशु सर्वलोके करिबे 14/16
एइ शिशु अङ्गे देखि 14/14
"एइ श्लोकेर अर्थ कर" 16/42
एइ सप्तदश प्रकार 'आदि 17/328
एइ सब चन्द्रोदये तमः 13/4
एइ सब ना माने येबा 8/7
एइ सब महाशाखा—चैतन्य 10/79
एइ सब मोर निन्दा 17/261
एइसब लीला करे शचीर 17/87
एइ सर्वशाखा पूर्ण—पक्व 11/58
एक 'अद्वैत' नाम, आर 9/21
एक आम्रबीज प्रभु अङ्गने 17/80
एक एक शाखार शक्ति 10/162
एक 'कृष्णनामे' करे 8/26
एक कृष्णनामेर फले 8/28
एक कृष्णनामेर महा 17/321
एकजनेर पेट भरे—खाइले 17/83
एकदिन गोपीभावे गृहेते 17/247
एकदिन नैवेद्य–ताम्बुल 15/16
एकदिन प्रभु विष्णुमण्डपे 17/115
एकदिन प्रभु सब भक्तगण 17/79
एक दिन बले किछु 17/47
एकदिन प्रभु श्रीवासे आज्ञा 17/90
एकदिन महाप्रभुर नृत्य 17/243
एकदिन मातार पदे करिया 15/8
एकदिन मिश्र पुत्रेर चापल्य 14/83
एकदिन वल्लभाचार्य–कन्या 14/62
एकदिन विप्र, नाम 17/37
एकदिन शची खइ–सन्देश 14/24
एकदिन शची–देवी पुत्रेरे 14/72
एक दिन श्रीवासेर मन्दिरे 17/227
एक दोषे सब अलङ्कार 16/69
एक पड़ुया आइल 17/248
एक पादे नाहि, एइ 16/67
एक फल खाइले रसे 17/85
एकफलेर मूल्य करि' ताहा 9/28
एक ब्राह्मणी आसि' 17/243
एक–भावे चब्बिश प्रहर 10/17
एक श्लोकेर अर्थ यदि 16/39
एक श्वेतकुष्ठे यैछे 16/70
एकला उठाञा दिते हय 9/35
एकला मालाकार आमि 9/34
एकला मालाकार आमि 9/37
एकला वा कत फल 9/34
एकादशे 'नित्यानन्दशाखा 17/324
एकैक शाखाते उपशाखा 9/19
एकैक–शाखाते लागे 10/160
एत कहि आचार्य ताँरे 12/43
एत कहि' सिंह गेल 17/186
एत कहि' सन्ध्याकाले 17/135
"एतकाल प्रकटे केह ना 17/126

एत चिन्ति' लैला प्रभु 9/8
एत चिन्ति' विवाह करिते 15/26
एत जानि' चन्द्रे राहु 13/92
एत भावि' कहे,—"शुन 16/91
एत बलि' काजी गेल 17/129
एत बलि' काजी निज 17/187
एत बलि' गेला प्रभु 17/54
एत बलि' गेला शची 14/25
एत बलि' जननीर 14/35
एत बलि' दुँहे रहे 13/86
एत बलि नमस्करि' गेला 17/289
एत बलि' भारती गोसाञि 17/272
एत बलि' श्रीवास करिल 17/98
एत बलि' सबे ताँरे 17/287
एत शुनि' काजीर दुइ 17/219
एत शुनि' ता सभारे 17/203
एत शुनि' द्विज गेला 14/91
एत शुनि' महाप्रभु हासिते 12/46
एत शुनि' महाप्रभु हासिया 17/216
एत शुनि' महाप्रभुर हइल 17/50
एथा नवद्वीपे लक्ष्मी विरहे 16/20
"एथा हैते विश्वरूप मोरे 15/18
एबे कहि चैतन्य–लीला 13/6
एबे कहि बाल्यलीला 14/4
एबे तुमि शान्त हैले 17/147
एबे ये उद्यम चालाओ 17/126
एबे ये ना कर माना 17/174
एबे शुन, फलदाता ये 9/54
एबे शुन मुख्य–शाखार 10/3
एबे से जानिलाङ, आर 14/34
ए वृक्षेर अङ्ग हय 9/33
एसब जीवेरे अवश्य 17/264
एसब दुर्जनेर कैछे 17/262
ए–सब ना माने 8/6
एसब पाषण्डी तबे 17/267
एसब–प्रसादे लिखि 9/5
ए सब लीला वर्णियाछेन 16/109

ऐ

ऐछे आर शाखा–उपशाखार 12/88
ऐछे कर्म ना करिह 12/52
'ऐछे कर्म हेथा कैल 17/43
ऐछे ग्रन्थ करि' तेँहो 8/40
ऐछे देवेर वरे केह हय 16/44
ऐछे प्रभु शची–घरे 13/122
ऐछे यदि पुनः कर 17/185
ऐछे शची–जगन्नाथ 13/119

ओ

ओरे मूढ़ लोक, शुन 8/33

क

कंसारि, परमानन्द, पद्मनाभ 13/57
कंसारि सेन, रामसेन 11/51
कत दिन प्रभु चित्ते 15/25
कतदिन रहि' मिश्र गेला 15/23
कत दिने कैल प्रभु 16/8
कत दिने मिश्र पुत्रेर हाते 14/94
कथा कहि' अनुवाद करे 17/312
कथाय सभा उज्ज्वल करे 8/64
कन्यागण आइला ताँहा 14/48
कन्यागण–मध्ये प्रभु 14/49
कन्या मागि' विवाह दिते 15/11
कन्यारे कहे,—"आमा पूज 14/50
कपाट दिया कीर्त्तन करे 17/35
कभु दक्षिण, कभु गौड़ 13/12
कभु दुर्गा, लक्ष्मी हय 17/242
कभु पुत्रसङ्गे शची करिला 14/76
कभु प्रभु करेन ताँरे 17/299
कभु भक्ति ना देन 8/18
कभु भेद देखि, एइ 17/113
कभु मृदुहस्ते कैल 14/45
कभु शिशु–सङ्गे स्नान 14/48
कमलाकर पिप्पलाइ 11/24
'कमलाकान्त विश्वास' 12/28
'कमले गङ्गार जन्म' 16/79
कराइल जातकर्म 13/108
कलानिधि, सुधानिधि 10/133
कलार पात उपरे थुइल 17/39
कलिकाले तैछे शक्ति 17/163
कलिकाले नामरूपे कृष्ण 17/22
कल्पित आमार शास्त्र 17/170
कवि कहे,—"कह देखि 16/53
कवि कहे,—"ये कहिले 16/49
कविचन्द्र, आर कीर्त्तनीया 10/109
कवित्व–करणे शक्ति 16/102
कवि रात्रे कैल सरस्वती 16/105
कह तोमार श्लोके किवा 16/47

कहिते चाहये किछु ना 16/88
कहिते लागिला प्रभु 17/216
कहिते लागिला लोके 17/132
कहिते, शुनिते ऐछे 17/240
काजी कहे,—"आज्ञा 17/152
काजी कहे,—"इहा 17/11
काजी कहे,—"तुमि 17/146
काजी कहे,—"तोमार 17/155
काजी कहे,—"मोर 17/222
काजी कहे,—"यबे 17/178
काजीगणेर मुखे येँह 10/53
काजी–पाशे आसि' सब 17/124
काजी बले,—"सबे 17/175
काजीर भये स्वच्छन्द 17/131
काजीरे बसाइला प्रभु 17/144
काजीरे विदाय दिल 17/225
काटिलेइ तरु येन किछु 17/28
कान्दिया बलेन शिशु 14/27
कायमनोवाक्ये करे 8/62
कार पदचिह्न घरे, ना 14/8
काला–कृष्णदास बड़ 11/37
काशीमिश्र, प्रद्युम्नमिश्र 10/131
काशीश्वर गोसाञि शिष्य 8/66
काष्ठ–पाषाण द्रवे याहार 11/19
काष्ठेर पुत्तली येन कुहके 8/79
काँहा तुमि सर्वशास्त्रे 16/34
काहाँ आमि सबे शिशु 16/34
काहाके वा स्तुति करे 14/81
कि–कारणे लीला,—इहा 15/22
किछुमात्र करि' कहि' 12/77
किन्तु ताँर दैवे किछु 12/32
किन्तु सर्वलोक देखि' 13/67
कि पण्डित, कि तपस्वी 12/72
किबा कोलाहल करे 14/81
किशोर–वयसे आरम्भिला 13/31
कीर्त्तन करिते प्रभु करिला 17/224
कीर्त्तन करिते प्रभु, आइला 17/89
कीर्त्तन करिलुँ माना 17/178
कीर्त्तन ना वर्ज्जिया घरे 17/191
कीर्त्तन शुनि' बाहिरे तारा 17/36
कीर्त्तने नर्त्तन करे बड़ 12/20
कीर्त्तनेर कैल प्रभु तिन 17/135
कीर्त्तनेर ध्वनिते काजी 17/141
कुम्भीपाके पचे सेइ 17/307
कुलाधिदेवता मोर 8/80
कुलीनग्रामवासी सत्यराज 10/80
कुलीनग्रामीर भाग्य कहेन 10/83
कृतघ्न हइला, ताँरे 12/68
कृपा करि' कर मोर 17/270
कृपा करि' कर यदि 16/35
कृष्ण अवतरि' करेन 13/69
कृष्ण अवतारिते आचार्य 13/70
कृष्ण अवतारिया कैला 17/298
कृष्णकथा, कृष्णपूजा 13/66
कृष्ण–कृपा नाहि तार 8/7
'कृष्ण' 'कृष्ण' 'हरि' 13/92
कृष्णदास–नाम शुद्ध 10/145
कृष्णदास ब्रह्मचारी 12/84
कृष्णदास वैद्य, आर 10/109
'कृष्णनाम' करे अपराधेर 8/24
कृष्णनाम–बीज ताहे ना 8/30
कृष्णनाम–सह यैछे प्रभुर 17/325
कृष्णनामे भासाइल 13/30
कृष्ण देखि' गोपी कहे 17/286
"कृष्णनाम ना लओ केने 17/249
कृष्ण नाहि माने, ताते 8/9
कृष्णपूजा करे तुलसी 13/70
कृष्णप्रेममय–तनु, उदार 8/59
कृष्णप्रेम–लीलामृते 13/13
कृष्णप्रेमा दिते, निते 11/26
कृष्णप्रेमामृत वर्षे, ये 11/30
कृष्णप्रेमे पुलकाश्रु–विह्वल 8/22
कृष्ण–बलराम दुइ 13/78
कृष्ण बलिले अपराधीर 8/24
कृष्णभक्ति पाय, ताँरे 11/29
कृष्णमिश्र–नाम आर 12/18
कृष्ण यदि छुटे भक्ते 8/18
कृष्णलीला भागवते कहे 8/34
कृष्णवश–हेतु एक 17/75
कृष्णसङ्ग देह' मोरे 17/21
कृष्णस्मृति बिना हय 12/51
'कृष्ण' 'हरि' नाम 13/23
कृष्णेर अचिन्त्यशक्ति 17/305
कृष्णेर आह्वान करे सघन 13/71
कृष्णेर कीर्त्तन करे नीच 17/211
कृष्णेर ये साधारण सद्गुण 8/57
कृष्णेर वियोगे यत प्रेम 13/43
"के आछिलुँ पूर्वजन्मे 17/104
के करिते पारे ताँहा 12/93
"केने चुरि कर, केने 14/42
केने पर–घरे याह 14/42
केमने ए सब अर्थ करिले 16/92
केमने ए सर्वलोकेर 13/68
केबा आसे केबा याय 13/107
के वर्णिते पारे, ताहा 13/44
केवल ए गण–प्रति 12/71
केवल नीलाचले प्रभुर 10/123
'केवल'–शब्दे पुनरपि 17/24
केशव भारती आइला 17/268

केशव भारती, आर 13/54
केह करिवारे नारे 10/5
केह कीर्त्तन ना करिह 17/127
केह केह—कृष्णदास 17/198
केह गड़ागड़ि याय, केह 9/50
केह त' आचार्येर आज्ञाय 12/9
केह पाय, केह ना पाय 9/35
केह—हरिदास, सदा बले 17/199
कैशोर–लीलार सूत्र करिल 17/3
कोटिजन्म एइ मते कीड़ाय 17/51
कोटि जन्म हबे तोर 17/52
कौटिल्य–मात्सर्य–हिंसा 8/56
कोन कन्या पलाइल नैवेद्य 14/57
"कोन किछु जाने, किबा 14/59
कोन पाके सेइ पत्री 12/30
कोन वाञ्छा पूरण लागि' 13/52
कोन् बले कर तुमि 17/154
कोन् वा मानुष हय 17/256
क्रन्दनेर छले बलाइल 14/22
क्रमे आमि कहि, शुन, 16/॥54
क्रु
क्रु
क्रोधावेशे प्रभु तारे कैल 17/67
क्रोधावेशे बले तारे तर्ज्जन 17/50
क्रोधे कन्यागण कहे, 14/52
क्रोधे सन्ध्याकाले काजी एक 17/125

क्ष

क्षुधा लागे यबे, तबे 14/34

ख

खइ–सन्देश–अन्न, यतेक 14/28
खण्डवासी मुकुन्ददास, 10/78
खण्डिबे संसार–दुःख 8/43
खण्डिल ताहार चित्ते सब 17/65
खण्डिलेक दुःख–शोक 13/107
खाइया नैवेद्य तारे इष्टवर 14/60
खाइया हउक् लोक 9/39
खाटे बसि' प्रभु कैल 17/11
खाटे बसि' भक्तगणे दिल 17/242
खोला–बेचा श्रीधर प्रभुर 10/67

ग

गङ्गाजल–पात्र आनि' 17/116
'गङ्गाते कमल जन्मे' 16/79
गङ्गादास पण्डित, गुप्त 13/61
गङ्गादास पण्डित–स्थाने 15/5
गङ्गा–दुर्गा—दासी मोर 14/50
गङ्गाघाटे वृक्षतले रहे 17/47
गङ्गामन्त्री, मामु ठाकुर 12/80
'गङ्गार महत्त्व'—श्लोके 16/56
गङ्गार महत्त्व—साध्य 16/83
गङ्गास्नान कर याइ' 14/74
गङ्गास्नान करि' पूजा 14/49
गङ्गारे वन्दन करि' 16/29
गणिते लागिला सर्वज्ञ 17/104
गणि' ध्याने देखे सर्वज्ञ 17/105
गदाधर, जगदानन्द, शङ्कर 10/125
गदाधर दास गोपीभावे 11/17
गम्भीर चैतन्य–लीला के 14/70
गया हैते आसिया चालाय 17/206
गरुड़ पण्डित लय श्रीनाम 10/75
गार्हस्थ्ये प्रभुर लीला—'आदि' 13/14
गीता–भागवत कहे आचार्य 13/64
गुण्डिचा–मन्दिरे महाप्रभुर 12/20
गुप्ते बोलाइल नीलाम्बर 14/12
गुरुर सम्बन्धे मान्य कैल 10/140
गृहस्थ हइया करि पितृ 15/20
गृहस्थ हइलाम, एबे चाहि 15/25
गृहिणी बिना गृहधर्म ना 15/26
गृहे दुइ जन देखि' 14/7
गो–अङ्गे यत लोम, तत 17/166
गोपगृहे जन्म छिल, गाभीर 17/111
गोप–वेश, त्रिभङ्गिम, मुरली 17/279
गोपाल आचार्य आर विप्र 10/114
गोपाल गोविन्द राम 17/122
गोपिका–भावेर एइ 17/278
गोपिकार भाव नाहि याय 17/280
गोपीगण देखि' कृष्णेर 17/285
'गोपी' 'गोपी' नाम लय 17/247
'गोपी' 'गोपी' नाम शुनि' 17/248
'गोपी' 'गोपी' बलिले 17/249
गोपीनाथ सिंह—एक चैतन्येर 10/76
गोपी–भाव याते प्रभु 17/277
गोवर्धने त्यजिब देह भृगुपात 10/94
गोविन्द, माधव, वासुदेव 10/115
गोविन्द, श्रीरङ्ग, मुकुन्द 11/51
गोविन्देर आज्ञाय सेवा 10/144
गोविन्देर प्रियसेवक ताँर 8/66
गोविन्देर सङ्गे सेवा करे 10/143
गोविन्देरे आज्ञा दिल,—"इँहा 12/36
गोसाञिदास आनि' माला 8/76

गोसाञिदास पूजारी करे 8/74
गौड़देश–भक्तेर कैल संक्षेप 10/121
गौड़े पूर्वे भृत्य प्रभुर प्रिय 10/149
गौरकथा बिना ताँर 8/68
गौरचन्द्र–बले लोक प्रश्रय 17/140
गौरचन्द्र बिना नाहि 10/11
गौरप्रभु दयामय, ताँरे 13/122
गौरलीलामृत–सिन्धु—अपार 12/93
'गौरहरि' बलि' तारे हासे 13/25
गौराङ्गेर शेषलीला वर्णिवार 8/65
ग्रन्थ–बाहुल्येर भये नारि 12/55
ग्रन्थ–विस्तार–भये छाड़िला 13/49
"ग्राम–सम्बन्धे आमि तोमार 17/48
ग्राम–सम्बन्धे 'चक्रवर्त्ती' हय 17/148
ग्राम–सम्बन्धे हओ तुमि आमा 14/52
ग्रामेर ठाकुर तुमि, सब 17/213

घ

घटी एके शत श्लोक 16/36
घरे आइला प्रभु बहु 16/23
घरे गिया सब लोक 17/131
घरे घरे सङ्कीर्त्तन करिते 17/121
घरे पाठाइया देय धन 13/82
घरे बसि' चिन्तेन ता' 17/259

च

चक्रपाणि आचार्य, आर 12/58
चक्रवर्ती शिवानन्द सदा 12/87
चतुर्थ–चरणे चारि 'भ' 16/75
चतुर्थे कहिलुँ जन्मेर 'मूल' 17/317
चतुर्द्दशे 'बाल्यलीला'र 17/326
चतुर्भुज मूर्त्ति करि' 17/286
चतुर्विध भक्त–भाव करे 17/275
चन्द्रशेखर–गृहे कैल 10/154
चन्द्रशेखर वैद्य, आर 10/152
चब्बिश वत्सर ऐछे 13/33
चब्बिश वत्सर छिला करिया 13/34
चब्बिश वत्सर प्रभु कैल 13/10
चब्बिश वत्सर शेषे करिया 13/11
चमत्कार हैया लोक 13/93
चरणेर धूलि सेइ लय 17/244
चलिते चरणे नूपुर बाजे 14/78
चुरि करि' द्रव्य खाय 14/40
चैतन्य–गोसाञि बैसे 12/18
"चैतन्य गोसाञिर गुरु 12/14
चैतन्य–गोसाञिर भक्त रहे 11/13
चैतन्य–गोसाञिर यत 10/4
चैतन्य–गोसाञिर लीला 16/110
चैतन्यचन्द्रेर लीला अनन्त 8/46
चैतन्य–चरण बिनु नाहि 10/52
चैतन्यचरण बिनु नाहि 10/36
चैतन्य–चरिते ताँर 8/61
चैतन्यचरिते तेँहो अति 8/67
चैतन्य–चापल्य देखि' प्रेमे 14/71
चैतन्यदास, रामदास, आर 10/62
चैतन्य ना मानिले तैछे 8/9
चैतन्य–निताइर याते 8/36
चैतन्य–नित्यानन्द गाय 11/11
चैतन्य–नित्यानन्द भज 8/13
चैतन्य–नित्यानन्दे ताँर 8/61
चैतन्य–नित्यानन्दे नाहि 8/31
चैतन्य–पार्षद—श्रीआचार्य 10/30
चैतन्यभक्ति–मण्डपे 11/10
चैतन्य–मङ्गल' येँहो 11/54
चैतन्यमङ्गल शुने यदि 8/38
'चैतन्यमङ्गले' कैल विस्तारित 15/7
'चैतन्यमङ्गले' सर्वलोके 15/33
चैतन्य–महिमा याते जानिबे 8/33
चैतन्यमालीर कहि लीला 12/92
चैतन्य–मालीर कृपाजलेर 12/5
चैतन्य–रहित देह—शुष्क 12/70
चैतन्य–लीलाते व्यास 11/55
चैतन्यलीलाते 'व्यास'—वृन्दावन 8/82
चैतन्य–लीलार व्यास 8/34
चैतन्य–लीलार व्यास,—दास 13/48
चैतन्य–विमुख येइ, तार 12/72
चैतन्य–विमुख येइ सेइ 12/71
चैतन्येर शेष–लीला 8/48
चारि दण्ड निद्रा, सेइ 10/102
चारि भाइर दास–दासी 10/9
चिकित्सा करेन यारे 10/51
चिह्न देखि' चक्रवर्त्ती 14/13
चित्र भाव, चित्र गुण 17/306
चित्रवर्ण पट्टसाड़ी 13/113
चिरकालेर पड़ुया जिने 15/6
चोरे लञा गेल प्रभुके 14/38
चौद्द भुवनेर गुरु—चैतन्य 12/16
चौद्दशत छय शके शेष 13/80
चौद्दशत पञ्चान्ने हइल 13/9
चौद्दशत सात शके जन्मेर 13/9
चौद्दशत सात शके 13/89

ज

जगत व्यापिया मोर हबे 9/40
जगत व्यापिल तार के 9/23
जगत व्यापिल तार नहिक 9/24
जगत् आनन्दमय 13/101
जगत् भरिया लोक बले 13/94
जगते यतेक जीव, तार 10/42
"जगद्गुरुते तुमि कर ऐछे 12/15
जगदीश पण्डित, आर हिरण्य 10/70
जगन्नाथ आचार्य प्रभुर प्रिय 10/108
जगन्नाथ कर, आर कर 12/60
जगन्नाथ, जनार्द्दन 13/58
जगन्नाथ देखिते आगे 10/141
जगन्नाथ तीर्थ, विप्र 10/114
जगन्नाथ मिश्र कहे,—"स्वप्न 13/84
जगन्नाथमिश्र–पत्नी शचीर 13/72
जगन्नाथ मिश्रवर—पदवी 13/59
जगन्नाथ–शचीर देहे 13/80
जगाइ मधाइ पर्यन्त 8/20
जड़लोक बुझाइते पुनः 17/23
जन्म–बाल्य–पौगण्ड 13/22
जन्म सार्थक करि' कर 9/41
जन्मिला चैतन्यप्रभु 13/21
जय श्रीमाधवपुरी कृष्णप्रेमपूर 9/10
जरद्गव हञा युवा हय 17/162
जल–गोमय दिया सेइ 17/44
जल पान करिया नाचे 17/117
जलाभावे कृश शाखा 12/69
जाति–अनुरोधे तबु सेइ 17/170
जानि कार घरे धन 17/199
जानि वा ना जानि 9/5
जानि—सरस्वती मोरे 16/89
जाह्नवीते जलकेलि करे 16/7
जितामित्र, काष्ठकाटा 12/83
जियाइते पारे यदि, तबे 17/160
जिह्वा कृष्णनाम करे, ना 17/202
जीवितेइ मृत सेइ, मैले 12/70
जीयात् कैशोर–चैतन्यो 16/3
ज्योतिर्मय देह, गेह 13/81
ज्योतिर्मय–धाम मोर 13/84
ज्योत्सनावती रात्रि, प्रभु 16/28

ज्ञ

ज्ञान–कर्म निन्दि' करे 13/64
ज्ञान–कर्म–योग–धर्मे नहे 17/75
ज्ञान–योग–तप आदि 17/24
ज्ञान, योग, तपो–धर्म 13/65

झ

झंझावात–प्राय आमि 16/43

ठ

ठेङ्गा लञा उठिला प्रभु 17/250

ड

डाकिनी–शाँखिनी हैते 13/117

ढ

ढक्कावाद्ये नृत्य करे 11/32

त

तत्त्व कहि' कैल शचीर दुःख 16/23
ततक्षणे जन्मिया वृक्ष बाड़िते 17/80
तथा नाना चमत्कार 14/21
तथापि खण्डिबे दुःख 8/11
तथापि दाम्भिक पड़ुया नम्र 17/258
तथापि पितार धर्म—पुत्रके 14/89
तथापि भूमिष्ठ नह 13/87
तथा याह, तेँहो यदि 17/57
तथा हैते यबे कुलिया 17/55
तपन आचार्य, आर 10/148
तपन–मिश्रेर घरे भिक्षा 10/154
तबु त' ना पाय कृष्णपदे 8/16
तबु यदि प्रेम नहे, नहे 8/29
तबु श्रीवासेर चित्ते ना 17/228
तबे आचार्य–गोसाञिर आनन्द 17/68
तबे आचार्येर घरे कैल 17/241
तबे आमि प्रीतिवाक्य कहिल 17/214

तबे कत दिने कैल पद 14/23
तबे कत दिने प्रभुर 14/21
तबे जानि, अपराध ताहाते 8/30
तबे त' करिल प्रभु 16/25
तबे त' करिला प्रभु 17/8
तबे त' करिला सब भक्ते 17/230
तबे त' द्विभुज केवल 17/15
तबे त' नगरे हइबे 17/192
तबे त' सकल लोकेर 13/69
तबे तोमार हबे एइ 17/58
तबे दिग्विजयी व्याख्यार 16/40
तबे दुइ भाइ ताँरे मरिते 10/96
तबे नित्यानन्द–गोसाञि 17/16
तबे नित्यानन्द–स्वरूपेर 17/12
तबे निस्तारिल प्रभु जागाइ 17/17
तबे पुत्र जनमिल 'विश्वरूप' 13/74
तबे प्रभु माता–पितार कैल 15/13
तबे प्रभु श्रीवासेर गृहे 17/34
तबे 'बल' 'बल' प्रभु बले 17/236
तबे महाप्रभु तार द्वारेते 17/143
तबे महाप्रभु ताँर हृदे 12/25
तबे मिश्र विश्वरूपेर देखिया 15/11
तबे विचारये मने हइया 16/88
तबे विप्र लइल श्रीवासेर 17/59
तबे विश्वरूप इहाँ पाठाइल 15/21
तबे विष्णुप्रिया–ठाकुराणीर 16/25
तबे शची कोले करि' 14/44
तबे शची देखिल, रामकृष्ण 17/17
तबे शिष्यगण सब हासिते 16/98
तबे शुक्लाम्बरेर कैल तण्डुल 17/20
तबे सप्तप्रहर छिला प्रभु 17/18
तबे सब शिष्टलोक करे 17/43
तबे सुस्थ हइबेन तोमार 14/46
तबे से इहारे भक्ति 17/263
तबे सेइ पापी प्रभुर लइल 17/56
तबे सेइ यवनेरे आमि 17/196
तबे से ग्रन्थेर अर्थ 17/311
तरुसम सहिष्णुता वैष्णव 17/27
तर्कशास्त्रे सिद्ध येइ 8/14
तर्के इहा नाहि माने 17/307
तर्ज्ज–गर्ज्ज करे लोक 17/140
तर्ज्जन गर्ज्जन शुनि' ना 17/141
तव व्याख्या शुनि' आमि 16/91
तहिँ मध्ये प्रेमदान—'विशेष' 17/316
ताँर आज्ञा मानि' सेवा 10/140
ताँर आज्ञा लङ्घि' चल 12/10
ताँर इच्छा,—"प्रभुसङ्गे 16/16
ताँर आज्ञा लञा लिखि 8/81
ताँर उपशाखा यत, असंख्य 11/8
ताँर उपशाखा,—यत 10/48
ताँर उपशाखा यत, तार 11/56
ताँर कि अद्भुत चैतन्यचरित 8/42
ताँर कृपा बिना अन्ये 8/82
ताँर गर्भे जन्मिला श्रीदास 8/41
ताँर गुरु—अन्य, एइ 12/16
ताँर चरित्रचित्र लोके ना 17/297
ताँर पत्नी 'शची'–नाम 13/60
ताँर परिकर, ताँर शाखा 10/12
ताँर पुत्र—महाशय श्रीकानु 11/40
ताँर प्रिय शिष्य इँहो 8/60
ताँर प्रीत्येर कथा आगे 10/23
ताँर भग्नीपति श्रीगोपीनाथ 10/130
ताँर भर्त्ता कहिले द्वितीय 16/63
ताँर भुक्त–शेष किछु 13/50
ताँर मध्ये रूप–सनातन 10/85
ताँर यत शाखा हइल 12/4
ताँर यशः–गुण सर्वजगते 8/54
ताँर लीला वर्णियाछेन 10/47
ताँर शाखा–उपशाखा 12/56
ताँर शाखागण किछु 12/78
ताँर शाखा मुख्य एक 10/24
ताँर शिष्य–उपशिष्य 10/16
ताँर शिष्य—गोविन्द–पूजक 8/69
ताँर सङ्गे ताते करे वैष्णवेर 13/66
ताँर सङ्गे तिनजन प्रभु 10/117
ताँर सङ्गे नाचि' बुले 17/137
ताँर सिद्धिकाले दोँहे ताँर 10/139
ताँर स्कन्धे चड़ि' प्रभु 17/19
ताँर स्थाने रूप–गोसाञि 10/158
ताँरे देखि' प्रभुर हइल 14/63
ताँरे ना भजिले कभु ना 8/32
ताँ–सबार कवित्वे हय 16/101
ताँ–सबार बोले लिखि 8/72
ताँ–सबार सङ्गे यैछे 17/237
ताँहा आमा–सङ्गे तोमार हबे 16/17
ताँहा बइ विश्वे किछु नाहि 13/76
ताँहाते हइल चैतन्येर 10/59
ताँहार अनन्त गुण,—करि 10/44
ताँहार अनन्त गुण के 8/60
ताँहार अनुज शाखा—शङ्कर 10/33
ताँहार कृपाय हैल पाप 17/59
ताँहार चरित्र, शुन 12/19
ताँहार प्रसादे शुनेन 8/63
ताँहार भगिनी दमयन्ती प्रभुर 10/25
ताँहार साधन–रीति शुनिते 10/103
ताँहार हृदय जानि' कहे 16/93
ताते आदिलीलार करि 17/313
तार उपशाखागणे जगत 9/22
ताते एइ श्लोके देखि 16/52

ताते तार वध नहे 17/162
ता'ते नृत्य, गीत, वाद्य 17/205
ताते बसि' आछे सदा 8/51
ताते भाल करि' श्लोक 16/49
तार कोटि अपराध सब 17/96
तार मध्ये छय वत्सर 13/38
तार मध्ये छय वत्सर 13/12
तार मध्ये नीलाचले छय 13/35
तार मध्ये श्लोक तुमि 16/43
तार शिष्य–उपशिष्य, तार 10/160
तार स्कन्धे चड़ि' आइला 14/38
तार स्कन्धे चड़ि' नृत्य 17/100
तारा गाय, मुञि नाचि 10/19
तारे डाकि' कहे प्रभु 14/57
ता'–सबा निषेधि' प्रभु 16/98
ता–सबार अन्तरे भय प्रभु 17/132
ता–सबार विद्यापाठ भेक 8/6
ताहाँ प्रचारिल दुँहे भक्ति 10/89
ताहा देखि' रहिनु मुञि 17/191
ताहाइ करिनु एइ ग्रन्थेर 8/77
ताहाके 'तालाक' दिब 17/222
ताहाते असंख्य फल 9/38
ताहाते आचार्य बड़ हय 17/66
ताहातेइ ध्वज, वज्र 14/7
ताहाते ऐश्वर्य देखि' फाँफर 17/112
ताहाते चैतन्य–लीला 8/44
ताहाते जन्मिल शाखा 11/5
ताहार माधुरी–गन्धे लुब्ध 12/94
ताहारे सम्मान करि' प्रभु 17/103
ताहि मध्ये छयऋतुर 17/238
तिँह श्याम,—वंशीमुख 17/302
तिन दिन रहि' सेइ गोपाल 17/45
तिन पादे अनुप्रास देखि 16/67
तिन पुत्र शिवानन्देर प्रभुर 10/62
तिनलक्ष नाम तेँहो 10/43
तिन सन्ध्या राधाकुण्डे 10/101
तिन स्कन्धेर कैल शाखार 12/76
तुमि काजी—हिन्दु–धर्म 17/174
तुमि कि जानिबे एइ 16/50
"तुमि त' ईश्वर वट 17/270
तुमि पाण्डु, पञ्चपाण्डव 10/132
तुमि भाल जान अर्थ 16/38
"तुमि महापण्डित हओ 16/99
तुमि माटि खाइते दिले 14/27
"तुमि ये कहिले, पण्डित 17/169
तुमिह यवन हञा केने 17/197
तुष्ट हञा प्रभु आइला 17/98
तृण हैते नीच हञा सदा 17/26
तृणादपि सुनीचेन तरोरिव 17/31
तृतीय–चरणे हय पञ्च 16/74
तृतीय परिच्छेदे जन्मेर 17/315
तेँह—विश्वेर उपादान 13/75
तेँहो अति कृपा करि' 8/65
तेँहो त' चैतन्य–कृष्ण 17/315
तेँहो तोमार साध्य–साधन 16/13
तेँहो मूर्त्ति हञा खेले, जानि 14/9
तेँहो लक्ष्मीरूपा, ताँर सम 10/15
तेँहो सिद्धि पाइले ताँर देह 10/46
तेञि क्षमा करि, ना 17/184
तैछे आमार शास्त्र—केताब 17/155
'तोरे शिक्षा दिते कैलु 17/183
तोमरा जीयाइते नार 17/165
तोमार एइ उपदेशे नष्ट 12/15
"तोमार ऐछन रङ्ग 13/101
तोमार कविता–श्लोक 16/38
तोमार कवित्व किछु 16/35
तोमार कवित्व येन 16/100
तोमार चरणे आमि कि 12/45
तोमार नगरे हय सदा 17/173
"तोमार प्रसादे मोर घुचिल 17/220
"तोमार मुखे कृष्णनाम 17/217
तोमार वेदेते आछे गोवधेर 17/158
तोमारे करिल दण्ड प्रभु 12/38
तोमा शान्त कराइते रहिनु 17/146
तोमा सबार भर्त्ता हबे 14/54
तोमा–सबार शास्त्रकर्त्ता 17/167
तोमासम कवि कोथा नाहि 16/100
"तोमा–सम पृथिवीते कवि 16/37

त्र

त्रयोदशे महाप्रभुर 'जन्म 17/325
त्रिजगते यत आछे धन 9/28

द

दण्ड–कथा कहिब आगे 10/32
दण्ड पाञा हैल मोर 12/41
दण्ड शुनि' 'विश्वास' हइल 12/37
दण्डे तुष्ट प्रभु ताँरे 10/32
दरशन करि कैलुँ चरण 8/74
दरिद्र कुड़ाञा खाय 9/30
दश अलङ्कारे यदि एक 16/69
दशमेते मूल–स्कन्धेर 17/323
"दशसहस्र गन्धर्व मोरे देह' 10/19

दामोदर पण्डित, ठाकुर 10/126
दामोदर पण्डित-शाखा 10/31
दामोदर-स्वरूप, आर गुप्त 13/46
दार्ढ्य लागि' 'हरेर्नाम'-उक्ति 17/23
दिङ्मात्र लिखि, सम्यक् 10/159
दिग्विजयी कहे मने 16/30
दिने दिने पिता-मातार 14/93
दिव्य दिव्य लोक आसि' 14/80
दिव्यमूर्त्ति लोक आसि' 13/83
दिव्य वस्त्र, दिव्य वेश 17/5
दिव्य सामग्री, दिव्य 8/52
दीक्षा-अनन्तरे हैल प्रेमेर 17/9
दुँहा देखि' दुहार चित्ते 14/65
दुँहार अन्तर-कथा दुँहे 12/48
दुइ कीर्त्तनीया रहे 10/147
दुइ गोसाञि 'हरि' बले 12/21
दुइजने खट्मटि लागाय 10/23
दुइ प्रकारेते करे 12/47
दुइ भाइ ताँर मुखे 10/97
दुइ भाइ—दुइ शाखा 10/8
दुइ शब्दालङ्कार, तिन 16/72
दुइ शाखार उपशाखाय 10/10
दुइ शाखार प्रेमफले सकल 10/88
दुइ सहस्र वैष्णवेरे नित्य 10/99
दुइ स्थाने प्रभु-सेवा 10/122
दुइ हस्ते वेणु बाजाय 17/14
दुःख कारो मने नहे 14/61
दुःख पाइ' मने आमि 12/39
दुःखित हइला आचार्य 12/23
दु-बाहुते दिव्य शङ्ख 13/112
दुर्लभविश्वास, आर 12/59
दुर्वा, धान्य, गोरोचन 13/114
दुर्वा, धान्य, दिल शीर्षे 13/117
दुर्विज्ञेय नित्यानन्द—तोमार 17/109
दूर हइते आइला काजी 17/144
दूर हैते देखि' ताँरे बले 17/284
देख, कोन् काजी आसि 17/134
देखि' आनन्दित हञा हासे 9/50
देखि' उपराग हासि' 13/100
देखिते आइसे येवा 13/24
देखिते देखिते वृक्ष लागिल 17/81
'देखिनु' 'देखिनु' बलि' 17/232
देखि' प्रभुर मूर्त्ति सर्वज्ञ 17/106
देखि' शची धाञा आइला 14/26
देखिया प्रभुर दुःख हइल 17/244
देखिया बालक-ठाम 13/115
देखिया मिश्रेर हइल 14/12
देखिया सन्तुष्ट हैला शचीर 17/84
देखिया दाँहार चित्ते जन्मिल 14/8
देखिया अपूर्व हैला विस्मित 14/47
देउटि धरेन, यबे प्रभु 10/37
देखे, दिव्यलोक आसि' 14/76
देवता पूजिते आइल करि' 14/62
देवपूजा-छले कैल दुँहे 14/65
देवानन्द—चारि भाइ 11/46
देशे आगमन पुनः, प्रेमेर 17/9
देशेर आइला प्रभु शची 16/22
देह-सम्बन्ध हैते ग्राम 17/148
देहरोग, भवरोग,—दुइ 10/51
दैवे एकदिन प्रभु पड़िया 15/28
दैवे वनमाली घटक शची 15/29
दोष-गुण-विचारे एइ 16/102
द्वादश प्रबन्ध, ताते 17/328
द्वादश वत्सर शेष रहिला 13/39
द्वादशे 'अद्वैतस्कन्ध 17/324
द्वारे कपाट,—ना पाइल 17/60
'द्वितीय' शब्द—विधेय 16/60
'द्वितीय श्रीलक्ष्मी' इहाँ 16/59
द्वितीय परिच्छेदे 17/314
द्वितीय-श्रीलक्ष्मीरिव 16/41

ध

धन-धान्य भरे घर 13/119
धरिवारे गेला पुत्रे, गेला 14/72
धरे यत भाण्ड छिल 14/43
धर्म-शिक्षा दिल बहु 14/83
धर्मी, कर्मी, तपोनिष्ठ 17/260
धान्यराशि मापे यैछे 12/12

न

नकड़ि, मुकुन्द, सूर्य, माधव 11/48
नकुल ब्रह्मचारी-देहे प्रभुर 10/57
नगरिया पागल कैल सदा 17/209
नगरिया लोके प्रभु यबे 17/121
"नगरे नगरे आजि करिमु 17/133
नगरे नगरे भ्रमे कीर्त्तन 13/32
नगरे हिन्दुर धर्म बाड़िल 17/193
न जानि,—कि खाञा मत्त 17/208
नदीया-उदयगिरि 13/98
नदीयाते गङ्गावास कैल 13/58
नन्दन-आचार्य-शाखा जगते 10/39

नन्द-वसुदेव पूर्वे 13/59
नन्दिनी, आर कामदेव 12/59
"नमो नारायण, देह' करह 17/288
नम्र हञा शिरे धरोँ 17/334
नरक भुञ्जिते चाहे जीव 10/42
नरक हइते तोमार नाहिक 17/165
नरदेह, सिंहमुख, गर्ज्जये 17/179
नरहरि दास, चिरञ्जीव 10/78
नर्त्तक गोपाल, रामभद्र 11/53
नर्त्तक, वादक, भाट 13/106
नवद्वीपे आरम्भिला 9/8
नवद्वीपे पुरुषोत्तम पण्डित 11/33
नवमेते 'भक्तिकल्पवृक्षेर 17/322
नाचिते नाचिते आइला 17/225
नाचिते नाचिते गोपाल 12/22
नाचिल चैतन्यप्रभु 10/46
नाचे, करे सङ्कीर्त्तन 13/103
ना जानि, कि मन्त्रौषधि 17/202
ना जानि' शास्त्रेर मर्म 17/167
ना दिया वा एइ फल 9/37
'नाम' दिया भक्त कैल 16/19
नाना द्रव्य पात्र भरि' 13/105
नाना-भावोद्गम देहे अद्भुत 12/21
नाना मन्त्र पड़ेन आचार्य 12/24
नाम-बले विष याँरे ना 10/75
नाम-मात्र करि, दोष ना 10/6
नाम लैते प्रेम देन, बहे 8/31
'नाम-सङ्कीर्त्तन कर' 16/15
नाम सार्थक हय, यदि 9/7
नाम-सूत्रे गाँथि' पर 17/32
नाम हैते हय सर्वजगत् 17/22
ना माने चैतन्य-माली 12/67
नामे स्तुतिवाद शुनि' प्रभुर 17/73
नारायण, कृष्णदास, आर 11/46
नारायण-पण्डित एक बड़इ 10/36
नारायणी—चैतन्येर उच्छिष्ट 8/41
नारायणेर चिह्नयुक्त श्रीहस्त 14/16
नारीगण कहे,—"नारिकेल 14/46
नारी सब 'हरि' बले 14/22
ना लह देवता-सज्ज, ना 14/53
नाहि, नाहि, नाहि,—तिन 17/25
नाहि पड़ि अलङ्कार, करियाछि 16/52
निज-गुणामृते बाड़ाय 8/64
निज तृतीय भाइ करि' 10/96
निज निज भावे करेन 17/300
निजाचिन्त्यशक्त्ये माली हञा 9/12
"नित्य रात्रे करि आमि 17/42
नित्यानन्द-गोसाञि प्रभुर 17/116
नित्यानन्द-चन्द्र बिना नाहि 11/37
नित्यानन्द-नामे याँर 11/33
नित्यानन्द-नामे हय 11/34
नित्यानन्दप्रभु नृत्य करे 11/18
नित्यानन्द प्रभुर प्रिय 11/28
नित्यानन्द-प्रियभृत्य 11/31
नित्यानन्द बलिते हय 8/23
नित्यानन्दभृत्य—परमानन्द 11/44
नित्यानन्द-लीला-वर्णने 8/48
नित्यानन्द-सङ्गे नृत्य करे 17/227
नित्यानन्द-हरिदास धरि' 17/245
नित्यानन्द हैला राम 17/318
नित्यानन्दावेशे कैल मूषल 17/16
नित्यानन्दे आज्ञा दिल 11/14
नित्यानन्दे दृढ़ विश्वास 11/25
नित्यानन्देर गण यत 11/21
नित्यानन्दे समर्पिल जाति 11/27
निभृतनिकुञ्जे बसि' देखे 17/283
निभृत हओ यदि, तबे 17/176
निमाइ बोलाइया तारे 17/213
'निमाञि' नाम छाड़ि' 17/210
निमाञिपण्डित-स्थाने करह 16/12
निमाञि-मुखे रहि' बले 16/90
निरन्तर कैल ताहे 13/10
निरन्तर बाल्यलीला करे 11/39
निरन्तर शुने तेँहो 8/63
निरवधि ताँर चित्ते 8/70
निरवधि मत्त रहे, विवश 9/51
निर्मल हृदये भक्ति कराइब 17/266
निर्लोम गङ्गादास, आर 10/151
निवृत्ति-मार्गे जीवमात्र 17/156
निश्चय करिते नारे साध्य 16/10
निस्तारिते आइलाम आमि 17/262
नीलाचले एइसब भक्त 10/122
नीलाचले चलेन पथे 10/55
नीलाचले तेँहो एक पत्रिका 12/29
नीलाचले प्रभुसङ्गे सब 10/124
नीलाचले प्रभुसह प्रथम 10/129
नीलाचले प्रभुस्थाने मिलिल 10/139
नीलाचले रहि' प्रभुर करेन 10/127
नीलाचले रहे प्रभुर चरण 10/150
नीलाम्बर चक्रवर्त्ती कहिल 13/88
नीलाम्बर चक्रवर्त्ती हय 17/149
नैवेद्य काड़िया खा'न 14/51
नृत्य, गीत, प्रेमभक्ति 13/35
नृसिंह-आवेश देखि' 17/93
नृसिंह-आवेशे प्रभु हाते 17/92
नृसिंहचैतन्य, मीनकेतन 11/53
'नृसिंहानन्द' नाम प्रभु 10/58

प

पञ्च अलङ्कारेर एबे शुनह 16/72
पञ्चतत्त्व मिलि' यैछे 17/320
पञ्चदशे 'पौगण्डलीला'र 17/326
पञ्च दोष एइ श्लोके पञ्च 16/54
पञ्चप्रबन्धे पञ्चवयस चरित 17/329
पञ्चम वर्षेर बालक कहे 12/17
पञ्चमे 'श्रीनित्यानन्द'-तत्त्व 17/318
पण्डित-गोसाञि आदि 17/301
पण्डित-गोसाञिर शिष्य 8/68
पण्डित-गोसाञिर शिष्य 8/59
पण्डित जगदानन्द प्रभुर 10/21
पण्डित, विदग्ध, युवा 14/55
पण्डितेर गण सब 12/89
पड़ुया पलाया गेल 17/252
'पड़ुया बालक कैल मोर 16/89
पड़ुया सहस्र याहाँ 17/253
पड़िते आइला स्तवे 17/91
'पतितपावन' नामेर साक्षी 10/120
पत्र पड़िया प्रभुर मने 12/33
पथ छाड़ि' भागे लोक 17/93
परम आनन्द पाइल वृक्ष 9/47
परमतत्त्व, परब्रह्म, परम 17/106
परमानन्द गुप्त—कृष्णभक्त 11/45
परमानन्द पुरी, आर केशव 9/13
परमानन्दपुरी, आर स्वरूप 10/125
परमानन्द महापात्र, ओढ्र
परमेश्वरदास—नित्यानन्दैक 11/29
परिपूर्ण भगवान्—सर्वैश्वर्य 17/108
पल दुइ-तिन माठा करेन 10/98
पश्चाते पात्ना उड़ाञा 12/12
पश्चिमेर लोक सब मूढ़ 10/89
पाइया अमृतधुनी, पिये 13/123
पाइया मानुष जन्म 13/123
पाञा उपराग-छल 13/100
पाकिल अनेक फल 17/81
पाकिल ये प्रेमफल अमृत 9/27
पाछे गुप्ते सेइ विप्रे 14/37
पाछे चतुर्भुज हैला, तिन 17/14
पाछे दुइमत हैल दैवेर 12/8
पाछे विस्तार करिब 13/7
पाछे विस्तारिया ताहार 8/45
पाछे सम्प्रदाये नृत्य करे 17/137
पातसाह शुनिले तोमार 17/195
पापक्षय गेल, हैला परम 17/217
पाप-तमो हैल नाश 13/98
पाषण्डि-प्रधान सेइ दुर्मुख 17/37
पाषण्डी मारिते याय नगरे 17/92
पाषण्डी संहारि' भक्ति 17/53
पाषण्डी संहारिते मोर एइ 17/53
पाषण्डी हासिते आइसे 17/35
पिता करि' याँरे बले 10/30
पिता माता मारि' खाओ 17/154
पिता-माताय देखाइल 14/6
पितृकुल, मातृकुल 15/14
पितृक्रिया विधिमते ईश्वर 15/24
पीताम्बर, माधवाचार्य, दास 11/52
पुड़िल सकल दाड़ि 17/190
पुण्डरीक विद्यानिधि 10/14
पुत्र पाञा दम्पति हैला 13/79
पुत्र-भृत्य-आदि करि' 10/61
पुत्रमाता-स्नानदिने 13/118
पुत्र लागि' आराधिल 13/73
पुत्रेर प्रभावे यत 13/120
पुत्रेर लालन-शिक्षा 14/87
पुनः पुनः कहे श्रीवास 17/236
पुनः यदि ऐछे करे 17/256
पुनरुक्तवदाभासे, नहे पुनरुक्त 16/76
पुनरुक्तवदाभासे शब्दालङ्कार 16/77
पुनरुक्ति-भये विस्तारिया 14/96
पुरुषोत्तम पण्डित, आर 12/63
पुरुषोत्तम ब्रह्मचारी, आर 12/62
पुरुषोत्तम, श्रीगालीम 10/112
"पूर्वजन्मे छिला तुमि 17/108
पूर्वसिद्ध भाव दुँहार 15/29
पूर्वे आमि छिलाम 17/110
पूर्वे नाम छिल याँर 11/42
पूर्वे महाप्रभु मोरे करेन 12/39
पूर्वे भाल छिल एइ 17/206
पूर्वे याँर घरे छिला 11/43
पूर्वे याँर घरे नित्यानन्देर 11/45
पूर्वे येन जरासन्ध-आदि 8/8
पूर्वे यैछे छिला तुमि 17/109
पैता छिण्डिया शापे प्रचण्ड 17/62
पौगण्ड-लीलाय लीला 15/32
पौगण्ड-लीलार सूत्र करिये 15/3
पौगण्ड वयस—यावत् 13/26
पौगण्ड-वयसे पड़ेन, पड़ान 13/28
पौगण्ड-वयसे प्रभुर मुख्य 15/3
पौर्णमासीर सन्ध्याकाले 13/89
प्रक्षालन करि' कृष्णे 17/82
प्रणतिते ह'बे इहार 17/266
प्रतापरुद्र राजा, आर 10/135
प्रतापरुद्रेर स्थाने दिल 12/29
प्रतिग्रह कभु ना करिबे 12/50
प्रतिग्रह नाहि करे, ना 10/50
प्रतिभा, कवित्व तोमार 16/85
प्रतिभार वाक्य तोमार 16/48

प्रति वर्षे प्रभुर गण 10/55
प्रत्यब्दे प्रभुरे देखे 10/128
प्रथम–चरणे पञ्च 'त' 16/74
प्रथम परिच्छेदे कैलुँ 17/313
प्रथमेइ नित्यानन्देर याँर 10/34
प्रथमे त' आचार्येर 12/8
प्रथमे त' सूत्ररूपे 13/7
प्रथमेते वृन्दावन–माधुर्य 17/235
प्रथमे षड्भुज ताँरे 17/13
"प्रद्युम्न ब्रह्मचारी' ताँर 10/58
प्रभु आज्ञा दिल,—"तुमि 16/16
प्रभु आज्ञा दिल—"याह 17/130
प्रभु–आज्ञाय कर एइ 17/33
प्रभुकण्ठ हैते माला 8/75
प्रभुके मिलिया पाइला 17/12
प्रभु कहे,—"आमा' पूज 14/66
प्रभु कहे, आमि 'विश्वम्भर' 9/7
प्रभु कहे,—"एक दान 17/221
प्रभु कहे,—"एकादशीते 15/9
प्रभु कहे,—"कह श्लोकेर 16/45
प्रभु कहे,—'कुलीनग्रामेर 10/82
प्रभु कहे,—"गोदुग्ध 17/153
प्रभु कहे,—"तोमा–सबाके 14/54
प्रभु कहे,—"देवेर वरे 16/44
प्रभु कहे,—"प्रश्न लागि' 17/152
प्रभु कहे,—"बाउलिया 12/49
प्रभु कहे,—"माता, मोरे 15/8
प्रभु कहे,—"वेदे कहे 17/159
प्रभु कहे,—"व्याकरण 16/33
प्रभु कहेन,—"अतएव 16/51
प्रभु कहेन,—"कहि, यदि 16/47
प्रभु कहेन,—"कहि, शुन 16/53
प्रभु कृपा कैल, ताँर 16/107
प्रभु ताँर नाम कैला 10/35
प्रभु ताँर पूजा पाञा 14/68
प्रभु ताँरे नमस्करि' 17/269
प्रभु तारे कराइल निजरूप 17/231
प्रभु तारे प्रेम दिल 17/114
प्रभु तारे प्रेम दिल 17/102
प्रभु तुष्ट हञा साध्य 16/15
'प्रभु–पादोपाधान' याँर 10/33
प्रभु पुनः प्रश्न कैल 17/107
प्रभुप्रिय गोविन्दानन्द 10/64
प्रभु बले,—"ए लोक 17/177
प्रभु बलेन,—"आमि 17/145
प्रभु बलेन—तुमि मोर 10/20
प्रभु यबे काशी आइला 10/153
प्रभु याँर नित्य लय 10/68
प्रभुर अङ्गने नाचे, डम्बुरु 17/99
प्रभुर अतिप्रिय दास 10/69
प्रभुर अत्यन्त प्रिय 10/29
प्रभुर अनन्त–लीला 16/18
प्रभुर अभिषेक तबे 17/11
प्रभुर आज्ञाते तेँहो 10/108
प्रभुर आज्ञा पाञा 10/157
प्रभुर आज्ञाय नित्यानन्द 10/117
प्रभुर आविर्भाव–पूर्वे यत 13/63
प्रभुर उपरे येँहो कैल 10/31
प्रभुर कहिल एइ जन्मलीला 14/3
प्रभुर कीर्त्तनीया आदि 10/64
प्रभुर कृपाय तेँहो 10/158
प्रभुर गम्भीर वाक्य 12/54
प्रभुर गुप्तसेवा कैल 10/92
प्रभुर चरण छुँइ बले 17/219
प्रभुर चरण धरि' वक्रेश्वर 10/18
प्रभुर चरणे यदि आज्ञा 8/75
प्रभुर निन्दाय सबार बुद्धि 17/257
प्रभुर नृत्य देखि' नृत्य 17/101
प्रभुर पडुया दुइ 10/72
प्रभुर भोगसामग्री ये करे 10/25
प्रभुर मध्य–शेष–लीला 13/16
प्रभुर लीलामृत तेँहो 13/50
प्रभुर विरह–सर्प लक्ष्मीरे 16/21
प्रभुर वृत्तान्त द्विज 17/253
प्रभुर शाप–वार्त्ता शुने 17/64
प्रभुर हृदय द्रवे शुनि' 10/49
प्रभुरे अनेक ग्रन्थ दियाछे 10/65
प्रभुरे कहेन,—"तोमार ना 12/44
प्रभुरे शान्त करि' आनिल 17/252
प्रभु श्रीवासेर तोषि' 17/240
प्रभु सङ्गे नृत्य करे 17/102
प्रभु–सङ्गे रहे गोविन्द 10/118
प्रभु समर्पिल ताँरे 10/92
प्रभु–स्थाने निवेदिल 17/129
प्रभुस्थाने याइते सबे 10/54
प्रभु हासि' कैला,—"तुमि 17/110
प्रवृत्ति–मार्गे गोवध 17/157
प्रसङ्गे करिल एइ 17/310
प्रसन्न हइल सब 13/95
प्रसन्न हैल दशदिक् 13/97
प्रहरेक महाप्रभुर चरित्र 10/100
प्रह्लाद–समान ताँर गुणेर 10/45
प्राणवल्लभ—सबार 12/89
प्रातःकाले भक्त सबे 17/246
प्रातःकाले श्रीवास ताहा 17/40
प्राते आसि' प्रभुपदे लइल 16/107
प्रेम दिते, कृष्ण दिते 11/59
प्रेम–नाम प्रचारिया 13/36
प्रेम–फल–फूल करे 10/79

प्रेमफलास्वादे लोक 10/88
प्रेम–फूल–फले भरि' 11/6
प्रेमभक्ति दिया तेँहो 17/297
प्रेमभक्ति लओयाइल 13/38
प्रेमार्णव–मध्ये फिरे 11/28
प्रेमावस्था शिखाइला 13/39
प्रेमे नृत्य करे, हैल 17/232
प्रेमे मत्त लोक बिना 9/52
प्रेमेर उदये हय प्रेमेर 8/27
प्रेमेर कारण भक्ति करेन 8/26
प्रीत्ये करिते चाहे प्रभुरे 10/22

फ

फल–फूल दिया करि' 9/44
फलास्वादे मत्त लोक 9/48
फले–फुले बाड़े,—शाखा 12/7
फाड़िमु तोमार बुक 17/181
फाल्गुनपूर्णिमा–सन्ध्याय 13/20
फिरि' गेल विप्र घरे मने 17/61

ब

बङ्गवाटी–चैतन्यदास 12/85
बड़ शाखा, उपशाखा, तार 9/23
बड़शाखा एक,—सार्वभौम 10/130
बड़ शाखा—गदाधर पण्डित 10/15
बड़ बड़ लोकेर आनिल 17/41
बड़ भाग्यवान् तुमि, बड़ 17/218
बड़ हरिदास, आर छोट 10/147
बड़ हैले नीलाचले गेला 10/156
बत्रिश लक्षण—महापुरुष 14/14
बन्धु–बान्धव आसि' दुँहा 15/24
बन्धु–बान्धव–स्थाने स्वप्न 14/92
बलदेव–प्रकाश—परव्योमे 13/75
'बल' 'बल' बले प्रभु 17/239
बलभद्र भट्टाचार्य—भक्ति 10/146
बलराम दास—कृष्णप्रेम 11/34
बलिते ना पारे किछु 17/107
बसाइला तारे प्रभु आदर 16/30
बसियाछेन गङ्गातीरे विद्यार 16/28
बसियाछेन सुखे प्रभु 14/73
बहु जन्म करे यदि 8/16
बहु यत्न कैला कृष्ण 17/291
बहुशास्त्रे बहुवाक्ये चित्ते 16/11
'बृहत् सहस्रनाम' पड़ 17/90
बाइश घड़ा जल दिने 10/144
बाउलिया 'विश्वासे' एथा 12/36
बाटी भरि' दिया बले 14/24
बाड़िया पश्चिमदेशे सब 10/86
बाड़िया व्यापिल सबे 9/33
बारमास ताहा प्रभु करेन 10/27
बालकेर दिव्य ज्योति 13/116
बाल्य, पौगण्ड, कैशोर 13/18
बाल्यभाव–छले प्रभु करेन 13/23
बाल्यभाव प्रकटिया पश्चात् 14/36
बाल्यभावे छन्न–तनु हइल 14/64
बाल्यलीलाय आगे प्रभुर 14/6
बाल्यलीला–सूत्र एइ कहिल 14/95
बाल्य वयस—यावत् हाते 13/26
बाल्यशास्त्रे लोके तोमार 16/31
बाहिरे भर्त्सन करे करि' 14/56
बाहिरे याञा आनिलेन 14/47
बाहिरे हासिया किछु 12/33
बिलाइल यारे तार 8/21
बिलाय चैतन्यमाली, नाहि 9/27
बूढ़ा भर्त्ता हबे, आर 14/58
बोलाइला कमलाकान्ते 12/46
ब्रह्मशाप हैते तार हय 17/64
ब्रह्मानन्द पुरी, आर 9/13
ब्रह्मा–शिव–शेष याँर 17/331
'ब्राह्मण–पत्नीर भर्त्ता 16/65
ब्राह्मण मारिते चाहे 17/255
ब्राह्मण–ब्राह्मणी आनि' 14/20
ब्राह्मण–सज्जन–नारी 13/104

भ

भङ्गी करि' ज्ञानमार्ग करिल 17/67
भक्तगण लञा कैल विविध 17/7
भक्तगण लञा कैला 13/34
भक्तगणे प्रभु नाम–महिमा 17/72
भक्तिकल्पतरुर तेँहो प्रथम 9/10
भक्ति–कल्पतरु रोपिला 9/9
भक्तिर महिमा ताहाँ करिल 17/74
भक्ते कृपा करेन प्रभु 10/56
भक्ष्य, भोज्य, उपहार 13/115
भगवान् आचार्य 10/136
भये पलाय पड़ुया, प्रभु 17/251
भर्त्सन–ताड़न कर 14/85
भर्त्सना–ताड़ने काके 17/27

भवभूति, जयदेव आर 16/101
भवानी–पूजार सब सामग्री 17/38
भवानीभर्त्तुः'–शब्द दिले 16/62
भवानी–शब्दे कहे 16/63
भव्यलोक पाठाइया काजी 17/143
भागवताचार्य, आर 12/58
भागवताचार्य, चिरञ्जीव 10/119
भागवताचार्य, ठाकुर 10/113
भागवताचार्य, हरिदास 12/79
भागवती देवानन्द वक्रेश्वर 10/77
भागवते कृष्णलीला वर्णिला 11/55
भागवतेर भक्ति–अर्थ 10/77
भागवते यत भक्तिसिद्धान्तेर 8/37
भागिना, मुइ कुष्ठव्याधिते 17/48
भागिनार क्रोध मामा 17/150
भाग्य मोर,—तुमि–हेन 17/147
भाग्यवन्त दिग्विजयी 16/108
भारतभूमिते हैल मनुष्य 9/41
भारती कहेन,—"तुमि 17/271
भालमते विचारिले जानि 16/48
"भाल हैल,—विश्वरूप संन्यास 15/14
भासाइल त्रिजगत् कृष्ण 10/161
भासाइल त्रिभुवन प्रेमभक्ति 13/32
भिक्षा कराइया ताँरे कैल 17/269
भितरेर अर्थ केह बुझिते 17/151
भीत देखि' सिंह बले 17/183
भूगर्भ गोसाञि, आर 12/81
भूमिते पड़िला प्रभु 15/16
भूमेते पड़िल, देहे 12/22
भेद जानिवारे करि 12/11
भ्रमिते भ्रमिते प्रभु 17/139

म

मङ्गलचण्डी, विषहरि 17/205
मथुरा–गमने प्रभुर 10/146
मदनगोपाले गेलाङ आज्ञा 8/73
मदमत–गति बलदेव 17/118
मद्यभाण्ड–पाशे धरि' 17/40
'मधु आन', 'मधु आन' 17/115
मधुपान, रासोत्सव 17/238
मधुर करिया लीला 13/48
मधुर–वचन, मधुर–चेष्टा 8/55
'मध्य'–'अन्त्य'–नामे 13/14
मध्यमूल परमानन्द पुरी 9/16
मध्ये नाचे आचार्य 17/136
मन दुष्ट हइले नहे 12/51
मनुष्य ठेलि' पथ करे 10/142
मनुष्ये रचिते नारे 8/39
मल्लिकार माला दिया 14/67
महाकृपापात्र प्रभुर जगाइ 10/120
महा–गुणवान् तेँह 13/74
महापुरुषेर चिह्न, लग्ने 13/121
महाप्रभु एइ दुइ दिला 11/14
महाप्रभु ताहा याइ' 17/272
महाप्रभुर प्रिय भृत्य 10/91
महाप्रभुर लीला यत बाहिर 10/97
महाभागवत यदुनाथ 11/35
महाभागवत–श्रेष्ठ दत्त 11/41
महा–महा–शाखा छाइल 9/18
महामादक प्रेमफल पेट 9/49
महा–योगपीठ ताँहा 8/50
महाशाखा–मध्ये तेँहो 12/87
महेश–आवेश हैला 17/100
महेश पण्डित—व्रजेर 11/32
महेश पण्डित, श्रीकर 10/111
महोत्सव कर, सब बोलाह 14/18
मागे वा ना मागे केह 9/29
माटि काड़ि' लञा बले 14/26
"माटि खाइते ज्ञानयोग के 14/30
माटि खाइले रोग हय 14/31
माटि—देह, माटि—भक्ष्य 14/29
माटि–पिण्डे धरि यबे 14/32
माटिर विकार अन्न खाइले 14/31
माटिर विकार घटे पानि 14/32
माताके कहिओ कोटि 15/21
माताके मूर्च्छिता देखि' 14/45
माता–पुत्र दुँहार बाड़िल 15/23
माता बले,—"ताइ दिब 15/9
मातिल सकल लोक—हासे 9/49
मातुलेर अपराध भागिना 17/150
मातृ–आज्ञा पाइया प्रभु 14/77
माधव, वासुदेव घोषेर 11/15
माधवीदेवी—शिखि 10/137
माधुर्य राधा–प्रेमरस 17/276
मालाकार कहे,—शुन 9/31
मालाकारेर इच्छा–जले 11/6
मालि–दत्त जल अद्वैत 12/66
माली मनुष्य आमार नाहि 9/44
मालीर इच्छाय शाखा बहुत 10/86
माली हञा वृक्ष हइलाङ 9/45
मिश्र कहे,—"एइ बड़ 14/79
मिश्र कहे,—"देव, सिद्ध 14/86
मिश्र कहे,—"पुत्र केने 14/89
मिश्र कहे,—"बालगोपाल 14/9
मिश्र कहे शचीस्थाने 13/81

मिश्र जागिया हइला परम 14/91
"मिश्र, तुमि पुत्रेर तत्त्व 14/85
मिश्र बले,—"किछु हउक् 14/82
मिश्र—वैष्णव, शान्त 13/120
मिश्रेरे कहये किछु सरोष 14/84
मुकुन्द, काशीनाथ, रुद्र 10/106
मुकुन्ददत्त,—एइ तिन 17/273
मुकुन्द-दत्तेरे कैल दण्ड 17/65
मुकुन्दानन्द चक्रवर्ती, प्रेमी 8/69
मुक्ति—श्रेष्ठ करि' कैनु 12/40
मुखे ना निःसरे वाक्य 16/87
मुख्यमुख्यलीला सूत्रे 13/46
मुख्य मुख्य शाखागणेर 9/20
मुञि बड़ दुःखी, मोरे 17/49
मुञि संहारिमु आजि 17/130
मुरारिके कहे प्रभु 17/77
मुरारिगुप्त-मुखे शुनि' 17/69
मुरारि-चैतन्यदासेर 11/20
मूक कवित्व करे 8/5
मूर्ख, नीच, क्षुद्र मुञि 8/83
मूलशाखा-उपशाखा यतेक 9/31
मूलस्कन्धेर शाखा आर 9/26
मृतपुत्र-मुखे कैल 17/229
मृदङ्ग-करताल-शब्दे 17/207
मृदङ्ग-करताल सङ्कीर्त्तन 17/123
मृदङ्ग भाङ्गिया लोके 17/125
मोर कीर्त्तन माना करिस् 17/182
मोर बुके नख दिया 17/181
मोरे आज्ञा करिला सबे 8/72
'मोरे ना मानिले सब 8/10
मोरे निन्दा करे ये 17/264
म्लेच्छ कहे,—'हिन्दुरे 17/198

य

'यत अध्यापक, आर ताँर 17/260
यत उपजिल शाखा के 9/19
यत नर्त्तक, गायन 13/109
यत यत भक्तगण बैसे 17/334
यत यत महान्त कैला 10/5
यथा तथा भक्तगण 17/18
यथार्थ कहिबे, छले ना 17/172
"यदि नैवेद्य ना देह 14/58
यदि पुनः ऐछे नाहि 17/58
यदि वा तार्किक कह 8/14
यदु गाङ्गुलि आर 12/86
यदुनाथ, पुरुषोत्तम, शङ्कर 10/80
यद्यपि एइ श्लोके आछे 16/68
यमुनाकर्षण-लीला 17/117
यवन-ताड़नेओ याँर 10/45
यशोदानन्दन यैछे हैल 14/3
यशोदानन्दन हैला शचीर 17/275
याँर अन्न मागि' काड़ि' 10/38
याँर कृष्णसेवा देखि' 10/107
याँर गृहे महाप्रभुर सदा 10/10
याँर घरे दानकेलि कैल 11/17
याँर घरे देवी-भावे नाचिला 10/13
याँर देहे कृष्ण पूर्वे 10/69
याँर देहे रहे कृष्ण 11/40
याँर नाम लञा प्रभु 10/14
याँर पिता 'नीलाम्बर' 13/60
याँर फुटा-लोहपात्रे प्रभु 10/68
याँर मुखे बाहिराय ऐछे 16/99
याँर सङ्गे नित्यानन्द 11/23
याँर सेवक—रघुनाथ, रूप 8/80
याँर स्मृते सिद्ध हय 8/84
याँ-सबार कीर्त्तने नाचे 10/115
याँ-सबा-स्मरणे पाइ 12/91
याँ-सबा-स्मरणे भवबन्ध 12/90
याँ-सबा-स्मरणे हय 12/91
याँहा ताँहा प्रेमफल 9/36
याँहा ताँहा सर्वलोक करये 13/82
याँहा याय, ताँहा लओयाय 16/8
याँहार अवधि ना पाय 11/60
याँहार कीर्त्तने नाचे चैतन्य 10/40
याँहार दर्शने कृष्णप्रेमभक्ति 11/22
याँहार प्रसादे इय अभीष्ट 11/12
याँहार मिलने प्रभु 131
याँहार श्रवणे नाशे 8/35
याँहार स्मरणे हय सर्वबन्ध 10/29
याँहार हृदये नृत्य करे 11/35
याँहा-सने प्रभु करे नित्य 10/67
याते जानि कृष्णभक्ति 8/36
यादवदास, विजयदास 12/61
यादवाचार्य गोसाञि श्रीरूपेर 8/67
यारे कृपा कैल बाल्ये 10/70
यारे देखे, तारे कहे 13/30
यारे देखे, तारे दिया 11/58
यारे सङ्गे लैया कैल 10/145
या शुनि' दिग्विजयी कैल 16/27
याहाँ ताहाँ प्रभुर निन्दा 17/258
याहार श्रवणे भक्तेर बहे 10/28
याहार श्रवणे शुद्ध कैल 8/42
युगधर्म—कृष्णनाम-प्रेम 17/316
येइ दुइ आसि' कैल 12/81
येइ पेयादा याय, तार 17/190
येइ याँहा ताँहा दान 9/48
येइ येइ अंशे कहे 17/332
ये कहे, से करिब 17/271

ये किछु करिल इहाँ 16/109
ये कीर्त्तन प्रवर्त्ताइल 17/204
ये कृष्णेरे कराइला 17/292
ये तोमा' देखिल, तार 17/97
ये दण्ड पाइल भाग्यवान् 12/41
ये दण्ड पाइल श्रीशची 12/42
येन काँचा–सोना–द्युति 13/104
येबा अवशिष्ट, आगे 10/47
ये ये पूर्वे निन्दा कैल 9/53
ये ये लैल श्रीअच्युतानन्देर 12/73
ये व्याख्या करिल, से 16/90
ये से बड़ हउक्, एबे 14/86
ये हओ, से हओ तुमि 17/114
यौतुक पाइल यत 13/109
यौवन–प्रवेशे अङ्गेर अङ्ग 17/5
यौवन–लीलार सूत्र करि 17/3

र

रक्त–पीतवर्ण,—नाहि अष्ठि 17/83
रक्षा करे नृसिंहेर 12/23
रघुनाथ बाल्ये कैल प्रभुर 10/155
रघुनाथ भट्टाचार्य—मिश्रेर 10/153
रघुनाथ वैद्य, आर 10/126
रघुनाथ वैद्य उपाध्याय 11/22
'रत्नबाहु' बलि' प्रभु 10/66
राघव–पण्डित—प्रभुर आद्य 10/24
राघव लइया या'न गुपत 10/26
'राघवेर झालि' बलि' 10/27
राजसेवा हय ताँहा 8/52
राढ़देशे जन्मिला ठाकुर 13/61
राढ़े याँर जन्म कृष्णदास 11/36
रात्र–दिने प्रेमे नृत्य 13/31
रात्रिदिने राधाकृणेर मानस 10/100
रात्रि–दिवसे कृष्णविरह 13/40
रात्रे निद्रा नाहि याइ 17/209
रात्रे श्रीवासेर द्वारे स्थान 17/38
रात्रे सङ्कीर्त्तन कैल एक 17/34
रात्रे स्वप्न देखे,—एक 14/84
राधा देखि' कृष्ण ताँरे 17/290
राधाभाव अङ्गीकार करियाछे 17/276
राधार विशुद्ध–भावेर 17/292
रामदास अभिराम—सख्य 10/116
रामदास, कविदत्त 10/113
रामदास–मुख्यशाखा, सख्य 11/16
रामभद्राचार्य, आर ओढ्र
रामाइ–नन्दाइ—दोँहे प्रभुर 10/143
रामानन्द राय, पट्टनायक 10/133
रामानन्द वसु, जगन्नाथ 11/48
रामानन्द–सह मोर देह 10/134
रुक्मिण्यादि–रूप प्रभु 17/241
रूप–सनातन–सङ्गे याँर 10/105

ल

लओयाइल सर्वलोके 13/33
लक्ष्मी चित्ते सुख पाइल 14/63
लक्ष्मी ताँर अङ्गे दिल 14/67
'लक्ष्मीरिव' अर्थालङ्कार 16/78
'लक्ष्मीर समता' अर्थ 16/60
लक्ष्मीरे विवाह कैल शचीर 15/30
"लग्न गणि' पूर्वे आमि 14/13
लग्न गणि' हर्षमति 13/121
लघु–गुरु–भाव ताँर ना 10/4
लज्जित हइला प्रभु जानि' 14/44
लज्जित हइया प्रभु प्रसाद 17/68
ललाटे लिखिल ताँर 'रामदास' 17/69
लागिल ये प्रेमफल 9/26
लिखित ग्रन्थेर यदि करि 17/311
लिखियाछेन इँहा जानि' 8/37
लुकाइते नारिल, ताहे 17/285
लुकाञा लागिला शिशु 14/25
लुकाइया दुइ प्रभुर याँर 10/39
लुकाइला दुइ भुज राधार 17/291
लोकनाथ पण्डित, आर मुरारि 12/64
लोक–भय देखि' प्रभुर 17/94
"लोक भय पाय,—मोर 17/95
लोकलज्जा हय, धर्म–कीर्त्ति 12/52
लोक सब उद्धारिते तोमार 17/49
लोके ख्याते येँहो सत्भामार 10/21
लोकेर निस्तार–हेतु करेन 13/68

व

वंशीवाद्ये गोपीगणेर वने 17/237
वक्रेश्वर पण्डित—प्रभुर बड़ 10/17
वनमाली आचार्य देखे 17/119
वनमाली कविचन्द्र, आर 12/63
वनमाली पण्डित शाखा 10/73
वराह–आवेशे हैला मुरारि 17/19
वर्णना करेन वैष्णव 13/17
वर्णिते वर्णिते ग्रन्थ हइल 8/46

वल्लभचैतन्यदास 12/82
वल्लभाचार्येर कन्या देखे 15/28
वसन्तकाले रासलीला 17/282
वसन्त, नवनी होड़, गोपाल 11/50
वस्तुतः सरस्वती अशुद्ध 16/97
वस्त्र-गुप्त दोला चड़ि' 13/114
वाणीनाथ बसु आदि यत 10/81
वाणीनाथ ब्रह्मचारी—बड़ 12/82
वात्सल्य, दास्य, सख्य 17/296
वाद्यगीत-कोलाहल, सङ्गीत 17/173
वायुव्याधि-छले कैल प्रेम 17/7
वाराणसी-मध्ये प्रभुर भक्त 10/152
वासुदेव-गीते करे प्रभुर 11/19
वासुदेव दत्त—प्रभुर भृत्य 10/41
वासुदेव दत्तेर तेँहो कृपार 12/57
विचार करिले कवित्व 16/86
विचार करिले चित्ते पाबे 8/15
विचार-समय ताँर बुद्धि 16/97
विचारिया कहे काजी 17/168
विचारिया गुण-दोष 16/51
विजय आचार्येर घरे 17/246
विजय पण्डित, आर पण्डित 12/65
विद्यापति, जयदेव 13/42
विद्या-बले पाइल 16/108
विद्या-बले सबा जिनि' 16/24
विद्यार औद्धत्ये काहोँ 17/6
विद्यार प्रभाव देखि' चमत्कार 16/9
'विधेय' आगे कहि' पाछे 16/57
विनयभङ्गीते कारो दुःख 16/6
विप्र कहे,—"एइ यदि 14/88
विप्र कहे,—"श्लोके नाहि 16/46
'विभवति' क्रियार वाक्य 16/66
विरह-सर्प-विषे ताँर 16/21
'विरुद्धमति'—कृत नाम 16/62
विरुद्धमति', 'भग्नक्रम' 16/55
'विरुद्धमति'—शब्द शास्त्रे 16/64
विरोधालङ्कार इहार महा 16/80
विवाह करिले हैल नवीन 13/27
विविध औद्धत्य करे 16/7
विश विश शाखा करि' 9/18
विशेषे सेवन करे 13/79
'विश्वम्भर' नाम इहार 14/19
विश्वम्भरेर कुशल हउक् 14/82
विश्वरूप शुनि' घर छाड़ि' 15/12
विश्वासेरे कहे,—"तुमि 12/38
विषयीर अन्न खाइले 12/50
विषये निमग्न लोक 13/67
विष्णाइ हाजरा, कृष्णानन्द 11/50
विष्णुदास, नन्दन 11/43
विष्णु-नैवेद्य खाइल 14/39
विष्णुपादोत्पत्ति—'अनुमान' 16/83
विष्णु पुरी, केशव पुरी 9/14
विष्णुर नैवेद्य मागि' 10/71
विस्तार देखिया किछु 8/47
विस्तारि' कहिब आगे 10/60
विस्तारिया वर्णिला ताहा 15/31
विस्तारि' वर्णियाछेन 13/47
विस्तारि' वर्णियाछेन 17/138
विस्तारि' वर्णिला 17/330
विस्तारि' वर्णिला इहा 17/142
विस्तारि वर्णिला इहा दास 17/274
विस्मिता हइया माता 14/75
विस्मित हञा दिग्विजयी 16/42
वृक्षेर द्वितीय स्कन्ध—आचार्य 12/4
वृन्दावन-दास इहा 17/138, 16/26, 15/32
वृन्दावनदास इहा 'चैतन्य 17/330
वृन्दावन-दास कैल 8/44
वृन्दावन-दास कैल 8/35
वृन्दावनदास—नारायणीर नन्दन 11/54
वृन्दावनदास-पदे कोटि 8/40
वृन्दावन-दास मुखे वक्ता 8/39
वृन्दावन-दासेर पादपद्म 8/81
वृन्दावन-मथुरादि यत 10/87
वृन्दावनवासी भक्तेर 8/49
वृन्दावने कल्पद्रुमे सुवर्ण 8/50
वृन्दावने कैल श्रीमूर्त्ति-पूजार 10/90
वृन्दावने दुइ भाइर चरण 10/94
वृष अन्न उपजाय, ताते 17/153
वेदधर्म करि' करे विष्णुर 8/8
वेदधर्मातीत हञा 11/9
वेद-पुराणे आछे हेन 17/160
वेदमन्त्रे सिद्ध करे ताहार 17/161
वैयाकरण तुमि, नाहि पड़ 16/50
वैराग्य-लोक-भये प्रभु ना 10/22
वैष्णव खायेन फल,—प्रभुर 17/86
वैष्णव, पण्डित, धनी 13/56
वैष्णवाज्ञा-बले करि 8/83
वैष्णवेर आज्ञा पाञा चिन्तित 8/73
वैष्णवेर गुणग्राही, ना देखये 8/62
"व्याकरण पड़ाह, निमाञि 16/31
व्याकरण-मध्ये, जानि 16/32
व्याकरणे दुइ शिष्य 10/72
व्याख्या शुनि' सर्वलोकेर 16/5
व्याघ्र-गाले चड़ मारे 11/20
व्याघ्रनख हेमजड़ि 13/113
व्याधि-छले जगदीश 14/39
व्रजवासी वैष्णवेरे आलिङ्गन 10/101
व्रजेन्द्रनन्दन बिना अन्यत्र 17/278

व्रजेन्द्रनन्दने कहे 'प्राणनाथ' 17/303
व्रजेन्द्रनन्दने माने आपनार 17/277

श

शङ्कर, मुकुन्द, ज्ञानदास 11/52
शङ्करारण्य-आचार्य—वृक्षेर 10/106
शङ्खचक्रगदापद्म-शार्ङ्ग 17/13
शची आसि' कहे,—"केने 14/74
शची कहे,—"आर एक 14/80
शची कहे,—"ना खाइब 15/10
शची कहे,—"मुञि देखोँ 13/83
शचीके प्रेमदान, तबे अद्वैत 17/10
शची-जगन्नाथे देखि' देन 14/71
शची बले,—"याह, पुत्र 14/77
शची-मिश्रेर पूजा लञा 13/118
शचीर इङ्गिते सम्बन्ध करिल 15/30
शत दुइ फल प्रभु शीघ्र 17/82
शत शत पड़ुया आसि 16/9
शत शत शिष्यसङ्गे सदा 16/5
शत-श्लोकेर एक श्लोक 16/40
शब्द शुनिलेइ हय द्वितीय 16/65
शब्दालङ्कारे—तिनपदे आछे 16/73
शयने आमार उपर लाफ 17/180
शाखार उपरे हैल वृक्ष-दुइ 9/21
शाखार उपशाखा, तार 12/77
शाखा-श्रेष्ठ ध्रुवानन्द, श्रीधर 12/79
शाप शुनि' महाप्रभुर हइल 17/63
"शापिब तोमारे मुञि 17/62
शालग्राम सेवा करे 13/86
शास्त्र-आज्ञाय वध कैले 17/157
शास्त्रदृष्टे कैल लुप्ततीर्थेर 10/90
"शास्त्रेर विचार भाल-मन्द 16/94
शिरे धरि वन्दोँ, नित्य 17/336
शिवपत्नीर भर्त्ता'—इहा 16/64
शिवाइ, नन्दाइ, अवधूत 11/49
शिवानन्द-सम्बन्धे प्रभुर 10/63
शिवानन्द सेन—प्रभुर भृत्य 10/54
शिवानन्देर उपशाखा—ताँर 10/61
शिशुगण लये पाड़ा-पड़सीर 14/40
शिशुगणे मिलि' कैल विविध 14/23
शिशुद्वारे कैल मोरे एत 16/96
'शिशुद्वारे देवी मोरे करिल 16/95
शिशुर शून्यपदे केने नूपुरेर 14/79
शिशुसब शची-स्थाने कैल 14/41
शिष्यगण पड़ाइते करिला 16/4
शिष्यगण लञा पुनः विद्यार 16/24
शिष्य, प्रशिष्य, आर उपशिष्य 9/24
शिष्येते ना बुझे, आमि 16/33
शिष्येर प्रतीत हय 13/29
शिष्येर समान मुञि ना 16/103
शुकाइया मरे, तबु जल 17/28
शुक्लाम्बर-ब्रह्मचारी बड़ 10/38
शुन, गौरहरि, एइ प्रश्नेर 17/176
शुनि' क्रु
शुनि' क्रोध कैल सब 17/254
शुनि' चमकित हैल पिता 14/78
शुनि' देखि' सर्वलोक 17/187
शुनि' प्रभु क्रोधे कैल कृष्णे 17/250
शुनि' प्रभु 'बल' 'बल' 17/234
शुनि प्रभु 'हरि' बलि' उठिला 17/223
शुनिब तोमार मुखे शास्त्रेर 16/104
शुनिया आविष्ट हैला प्रभु 17/91
शुनिया कहिल प्रभु बहुत 16/37
शुनिया पड़ुया ताहाँ अर्थवाद 17/72
शुनिया प्रभुर चित्ते आनन्द 17/235
शुनिया प्रभुर दण्ड आचार्य 12/37
शुनिया प्रभुर मन प्रसन्न 12/48
शुनिया प्रभुर वाक्य दिग्विजयी 16/87
शुनिया पाइला आचार्य 12/17
शुनिया ब्राह्मण गर्वे वर्णिते 16/36
शुनिया मुरारि श्लोक कहिते 17/77
शुनिया ये क्रु
शुनिया सकल लोक विस्मित 14/92
शुनिया सन्तुष्ट हैल पिता 15/15
शुनिलुँ फाँकिते तोमार 16/32
शुनि' शची पुत्रे किछु 14/41
शुनि' शची-मिश्रेर दुःखी 15/13
शुनि' शची-मिश्रेर मने 14/20
शुनि' सब म्लेच्छ आसि' 17/192
शुनि' सब लोक तबे 16/39
शुनि' स्तब्ध हैल काजी 17/168
शुद्ध वात्सल्य मिश्रेर, नाहि 14/90
शूकर चराय डोम, सेइ 10/83
शेष अष्टादश वर्ष 13/37
शेष-लीला शुनिते सबार 8/71
शेषे अवतीर्ण हैला 13/62
शैशव-चापल्य किछु ना 16/103
श्याम-अङ्ग पीतवस्त्र 17/15
श्यामसुन्दर, शिखिपिच्छ 17/279
श्लोक पड़ि' ताँर भाव 14/68
श्लोकेर अर्थ कैल विप्र 16/45

श्र

श्रवण–मात्रे कण्ठे कैल 15/5
श्रीईश्वरपुरी–रूपे अङ्कुर 9/11
श्रीकृष्णचैतन्य, अद्वैत 17/333
श्रीकृष्णचैतन्य–दया करह 8/15
श्रीकृष्णचैतन्य नवद्वीपे 13/8
श्रीकृष्णचैतन्यलीला 17/331
श्रीगदाधरदास–शाखा 10/53
श्रीगदाधर पण्डित–उपशाखा 12/78
श्रीगोपाल–नामे आर 12/19
श्रीगोपालभट्ट—एक शाखा 10/105
'श्रीगोविन्द–देव' नाम 8/51
श्रीगोविन्द–नाम ताँर 10/138
श्रीगौरीदास पण्डिते प्रेमोद्दण्ड 11/26
श्रीचन्द्रशेखर वैद्य, द्विज 10/112
श्रीचैतन्य–नित्यानन्द 13/124
श्रीचैतन्य–नित्यानन्दे करि' 11/27
श्रीचैतन्य मालाकार पृथिवीते 9/9
श्रीचैतन्य–माली कैला 17/322
श्रीचैतन्येर अति प्रिय 10/74
श्रीजगदीश पण्डित हय 11/30
श्रीजीव, गोपालभट्ट 9/4
श्रीजीव पण्डित नित्यानन्द 11/44
श्रीधरेर लौहपात्रे कैल 17/70
श्रीनाथ चक्रवर्ती, आर 12/83
श्रीनाथ पण्डित—प्रभुर 10/107
श्रीनाथ मिश्र, शुभानन्द 10/110
श्रीनित्यानन्द–पद बिना 11/47
श्रीनित्यानन्द–वृक्षेर स्कन्ध 11/5
श्रीनित्यानन्देर तेँहो 11/36
श्रीनिधि, श्रीगोपीकान्त 10/110
श्रीनृसिंह–उपासक—प्रद्युम्न 10/35
श्रीनृसिंह तीर्थ, आर 9/14
श्रीपति, श्रीनिधि—ताँर 10/9
श्रीपुरुषोत्तमदास—ताँहार 11/38
श्रीमन्त, गोकुलदास 11/49
श्रीमाधव घोष—मुख्य 11/18
श्रीमाधवाचार्य, कमलाकान्त 10/119
श्रीमान्पण्डित शाखा 10/37
श्रीमान् सेन प्रभुर सेवक 10/52
श्रीमुकुन्द–दत्त शाखा 10/40
श्रीमुरारि गुप्त–शाखा 10/49
श्रीयदुनन्दनाचार्य—अद्वैतेर 12/56
'श्रीयुत लक्ष्मी' अर्थे 16/77
श्रीरघुनाथदास, आर 17/335
श्रीराधार दासीमध्ये याँर 10/137
श्रीराधार प्रलाप यैछे 13/41
श्रीरामदास आर, गदाधर 11/13
श्रीरामदास, माधव, आर 10/118
श्रीरूप–रघुनाथ–चरणेर एइ 8/84
श्रीरूप, सनातन, भट्ट–रघुनाथ 9/4
'श्रीलक्ष्मी'–शब्दे 16/73
श्रीवत्स पण्डित, ब्रह्मचारी 12/62
श्रीवल्लभसेन, आर सेन 10/63
श्रीवास कहेन तबे रास 17/239
श्रीवास कहे,—"वंशी 17/233
श्रीवास–गृहेते गिया गदा 17/94
श्रीवास पण्डित आर 10/8
"श्रीवास पण्डितेर स्थाने आछे 17/57
श्रीवास–पुत्रेर ताँहा हैल 17/228
श्रीवास बलेन,—"ये 17/96
श्रीवास वर्णेन वृन्दावन 17/234
श्रीवासादि गदाधरादि यत 17/333
श्रीवासादि यत महाप्रभुर 17/300
श्रीवासे कराइलि तुइ भवानी 17/52
श्रीवासे कहेन प्रभु करिया 17/95
श्रीवासेर ब्राह्मणी 13/110
श्रीवासेर वस्त्र सिये दरजी 17/231
श्रीवासेरे दुःख दिते नाना 17/36
श्रीविजयदास–नाम प्रभुर 10/65
श्रीवीरभद्र गोसाञि—स्कन्ध 11/8
श्रीशची–जगन्नाथ 13/54
श्री'–शब्दे, 'लक्ष्मी'–शब्दे 16/76
श्रीशिखि माहिति, आर 10/136
श्रीसदाशिव कविराज—बड़ 11/38
श्रीस्वरूप–श्रीरूप 17/335
श्रीहट्ट–निवासी श्रीउपेन्द्रमिश्र 13/56
श्रीहरि आचार्य, दास–पुरिया 12/84
श्रीहरिचरण, आर माधव 12/64
श्रीहर्ष, रघुमिश्र, पण्डित 12/85
शृङ्ग–वेत्र–गोपवेश, शिरे 11/21

ष

षड्वर्ग, अष्टवर्ग, सर्व 13/90
षष्ठ परिच्छेदे 'अद्वैत 17/319
षोड़श वत्सर कैल 10/93
षोड़शे कहिलुँ 'कैशोर 17/327
षोलसाङ्गेर काष्ठ तुलि' ये 10/116
षोलसाङ्गेर काष्ठ ये तुलि' 11/16

स

सङ्कीर्त्तन करि' बैसे श्रमयुक्त 17/79
सङ्कीर्त्तन बाद यैछे नहे 17/221
संक्षेपे करिये किछु से 10/123
संक्षेपे कहिये, कहा ना 13/53
संक्षेपे कहिल जन्मलीला 14/4
संक्षेपे कहिल महाप्रभुर 10/163
संक्षेपे कहिलाङ एइ 11/60
संक्षेपे कहिलुँ अति,—ना 17/329
संक्षेपे लिखिये सम्यक् 13/51
सङ्गे चलि' आइसे काजी 17/224
सङ्गे नित्यानन्द, चन्द्रशेखर 17/273
संन्यास करह तुमि' 15/18
संन्यास करिया तीर्थ करिवारे 15/12
संन्यास करिया यबे प्रभु 17/55
संन्यासि-बुद्धये मोरे प्रणत 17/265
संन्यासी-बुद्धये मोरे 8/11
"संसार-सुख तोमार हउक 17/63
स-कलङ्क चन्द्रे आर 13/91
सकल पण्डित जिनि' करे 17/6
सकल भरिया आछे प्रेम 10/161
सकल शाखार सेइ स्कन्ध 9/12
सख्य, दास्य,—दुइ भाव 17/299
सगणे सचेले गिया कैल 17/74
सप्तम परिच्छेदे 'पञ्चतत्त्वे'र 17/320
सप्तदशे 'यौवनलीला' कहिलुँ 17/327
सप्त मिश्र ताँर पुत्र—सप्त 13/57
सत्यराज आदि—ताँर 10/48
स्थावर-जङ्गम हैल 13/97
सदा नाम लइबे, यथा 17/30
सदाशिव-पण्डित याँर 10/34
सन्ध्याकाले कर सबे नगर 17/133
सन्ध्याते देउटि सबे ज्वाल 17/134
सन्ध्याय गङ्गास्नान करि' 17/120
"सब देश भ्रष्ट कैल एकला 17/255
सबाके खाओयाल आगे 17/84
सबार अध्यक्ष—प्रभुर मर्म 10/124
सबार प्रेम-ज्योत्स्नाय 13/5
सबार सम्मान-कर्त्ता, करेन 8/56
सबारे कहे श्रीवास हासिया 17/41
सबारे निषेधिल,—"इहार 17/73
सबेइ चैतन्यभृत्य,—चैतन्य 10/81
'सबे घरे याह, आमि 17/214
सबे मिलि' नृत्य करे 17/119
सबे मेलि' करे तबे 17/254
समग्र बलिते नारे 'सहस्र 10/163
समस्त भक्तेरे दिल इष्ट 17/70
समासे गौण हैल, शब्दार्थ 16/59
सरस्वती याहा बलाय, सेइ 16/94
सरस्वती रात्रे ताँरे उपदेश 16/106
सर्व अङ्ग—सुनिर्माण 13/116
सर्वज्ञ कहे,—"आमि ताहा 17/112
सर्वज्ञ गोसाञि जानि' सबार 17/259
सर्व त्यजि' कैल प्रभुर 10/91
सर्वत्र करेन कृष्णनामेर अ28
सर्वत्र लओयाइल प्रभु 13/27
सर्वप्राणीर उपकार हय 9/45
सर्वभावे आश्रियाछे चैतन्य 12/57
सर्वभावे सेवे नित्यानन्देर 11/41
सर्वलोक शुनिले मन्त्रेर 17/212
सर्वलोके करिबे एइ धारण 14/19
सर्वलोके मत्त कैला आपन 9/52
सर्व वैष्णवगण हरिध्वनि 8/76
सर्वशाखागणेर यैछे फल 17/323
सर्वशाखा-श्रेष्ठ वीरभद्र 11/56
सर्वशास्त्रे कहे कृष्णभक्तिर 13/65
सर्वशास्त्रे सर्व पण्डित पाय 16/6
सर्वस्व दण्डिया तार जाति 17/128
सर्वाङ्ग बेड़िल कीटे, काटे 17/46
सर्वाङ्गे हइल कुष्ठ, बहे 17/45
सर्वेन्द्रिय-तृप्ति हय श्रवणे 16/110
सर्वोत्तम हइलेओ तारे 8/12
सवंशे करेन याँरा चैतन्येर 10/11
सवंशे तोमारे आर यवन 17/185
सहजे यवन-शास्त्रे अदृढ़ 17/171
सहस्र दण्डवत् करे, लय 10/99
सहस्र-मुखे याँर गुण 10/41
सहस्र-वदने सेवा ना 8/53
सहस्र-वदने तेँहो 13/45
'सहस्र वदने' यार दिते 10/162
सहस्र सेवक सेवा करे 8/53
'साक्षात्', 'आवेश' आर 10/56
साक्षात् ईश्वर करि' प्रभुरे 16/106
साक्षात् ईश्वर तेँहो,—नाहिक 16/13
'साक्षाते' सकल भक्ते देखे 10/57
साध्य-साधन श्रेष्ठ ना हय 16/11
सात सात पुत्र हबे—चिरायु 14/55
सार्द्ध सप्त प्रहर करे 10/102
सालङ्कार हैले अर्थ करे 16/86
सावित्री, गौरी, सरस्वती 13/105
साहजिक प्रीति दुँहार 14/64
सिङ्गाभट्ट, कामाभट्ट 10/149
सिंह-राशि, सिंह-लग्न 13/90
सिन्दूर, हरिद्रा, तैल 13/110
सुखी हइया लोक मोर 9/40
सुन्दर शरीर यैछे भूषणे 16/70
सुन्दरानन्द—नित्यानन्देर शाखा 11/23

सुपठित विद्या कारओ ना 17/257
सुबुद्धि मिश्र, हृदयानन्द 10/111
सुवर्णेर कड़ि-बउलि 13/112
सुशील, सहिष्णु, शान्त 8/55
सुस्थ हञा कहे प्रभु अपूर्व 15/17
सूक्ष्म विचारिये यदि आछये 16/84
सूत्र करि' गणे यदि 13/45
सूत्र करि' ग्रन्थिलेन 13/16
सूत्र करि' सब लीला 8/45
सूत्रधृत कोन लीला ना 8/47
सूत्ररूपे मुरारिगुप्त 13/15
सूत्र-वृत्ति-टीकाय कृष्णनामेर 13/29
सूर्यदास सरखेल, ताँर भाइ 11/25
सृजाइल, जीयाइल, ताँरे 12/68
सेइ अंश कहि, ताँरे 16/27
सेइ अनुसारे लिखि लीला 13/47
सेइ आचार्यगणे मोर कोटी 12/75
सेइ आचार्येर गण 12/73
सेइ काले दैवयोगे 13/20
सेइकाले निजालय 13/99
सेइ कृष्ण, सेइ गोपी 17/304
सेइ कृष्णप्रेमफले जगत् 12/6
सेइक्षणे गौरकृष्ण 13/94
सेइ क्षणे जागि' निमाइ 14/10
सेइक्षणे धाञा प्रभु गङ्गाते 17/245
सेइ चतुर्भुज-मूर्त्ति चाहेन 17/290
सेइ चिह्न पाये देखि' मिश्रे 14/11
सेइ जन याय चैतन्येर 17/309
सेइ जले जीये शाखा 12/66
सेइ जले पुष्ट स्कन्ध 12/5
सेइ जले स्कन्धे करे 12/7
सेइ तुमि हओ,—हेन 17/215
सेइ दिन एक आमार 17/188
सेइ दुइस्कन्धे शाखा यत 9/22
सेइ देशे विप्र, नाम—मिश्र 16/10
सेइ नन्दसुत—इहँ 17/295
सेइ नामे आमि तोमाय 17/175
सेइ नित्यानन्द—कृष्णचैतन्य 17/296
सेइ पत्रीर कथा आचार्य 12/30
सेइ पापी दुःख भोगे 17/54
सेइ पुण्ये हैलाङ आमि 17/111
सेइ फल खाय, नाचे 9/53
सेइ बलदेव—इहँ नित्यानन्द 17/295
सेइ भक्तगणेर एबे करिये 10/129
सेइमत उन्माद-प्रलाप 13/41
सेइ मोर प्रिय, अन्य 10/82
सेइ रात्रे एक सिंह महा 17/179
सेइ रूप-रघुनाथ प्रभु 10/103
सेइरूपे एइरूपे देखि 17/113
सेइ लिखि, मदनगोपाल 8/79
सेइ वीरभद्र-गोसाञिर 11/12
सेइ व्रजेश्वर—इहँ 17/294
सेइ व्रजेश्वरी—इहँ शचीदेवी 17/294
सेइ शास्त्रे कहे,—प्रवृत्ति 17/156
सेइ सब लीलार शुनिते 8/49
सेइ सेइ आचार्येर कृपार 12/74
सेइ सेइ रसे कृष्ण 17/301
सेइ सेइ स्थाने किछु 13/49
सेइ स्कन्धे यत प्रेमफल 12/6
सेइ हैते एकादशी करिते 15/10
सेइ हैते जिह्वा मोर बले 17/200
सेतुबन्ध, आर गौड़-व्यापि 13/36
से दण्डप्रसाद आर लोके 12/42
से दिन बहुत नाहि कैलि 17/184
से पत्रीते लेखा आछे—एइ 12/31
सेवार अध्यक्ष—श्रीपण्डित 8/54
से-सब गुणेर ताँर 8/57
से-सब सामग्री आगे करिब 10/28
से-सब सामग्री यत झालिते 10/26
से सम्बन्धे हओ तुमि 17/149
सेह महावैष्णव हय 8/38
सोनार मुषल हल ये 10/73
स्कन्धेर उपरे बहु शाखा 9/17
स्तनपान करे प्रभु ईषत् 14/35
स्तन पियाइते पुत्रेर चरण 14/11
स्थावर हइया धरे 9/32
स्थूल एइ पञ्च दोष 16/84
स्फुट करि' कह तुमि 17/177
स्फुट नाहि करे दोष-गुणेर 16/26
स्वतःसिद्धज्ञान, तबे शिक्षा 14/88
स्वतन्त्र ईश्वर प्रभु अत्यन्त 8/32
स्वतन्त्र ईश्वर प्रेम—निगूढ 8/21
स्वप्न देखि' मिश्र आसि' 16/14
स्वप्ने एक विप्र कहे 16/12
स्वप्नेर वृत्तान्त सब कैल 16/14
स्वमत कल्पना करे 12/9
स्वमाधुर्य-प्रेमानन्दरस 17/317
स्वयं भगवान् येइ 17/314
स्वरूपेर अन्तर्धाने आइला 10/93
स्वर्ग वाद्य-नृत्य करे 13/96
स्वसङ्ग छाड़ाञा केने पाठान 16/18
स्वेद-कम्प-पुलकादि 8/27

ह

'हरि' 'कृष्ण' 'नारायण' 17/218

हरिदास ठाकुर–शाखार 10/43
हरिदास ठाकुरेर करिल 17/71
हरिदासे लञा सङ्गे 13/99
हरिद्रा, सिन्दूर आर रक्त 17/39
हरिनाम लओयाइला 13/22
'हरि' बलि' नारीगण 13/96
'हरि' बलि' हिन्दुके 13/95
'हरि हरये नमः, कृष्ण 17/122
'हरि' 'हरि' करि' हिन्दु 17/195
'हरि' 'हरि' ध्वनि बइ 17/193
'हरि' 'हरि'–ध्वनि बिना 17/123
'हरि' 'हरि' बले लोक 13/21
'हरेर्नाम' श्लोकेर कैल 17/20
हाड़िके आनिया सब दूर 17/44
हासि' ताहे महाप्रभु पुछेन 17/171
हासे, कान्दे, पड़े 17/208
हासे, कान्दे, नाचे, गाय 17/194
हित–उपदेश कैल हइया 17/56
हिन्दुके परिहास कैनु से 17/201
हिन्दुर ईश्वर बड़ येइ 17/215
हिन्दुर देवतार नाम लह 17/197
हिन्दुर धर्म नष्ट कैल 17/210
हिन्दुशास्त्रे 'ईश्वर' नाम 17/212
'हिन्दु 'हरि' बले, तार 17/196
हुङ्कारे आकृष्ट हैला 13/71
हेनकाले दिग्विजयी ताहाँइ 16/29
हेनकाले पाषण्डी हिन्दु 17/203
हेनकाले राधा आसि' दिला 17/289
हेन कृपामय चैतन्य ना 8/12
हेन कृष्णनाम यदि लय 8/29
हेन प्रेम श्रीचैतन्य दिला 8/20
हेन बुझि, जन्मिबेन 13/85
हैते हैते हैल गर्भ त्रयोदश 13/87
होड़ कृष्णदास—नित्यानन्द 11/47
हृदयानन्द सेन, आर 12/60

शब्दकोश

अ

अक्षजज्ञान—इन्द्रियोंके द्वारा प्राप्त ज्ञान
अघटन-घटन-पटीयसी—असम्भवको भी सम्भव तथा इसके विपरीत करनेवाली
अचिद्वस्तु—जो वस्तु चित् नहीं हो
अच्छेद्य—अविभाज्य, जिसका छेदन ना हो सके
अच्युत—जो च्युत नहीं हो
अज—अजन्मा
अजागलस्तन—बकरीके गलेमें लटकनेवाली स्तनके जैसी चीज
अज्ञ—ज्ञानरहित
अणिमा—योगकी आठ सिद्धियोंमेंसे एक, जिसमें योगी अणुके समान सूक्ष्म हो जाता है
अतिक्रम—मर्यादा, कर्त्तव्य, अधिकार आदिका उल्लङ्घन
अतिक्रान्त—अतीत, क्रमका उल्लङ्घन किया हुआ
अतिशय—अत्यधिक
अतिशयोक्ति—किसी बातका बढ़ा-चढ़ाकर कहना
अत्याज्य—नहीं त्यागने योग्य
अत्युत्तम—अति उत्तम
अदृष्ट—न देखा हुआ, अज्ञात
अधिदैव—आराध्य देवता
अधिरूढ़—बढ़ा हुआ
अधिष्ठान—आधार, आश्रय
अनभिज्ञ—न जाननेवाला
अनवरत—निरन्तर
अनायास—बिना कष्टके
अनिर्वचनीय—वचनसे ना वर्णन करने योग्य
अनुक्षण—निरन्तर
अनुगत—अनुगामी, अधीन
अनुवर्त्तन—अनुसरण, अनुगमन
अनुष्ठान—आरम्भ करना, कोई धार्मिक कृत्य
अनुसन्धान—खोज, प्रयत्न
अन्तर्भुक्त—किसीके अन्तर्गत होना
अन्तर्भूत—अन्तर्गत
अन्त्य—अन्तका, आखिरी
अन्यतम—बहुतोंमें से एक, सर्वश्रेष्ठ
अन्वय—वाक्यमें शब्दोंका परस्पर सम्बन्ध, मेल
अन्वेषण—खोज, ढूँढना
अपकार—अहित
अपटुता—अकुशलता
अपरा—जो श्रेष्ठ ना हो
अपरिमित—अगणित, अनगिनत
अपवर्ग—मोक्ष, निर्वाण
अपूर्व—जो पहले ना हुआ हो, अनूठा
अप्राकट्य—अप्रकट होना
अप्राकृत—अलौकिक
अप्रारब्ध—वैसा फल जो वर्तमान शरीरमें न भोगा जा रहा हो
अप्रासङ्गिक—प्रस्तुत विषयसे असम्बद्ध, प्रसङ्गके विरुद्ध
अबाध—बाधारहित
अभयत्व—अभयता
अभिज्ञ—जाननेवाला
अभिधा—नाम, वाच्यार्थ प्रकट करनेवाली शब्द शक्ति
अभिधान—शब्दकोष
अभिधेय—अर्थ या उपाय, कथनीय, विषय

अभिप्राय—मूल अर्थ, तात्पर्य
अभिप्रेत—उद्दिष्ट, अभिलाषित, स्वीकृत
अभिवृद्धि—अभ्युदय, बढ़ना
अभिव्यक्ति—प्रकट करना
अभिसन्धि—जोड़, समझौता
अभिसार—आगे बढ़ना, प्रियसे मिलने जाना
अभिहित—कहा हुआ
अभीष्ट—प्रिय, रुचिकर
अभ्यस्त—बार बार अभ्यास किया गया
अभ्युदय—उदय
अमित—अत्यधिक
अरण्य—वन
अवगत—जाना हुआ
अर्वाचीन—नया, बादमें उत्पन्न हुआ
अवतारणा—नीचे लाना, इन्द्रियगोचर करना
अवतीर्ण—अवतारके रूपमें प्रकट
अवधारण—शब्दके अर्थकी सीमा बाँधना, निश्चय करना
अवयव—अङ्ग, अंश
अवरुद्ध—रुका हुआ
अवलम्बन—आश्रय लेना, सहारा लेना
अवलोकन—देखना
अवशिष्ट—बचा हुआ, शेष
अवस्थान—रहना, अवस्थिति
अविचिन्त्य—अचिन्त्य
अविच्छिन्न—अविभक्त, लगातार अविच्छिन्न तैलधारावत्–तेलकी धाराके समान अटूट
अव्यय—अविकारी
अव्याकृत—अव्यक्त
अशेष—सम्पूर्ण
अष्टसिद्धि—आठ प्रकारकी सिद्धियाँ
असङ्ग—आसक्तिहीन
असङ्गत—प्रसङ्गविरुद्ध, अनुचित
असङ्गति—मेलका ना होना
असंस्कृत—संस्कारहीन
असमोर्द्ध—जिससे बड़ा और जिसके बराबर कोई नहीं हो
असार—सारहीन
असूया—ईर्ष्या, दूसरेके गुणमें दोष निकालना

आ

आख्यायिका—कहानी
आच्छन्न—ढका हुआ
आत्मविषयणी—आत्म–सम्बन्धी
आत्मसात्—अपने अधिकारमें
आत्यन्तिक—असीम
आदित्य—सूर्य
आधान—स्थापन, कोई वस्तु रखनेका स्थान रखना
आधिदैविक—देवताओंके द्वारा कृत
आधिभौतिक—अन्य प्राणियों द्वारा प्रदत्त
आध्यात्मिक—मानसिक, आत्म–सम्बन्धी
आपाततः—अचानक, अन्तमें
आप्त—पूर्ण, कुशल
आम्नाय—वेद, श्रुत, परम्पराप्राप्त उपदेश
आयुध—अस्त्र
आरूढ़—आसीन
आरोहण—चढ़ना, ऊपरकी ओर जाना
आर्त्ति—क्लेश, पीड़ा
आर्ष—ऋषियोंका
आलोचना—गुण–दोष निरूपण
आलोच्य—आलोचना योग्य
आह्लादित—आनन्दित

इ

इति—इस प्रकार, समाप्ति
इहलोक—यह लोक

ई

ईक्षण—दृष्टिपात
ईशिता—ईश्वरत्व

उ

उच्छिष्ट—खाकर छोड़ा हुआ, परित्यक्त
उत्कृष्ट—उन्नत, श्रेष्ठ
उद्बुद्ध—जगा या जगाया हुआ, विकसित
उद्भासित—व्यक्त, चमकता हुआ
उद्यत—तैयार
उद्रेक—प्रचुरता, बढ़ती
उद्वेग—क्षोभ, चित्तकी अस्थिरता
उपक्रम—योजना, आरम्भ, प्रयास
उपशम—विराग, विरक्ति
उपलक्षित—इशारेसे बताया हुआ
उपाङ्ग—छोटा या सहायक अंग
उपार्जित—कमाया हुआ
उपादान—साधन-सामग्री
उपादेय—ग्रहण करने योग्य, उपयोगी
उपेयत्व—उपाय-योग्य होनेका भाव
उरु—विस्तृत, महान
उरुक्रम—विष्णु
उरुगाय—उत्तम व्यक्तियोंके द्वारा जिसका स्तुतिगान किया गया हो

ए

एकरस—जो सदा एक रूपमें रहे,
एकीभूत—जो मिलकर एक हो गया हो

ऐ

ऐहिक—सांसारिक

औ

औत्सुक्य—उत्सुकता
औद्धत्य—उद्धतता, अक्खड़पन
औपाधिक—उपाधियुक्त

क

कर्तृत्व—कर्ताका धर्म, कार्य
कलुषित—गंदा, कलुषयुक्त
कल्प—वेदका एक अङ्ग, ब्रह्माका एक दिन
कल्पवृक्ष—इच्छा पूरी करनेवाला वृक्ष
काम्यकर्म—फलकी कामनासे किया जानेवाला कर्म
कैतव—छल, धोखा
केवला भक्ति—शुद्धा भक्ति
कैङ्कर्य—दासत्व
कैवल्य मुक्ति—निर्वाण मुक्ति
कौतूहलवश—उत्सुकतावश
क्रोड़ीभूत—अन्तर्भूत
क्लान्त—थका हुआ, क्षीण

क्ष

क्षिति—पृथ्वी
क्षेत्र—शरीर
क्षेत्रज्ञ—शरीरका ज्ञाता, आत्मा तथा परमात्मा
क्षोभ—असन्तोष, व्याकुलता

ग

ग्रथित—गूँथा हुआ
ग्रन्थि—गाँठ
ग्रास—आहार
ग्रीवा—गर्दन

घ

घ्राण—गन्ध, सूँघनेकी शक्ति

च

चित्तगुहा—हृदयरूपी कन्दरा
चित्-शक्ति-भगवानकी एक प्रकारकी शक्ति
चिदालोचना—चित्-वस्तुकी आलोचना
चिन्तामल—चिन्तारूपी मल
चिन्मयत्व—चिन्मयता
चैतन्यत्व—चेतनता
चैतन्यनिष्ठ—चित्-वस्तुमें जिसकी निष्ठा है
चैतन्यहीन—चेतनारहित

छ

छन्दविद्या—अठारह विद्याओंमें एक

ज

जर्जरित—जो जर्जर हो गया हो

त

तत्त्वज्ञान—तत्त्ववस्तुका ज्ञान
तत्त्वतः—यथार्थतः
तत्त्वविद्—तत्त्वको जाननेवाला
तदीय—भगवत्-सम्बन्धी
तनय—पुत्र
तन्मय—तल्लीन
तादात्मय—दो वस्तुओंके परस्पर अभिन्न होनेका स्वभाव
तारतम्य—दो वस्तुओंके घट-बढ़कर होनेका भाव
तिर्यग्—पशु-पक्षी
तैलधारावत्—तैलकी भाँति धारावाला
त्रिगुणातीत—तीनों गुणोंसे अतीत
त्रिवर्ग—धर्म, अर्थ और काम

द

दिक्पाल—दश दिशाओंके रक्षक देवता
दुर्ज्ञेय, दुर्बोध—कठिनाईसे जानने योग्य
दुर्निगृहीत—कठिनाईसे वशमें लाया हुआ
दुर्वारित—कठिनाईसे निवारण किया हुआ
दुरूह—कठिन
दुस्त्याज्य—नहीं त्यागने योग्य
देदीप्यमान—चकमता-दमकता हुआ
देहाध्यास—देहमें मिथ्या अभिमान
द्रव्यमययज्ञ—द्रव्य द्वारा किया गया यज्ञ
द्विजवर—ब्राह्मणश्रेष्ठ
द्वैतभाव—दो होनेका भाव

ध

धूसरित—धूलसे भरा हुआ
ध्वनित होना—पता चलना

न

नराकृति—मनुष्यके समान आकृति
नामाभास—नामका आभास
निःशक्तिक—शक्तिरहित
निःश्वास—प्राणवायु या साँसका बाहर निकलना
निःसृत—निकला हुआ
निकृष्ट—तुच्छ
निकेतन—घर
निक्षेप करना—फेंकना
निगृहीत—निग्रह किया हुआ
निग्रह—संयम
निन्तान्त—अत्यन्त, एकदम
निमज्जित—डूबा हुआ, स्नात
नियमाग्रह—नियम-पालनमें आलस्य
निरञ्जन—निर्दोष, अज्ञानसे रहित
निरपेक्ष—किसी औरकी अपेक्षा नहीं
निर्गत—बाहर निकला हुआ
निर्गुण—सत्त्व, रज और तमोगुणसे अतीत
निर्दिष्ट—निर्देशित
निर्वाण—मोक्ष
निर्विकल्प—विकल्पसे रहित
निर्विवाद—बिना विवादका
निरुद्ध—विशेषरूपसे रोका हुआ
निरूपक—निरूपण करनेवाला
निरूपण—किसी विषयको ठीक-ठीक समझा देना
निशा—रात्रि
निष्काम कर्म—कामनासे रहित कर्म
निष्पन्न—जिसकी उत्पत्ति हुई है
निसर्गवाद—प्रकृतिवाद (प्रकृति ही जगत्की सृष्टि करनेवाली है, ऐसा मतवाद)
निस्तारक—निस्तार करनेवाला
निस्त्रैगुण्य—तीनों गुणोंसे अतीत
निहत—मारा हुआ
नीलमणि—नीलम
नैतिक—नीति-सम्बन्धी

नैमित्तिक—निमित्तसे उत्पन्न
नैरन्तर्य—निरन्तर होनेका भाव
नैर्घृण्य—निर्ममता, क्रूरता

प

पक्षान्तर—दूसरी ओर
पन्था—पथ
परिज्ञात—अच्छे प्रकारसे ज्ञात
परनिष्ठित—दूसरेमें निष्ठावाला
परदार—दूसरेकी स्त्री
परवर्ती—बादमें
पराक्रान्त—शक्तिशाली
परिग्रह—ग्रहण
पराभक्ति—श्रेष्ठा, शुद्धा भक्ति
पराभूत—पराजित
परिचर्या—सेवा
परिचालक—चलानेवाला
परिदृष्ट—दृष्ट
परिनिष्ठित—पूर्णतया निपुण
परिमित—सीमित
परिलक्षित—अच्छी तरह देखाभाला हुआ
परिव्राजक—संन्यासी
परिवेष्टित—घिरा हुआ
पर्यन्त—तक
पर्यवसित—समाप्त
पाण्डित्य—विद्वता
पारत्रिक—परलोक-सम्बन्धी
पारलौकिक—परलोक-सम्बन्धी
पार्षद—परिकर
पाषण्डी—पाखण्डी
पूर्वपक्ष—संशयके सम्बन्धमें उठाया गया प्रश्न
पूर्वराग—मिलनसे पहलेका राग
प्रकरण—निर्माण, प्रसङ्ग
प्रकृत—यथार्थ
प्रकृष्ट—उत्तम
प्रक्षिप्त—बादमें जोड़ा या घुसाया हुआ
प्रच्छन्न—ढका हुआ
प्रजल्प—इधर-उधरकी बात
प्रज्ञा—बुद्धि
प्रणयन—रचना, निर्माण
प्रणत—शरणागत
प्रणतपाल—शरणागतकी रक्षा करनेवाले
प्रणति—प्रणाम, शरणागति
प्रताड़ित—सताया गया
प्रतिपादित—प्रमाणित
प्रतिपाद्य—जिसे प्रमाणित किया जाय
प्रतिभात—प्रभायुक्त, ज्ञात
प्रतीयमान—जान पड़ता हुआ, जिसकी प्रतीति हो रही हो
प्रत्यगात्मा—जीवात्मा
प्रत्यवाय—दोष
प्रत्याहार—निरोध, रोकना
प्रत्युपकार—भलाईके बदलेमें की हुई भलाई
प्रदत्त—दिया हुआ
प्रधान—मायाकी एक वृत्ति
प्रधानतः—मुख्यरूपसे
प्रपत्ति—शरणागति
प्रभूत—अत्यधिक
प्रभृति—जैसा
प्रयोजनीयता—आवश्यकता
प्रयोजक—प्रयुक्त करनेवाला
प्रयोजकत्व—प्रयोजक होनेका भाव
प्रवर—श्रेष्ठ
प्रवर्त्तक—किसी काममें लगानेवाला, आरम्भ करनेवाला
प्रवृत्ति—मनका किसी विषयकी ओर झुकाव, प्रभाव
प्रशस्त—प्रशंसाके योग्य
प्रशान्तात्मा—शुद्ध या शान्त आत्मा
प्रशामक—शान्त करनेवाला
प्राकृत—प्रकृति-सम्बन्धी

प्राक्तन—प्राचीन
प्रादुर्भूत—आविर्भूत, अवतरित
प्रादेशिक वाक्य—प्रसङ्गगत, स्थानीय वाक्य
प्रापक—प्राप्त करने या करानेवाला
प्रापञ्चिक—जगत् या प्रपञ्च-सम्बन्धी
प्राप्य—प्राप्त होने योग्य
प्रार्थित—प्रार्थना किया हुआ
प्रेमास्पद—प्रेमका स्थल
प्रेमोत्कर्ष—प्रेमका उत्कर्ष

ब

बाहुल्य—अधिकता
बाह्य अङ्ग—बाहरी अङ्ग
बिद्ध—छेदा हुआ, आहत
बृहत्—बड़ा
बोधगम्य—समझमें आने योग्य
ब्रह्मलय—ब्रह्ममें लय होना
ब्रह्मवेत्ता—ब्रह्मको जाननेवाला
ब्रह्मानन्द—ब्रह्मका आनन्द
ब्रह्मानुभूति—ब्रह्मकी अनुभूति

भ

भक्तानन्दायिनी—भक्तोंको आनन्द देनेवाली
भोक्तृत्वभाव—भोक्ता होनेका भाव

म

मत्सम्बन्धी—मेरे सम्बन्धी
मत्सरता—डाह, जलन, द्वेष
मथन—मथनेका भाव
मधुरिमा—माधुर्य
मन्वन्तर—ब्रह्माजीके दिनका चौदहवाँ भाग
मन्तव्य—विचार, मत
मर्मार्थ—सार
महत्—बड़ा
मायाच्छन्न—मायाके द्वारा आच्छन्न
मुकुलित—आधा विकसित
मुमुक्षु—मुक्तिकी इच्छा करनेवाला
मेधायुक्त—मेधावी
मोहान्ध—मोहसे अन्धा
म्लेच्छ—चारो वर्णोंसे भी नीच

य

यतिगण—संन्यासी लोग
याग—यज्ञ
यादृच्छिक—स्वतन्त्र, ऐच्छिक
युक्तियुक्त—उचित, युक्तिपूर्ण
युगपत्—एक ही समयमें, साथ-साथ
युगावतार—प्रत्येक युगमें लेनेवाले अवतार
योगमाया—भगवान्‌की परा शक्ति
योगस्थैर्य—योगकी स्थिरता

र

रक्तिम—लालिमायुक्त
रञ्जित—रंगा हुआ
रुक्ष—रूखा, नीरस

ल

लिङ्गशरीर—सूक्ष्म शरीर
लिप्सा—किसी वस्तुको पानेकी इच्छा
लुब्ध—ललचाया हुआ, लोभित
लोकपाल—लोकका पालन करनेवाला
लोकप्रवर्त्तन—लोगोंके कल्याणके लिये

व

वञ्चक—वञ्चना करनेवाला
वयस—उम्र
वर्चस्व—अधिकार
वर्णविशिष्ट—वर्णवाला
वर्णसङ्कर—भिन्न जातियोंके स्त्री-पुरुषसे उत्पन्न
वाक्—वाणी, बोलनेकी इन्द्रिय
वाचाल—अधिक बोलनेवाला
वागिन्द्रिय—जिह्वा
विक्षिप्त—पागल, उद्विग्न

विगुण—गुणहीन
विच्युति—भूल, पतन, वियोग
विजितात्मा—जिसने मनको जीत लिया है
विज्ञ—पण्डित, जाननेवाला
विदित—मालूम
विधर्म—धर्मविरूद्ध
विधिवादिगण—नैतिक लोग
विधेय—करने योग्य
विधेयात्मा—जिसकी आत्मा संयत हो
विन्यास—व्यवस्थित करना
विपर्यय—प्रतिकूलता, विपरीतता
विभूति—ऐश्वर्य
विरहकातर—विरहसे कातर
विरोधाभास—विचारमें विरोध प्रतीत होना
विलास—क्रीड़ा
विवक्षित—इच्छित, कथित
विवृत—स्पष्ट, व्यक्त
विशारद—निपुण
विशिष्ट—विशेषतायुक्त
विशिष्टता—विशेषता
विशुद्धचित्त—जिसका चित्त शुद्ध है
विशेषत्व—विशेषता
विषयणी—विषयसे सम्बन्धित
विहित—आदेश किया हुआ
वृष्टि—वर्षा
वेदज्ञ—वेदोंके जाननेवाला
वैषम्य—विषमता
व्यङ्गोक्ति—गूढ़भाषा, वह भाषा जिसमें व्यङ्ग हो
व्यतिक्रम—उल्लङ्घन
व्यतिरेक—असङ्गति, निषेध
व्यवहृत—व्यवहार किया हुआ
व्योम—आकाश

श

शोच्य—शोचनीय
शैव—शिवके उपासक
श्रुत—सुना हुआ
श्रोतव्य—सुनने योग्य
श्लेषोक्ति—छिपे अर्थवाली बात

ष

षडैश्वर्यपूर्ण—छः ऐश्वर्योंसे परिपूर्ण

स

सङ्कीर्णता—उदार ना होनेका भाव
संवरण—छिपाना
संवेदन—अनुभूति
संस्पर्श—अच्छी तरहसे होनेवाला स्पर्श
संहर्त्ता—संहार करनेवाला
सङ्गति—मेल
सञ्चित—जमा किया हुआ
सदातन—विष्णु
सद्विवेकी—सद् विवेकवाला
समत्वभाव—समताका भाव
सन्निविष्ट—उत्तम रूपसे एकाग्र
समाहर—समुच्य, समूह
समाहित—संयमित, व्यवस्थित
सम्बन्धविशिष्ट—सम्बन्धवाला
सम्मत—सहमत, एक मत
समन्वित—संयुक्त, स्वाभाविक रूपसे क्रमबद्ध
सम्यक्—भलीभाँति, अच्छी तरह
सर्वतन्त्र—समस्त सिद्धान्त
सर्वतोभावेन—सम्पूर्ण रूपसे
सर्वभूतात्मा—सभी जीवोंके आत्मा अर्थात् परमात्मा
सर्वभुक्—सब कुछ खा जानेवाला
सर्वात्मकत्व—सर्वात्मकता
सहस्र—हजार
साम—सामवेद
सामर्थ्यविशिष्ट—सामर्थ्यवान्
साम्यलक्षण—समानताका लक्षण
सारगर्भित—तत्त्वपूर्ण

सालोक्य मुक्ति—जीवका भगवान्‌के साथ एक ही लोकमें वास करना
साष्टाङ्ग प्रणाम—आठ अङ्गोंसे प्रणाम (सिर, हाथ, पैर, आँख, जंघा, हृदय, वचन और मन)
सुखान्वेषी—सुखकी खोज करनेवाला
सुदुराचारी—अति दुराचारी
सुधा—अमृत
सुरस—रसयुक्त
सुष्ठु—भली भाँति, अच्छी तरह
सुस्पष्ट—विशेषरूपसे स्पष्ट
सौम्य—सुन्दर, कोमल
स्खलित—गिरा हुआ
स्निग्ध—स्नेहयुक्त, प्रियता
स्नेहाधिक्य—स्नेहकी अधिकता
स्फूर्ति—स्फुरण, व्यक्त होना
स्पृहा—इच्छा, आकाङ्क्षा
स्फुरण—व्यक्त होना
स्फुलिङ्ग—चिङ्गारी
स्मार्त्त—स्मृत्ति शास्त्रका अनुयायी
स्थायित्व—स्थिरता
स्रुवा—घीमें आहुति डालनेकी करछी
स्वच्छन्द—स्वतन्त्र
स्वधर्मस्थ—अपने धर्ममें स्थित
स्वयंभू—स्वयं उत्पन्न
स्वानन्दपूर्ण—अपने आनन्दमें पूर्ण

ह

हत—मरा हुआ
हतभागा—भाग्यहीन
हन्त—मारना
हिरण्यगर्भ—ब्रह्मा
हेयता—तुच्छता
हृदगत—हृदय-सम्बन्धी